

आधुनिक हिन्दी-काव्य में विरह-भावना

हमारे चुने हुए आलोचना-ग्रन्थ

प्रापुनिक हिन्दी साहित्य में ममालाचना का विकास डा० बेंकट शर्मा	२० ००
प्रापुनिक हिन्दी कविता में गित्य डा० कस्तास बाजपेयी	१२ ००
गाराणाय डा० रागेम राषव	८ ००
सूत्रोक्त और हिन्दी साहित्य डा० विमलकुमार जन	८ ००
हिन्दी कविता में युगान्तर डा० सुधीन्द्र	८ ००
मानानता के सिद्धांत व्योहार राजेंद्रसिंह	४ ००
महाकवि मूरगाय नन्दुलारे बाजपेयी	४ ००
प्रेमचन्द जीवन, कला और कृतित्व हसराम रहबर	८ ००
प्रसाद जीवन, कला और कृतित्व महावीर अधिकारी	८ ००
प्रगतिवाद का रूपरंग ममथनाथ गुप्त	७ ००
साहित्य की समस्याएँ शिवदानसिंह चौहान	१० ००
कान्य के रूप गुलाबराय	५ ००
सिद्धांत और अध्ययन गुलाबराय	६ ००
अध्ययन और भास्वा (पुरस्ठत) गुलाबराय	७ ००
हिन्दी काव्य विमर्श गुलाबराय	४ ००
मन की बातें (पुरस्ठत) गुलाबराय	३ ५०
भालाचर रामचन्द्र सुवल गुलाबराय	८ ००
साहित्य समीक्षा गुलाबराय	२ ००
साहित्य, गिष्ठा और सङ्कृति डा० राजेंद्रप्रसाद	५ ५०
भारतीय गिष्ठा डा० राजेंद्रप्रसाद	३ ५०
हिन्दी साहित्य और उसकी प्रगति स्नातक सुमन	३ ५०
प्रापुनिक हिन्दी साहित्य स्नातक सुमन	२ ००
साहित्य विचारा सुमन मल्लिक	७ ००
साहित्य विवचन के सिद्धांत सुभा मल्लिक	३ ५०
हिन्दी नाटककार जयनाथ 'नलिन	७ ००
कहानी और कहानीकार मोहालाल गिष्ठासु	४ ००
नाटककार उद्गाकर भट्ट मनोरमा शर्मा	४ ००
व्यक्ति बचौरानी गुट्टू	१० ००
हिन्दी के छात्राषा बचौरानी गुट्टू	८ ००
महा २१ शर्मा बचौरानी गुट्टू	६ ५०
मुमिब्रानन्ता षा बचौरानी गुट्टू	६ ५०
मुमिब्रानन्ता षा कला काव्य और दान नारज	३ ००
साहित्य के शर उद्गाकर भट्ट	३ ५०

आत्माराम एण्ड सास, दिल्ली ६

आधुनिक हिन्दी-काव्य में विरह-भावना

दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी०
की उपाधि के लिए स्वीकृत शोध प्रबंध

लेखिका

डा० मधुरमालती सिंह

इन्द्रप्रस्थ कालेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

भूमिका

आचार्य विनयमोहन शर्मा

१९६३

आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली-६

ADHUNIK HINDI KAVYA MEN VIRHA BHAWNA

by

Dr Madhur Malta Singh

Rs. 15 00

COPYRIGHT © 1963, ATMA RAM & SONS DELHI 6

प्रकाशक

रामचन्द्र पुरी, संपादक

आचार्य राम एन. सिंह

कानूनी सल, दिल्ली ६

कारक

श्री ४४, नई दिल्ली

नई दिल्ली गेट, जवाहर

पैसा स्थान, न. नूर

बेगमपुरा रोड

सिंह विद्यालय क्षेत्र, चरनी

काला, कानूनी ६

मूल्य पाँच रुपये

प्रथम संस्करण १९६३

भूमिका

विरह भावना को व्याप्ति अपरिमित है, साहित्य शास्त्र उसे अपनी परिधि में नहीं बाँध सका है, मानव जीवन की अनन्त दशाएँ व्याख्यायित हैं, इसमें सन्देह नहीं, पर वह इतना जटिल है—उगड़ी मानसिक तह परम्पर इतनी गुम्फित है कि उन सबका ज्ञान मानसशास्त्रियों को अद्यापि नहीं हाँ पाया।

वक्ष्य जगत में घटित होने वाला वर्तमान जीवन के विरह भाँता मानव अनुभव करता ही है पर रहस्यमय अज्ञात मन जीवन के विरह की गुप्त अनुभूति भी कभी-कभी मन के किसी पदों को स्पर्शित करने लगती है और वह उदास हाँ उठता है। शाकुन्तल में कालिदास ने इस प्रकार की विरहानुभूति को और निम्न स्तरों में इंगित किया है—

‘रम्याणि वीक्ष्य मधुरास्त्र निशम्य सद्दान
पयुक्तुको भवति यत्मुत्तितोऽपि जन्तु
तच्चेतसा स्मरति नूनमवाध पूव
भावस्थिराणि जननात्तर सोहृदानि।’

मनुष्य सब प्रकार से सुखी होकर भी क्यों सदा क्लिप्त हो उठता है? किस जन्म के सम्कार उसके अचरित मन को विषण्ण बना देते हैं? कवि कुलगुरु का यह अनुभव ठीक ही प्रतीत होता है कि वर्तमान जीवन में घटित होने वाली कोई घटना हमारे पूर्व जन्म के अनुभूत सस्कार को निश्चय जगा देती है।

श्रीमती मधुरनालतीजी ने अपने प्रस्तुत प्रबंध में विरह के प्रत्येक प्रकार का शास्त्रीय विवेचन किया है। मम्मट ने अभिलाष, ईर्ष्या, विरह प्रयाम तथा शाप हतुक विप्रलम्भ का विवेचन किया है। पर तु विश्वनाथ ने पूर्वानुराग, मान, प्रवास और कर्ण नामक भेद ही स्वीकार किए हैं।

प्रबंध का विषय यद्यपि आधुनिक हिन्दी काव्य में विरह भावना है तो भी लेखिका ने बह्विध सस्कृत, लौकिक सस्कृत पाली, प्राकृत, अपभ्रंश और प्राचीन हिन्दी साहित्य का भी मनायोग पूरा मद्यन कर उमम उच्छ्वसित विरह भावना की विभिन्न दशाओं पर प्रकाश डाला है। और इस प्रकार विषय का शृङ्खलाबद्ध इतिहास ही प्रस्तुत कर दिया है। यह प्रबंध की एक विशेषता कही जा सकती है।

विरह की अवस्थिति शृंगार रस के अन्तर्गत मानी गई है, जो प्रायः नायक-

साक्षात्कार के शारीरिक वियोग का परिणाम होती है। परन्तु विरह की एक दशा और भी है त्रिज भङ्गा और सनों न अनुभव किया है। वह शरीरी है और आत्मा से सम्बद्ध है। उनका विचार है कि 'आत्मा ध्यान में प्रविष्ट कर शरीर में बँध जाने के कारण म्यात्रुत होता रहती है और उसने पुन मितन के लिए धानुर बनी रहती है। इस आस्था का अनुभूति में भा लौकिक विरह की प्रथम दशा अभिव्यक्त होती है। कवि रवीन्द्र का धारणा रही है कि उनके पात्रों में कोई विरहिणी नारी है जो अर्हनिश अधु मोचन करती रहती है।

आत्मा का विरह शरीर के माध्यम से ही अनुभूत होता है और जब हम सच्चि के ध्यान में प्रणी (परमात्म शक्ति) का ही विलास देखते हैं तब विरह का शरीर और शारीर नामक भेद वहाँ रह जाता है? स्थूल और सूक्ष्म तत्त्व वस्तुतः भी नहीं। विज्ञान भी इनके भेद की दीवार को नष्टा दिखाई देता है। जयदेव के राधा माधव के विरहोन्मीलन की मधुर परिणति भले ही शरीर मितन में हुई हो पर भङ्गा को उसमें धन और प्रीति का ही एकान्त भाव दृष्टिगोचर हुआ है। इसी को शृंगार का उदात्त भाव कहा जा सकता है। स्वयं कवि जयदेव बतलते हैं—

यदि हरिस्मरण सरग मनो यदि विलासितामु ध्रुतूहलम्

मधुर कामल भान्त पत्तयर्ना शृणु तदाजयदेव सरस्वतीम् ।

(यदि हरि विलसित रस धानुर मन, यदि रति भाव हुलासे ।

ता मधु बोधन काल पत्तयलि सुनो, स्वग गुण भास ।)

कवि के शरीर में उनका गीत गावित लौकिक और शरीरिक दोनों प्रकार के रति भाव को जागृत कर सकता है। भाव विषय का उद्रेक तो धीरे धीरे मन का खेल है। यद्यपि लौकिक भाव में विरह दुःख रूप है पर साहित्य में उसकी अनुभूति सुखमय ही होती है क्योंकि भावक का उमने व्यक्तिगत लगाव नष्ट रहता। यह नहीं कि वह उमने उन्मीलन नहीं होता, धरुण काव्य का पात्र उतना धीमे नहीं भीगती। वह उन्मीलन होता है साथ ही होता है। पर उतका पयवसान गुण में ही होता है। यहाँ धरुण का विरह वियद्वान्त हमारी गहायता करता है। हमारा जीवन का वास्तविक दुःख साहित्य में बलिग रूप में उद्बुद्ध हो धीमे धीमे भाव से नि सुत हो जाता है। परिणामतः हम गुण अनुभव करने लगते हैं। भारतीय ध्याय धनञ्जय और विश्वनाथ ने भी उचित ही दुःख को गुण रूप बनाया है।

विशुद्धी मंगिता के शास्त्रीय और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से रस विवेचन करने के अन्तर्गत शरीर के पुरस्कर्त साहित्यों में अभिव्यक्ति विरह भावना का सिद्धावलोचन कर साधुनिक दृष्टि कविता की शृंगारों से उन मार्मिक प्रसंगा का ध्यान और समीक्षण किया है जिसमें विरह का उन्मीलन है। शरीर के तत्त्व धमवीर भाग्नी के काव्य में विरह का मनवीर रूप ही अधिक प्रकट हुआ है। ध्यायवाणी काव्य में यद्यपि कहीं-कहीं 'रहस्य' का प्रयोग अधिक सम्पत्ति मितनी है पर मूलतः उमने भी स्थूल का स्थूल के प्रति राग ही

रजित हुआ है, जो लेखिका को भी भाग्य है। प्रबंध की भाषा और प्रतिपादन शैली जमना विषय के अनुरूप कोमल, ललित और तब सम्मत है। इसके प्रकाशन से निश्चय ही हिन्दी के गीत और समीक्षा साहित्य की श्रीवृद्धि हुई है। विप्रलम्भ शृंगार पर प्रथम बार ऐतिहासिक और वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। अतः लेखिका धन्यवादाह है।

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय

—विनयतो न शमा

शास्त्रियों के शृंगाररस मन्व्यथी लक्षणा का अध्ययन और विवेचन प्रथम अध्याय के अन्तर्गत है। इसमें शृंगाररस के विभिन्न और दाम्पत्य रूपों की विवेचना तथा दाम्पत्य-शृंगार का गाम्भीर्य अध्ययन है। 'दाम्पत्य शृंगार' के दो रूपा, मभाग और विप्रलम्भ के अध्ययन और विवेचन के उपरान्त विप्रलम्भ शृंगार और उमरा विभिन्न भेदा से मन्व्यथ लक्षणा की विस्तृत व्याख्या करके उनमें विरह भावना की अवस्थिति का दिखाना इस अध्याय में किया गया है। इसके पदचान् विप्रलम्भ की विभिन्न नाम दसाभा का गाम्भीर्य और मनोवैज्ञानिक अध्ययन है तथा आधुनिक मनाविज्ञान की दृष्टि से विरह भावना की अवस्थिति की गोल का प्रयत्न भी है।

द्वितीय अध्याय में बदिन, पीरागिन बौद्ध, नमून् प्राहुन और अपत्रा कायी की विरह भावना का मीप्ल अध्ययन, विप्रलम्भ व विभिन्न भेदा के अनुसार किया गया है। हिंदी के प्रारम्भिक काव्य में मेजर रोतिनात व काव्य रूप की विरह भावना का मीप्ल अध्ययन और विवेचन भी इनके अन्तर्गत है।

भारत दु कान का विरह-वाच्य किहीं अर्थों में भी आधुनिकता से प्रभावित न था। रोतिवाचन विरह-वाच्य का अन्वेष रूप यह काव्य आधुनिक काव्य का प्रवृत्तिया में किमी के अन्तर्गत भी न आ सकता था। अत उमरा विवेचन पृथक् रूप में द्वितीय खण्ड के प्रथम अध्याय में किया गया है।

२०वीं शताब्दी के आगमन के साथ पाश्चात्य विचार और मसृति के सम्पर्क से भारतीयों में मसृति के पुनजागरण का युग प्रारम्भ हुआ। जहाँ एक ओर राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्र में अनेक आन्दोलन हुए, वहीं दूसरी ओर साहित्यिक क्षेत्र में भारतीय मसृति व पुनजागरण के हेतु अनेक ऐतिहासिक-सांस्कृतिक प्रवृत्तिकाव्य लिखे गए जिनकी परम्परा द्विवेदी-युग से प्रारम्भ होकर अद्यतक चली आ रही है। मुख्य सांस्कृतिक प्रवृत्त का यो में अभिव्यक्त विरह भावना का अध्ययन विवेचन द्वितीय खण्ड के द्वितीय अध्याय में है।

जहाँ एक ओर सांस्कृतिक प्रवृत्त काव्या में समाप्तिगत स्तर पर विरहानिव्यक्ति सम्भव थी, वहाँ दूसरी ओर व्यक्तिक स्तर पर स्व की मुक्त दु मानुषी और उमकी अभिव्यक्ति या अवकाश इस शताब्दी के प्रारम्भ में न था। अत प्रवृत्तिया के अन्तर्गामी हान के कारण छायावादी काव्य का उदय हुआ। छायावादी काव्य के प्रमुख प्रतिनिधि कवियों की विरह भावना का विवेचन तीसरे अध्याय के अन्तर्गत किया गया है।

सन् १९२१ ई० के आसपास छायावादी काव्य के विरह प्रतिप्रिया प्रारम्भ हुई। छायावाद-परवर्ती काव्य चिन्तना और शरी के दृष्टिकोण से अनेक बाधों में विभाजित है किन्तु व्यक्तिक विरहानुभूति के स्तर पर कोई बगलत अथवा वादात तात्त्विक अन्तर इस काव्य में उपलब्ध नहीं है। अत रगीत क्षणवादी, प्रगतिवाद और प्रयोगवाद के अन्तर्गत इस काव्य का विभाजन न करके उनके मुख्य प्रतिप्रिया कवियों के काव्य में प्राप्त समस्त विरहानुभूति का विवेचन, छायावाद-परवर्ती हिंदी-काव्य में विरह भावना के

तामस चतुस्रम्याय म कर दिया गया है।

बिरह भावना की भावसाहरी म दूबपर यदि कुछ उज्वल बहुमूल्य मुक्ताएँ सगिना को प्राप्त हो सकी हैं तो उनका सम्पूर्ण श्रेय श्रीमती सावित्री सिंहा और श्रद्धेय महामहिम नगेन्द्रजी को है। श्रीमती सिंहा, जिनके स्नेहसिक्त धातुसम्पूण अचल की छाया म देने असाध्य मालफ की भाँति ही व, स, ग, घ से प्रारम्भ करके वाक्यरसाम्बुधि म अवाहा करना सीखा और श्रद्धेय नगेन्द्रजी, जिनकी कृपा और नीरसीर विवेचन की गहन गमता का अमूल्य परामर्श मुझे समय-समय पर मिलता रहा। अय गुरुजनो के प्रति भी मैं हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने समय-समय पर मुझे सहायता देने की कृपा की है।

—मपुरमालती सिंह

विषय-सूची

प्रथम खण्ड—सिद्धान्त-निर्हण और पृष्ठभूमि

प्रथम अध्याय विरह भावना शास्त्रीय विवेचन	१
शृंगार रस	१
शृंगार आदि रस	७
शृंगार रस (दाम्पत्य अथ म)	६
शृंगार से मिलते-जुलते अन्य रस	२१
शृंगार रस के भेद	२३
शृंगार रस के दो भेद समोग और विप्रलम्भ	२४
समोग शृंगार	२४
विप्रलम्भ शृंगार	२८
विप्रलम्भ के प्रकार	३४
(अपमानुराग (पूरवराग) ३४, मान ३७, प्रवास ४२, करुण विप्रलम्भ ४४)	
राजा हरिपाल का विप्रलम्भ-सम्बन्धी दृष्टिकोण	४६
काम-दर्शाएँ	४८
विरह का मनोवैज्ञानिक विवेचन	५४
द्वितीय अध्याय भारतीय साहित्य में शृंगार और विरह भावना	६०
वदिक, बौद्ध, पौराणिक साहित्य में शृंगार की अवस्थिति और विरह	६०
वदिक साहित्य	६०
बौद्ध साहित्य	६३
पौराणिक साहित्य	६३
संस्कृत-साहित्य में विरह भावना (सन्निप्त विवेचन)	६८
(पूरवराग ६८, मान विप्रलम्भ ७०, प्रवास विप्रलम्भ ७२, करुण विप्रलम्भ ७५)	
अपभ्रंश काव्य में विरह भावना	८४
(पूरवराग ८५, मान विप्रलम्भ ८५, प्रवास विप्रलम्भ ८७, करुण विप्रलम्भ ९३, परपीठन ९५, रहस्यवादी विरह भावना ९६)	

आभा का विरह काव्य और प्रकृति	६६
(कार्तिका ६८, अरुण विरह-काव्य म प्रकृति का काव्य रूप ६६)	
प्रारम्भिक हिन्दी-काव्य म विरह भावना	१००
(पूरसा १००, तान विप्रलम्भ १०० प्रताप १०६, वरुण विप्रलम्भ ११६)	
भक्ति काव्य म विरह भावना (तायमी व काव्य म)	१२०
(पूरसा १२१, मान विप्रलम्भ १२२, प्रवास १२३, वरुण विप्रलम्भ १०७)	
प्रथम शतक विभूषण काव्य म विरह भावना	१२७
(पूरसा १२८, माता १३०, प्रताप १३८, वरुण विप्रलम्भ १४१)	
राविराजान विरह काव्य और उमरी वृत्त परम्परा	१४४

द्वितीय खण्ड—विषय विवेचन

प्रथम अध्याय प्रारम्भिक आधुनिक हिन्दी काव्य मे विरह भावना	१५७
साहित्यिक युग का प्रारम्भ युग जनना और भारते-दुयुगीन कविता	१५७
साहित्यिक युग म उत्तर मध्यकालीन विरह भावना का अन्वेष (भारते-दुयुग)	१६४
(पूरसा १६६ मान १७०, प्रवास १७३, वरुण विप्रलम्भ अथवा ग्रन्थ वि-७८ १७८ पञ्चतु-वर्णन १८०)	
द्वितीय अध्याय साहित्यिक प्रथम कविता मे विरह भावना	१८६
रामनरुण प्रियागी	२००
हरिषीप	२०६
मधिराजरा गुप्त	२२०
नयनर प्रताप	२५७
विराज	२६६
दा० शंकर प्रताप मिश्र	२६६
गणकाप्रताप मिश्र	२७५
हरिचन्द्रमिश्र	२८४
रामानन्द विरार गान्धी	२८८
रामानन्द	२९४
विरह अथवा विरहाभास	२९५
विरह	३०२
तृतीय अध्याय समावर्ती काव्य मे विरह भावना	३०२
रहस्य भावना का अन्वेष और उमरी भारतीय परम्परा तथा आधुनिक रचना	३०६
साहित्यिक रचना	३१०
रहस्य भावना क विविध सम्पान	३१०

प्रसाद रहस्यवादी विरहानुभूति	३१३
प्रसाद लौकिक विरहानुभूति	३२१
महादेवी की विरहानुभूति	३२७
सुमित्रानन्दन पत्र के काव्य में विरहानुभूति	३४२
निराला के काव्य में विरहानुभूति	३६३
पार्थिव विरह भावना	३६३
प्रकृति के प्रतीक रूप में व्यक्त हुई विरह भावना	३६६
निराला के काव्य में रहस्यवादी विरह भावना	३७०
चतुर्थ अध्याय छायावाद-परवर्ती हिन्दी-काव्य में विरह भावना	३७८
वचन	३८२
नरद्वय वर्मा	४१२
भगवतीचरण वर्मा	४१७
शिवमणिसिंह 'सुमन'	४२४
अचल	४३१
अनेम	४३२
गिरिजाकुमार मायूर	४३६
धमवीर भारती	४५७
उपमहार	४६३
प्रधानाशुक्रमणिका	

उदय (टोनी)

को

जिसने मधुर शशव के प्रति इस प्रवचन का अक्षर-
अक्षर कृत है। जो मा के श्रम सीकरा को अपने
छाट छोटे हाथों से सहलाकर दुगारा देता था,
जिसको गोद में उठाकर वह अपना सम्पूर्ण अस्तित्व
को भूल हृदय विह्वल विस्मृत-सी हो उठती थी

प्रथम खण्ड

सिद्धान्त-निरूपण और पृष्ठभूमि

प्रथम अध्याय

विरह-भावना : शास्त्रीय विवेचन

'राग' और 'द्वेष' की दो मूल विराधी वस्तियां न प्राणीमात्र का जीवन स्पन्दन-युक्त है। इनमें भी 'राग' ही विशेष महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यही जीवन और उसके आकर्षण के प्रति आसक्ति का मूल कारण है। 'राग' में प्रेरणा प्राप्त करके प्राणीमात्र और विशेषतः मानव बंधन प्रवृत्त होते हैं। इसीसे इसका जीवन की मूल प्रवृत्ति कहा गया है। सृष्टि का सजना अतः भी 'राग' है। इसमें प्रेरित होकर विराधी विंग — नर और मादा, स्त्री और पुरुष परस्पर आकर्षण का अनुभव करते हुए मन और शरीर का एकत्व की अनुभूति करते हैं, प्रजनन की ओर प्रवृत्त होकर व भावी प्रजा की जीवन शृंखला को जीवित रखते हैं। स्त्री और पुरुष के परस्पर उन्मुखी भावना, किसी अवरोध के कारण जब एक पक्ष दूसरे पक्ष की अभाव पीड़ा का अनुभव करता हुआ उसकी प्राप्ति और प्राप्ति का सुख के लिए त्रिकल हो उठता है तब उसकी वेदना का विरह भावना के नाम से अभिहित किया जाता है।

शास्त्रीय दृष्टि से विरह भावना का सम्बन्ध शृंगार रस में है। अतः विरह भावना की काव्य शास्त्रीय स्थिति से परिचित होने के लिए शृंगार रस के लक्षणों और उसके विभिन्न भेदों-उपभेदों का विस्तृत विवेचन अनिवार्य है।

शृंगार रस

नाट्यशास्त्र के अध्याय ६ की ४६वीं कारिका में शृंगार रस का लक्षण भरत ने इस प्रकार किया है—“रति स्थायी भाव से उत्पन्न शृंगार रस उज्ज्वल रूप सयुक्त है। लोक में जा कुछ पवित्र एवं दानीय है, वह शृंगार ही है। जिस प्रकार लोक में परम्परा और रीति के अनुसार चरित्रों का नामकरण किया जाता है उसी प्रकार नाटक में मनोविकारों और भाववस्तियों का नाम होता है। शृंगार रस उज्ज्वल रूप और वातावरण से सम्बन्धित हान के कारण बसा कहा जाता है। स्त्री और पुरुष इसका हेतु हैं और यह जीवन समृद्धि में सम्बन्धित है।

इसके दो अनुष्ठान हैं—समाग और विप्रतम्भ। यह अनुकूल वातावरण में प्रिय व्यक्तियों के सतत से उपस्थित होना है। प्रियजनों के साथ उपवन आदि में दान स्पर्श श्रवण और शीघ्रादि में इसकी उद्दीप्ति होती है। रगमच पर इन मधुल कटाशा और

अनित्य व माय उपस्थित करती गतिहीन। इसमें उग्रता मरण आनन्द और जुगुप्सा—
यह चार मन्त्रांगना हैं। विप्रलम्भ में निर्वेद स्थिति का अन्वेषण, चिन्ता उत्सु-
कता निरन्तर मुक्ति स्थान विचार (मन्त्रम जाग जाना) व्याधि उन्माद जन्ता (मूर्च्छा),
मरण प्राप्ति स्वप्नस्थान प्राप्ति है।

“रस प्रा” हा भरत न विप्रलम्भ और वरण रस व अन्तर की स्पष्ट किया है।
वरण रस में गाव व वरण इष्ट जन धभव प्राप्ति व नाग म विभाग का जो दुःख उत्पन्न
होता है उग्रम प्राणा नहीं रहती निर्यात भाव होता है। किन्तु प्रियामात्र दुःख में प्रमी
की मित्य की प्राणा ३५ रहती है। अतः विप्रलम्भ वरण रस में भिन्न है यह सापेक्ष
है।

भरत व शृंगार रस सम्बन्धी वशाणा का “सा” का रस प्रकार की जा सकती है—
स्वाधी भाव—(हृद्य म वासना रूप से स्थित भाव) रति।

आनन्दन विभाव—(जिनके सहार भाव प्रकट होता है) जीवन समझ स्त्री
दुःख (शत्रुगुहारा उग्रम मयनि प्रकृति) अग्रान नायक नायिका।

उदात्त विभाव—भाव की रस काटि तत्र पटुचा म सहायक उमको उद्दीप्त
वरतनायक—अन्तः प्रवृत्त और प्रियान का श्रवण रगन प्राप्ति है अग्रान शृंगार रस
व उग्र पन विभाव प्राकृतिक भा हा मरत ह और मानवा भा।

अन्याय—(भाव व अन्याय) भक्ति रूप कटाक्ष प्राप्ति जो नायक नायिका में
परस्पर रगन रगन प्राप्ति व मनुज अभिनय व द्वारा रगमय पर प्रकट होत है। यह अरत
भा मरत ३।

संचारी भाव—(भाव व रग काटि तत्र पञ्चन हा अग्रधिम समय समय पर उठने

गिरन वाले अनेक भाव, जा म्यायी भाव की पुष्ट बनाकर रम बाटि तय पहुँचात हैं) ।

“शृगार रस वा स्यायी भाव रति कहा गया है । नाट्यशास्त्र के ‘सामान्याभिनय नामक अध्याय म शृगार रस के विभिन्न प्रकारों का उल्लेख करते हुए भरत न काम “शृगार की व्याख्या की है और उसका हा म्यायी भाव रति बनाया है—’ स्त्री और पुरुष के मयोग से उत्पन्न होने वाले काम का काम नाम अथवा काम “शृगार कहा जाना है । यह स्त्री-पुरुष के मयोग म रति का सयोग उपन कराना है ।^१

दाम्पत्य भाव मे हान जाने इस “शृगार क अतिरिक्त भरत न शृगार क एक और व्यापक रूप की आग भी सक्त किया है जिसम उद्दान जीवन क चौरा पुरपाथों की पूर्ति का समवित्त होना कहा है—‘पृथक् पृथक् कर्मों के योग से विधिना द्वारा विधिपूर्वक किया गया शृगार धम अथ और काम क काग्य तीन प्रकार का है । जब धम म प्राथित मात्र हित (Longed for object) साधना द्वारा प्राप्त हो जाना है ता वह धम “शृगार है, जो नियम तय आदि मे पूण है ।

जब अथ की (बहुधा) इच्छा स “शृगार हाता ८ ता उसे अथ शृगार कहते हैं ।

स्त्री मयोग जय विषय म अभिरति को काम “शृगार करत है । वह केवल कल्पना म भी हो सकती है । क्या का आकृष्ट करना अथवा प्राप्त करना अथवा स्त्री-पुरुषा का शृगार या एकांत मिलन अथवा आक्रम काम “शृगार कहलाता है ।^२

यह स्पष्ट है कि यहा भरत ने शृगार का उद्दान व्यापक अथ मे लिया है । शृगार का स्यायी भाव ‘रति’ कहा जाता है । शास्त्रा म ‘रति की व्याख्या इस प्रकार है—‘रति मनानुकूलैऽयं मनस प्रवणायितम अर्थात् मनानुकूल वस्तु म मुख प्राप्ति का चान हा रति है । यह मनानुकूल वस्तु जीवन क निःसा भी क्षेत्र की हा सकती है वह जीवन के चारा पुरुषार्थों मे से किसी से भी सम्बन्धित हो सकते हैं । धम अथ और काम के अतिरिक्त मोक्ष प्राप्ति की इच्छा भी शृगार का ही एक रूप है । वहाँ मात्र मनानुकूल वस्तु है और

१ म्या पुमयोस्तु मयोग य स तु काम शक्ति मन्तुः ॥६६॥

य स्त्रापुमयोगा रति मयोगो कारक ।

स शृगार इति शेष उपहार कृत् पुम ॥६७॥

भरत—नाट्यशास्त्र सामान्याभिनय अध्याय २२ ।

२ त्रिविधाश्चान् विधिषु पृथक् पृथक् काययोग विहितान् ।

त्रिविधस्तु शृगारो धेयो धमाऽकामस्तु ॥७२॥

यत्र तु धर्मप्राथितमात्महित भवति माधिन वदुःश ।

प्रतिनियमनपोयुक्तं श्रेयोऽसा धम शृगार ॥७३॥

अथस्येच्छायोगात् वदुःश चैव वाऽशृगार ।

स्त्रापुमयोगविषयेष्वथा म्पाय्यत्र हि रति ॥७४॥

क्याविशोभनस्तु प्राप्त स्त्रा पुमयोस्तु रत्न वा ।

निश्चय साधन वा म्नायात् कामशृगार ॥७५॥

भरत—नाट्यशास्त्र अध्याय १८ ।

उगरी प्राप्ति के प्रति रति विद्यमान रहती है। इसीलिए भरत ने कहा भी है—“धम कामा-धराम-र मा-धरामन्धव च । (नाट्यशास्त्र सामान्याभितथ, अध्याय २२ कारिका ६१)।

इस व्यापक अर्थ में ‘दृगार को आत्मतुष्टि का पर्याय समझना चाहिए।

दृगार का मूल तत्त्व काम है, रति को कामधेय का परती कहा गया है। काम और रति के मयाग सही दृगार उत्पन्न होता है। भरत ने कहा है कि प्रायः सभी भावों की उत्पत्ति काम में होता है— प्रायण सर्वभावाना धामानिर्णतिरिष्यते। इस रूप में काम धर्य जावन-टा हा है। उसमें ही विभिन्न भाव अस्ति व म आन है।

काम के इस व्यापक अर्थ का नल्लस हम अर्थ आप्त ग्रंथा में भी प्राप्त होता है। यत्कारण्यव क अनुसार पुरुष काममय ही है।^१ मनु कहते हैं— इस ससार में कहा भी धरामा नरा है। व्यक्ति का कुछ करना है वह काम का हा चप्पा होती है। कोई भी विना कभी भी धकाम नहा नगा जाता।^२ गिनपुराण के अनुसार जा आन-द अमत् और रति अ है उभातो परशर कहते हैं और परमात्मा भी कहते हैं। उसी के विचार को काम कहा है।^३ अर्थात् ब्रह्म का विचार अधवा जगत काम के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

इस अर्थ में ही कि जगत के समस्त काम व्यापार प्राणी की जीवनेच्छा पर ही धररभित है। आधुनिक समय में प्रसाद ने इस भाव का अपने कविस्वमय गदो में व्यक्त किया है

मैं काम रहा मन्चर उनका

उनके विनोद का गाधन था

अंगना था और हमागा था

उनका मैं कृतिमय जीवन था।^४

कतिमय नारन धयान ममस्त कायों की प्ररणा।

गया—

जो धारण बन हगता थी

अव्ययन प्रकृति उमीलन के

अन्तर म उमना चाह रही ।^१

'रति जीवन प्राणपण है वह अव्ययन प्रकृति (पुरुष) का नामरूपात्मन जगत का रूप में प्रकट करती है। जा भी युद्ध वाम हम समार म करते हैं, यह किसी विरोध इच्छा की पूर्ति के लिए। अत रति सवत्र ही व्याप्त है।

महामारत म वाम की मुमुक्षु पर विनय प्राप्ति की योग्यता म बड़ा सुन्दर श्लोक कहा गया है। वाम मुमुक्षु पर अपनी विजय घोषित करता हुआ कहता है—

"जो मोक्ष इच्छुक पण्डित मान्य प्राप्ति म ध्यान लगाकर मुभवा नष्ट करन का प्रयत्न करते हैं, उनम भी मैं मान्य रति के रूप म स्थित रहकर नश्य करता हूँ और हेमता हूँ। अथवा मोक्षनामी उम व्यक्ति का मैं नचाता हूँ और उनका उपहास करता हूँ।"^२

कामभूय के मगत श्लोक म भी वाम को धम अथ, काम और मा । मय प्रकार का बताया गया है—“धम, अथ, काम और मोक्ष इन सभी प्रकार व कामा का मैं नमस्कार करता हूँ।”^३

भगवद्गीता म भी धम अथ आदि कामा की ओर संकेत है—‘जिसका भजन करन हुए धम, अथ और कामा की इच्छा करन वाले लोग अभीष्ट गति का प्राप्त करते हैं।’^४

गोस्वामी तुलसीदास न भी बड़ा है—

‘काम कुमुमघनुसापन लीह, सबल भुवन अपन वम कीह।

मोहन अथ कीह कहि केही, जो जग काम नचाय न जहा ॥^५

अर्थात् इच्छा व्यक्ति का मनमाना नाच नचानी है। विश्व पूण रूप से काम व वग म है। समार का कोई भी काय-व्यापार काम की स्थिति व बिना सम्भव नहीं है।

शृगार का इस व्यापक अर्थ म व्याख्या महाराज भाज की शृगार विषयक विवेचना म अपने पूण प्रवच को पढ़ेंच गई थी। महाराज भाज के अनुसार—‘अह भाज के आत्म स्थित गुण विरोध को शृगार कहन हैं। उसका ही आत्मशक्ति की रसनीयता व कारण रसत्व है। अर्थात् आत्मा का अह भाव ही रसत्व को प्राप्त होना है। इसका कारण रसिक

१ कामावना, काम मग, पृष्ठ नं० ७२ ।

२ यो मा प्रयथा इन्तु मोक्षमाशाय पण्डित
उभ्यमोक्षरतिस्थस्य नृत्यामि च इमामि च ।

—महामारत, अश्वमेध पर्व, अध्याय १३ ।

३ नमोऽमात्यकामभ्य तत्कामभ्यो नमोलम ।

त्रिवग मोक्ष कामभ्य ॥

—पंचमस्कन्ध का अगत श्लोक, कामभूय ।

४ य धमावविमुक्तिशायाम अचन्य शय्या गतिमान्बुवन्नि ।

—भगवद्गीता

५ रामचरितमानस, बालकाण्ड, दोहा २५६, चौपाई १ (गोता प्रेम. गोरखपुर आश्रम प्रकाशनी ।

होते हैं।^१

यह अद्वैत तत्त्व शृंगार कवन इसलिए ही नहीं कहनाता कि यह प्राणी का पूणता के शृंग पर पहुँचा देता है बल्कि इसलिए भी इसका शृंगार कहत है, क्योंकि यह ही अन्तिम रति है, जो प्राणी के अग्रम प्रति प्रेम के कारण अथ विषया के प्रति भी उसके राग का कारण बनती है। वह आत्मयोनि अग्रम काम का स्वयं जाग्रत ही है। काम में हमारा यहाँ तात्पर्य स्त्री पुरुष के परस्पर आवरण में उपन हान वाला काम नहीं है। वरत जमा कि हमने पहन हाप्ट किया है, काम स्वयं जावाच्छा है निमग्न द्वारा प्राणी का प्रत्येक वाय जीवन को पूर्ण पाना है तथा जीवन के विभिन्न अनुभवा में अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियाँ के कारण अनन रसा का अनुभव करता है।

शृंगार आदि रम

शृंगार रम को रम व्यापन रूप में समझ लेने के पश्चात् हम निश्चयात्मक रूप से आचार्यों के उन विचारों को पूणत स्पष्ट समझ पाने हैं कि शृंगार ही प्रथम रम है। रम उत्पत्ति के विषय में अग्निपुत्रण में लिखा है—

“अद्वैत, अज्ञ मनात्मन विभुया महज आनन्द कभी कभी प्रकट हो जाता है, यह अभिव्यक्ति चतुर्थ चमत्कार और रममया हानी है। उसके आदि विकार का अहकार कहत है। उसके अह भाव में अभिमान का प्रादुर्भाव हुआ जा भुवन में व्याप्त है। अह भाव सकलित अभिमान में रति की उत्पत्ति हुई इसी रति में शृंगार का जन्म हुआ।^२

आत्मा के अहकार तत्त्व में अह भाव और अभिमान की उत्पत्ति तथा इन दोनों के सकलित हान में राग तत्त्व का उत्पत्ति होने के भाव की पुष्टि हम पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों की राग तत्त्व सम्बन्धी खोजों से भी मिल जाती है। फायड के मतानुसार आत्मा का अह तत्त्व दो रूपा में प्रकट होता है। अह तत्त्व में हमारा अभिप्राय absolute love या

१ सवयामपि भूताना रूप स्वयैव बल्लभ
अतरेऽपत्यविगया तन्लभनयैः हि।

—सागवत।

२ अद्वैत शून्य परम मनात्मन विभुम्,
आनन्द मन्मथस्य यज्यते मद्ददायिन
यत्किं मात्स्यैतन्म्य चमत्कार रसात्पया
आभ्यन्त्र विकारो य मोहकार इति स्मृत,
ततोमिमानस्येदं ममान् सुवनयम्,
अभिमानान्ति मा स्वपरिपोषमुयेविपु,
रागाद्व्यवृत्ति शृंगारो रौद्ररथ्य मान् अजायत,
वरोवत्सम् सकोचमूर्धो भम स्यने,
शृंगारात्पयत इमो रौद्रात्तु कम्पु रम
वाराच्छात्मननिपत्ति म्वात्ममात्स्ययानक।

शृंगार रस किन किन लिगाघ्रा म मनुष्य को प्रियागील बनाता है, इस विषय का विवेचन भी भोज ने किया है। पूर्वोक्त आचार्यों के समान भोज भो जीवन के चार पुद्गलार्थों के अनुकूल चार प्रकार के शृंगारों का अन्विष्ट बनाने हैं—धर्मच्छा, अर्थच्छा, कामेच्छा और मोक्षच्छा। स्त्री-पुरुष की परस्पर रमणच्छा म उत्पन्न शृंगार का भोज काम शृंगार कहते हैं—' विभाव अनुभाव व मचारो वे मयोग से रति स्थायी भाव प्रकथ को प्राप्त होकर काम शृंगार के नाम को प्राप्त हाना है। '

भाज के परवर्ती आचार्यों म शारदातनय न ही शृंगार का उनके व्यापक अर्थ म ग्रहण किया। भावप्रकाश के द्वितीय अधिचार में शृंगार की व्याख्या करत हुए शारदातनय कहते हैं—'वाह्याथ अवलम्बन वाला मन रजागुण निष्ठ होकर जत्र माह्वार हाना है तो उसके विचार को शृंगार कहत हैं। '

इस परिभाषा का विस्तारण इस प्रकार हा सकना है—अह्वार मन म आवश्यक रूप म स्थित रहता है, मन के अह का दूसरा गुण यह है कि वह बाह्य ममार म अवलम्बन खोजता है। इस अवलम्बन की खोज म जब वह रजागुण मे मनिविष्ट हाना है अथात् भाव, विभाव और व्यभिचारो भाव म समन्वित हाना है तो उसके उम विचार को शृंगार कहा जाता है।

शारदातनय की परिभाषा म भाज का ही आधार है उमम कोई मौलिकता नही है। यह उमके विश्लेषण मे स्पष्ट ही है। शारदातनय न इतना और स्पष्ट उन्नत कर दिया है कि मन बाह्याथ अवलम्बन वाला ह, अथात् मन अपन अत् की मनुष्टि बाह्य ममार म दूढा करता है।

शारदातनय के पदचात् शृंगार की इस अर्थ म कोई उल्लेखनीय व्याख्या नही दुर्द। यद्यपि अह की मनुष्टि ही शृंगार का पर्याय है यह गौण रूप म सभी आचार्यों ने स्वीकार कर लिया। शृंगार को रमराज बनाया गया, उमके अतगत और रमा का समाहित होना भी कहा गया कि तु शृंगार को उमके काम शृंगार (दाम्पत्य) अर्थ म ही ग्रहण किया गया और उसकी ही विनाद विवेचनाएँ हमारे यहाँ क मसृष्ट वाव्यगात्रिया न प्रस्तुत की।

शृंगार रस (दाम्पत्य अर्थ में)

शृंगार के जिस दाम्पत्य अर्थ को भरत न व्याख्या की थी, वही उनके परवर्ती

- 1 विभावानुभाव व्याभचारि मयोगात् (वि) प्रकथमापन्नमान प्रधान (मा) वो रतिनाम कामशृंगाररथा लभतः ।

—शृंगारप्रकाश, पृ० १३३, प्रति ४, अध्याय ३२ ।

- 2 बाह्याथलम्बनको मनसो रतिमि स्थित्यात् । साह्वारन्तिकरो य स शृंगार उदारित ॥

—भाव प्रकाश, शृंठ ४७, पंक्ति १३ १४
गायकवाच ओरिण्टल मीरीज, द्वितीय अधिचार ।

भामह न प्रेय का लक्षण इस प्रकार दिया था—'एव वाक्य म सीजय म अधिर आत्मीयता हा तो उमका प्रेय कहा जाएगा।' अर्थात् साम्प्रोय मौजय से अधिर आत्मीयता प्रेय का लक्षण है।

दण्डिन न कहा कि यद्यपि प्रेय शृंगार के बहुत समीप पत्ता है, किंतु फिर भी शृंगार प्रेय म भिन्न है, क्योंकि जहाँ प्रेय ता स्थायी भाव प्राप्ति है, वहाँ शृंगार का स्थायी भाव रति है।

प्रीति और रति के अन्तर को दण्डिन न स्पष्ट नहीं किया, केवल उदाहरण द्वारा यह बता दिया कि प्रीति म आत्मीयता किसी भी प्रिय व्यक्ति के प्रति हो सकती है और रति म वह आत्मीयता अपनी पत्नी के प्रति होगी।

प्रीति और रति के इस अन्तर को बहुत बाद म गारदात्मनय न स्पष्ट किया। उन्होंने कहा कि 'प्रीति प्रियात्मिका हाती है और रति इच्छात्मिका।' अर्थात् प्रीति का प्राण प्रिय है और रति का प्राण इच्छा। एक म प्रियहित कामना ही प्रधान रहती है और दूसरे म इच्छा (वासना) भी सम्मिलित रहती है।

गारदात्मनय के प्रीति और रति मन्व धी विवचन की पुष्टि, दण्डा के उदाहरणों से हो जाती है। विटुर के कृष्ण के प्रति भाव म किसी प्रकार की वासना नहीं है, किंतु उदयन के वासवदत्ता के प्रति भाव म वासना विद्यमान है। कहन का तात्पर्य यह है कि रति स्त्री पुरुष की परस्पर आत्मीयता म ही केवल मिल सकती है और इसमें वासना मूल रूप से स्थित रहती है। स्त्री और पुरुष की परस्पर रति भावना में शृंगार का जन्म हाता है।

'उदभट' ने शृंगार विषयक कोई विवचन नहीं किया केवल रमवद अनकार की परिभाषा करते हुए शृंगार रस नाम का उल्लेख मात्र किया है।

भरत के परवर्ती इन अलकारवादी आचार्यों म 'दृष्ट ही सबसे पहले आचार्य हैं जिहान शृंगार रस का विनाद् विवेचन अपने ग्रंथ में किया। 'काव्यालकार' के १२वें अध्याय में वह कहते हैं कि आचार्यों ने मधुरादि को उनकी रसनीयता के कारण रस कहा है—

रसनाद्रमत्वमेवा मधुरादीनामिवोक्तमाचार्ये ॥४॥

—काव्यालकार

शृंगार का लक्षण दत्त हुए रुद्रट कहते हैं—'पुरुष और नागी के रक्त मन्व धी रति व्यवहार को शृंगार कहते हैं। वह दो प्रकार का होता है मभोग और निप्रलम्भ।'^२

१ प्रीति प्रियात्मा प्रायेण रतिरिच्छात्मिकैर हि।

—भावनकाश ५५ ३४, दिवाय अधिकार १७वीं पवित्र, गायकान्त औरिण्यल मीरीज।

२ व्यवहार पु नार्थारथोरन्य रक्तयो रतिप्रकृति।

शृंगार स द्वेग प्रच्छन्सच प्रकाशश्च ॥५॥

—काव्यालकार रुद्रट, चौखम्बा संगृह्यत सीरीज, १२वा अध्याय।

सम्पादक—१० दुगाप्रसाद और वासुदेव लक्ष्मण शास्त्री

कारिता में आण हूँ रत्नदा गद तो तो रूपा में लिया जा सकता है—एक ता माषाण भावित क अथ म दुग्ग वाया का अथ रत्न सम्पत्ती व्यवहार अर्थात् 'यौन तन्त्रि भा भा उरना है। और तत्र इम परिभाषा का यह अर्थ हा जाता है कि स्त्री और पुत्र के अन्तर्गत म तत्र 'यौन तन्त्रि' को भी स्वात प्राप्त हुना हैना वह शृंगार कहलाती है। यौनतन्त्रि पति-पत्नी सम्बन्ध महा होनी है अत इमा सम्बन्ध म शृंगार रस होता है।

धरतिवाग्ना अन्तःप्रधानायाय त भा शृंगार का कोई अलग विवेचन नहीं किया। केवल त्रितीय नाम की १०वां कारिका में इतना कहा है कि—'विप्रलम्भ शृंगार और कर्ण रस म मायुज उक्तपुत्र होता है कर्मात् उमम मन अधिन आद्रता को प्राप्त होता है।'

अन्तःप्रधानायाय के अन्तः शृंगार विषयक विवेचन-वर्ता आचार्यों में महाराज भोज का नाम अत्यन्त उल्लेखनीय है। भोज ने जहाँ एक ओर शृंगार की परिभाषा को अत्यन्त विस्तृत कर दिया, अन्तः के अन्तःप्रधान गण विषय का शृंगार उल्लेख वहाँ दूसरी ओर अन्तःप्रधान म पूजनीय आचार्यों के द्वारा किया गए दाम्पत्य शृंगार के लक्षण म भी महत्त्व पूर्ण परिचय दिया।

भी अपन आकषण की तमयता में उसके मन की रति (मनोनुकूल वस्तु में मुग्धप्राप्ति की इच्छा) शृगार रस का स्थायी भाव बन सकती है, क्योंकि रति 'अह्नु पश्यता है और 'यस्तस्य नास्ति प्रतिश्रिया। अतः शृगार में जिस एकांगी भाव का भोज के पूर्ववर्ती आचाय अनुचित मानकर 'रसाभास' के अंतर्गत लत उसका भी भाज न रति का मूल तत्त्व मान लिया।

भोज से पहले अभिभाव गुप्त न भी 'अभिनव भारती' में रति का मूल में साहभाव की ही अवस्थिति मानी थी।

अतः भोज न 'रतिमुभय प्रायनाकुम्भ' का सङ्घन किया और स्पष्ट शब्दा में कहा कि 'यस्तस्य नास्ति प्रतिश्रिया। अथान 'रति अपनी पुष्टि दाना पशोके द्वारा चाहती है' इसके स्थान पर 'दूसरे पक्ष के द्वारा रति का प्रतिदान आवश्यक नहीं है, क्योंकि एक बार हृदय में रति भाव उत्पन्न हो जान पर उसका प्रतिहार असम्भव है, इस भाज की पुष्टि की। अतः रति का पुष्टि में आकषण उभयपक्षीय है तां ना कोई प्राया नहीं है किन्तु यदि वह एकपक्षीय ही है तत्र भी वह उभयपक्षीय आकषण में किसी आति निम्नतर नहीं है। बल्कि यदि वह एक व्यक्ति में ही रहकर पुष्ट होती है तत्र ता उसकी उत्कटना और भी अधिक प्रशंसनीय है। एमी दंगा में वह 'रस न होकर 'रसाभास' कने हा सकती है? भोज के अनुसार एकांगी भाव का प्रेम भी 'रसाभास' नहीं है।

भाज न शृगार विषयक विवेचन में उपयुक्त भाव की निम्नत रूप से स्वीकार करके ससार के समस्त शृगार साहित्य का बहुत बड़ा योगदान किया है अथवा फारस के अमर प्रेमी फरहाद का प्रेमभाव सहृदय की दृष्टि में शृगार का आभास मान रहे जाता। पचात्रती में अनुरवन रत्नसन की दूसरी रानी नागमती का विरह की तटपन केवन विप्रलम्भास हो जाती, क्योंकि अपनी आर में उदामीन पति में नागमती का अपन प्रेम का कोई भी प्रतिदान प्राप्त नहीं था।

शृगार का सूक्ष्म पक्ष प्रेम की निस्वायता की आर भी सम्भवतः भाज न ही सब-प्रथम ध्यान दिया और रति की व्याख्या करत हुए उन्होंने उसे अह्नु पश्यता बताया।

किन्तु भोज का मन बहुत दिन तक प्रतिष्ठित न रहे सवा। सस्कृत काव्य शास्त्रना न अपन वस्तुपरक दृष्टिकोण का कारण उस आर ध्यान दना आवश्यक हीन समझा और काव्याशास्त्र के माय अथ काव्य प्रकाश में पुन पूर्व परिपाटी का अनुसरण किया गया। मम्मट ने 'काव्यप्रकाश' में कहा था कि 'अनौचित्य में रसाभास मानना चाहिए।'

रतिदत्तादिविषया व्यभिचारी तथाञ्जित काना विषया तु व्यवता शृगार ।'

काव्यप्रकाश के रसाभास प्रकरण के ऊपर टीका करत वाला न कहा — "अनौचित्य सहृदय के व्यवहार में जानना चाहिए जहाँ व अनौचित्य का अनुभव करें (वही रसाभास

शृंगार मधुविषयत्व उपनायकानि गतत्व, नायक-नायिका अथतरमात्रविषयत्व' (जिसमें प्रेम का स्थिति) गुणनगतत्व त्रियगानिगतत्व के द्वारा अनौचित्य नाना प्रकार है। जब कि यहाँ भी है कि उपनायक में मुक्ति गम्यनी में बहुनायक विषय में और मधुविषय निष्ठ रति में तथा त्रियगानिविषय में रति का हाना आभास कहलाता है।

वाग्भट्ट में अनौचित्य मन के आभास का ही प्रयोजन है—'अनौचित्यमात्रमेवा वा मनसा भासता प्रयोजनम् । त्रियकं चात्रि म अनौचित्य का आभास होना पर रम है।'

वाग्भट्ट का शृंगार का लक्षण वेदान्त यहाँ समझा गया है कि "रति स्थायी रति मन्वसा रम शृंगार है। अलक्षणा दा की आश्रयकता नहीं समझी गई।

मम्मट के वाग्भट्ट हेमचन्द्र न भा शृंगार रति की कर्तृ मूर्ति परिभाषा नहीं दी। वाग्भट्ट की परिभाषा हेमचन्द्र अपने वाग्भट्टानुगामन में इस प्रकार करते हैं—"रति स्थायी रति और मन्वा पुष्प-भासा विभाषा से युक्त तथा जुगप्सा आश्रय और उग्रता को शृंगार रति का स्थायी भावना में समझ रम शृंगार रम कहलाता है। इसके दो भेद हैं—भोग और निग्रहम्।'

वाग्भट्ट प्रथम और वाग्भट्ट द्वितीय न भा मम्मट अपने वाग्भट्ट अलवार और वाग्भट्टानुगामन में मम्मट और हेमचन्द्र का अनुकरण ही किया है।

भोग के शृंगार रम उगरे अग प्रथमा का विस्तृत विवेचना करने वाले मम्मट का वाग्भट्टानुगामन है।

शृंगार रम का परिभाषा करते हुए वाग्भट्टानुगामन कहते हैं—"रस के आलम्बन भाषा के जो साधारण गुण रम रम के साथ गुण का इच्छा से युक्त हैं (साधारण गुण म रम का इच्छा भा रहता है) गुण के साधन को भाग कहते हैं। यही भोग शृंगारविशेष भा भाषा है। भाग उग्रभोग और सम्भोग का अर्थ दिया जा सकता है। सम्भोग में सवत्र प्राणियों

भाषा में रति, वाग्भट्टानुगामन में अनौचित्य विषयक स्थायित्व सामाजिक मन्वसात् । तदुक्त उच्यते ।
 भाषा में रति, वाग्भट्टानुगामन में अनौचित्य विषयक स्थायित्व सामाजिक मन्वसात् । तदुक्त उच्यते ।
 भाषा में रति, वाग्भट्टानुगामन में अनौचित्य विषयक स्थायित्व सामाजिक मन्वसात् । तदुक्त उच्यते ।

की मानसी रति हानी है, परन्तु प्रेमी युवक-युवतियां ही यह मुक्त रूप में वनमान रहती हैं।^१

‘सराग स्त्री-पुरुषों की परस्पर अनुभूति ही रति है जो परस्पर स्पर्श और मुख सवेदात्मिका है। सम्पन्न एश्वर्ययुक्त अग्रेय गुण तथा नवजीवन ‘लाभ प्रवृत्ति और श्रेष्ठ रूप सयुक्त स्त्री पुरुषों का परस्पर विभाविका स्पृहा नाम की चित्तवर्ति रति कहलाती है।^२

‘युवक और युवती की उभयपक्षीय इच्छा में युक्त, परस्पर आनन्द प्रदायक और एकान्त में सुखद इच्छा का गति कहते हैं।’

“प्रमादि भाव ‘तृणार के आनन्दन रूप में (आधार रूप में) स्थित रहते हैं।”^३

“परस्पर आश्रय घा (विशेष आश्रय) निरूप भाव वचन का प्रम कहते हैं।”^४

‘बुद्धिमान लाभ भाव वचन का व्यक्तियां व उस तत्त्व का कहते हैं, जो ‘इदम् तत्त इम प्रकार का हो और जो अर्थ न हो अथवा एकपिच्छ हा।’^५

१ स्मालं वन भावानामुक्ता सागरगा सुरा ।
मुनेष्वस्मिन् सर्वेषु मेगन्तुनमाननम् ॥
भोग म ष्य शारविशत मन गावने ।
भोगोपभोगमभोगाणां पथाववाचका ॥
सभोगे चापि सत्त जन्तूना मानमा रति ।
वने मुख्या वशा युतारव मगम्यो ॥

—भावप्रकाश, सारंगधरन पृष्ठ ७७ चतुर्थ अध्याय । गायकवाट औरिणरुक्म मारात

२ परस्परस्पर्शवेद्य सुखमवनात्मिका ।
यादनुभूतिनिध मैव रतिर्युता मरामयो ॥
मपनैश्वर्यमुपयोगोपगुणयवनयो ।
नवजीवनयो शनायप्रकृतयो नेष्टरूपयो ॥
नारापुरुषयाम्बुन्या परस्परविभाविका ।
स्पृहाइवा चित्तस्था रतिरत्यन्निधयन ॥
रतिरिच्छा भवयुनोपमवशावनात्मिका ।
युनो परस्परहादरहाविषय कारता ॥

—वही, ७७

३ तद्रेम तदधिष्ठान रतिर्युनो परस्परम् ।

—वही, ७८

४ परस्परआश्रयघन निरूप भाव वचनम् ।
यत्कापयनोपायि तत्प्रेमेति निगद्यते ॥

—वही, ७८

५ इत् तदिति सङ्गो ययौन वता प वृष्यत ।
तद्भाववचनमिति वथयति मनापिण ॥

—वही ७६

गारदातनय द्वारा दी गई इन विभिन्न परिभाषाओं को इस प्रकार समझा जा सकता है—

श्लेष-गुण-भ्रमण, यौवन-समद, सराग स्त्री-पुरुषों की सुखसवेदनात्मक इच्छा का रति बन्धन है। यह स्वयंबंध होता है अथवा नायक अथवा नायिका इसका अपने हृदय में अनुभव करते हैं। प्रेम भाव इसके मूल में स्थित है। प्रेम वह भाव-बंधन है जो किसी शिष्ट व्यक्ति पर केन्द्रित होकर केवल उसीमें सुख की प्राप्ति करता है।

गारदातनय की शृंगार सम्बन्धी विभिन्न परिभाषाओं के द्वारा उपयुक्त निष्कर्ष पर पहुँचने के पश्चात् हम निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि शृंगार के सम्बन्ध में भोज की भाँति गारदातनय का दृष्टिकोण भी बहुत परिष्कृत और सुसंस्कृत था। स्त्री पुरुषों का परस्पर आकर्षण केवल यौवन-सुख की प्राप्ति तथा मजन का प्रेरणा के लिए ही नहीं है बल्कि उभय प्रेम का एकनिष्ठता का हाना भी अनिवाय है। रति की 'सुख सवेदनात्मक इच्छा' के साथ एकनिष्ठता होना के कारण प्रीति अथवा प्रियहित पर भाव केन्द्रित होने का भाव भी उभय में विद्यमान रहता है। इसी एकनिष्ठता के कारण प्रती अपने प्रियपात्र के लिए प्रायः उमग करता है अथवा बाधाएँ सहने पर भी अपने शृंगार भाव का आलम्बन उमा में केन्द्रित रखता है अथवा कहाँ और नहीं जाता।

अन्य में रति का प्रत्यक्ष प्राप्ति का विवेचन करते हुए गारदातनय कहते हैं—
एकान्त में म्या पुर्या का परस्पर भाग का इच्छा का रति है। यह प्रेम से अकुरित होती है 'मान में पतनित हानी है प्रणय में बलियाँ घाता है स्नेह में कुमुदिन होती है, राग में पतनता हानी है और अनुराग में इसका उपभाग किया जाता है।'

प्रेम का परिभाषा देने हुए गारदातनय ने प्रेम को भाव बंधन बताया, वह भाव बंधन का एकनिष्ठता किन्तु उभय साथ ही उदात्त प्रेम का एक और गुण कहा—'यदि बाधाएँ आगि अर्थात् वह एक पक्ष के नष्ट होने पर नष्ट हो जाता है। कहने का तात्पर्य यह कि प्रेम उभयपक्षों का हाना है। गारदातनय एक और प्रेम का आवश्यक रूप से उभय पक्षों में मानते हैं और दूसरे और उभयों एकनिष्ठ होना भी अनिवाय रूप से मानते हैं। यह माना बाँटें शिष्टा है। यदि प्रेम एकनिष्ठ है तो अंतर पक्ष में प्रेम का क्षय होने पर भी वह ब्रह्मिष्ठ रहता। यद्यपि मनाशिवान यह मानता है कि प्रेम में दूसरे पक्ष से यदि उचित प्रतिदान प्राप्त मिलता तो प्रेम अथवा प्रेम का अविच्छिन्नता का पात्र कोई दूसरा व्यक्ति ढूँढ लेता है जो उभयों में प्रेम की अनुचित प्रदान करे और इस प्रकार वह पुनः तुन्यानुराग स्थापित कर पाता है। किन्तु साथ ही मनाशिवान यह भी मानता है कि प्रेम की प्रकृत तीव्रता में प्रेमा

१. अन्तर्गत-रति १६ १६ मना रति ।
२. अन्तर्गत-मना मनाशिवान विना पुन ॥
३. १६ १६ मना मनाशिवान मना ।
४. अन्तर्गत-१६ १६ मनाशिवान ॥

प्रेमपात्र म गव गुणा का आरोप कर लेना है वर उमो मूर्ति मे प्रेम करन गगता है जो उसने समस्त गुणा मे समन्वित अपन हृदय मे स्थापित की है। उम दगा म प्रेमपात्र द्वारा प्रतिदान मिलना ग मिलना उमक त्रिग एव ममान हा जाता है। अपन हृदय मे प्रतिष्ठित प्रेमपात्र के लिए वह अभी यह माच ही नही मरना कि वह इमे वाप्य दे मरता है। इस स्थिति म प्रेमी का प्रेम हमरे व्यक्ति के म्बून व्यक्तित्व से ग रहनर अपनी कल्पना से समन्वित उसके सूत्रम अस्तित्व मे हा जाता है। अत एव पक्ष म प्रेम के क्षय हान पर उमवा नष्ट हाना आरम्भ नही रहता और यह भाव का 'अन्तु पक्षपात' हो जाता है। प्रेम की चरमावस्था दगा दगा म मानी गर् है।

जयदेव ने चन्द्रालोक म शृगार रग का लक्षण उमक भाव, विभाव, अनुभाव और सचारी भाव मयक महित दिया है—“शृगार रग का स्थायी भाव रति है, पति-पत्नी त्रिभाव आरम्य, ईर्ष्या और जुगुप्सा स शेष उमानाति मने मगारी भाव है, कटाशादि अनुभाव हैं। यह दा प्रकार का म—सभोग और विप्रलम्भ।”

जयदेव के उपरान्त एकावनीनर विद्याधर का नाम आना है। विद्याधर की शृगार सम्बन्धी परिभाषा म कोई मौलिकता नही है—“स्त्री-पुरुष मानादि विभावा और स्तम्भ स्वद आदि अनुभावा म युनत तथा जुगुप्सा, आरम्य, उग्रतादि व्यभिचारियो को छाटर अथ व्यभिचारिया मे समूढ, रति स्थायी भाव ही शृगार कहनाता है। इसका भाद है सभोग और विप्रलम्भ।”

विद्याधर का योग उनके शृगार विषयक रमाभाम मन्वनी विवचन म है। मम्मट के टीकाकार तिपगादि म रमाभाम न होनर रम हान का गवो मात्र करत हैं। विद्याधर मम्मट के टीकाकारा के इस मत की पुष्टि तर म रर दी है। उहान कहा कि—“जहां स्थायीभाव एक-दूसर के अनुबून कनान करता हुआ प्रवर्तित होना है वही रम होता है। और जहा एव धार अनुगण हाना है वहा म्थायीभाव अनुचित रूप म प्रवर्त हान के कारण रम न होनर रमाभाम ही हाना है।”

“हमरे लोग पगु पभिया म रमाभाम बतलान ह। यह जान कसोगी पर टीक नही उतरती क्याकि उनम भी भाषादि की सम्भावना है। त्रिभाषाति जान स गूय पगु पनी

रवाग्यथाविभावात्मा बन्धमादि विभावित ।

आनस्येषा जुगुप्साभ्यो विना सचारिभियु त ॥४॥

अनुभावे कटाशादीस्त्वान्तापैश साक्रमम् ।

सभोगो विप्रलम्भश्च शृगारो त्रिभिो मत ॥५॥

—चन्द्रालोक, जयदेव, मयग द

मुद्रक—जयकिशोरानाम हरिनाम गुणा

रवाप्युमात्वादिविभावा रमभवेत्पदानुभावा जुगुप्सान्ताप्यैशप्रवच्य यभिचारिका रति सभोगविप्र लम्भात्मा शृगारः ।

विरह भावना शास्त्रीय विवचन

कुमुदमणि ने अपने तक में और भी स्पष्ट कर दिया है। विद्याधर के तब को पूरा रूप से स्वीकार करते हुए राजकुमुदमणि कहते हैं कि बाध्यप्रनाम म दिया गया शानुन्तलम् का वह श्लोक 'श्रीवाभगमभिरामम' आदि भयानक रस का बहुत सुन्दर उदाहरण है। यदि एक रस पशु-पशु भी हा सकता है तो दूसरा क्या नहीं हो सकता। इस तब का वाई उत्तर मिगभूपाल क पाम नहीं है मियाय इसके कि वह यह कहदे कि भाई हम ता शृगार रस की बात कर रहे हैं, भयानक की नहीं।

अन मिगभूपाल न यद्यपि प्राचीन परिपाटी की मायता, (तियकादि से शृगारा भाग हाता है शृगार नहीं) को सुरक्षित रखने के लिए काफी प्रयत्न किया, किन्तु यह स्पष्ट ही है कि उनका प्रयत्न सफर नहीं हो सका और हम मम्मट और विद्याधर के मत का स्वीकार करते हुए पशु-पशु म शृगार रस मानने का ही बाध्य हात हैं।

इतने विवचन के उपरान्त साहित्यशास्त्र के प्रतिष्ठ एव बहुद् ग्रन्थ 'साहित्य दपण की शृगार रस सम्बन्धी परिभाषा की आर दृष्टिपात करना भी अनिवार्य है। साहित्यदपणकार विश्वनाथ शृगार के लभणा का बताने हुए कहते हैं—“वाम के उदभेद, अकुरित होने का शृगार कहते हैं। उसकी उत्पत्ति का कान है यौवनारम्भ। अधिका उतम प्रवृत्ति में युक्त रस, शृगार कहना है। परस्त्री और अनुराग शून्य कथा को छोड़कर अनक नायिकाएँ तथा दक्षिणादि नायक इसके आनम्बन विभाव माने जाते हैं। चद्रमा, चन्दन, भ्रमर आदि इसके उद्दीपन विभाव हात हैं, अनुरागपूण भकुटि भग और कटाभ दादि इसके अनुभाव हाते हैं, उग्रता, मरण, आलस्य और जुगुप्सा का छाडकर अयनिवै इसके दवता हैं।”

विव्रनम्भ और मभाग इसके दा भेद हैं—“विप्रलम्भाश्च मन्माग इत्यप द्विविधो मतः। रसमजरीकार क हैयालाल पोद्दार के अनुसार शृगार एव यौगिक शब्द है,

१ लक्षण

शृग हि ममयोरेभेन्दरागमनेतुक ।

उत्तमप्रवृत्तिप्रायो रस शृगार इत्ये ॥ १२३ ॥

आनम्बन विभाव

परोप व।दित्वा तु वेश्याश्चाननुरागिणाम् ।

आनम्बन नायिका स्युःशिष्याश्च नायका ॥ १२४ ॥

उद्दीपन विभाव

चन्द्रनरोलम्बनापुद्गीपन मत्तम् ।

भ्रुविवेपकवादादिरनुयाव प्रकानित ॥ १२५ ॥

एव वीप्रयमरणाालस्य जुगुप्साव्यभिचारिण ।

स्थायिभावो रति श्यामवशाश्च विष्णुदेवन ॥ १२६ ॥

—साहित्य दपण, तीय परिच्छेद

शृंग + धार। उनका कहना है धार श्रु पात में प्रती है जिसका अर्थ है गमन। यहाँ गमन का अर्थ है प्राप्ति। अतः शृंग + धार का यौगिक शब्द का अर्थ है काम की प्राप्ति।

काम का मंगल अर्थात् उद्गत-यौवनप्राप्ति पर जाता है। पशुपति में यौवन का प्राप्तन उक्त शृंग अथवा पागा व निकलन में द्योतित होता है। अतः शृंग का दूसरा अर्थ अथवा नाम है गया और नाम का प्राप्ति का शृंगार कहा गया।

यह उक्त प्रकृति में युक्त है। भरत ने भी इसका उद्गमल वपात्मक' कहा है। गमन में जो कुण्डल उद्गमन का मत और मनु है वह मनु शृंगार रस में सम्पन्न है। अतः यह हृदय को प्रिय लगन वाला अत्यन्त मधुर भाव है। मानुसाय स्त्री पुष्पा में काम की प्राप्ति प्राप्त होने पर यह अत्यन्त उक्त का प्राप्ति जाता है। इसका स्थायी भाव रति है। रति का परिभाषा अणुकार रस प्रचार करता है।

'मनानकून वस्तु में मन के उमुवा भाव का नाम ही रति है अथवा मानुकून वस्तु में मनु प्राप्ति का नाम ही रति है।'

अनुगत गुण अथवा और परम्परा का उद्गमन अथवा अनन इसका नायिकाएँ ही मानी है। शृंगार न अनुगतिगिणा अथवा व प्रेम में अनननिष्ठा होने के कारण उस शृंगार की उद्गमन नायिका नहीं माना सम्भवतः अननरगिणा अथवा क मध्य व म अननरग का प्रेम ही नया आता। अतः व शृंगार रस की नायिका नहीं हो सकती। शृंगारनाय परम्परी व प्रेम में समाज का अननिय मानकर उसको भी शृंगार रस की नायिका मानकर वाप्य नया मानत। किन्तु परम्परी शृंगार साहित्य में विद्यापति और मूर व वाप्य में परम्परी का नायिका मानकर शृंगार व मध्यम में अनन उक्तियाँ नहीं गई है उक्त वाप्य का वह मनु प्रकृति का। अणुकार की परिभाषा व अनुसार वह अननचित्य व कारण शृंगार रस का उक्त नया करता, किन्तु उस काव्य की चरणा का यह प्रत्यक्ष अनुभव है कि वे भी शृंगार रस का उद्गम करने में सफल होती हैं। इसका कारण स्पष्ट है किमती धार कि अणुकार न सम्भवतः ध्यान नया लिया वह यह है कि परम्परी जत्र नायिका मनी है पर उमका नायक व प्रति अनुगत उनका ही उक्त जाता है जिनका अणुकार का जाता सम्भवतः रस भी अर्थात् जाता है। एसा दशा में समाज की बाधा शृंगार रस में बाध न होकर उक्त उक्त व म और सहायक जाता है क्योंकि उन बाधाओं पर विचार प्राप्त करता है नायिका का नायक व साथ शृंगार मध्यम का अर्थ है।

रूप ग परस्त्रा भी शृंगार रस की नायिका बन जाती है। यदि उसके भाव का रस शास्त्री केवल भावना मात्र ही मानते हैं तो भी हम कहना पड़ेगा कि उमरी वह भावना उस विनिष्ट अस्थायी म स्वकीया की शृंगार भावना म किसी भांति हीनतर नहीं है।

साहित्य रूपण म न्यि गए अनुभाव सचारी आदि तगभग वही हैं जा उनके पूर्वजनों आचार्य गिना गए थ, सम्भवत व स्वतंत्र और विगद विवेचन की अपक्षा नहीं रखत। अन साहित्य रूपण का यहा छाडकर हम मरुटन काव्यशास्त्रिया के अतिम आचार्य 'पण्डितराज जगन्नाथ के शृंगार रस मभ्रघी विचारा का अत्ययन करन का प्रयत्न करगे।

रमगगाधर म जगन्नाथ रति का लक्षण इस प्रकार दते हैं—

'स्त्री-पुरुष की लज-दूगर के विषय म प्रेम नामक जा चित्तवृत्ति हाती है, उमे रति स्थायी भाव कहत है।

'वही प्रेम यदि गुर दवना अथवा पुत्रादि के विषय म हो ता उस व्यभिचारी भाव कहंग।'

'शृंगार रस क आनन्दन विभाज स्त्री-पुरुष, चाँदनी, वसन्त ऋतु अनन प्रकार के जाग-वर्गीने, मुखप्रद पवन और एवात स्थानादि उद्दीपन विभाव, प्रमपात्र का मुख दगन, उसके गुणों का श्रवण कीतन आदि एव (कप रामाच) आदि सात्विक भाज अनुभाव और स्मरण, चिन्ता आदि व्यभिचारी भाज हाते हैं।'

जगन्नाथ के उपयुक्त शृंगार के लक्षण म पूर्वोक्त आचार्यों की ज्ञात ही उलट-पलट कर कही गई है केवल सात्विक भावा की भी लक्षण म ले लिया गया है। लक्षण म सात्विक भावा का समाहित कर लेना लक्षण का पूणता प्रदान करना है यही पण्डितराज का शृंगार रस का विवेचन म उडा यागदान है।

शृंगार से मिलते-जुलते अथ रस

शृंगार की व्यापन अथ म व्याख्या करते समय हमन देखा था कि रति मनानुकूल

१ रति लक्षणम्—

स्त्रीपुमशोरन्योरन्यान्मन त्रेमायसिचिचवति विशेषो रति ग्यायिभाङ्ग ॥
सुकम्बनापुत्रायात्मनस्तु अभिचारी ।

—रमगगाधर नागेश म की टाका महिन, पृष्ठ ३१ ३२, निगुयमागर प्रेम, कम्ब-
तन शृंगारस्यत्रापु म्नावालम्बन। चंद्रिका बमन्विविदोपनपनरह स्थानादय उदापनविभावा ।
तन्मुखावलोकन् तद्गुणअपयकात्नादयोऽन्ये सात्विकभावाश्चानुभावा । स्मृतिचि तादयो
यभिचारिण ।

का पथक रस मानन की प्रवृत्ति का विरोध किया है। अभिनव गुप्त कहते हैं—“यह कहना अनुपयुक्त है कि स्नेह भी कोई रस है जिसका स्थायी भाव (आवश्यक गुण व अर्थ) आद्रता है। स्नेह तो सम्पत्क जमी वस्तु है उनका पयवमान रति, उत्साह, भय, आदि म हाता है। जालन का माता पिता आदि म जा स्नेह होता है, उनकी विश्वाति भय म हाती है (स्नेह भय की छायामात्र है) युवक युवता के मित्रजन स्नेह की विश्वाति रति म हाती है। लक्ष्मण आदि का भाई के प्रति स्नेह, कत्तव्य म उत्साह व्यक्त करता है। इसी प्रकार बहा का पुत्रादि छोटा के प्रति भी समभना चाहिए।”

इन तर्क में अभिनवगुप्त प्रेयस का म्यायी भाव मानकर चलन जाने सौहार्द, वात्सल्य, राजा प्रजा के प्रेम, भक्ति आदि रसा के अस्तित्व का स्पष्टन करत हैं।

यह एक मनावनानिन सत्य है कि जालन राज्य ममार के आधान के भय से माना पिता को सरणक रूप म मानकर उनकी और उभय होता है। भय बहा रति को जन्म दता है। माता पिता का कत्तव्य म उत्साह उह वालक की आर उभय करता है और वहाँ वीर म रति का जन्म हाता है। राम लक्ष्मण आदि तथा राजा प्रजा, जनता नता आदि के मध्य म भी कत्तव्य का उत्साह ही प्रमुख रहता है और उमी म बहा राग का जन्म हाता है जा शृगार के विस्तृत अर्थ की परिधि के अतगत समाहित है।

शृगार रस के भेद

धनयालाक के द्वितीय उच्चात म एक रस म अथ रसा की व्युत्पत्ति की विवेचना करते हुए आनन्दवधन कहत हैं कि प्रधान भूत शृगार रस व प्रारम्भ मे दो भेद हाते है। सम्भाग (शृगार) और विप्रलम्भ (शृगार) उनम भी सम्भाग के परस्पर प्रेम, दशन (दशन सम्भाषणादि का भा उपलक्षण है) मुरत (और उच्चात) विहारादि भेद हैं। (इसी प्रकार) विप्रलम्भ के भी अभिलाष, ईर्ष्या, विरह प्रवाम और विप्रलम्भ आदि (गापादि निर्मात्तन वियागादि भेद) हैं। उनम मे प्रत्येक (भेद) के जिभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव के (भेद म) भेद है। और उन (विभावानि) का भी देश, काल, आश्रय, अवस्था (आदि मे) भेद है। इस प्रकार स्वगत भेदा के कारण उम एक (शृगार) का परिमाण करना (ही) असम्भव है फिर उनके अगा के भेदापभेद कल्पना की ना बात ही क्या है। व अगा (अलकारादि) के प्रभेद प्रत्येक अगी (रसादि) के प्रभेदा क साथ सम्बन्ध कल्पना करन पर अनन्त हो जात है।^१

१ आन्ताम्याधिक स्नेहो रस इति त्वम् । स्नेहो ह्यभिषग । स च रत्युत्साहादादेव पथवस्यति । उवाचि—जालस्य मानापितामौ स्नेहो भये विश्रान्त, युतो मित्रजने रतौ, लक्ष्मणादे आतरि धमवीर एव । एव वदस्य पुत्रानावपि दृष्टव्यम् ।

—नम्बर ऑफ रसा, (अभिनव भारता स उद्धत) पृष्ठ १११

२ ‘हिन्दी ध्वन्यालोक’ (ध्वन्यालोक का हिन्दी व्याख्या) त्रितीय उद्योत, १२वा कारिका का बर्णन, पृष्ठ १४१

इस प्रकार हम क्या है जिस रंग शृंगार व अनव भेद प्रभेद हो सके हैं, किन्तु मुख्य रूप में समक दा भेद ही माना जाते हैं सम्भाग और विप्रलम्भ ।

शृंगार रस व दो भेद सभोग और विप्रलम्भ

भक्त के पताचान मयत पत्त आचाय स्टट है जिहान शृंगार नामक रस का, सम्भाग और विप्रलम्भ का विभागा में वर्गीकरण किया । उनके परवर्ती प्राय सभी पताचानों में शृंगार का सम्भाग और विप्रलम्भ का विभागा में ही विभाजन किया । स्टट का सम्भाग और विप्रलम्भ रसा की विवचना करत हुए कहा—

पताचान पुष्प और नाराक रति व्यवहार का सम्भाग और त्रियुक्त पुष्प और नाराक रति व्यवहार का विप्रलम्भ पत्त है । यत्नेना फिर प्रच्छेदन और प्रवास के नाम में दा प्रसारक है ।^१

प्रच्छेदन और प्रवास का क्या तापस है ? यह स्टट में स्पष्ट नहीं किया, सम्भवतः पररास और स्वरासा का आधार पर निर्धारित है किन्तु उपयुक्त परिभाषा से यह स्पष्ट हो गया कि सम्भाग शृंगार का माना जायगा तापी नायक नायिका एक दूसरे के समान्य में रति का अनुभव कर रहे हैं और विप्रलम्भ शृंगार कहा जायगा जहाँ वे एक-दूसरे में त्रियुक्त शक्ति, रिक्त हुए हों ।

सम्भोग शृंगार

सम्भाग शृंगार की अवग परिभाषा करत हुए स्टट कहते हैं—

सम्भाग शृंगार वहाँ माना गया है जहाँ नायक नायिका पूर्ण रूप से प्रसन्न नुल्यमान हो और भावनात करत छाति में रत है । (कवता त्रियुक्त मात्र का सम्भाग शृंगार पताचान गया) ।^२

पताचान प्रसन्नताकार सम्भाग शृंगार रस का भक्त पताचान हुए सम्भाग शृंगार के शिष्य में कहा है—

^१ शृंगार रस का भक्त—१ सम्भाग २ विप्रलम्भ । उनमें से पहला परस्पर

१ सम्भाग १ - १.३ पताचान विप्रलम्भ २.३।

२ का १.३.३ सम्भाग १.३.३।

—काव्यशास्त्र, स्टट, भाषा १३

३ सम्भाग १.३.३ पताचान विप्रलम्भ २.३।

४ सम्भाग १.३.३ पताचान विप्रलम्भ २.३।

—काव्यशास्त्र, स्टट, भाषा १३

श्रवतामन, आतिगन, अधरपान आदि अनेक भंग म युग हातर अपरिच्छेय और एन ही है ।^१

शारदातनय न सम्भाग की परिभाषा इस प्रकार की है—“स्त्री और पुरुष का कामोपचार गुप्त ही सम्भाग है ।^२

“सम्भोग म सवत्र प्राणिया की मानगी रति हाती है परंतु प्रमी युवक और युवतिया म ही यह मुख्य रूप मे उतमान रहता है ।^३

जा काम सम्भाग के नाम म प्रसिद्ध है, उसके चार भेद किए जाने हैं—१ मित २ मवर, ३ सम्पन्न और ४ समद्धिमान ।

(१) मित—“परस्पर उपचार कर्त हुए युग्म और युवती जत्र भय आति क द्वारा मित भोग म निष्प हाते हैं ता यह मित सम्भाग कहताता है ।^४

(२) सकर—“वाप के अनन्तर प्रमन हा जाने पर भी पूरवृत्त दाप की स्मति जत्र आनंद का मयाव कर दता है ता वह सम्भाग मकर कहलाता है ।^५

(३) सम्पन्न— जिहडे हुए प्रमी जत्र (पुन) सम्पन्न-काम हातर भाग म प्रवत्त हात है ता वह सम्पन्न भाग कहताता है ।^६

(४) समद्धिमान— ‘मत् जीवित व्यक्ति जव जीवन म ह्याति स उल्लसित हातर अतिगय दीप्न शृंगार म प्रवत्त हात हैं ता वह सम्भाग समद्धिमान है ।^७

१ तत्र शृंगारस्थ द्वौ भेदौ सम्भोगो विप्रलम्भश्च । तत्रापि परस्परबलोकनातिगताभरणान् परिनुम्बनाद्यमनन्तमेदत्वादपरिच्छेय एक एव मस्यते ।

—का यप्रवारा, मग्गट, बलकाकर भा म चतुध उल्लाम

२ कामोपचार सम्भोग स्त्रापुंसयो सुखम् ।

—भावप्रकारा, शारदालनय, तुम अधिकार, पृष्ठ ७७

३—सम्भोगे चापि सवत्र जन्तूना ममसी रति ।

वनने मुख्यया बलया यूनोरेव मरागयो ॥

—वहा, पृष्ठ ७७

काम म एष सम्भोग म चतुधा विभक्तय ।

—वहा पृष्ठ ७७,

४ परस्परस्यापचारैश्चोद्यत साधमादिभि ।

मित प्रयुज्यते भोगे प्रमन स मितो नवेत् ॥

५ प्रसादेषु चित्तकान्तिरने कोपानुवतनार ।

सकलयत य सम्भागस्तस्मात्प्रवर रति ॥

६ सम्पन्नकामैराद्याने प्रोषितैरुप मुच्यते ।

सम्पन्नमेव यत्तस्मात्सम्पन्न इति वदन्ते ॥

७ प्रत्युज्जीवन्तर्पादे प्रबद्धो मत्तनावनो ।

दापनातिशयैर्गति सम्भोग स्वात्ममद्धिमान ॥

—वहा, पृष्ठ ७७

प्राधुनिक काव्य में प्राचीन सजगता के कारण मत्त जावित के वर्णन का प्रश्न ही रखा जाता। प्रत्येक शीघ्रचरित रूप में प्रवेश तुल्य निराशा विषाग की अग्रधि समाप्त होने पर जो उन्नीत सम्भोग के प्रह्लासकसिद्धिमान सम्भोग कहलाया।

अतः विरहवर्णन करने हुए गारुडानन्द ने इन चार प्रकार के सम्भोगों का उल्लेख और नाशक किया है—

१. सम्भोग चार प्रकार का है कर्माणि भजि धातु का अर्थ—पावन कौटिल्य, अर्थ्य वगैर तथा अनुभूति चार प्रकार के अर्थों में जाना है।^१

पावन सम्भोग नवानुराग के कारण हृदय में अभीष्ट उपचार के द्वारा उत्पन्न होता है। (जब नखसुरत और नखसुवती प्रथम बार परस्पर मिलते हैं)।^२

अर्थ्य सम्भोग कर्मानुष्ठी कौटिल्य का प्रह्लासकसिद्धिमान सम्भोग।^३

अर्थ्यवर्णन सम्भोग प्रथम के अनन्तर हृदय में मधुर सम्भोग उत्पन्न करता है।^४

धनुभूति कृत सम्भोग वर्णन के अनन्तर उत्पन्न होता है।

यह सम्भोग मित मत्त सम्भोग और समद्विमान इन चार नामों में कविषा न बताया है।^५

गारुडानन्द का सम्भोग सम्बन्ध यह वर्गीकरण काय गारुड के विषय विस्तृत नहीं पाया है। गारुड का आधार यह है यह जान भी नहीं है। सम्भोग का मनोविज्ञान पर आधारित यह वर्गीकरण गारुडानन्द के विषय पर स्वतंत्र चिन्तन का पूरा छातन करता है।

गारुडानन्द के अनुसार कामाचचार युग सम्भोग में भी विभिन्न परिस्थितियों में एक ही प्रकार का सम्भोग हो जाता है। नवानुराग का उन्नीत-सुख का जो फल्य सम्भोग होता है उमम भय भी कुछ माया में मित्रा रहता है। उम भय से गारुडानन्द का वर्णन काव्य का एक उन्नीत रूप रखा। चिन्तु भय का तात्पर्य स्पष्ट ही है भय

१. म. म. भाग १, पृ. १२३, अनु. १२३, १२४।

२. व. व. भाग १, पृ. १२३, अनु. १२३।

—भा. वि. भा. १, पृ. २३, भा. वि. भा. १, पृ. २३।

३. गारुडानन्द का उन्नीत-सुख का जो फल्य सम्भोग होता है उमम भय भी कुछ माया में मित्रा रहता है।

४. उम भय से गारुडानन्द का वर्णन काव्य का एक उन्नीत रूप रखा।

५. चिन्तु भय का तात्पर्य स्पष्ट ही है भय

६. उम भय से गारुडानन्द का वर्णन काव्य का एक उन्नीत रूप रखा।

७. चिन्तु भय का तात्पर्य स्पष्ट ही है भय

८. उम भय से गारुडानन्द का वर्णन काव्य का एक उन्नीत रूप रखा।

समाज का भी हास्यता है और रति विषयक उपचार में अनुभवहीनता हान के कारण से भी होता है। भय के कारण उनका वह सम्भोग पूरा निःसाध नहीं हो सकता। पाल्य सम्भोग का दूसरा नाम ही गारदातनय मित-सम्भोग कहते हैं। इस मित अथवा पाल्य सम्भोग में रति को प्रोत्साहन देने में, किसी कारण से नवानुराग टूट न जाए इसका भी भय रहता है।

सम्भोग का दूसरा विभेद सखर-सम्भोग है। यह मान' के अनन्तर होता है, मान के रोप की कुटिलता नायक अथवा नायिका को कभी-कभी दूसरे पक्ष द्वारा मनुहार करने में मान जान पर भी नहीं छाड़ती। मान के अनन्तर हान जाने इस सम्भोग में रोप और प्रेम दाना का भाव विद्यमान रहता है। रोप अथवा मान की कुटिलता तथा प्रेम के अदभुत सम्मिश्रण की अवस्था में सखर सम्भोग होता है।

तीसरे प्रकार का सम्भोग 'सम्पन्न' है। प्रवास में दाना प्रेमी प्रेम का व्यय न होने से सम्पन्न-काम हात हैं, विरह की अवधि का अन्त होने पर मिलन की बला में अस्मयहार के भाव (पूरा रूप से मुख भाग की इच्छा) का लेकर सम्पन्न-काम में मग्न होते हैं। सम्पन्न सम्भोग में उनका परस्पर उन्मुखी भाव प्रगाढ़ और निःसाध होता है।

गारदातनय द्वारा लिया गया सम्भोग का चौथा प्रभेद मनुद्धिमान है। यह करण विप्रलम्भ के अनन्तर होता है। मृत अथवा मत्तप्राय व्यक्ति के पुनर्जीवित हान पर मिलन का आनन्द पूरा समझि संयुक्त होता है। अतः उस दशा में मिलनवाले प्रेमिया के सम्भोग की तुलना और किसी दशा में नहीं की जा सकती, वह अपने भाव की तीव्रता में अनुपम ही है।

इस प्रकार गारदातनय का सम्भोग शृंगार सम्बन्धी विलेपण काफी प्रौढ कहा जा सकता है।

गारदातनय के पश्चात् मस्कृत काव्य शास्त्र के भाष्य ग्रन्थ साहित्यदण की सम्भोग-सम्बन्धी व्याख्या को देख लेना भी अत्यन्त आवश्यक है। साहित्यदणकार विश्वनाथ कहते हैं—

“एक दूसरे प्रेम में पग नायक-नायिका जहाँ परस्पर दान, स्पर्शन आदि करते हैं वह सम्भोग शृंगार कहनाता है। चुम्बन आनिगन आदि इसके अनन्त भेदा की गिनती नहीं हो सकती। अतः इसका सम्भोग शृंगार नामक एक ही भेद है।”

परिभाषा में कोई विनोद नवीनता नहीं है, स्पष्ट विवेचन ही यहाँ हुआ है।

मस्कृत काव्यशास्त्र के अन्तिम भाष्य ग्रन्थ रमगगाधार की सम्भोग सम्बन्धी

१ दशरत्नशास्त्रानि निवेचन विनासिनी ॥
यदानुरक्तान्धन्यो मभोगोऽथमुत्कृत ॥ २१० ॥
सद्गुणमशक्यतया चुम्बनपरिरम्भणादि वदुमेदात् ।
अयमकं ध्व धारं कश्चिन्त सम्भोगशृंगार ॥ २११ ॥

विप्रलम्भ को नामो से अभिहित है। वगैरे नाम्प्र म इमवी दम अवस्थाएँ वही गइह ।^१

इसके उपरान्त हा वरुण रम और विप्रलम्भ के अन्तर्ग को स्पष्ट करत हुए भरत कहत हैं कि 'गाप के वारण अथवा इष्ट जन म वियाग, विभव क नाग, मृत्यु अथवा प्रधान के वारण वरुण रम हाता है। इसम निरपन्न भाव प्रधान हाता है अथान वरुण म पूण नराश्य की अवस्था रहनी है विन्तु विप्रलम्भ मापन्न हाता है अथान अभिनाया विप्रलम्भ म निरन्तर बनी रहती है। अत वरण और विप्रलम्भ दाना म अन्तर ह और यही कारण है कि शृगार समस्त भावा म मयुक्त है।'^२

भरत के उपरिलिखित विवेचन से विप्रलम्भ के सम्बन्ध म स्तना स्पष्ट हा जाता है कि विप्रलम्भ, शृगार म, प्रियजन के वियाग मे उत्पन्न हाता ह। निर्वेद गानि, गता आदि अनुभावा के द्वारा इसका रगभूमि पर उपस्थित किया जाता है। विप्रलम्भ की निराशा म आशा बराबर बनी रहती है, पन भर का भी वियागी म वह पथक नही हाती और इसीलिए विप्रलम्भ और वरुण टाना रम (उदुत बुद्ध एव-दूसरे से मत्स्य रगत हुए भी) एक-दूसरे मे भिन्न हैं।

भरत के पश्चात् विप्रलम्भ का विवेचन मवप्रथम स्टट न किया है। विप्रलम्भ शृगार के लक्षण दन हुए स्टट ने रहा है कि— 'वियुक्त पुष्प और नागी के रति व्यवहार को विप्रलम्भ शृगार कहते हैं।'^३

इस परिभाषा को व्याख्या दूसरे गल्प म इस प्रकार की जा सकती है—पुष्प और नागी का परस्पर रति व्यवहार अथान प्रेममूक्त उमुखा भाव जब उनके एक-दूसरे मे पृथक रहन पर भा स्थित रहता है ता उम विप्रलम्भ शृगार कहते हैं।

भाजन अपने मरस्वनीकण्ठाभरण म विप्रलम्भ रस का लक्षण एम किया है— 'रति नामक भाव जब प्रकष को प्राप्त हाकर भी अपने अभीष्ट तक नही पहुँचता तत्र विप्रलम्भ शृगार हाता है।

- १ अत्राह—यत्रय रतिप्रभव शृगार कथमस्य वरुणाश्रयिणो भावा भवति ? अनोच्यत—पुष्पवामि द्वित मन्मोगविप्रलम्भकृत शृगार रति । वैशिकशास्त्रकारैश्च दशावस्थोऽभिहितः ।
- २ कण्ठान्तु शायवशेषवि निपत्तिनेऽननविप्रयोगविभवनारावधनममुयो निरपन्न भाव । आस्तुक्वचिना ममुतः मापन्नमात्रो विप्रलम्भकृतः । एवमथ कण्ठोऽन्यश्च विप्रलम्भ इति । एवमेव मवभावमयकन शृगारो भवति ।

—नाट्यशास्त्र, भरत, पृष्ठायाव पृष्ठ ७२ कारा मरहट्ट साराज

- ३ व्यवहार पु नाथारन्योन्य रक्त्वो रतिप्रकृति ।
शृगार स डेषा मभागा विप्रलम्भरतः ॥१॥
समोग मग योर्वियुक्तवोवश्च विप्रलम्भोऽसौ ।

॥६॥

—काव्यालंकार, २२ अयाव १२

- ४ भावो यथा रतिनाम प्रकामपिगच्छति ।
नापिगच्छति चाभाष विप्रलम्भस्तोच्यत ॥४॥

—मरस्वनीकठाभरण, भोज, ५वम परिच्छेद, काव्यान्ता सारीज

माग म अवरोध उत्पन्न हो जाता है और मान दगा म विप्रलम्भ की अवस्थिति मानी जाती है।

शृंगारप्रकाश के २४वें अध्याय म निम्नलिखित अनुसार विप्रलम्भ की व्याख्या कृत हुए भोज ने कहा है कि विप्रलम्भ शब्द लभ घातु म वि और प्र उपसर्ग जाड देने से बना है। नभ घातु का अर्थ है प्राप्ति, प्र का अर्थ प्रकष और वि का अर्थ है वचना। जहा प्राप्ति की इच्छा का प्रकष होने पर भी वचना हाती है अर्थात् अप्राप्ति हाती है, वही विप्रलम्भ हाता है।

शृंगार रम मे अभीष्ट की अप्राप्ति जहा होती है, वहाँ विप्रलम्भ शृंगार हाता है। काव्यप्रकाशकार मम्मट न विप्रलम्भ की कोई परिभाषा नहीं दी, केवल उसके विभिन्न प्रकारों के नाम और उनके उदाहरण प्रस्तुत किये हैं।

मम्मट के बाद हमचन्द्र ने भी अपन 'काव्यानुशासन' म विप्रलम्भ शृंगार की कोई विवचना नहीं की है। केवल इतना कहा है कि—'जहाँ गवा आदि सचारी भाव हा मतापादि अनुभाव हा वहाँ विप्रलम्भ शृंगार हाता है। यह तीन प्रकार का कहा गया है— अभिनाय मान, प्रवाम।'^१

परिभाषा बहुत अस्पष्ट है। गवादि सचारी भाव और मतापादि अनुभाव ता त्रमग भयानक रम और वरुण रम म भी हा सकते हैं।

वाग्भट्ट प्रथम ने भी स्त्री-पुरुष की पारस्परिक रति म युक्त और वियुक्तावस्था म ही मयोग और वियोग माना है। वाग्भट्ट कहते हैं— पति पत्नी का पारस्परिक रति वृत्ति का शृंगार कहत हैं। यह दा प्रकार की है—मयोग और वियोग जा त्रमग उन दोना की युक्त और वियुक्तावस्था मे हाती है।^२

वाग्भट्ट की परिभाषा म भी कोई नवीनता नहीं है। भरत और र्टट की परिभाषा की प्रतिध्वनि हा यहाँ भी दिखाना पडती है।

भाज के अनिखित शृंगार रम के दूसरे विगद विवेचनकर्ता गारदातनय न विप्रलम्भ का लक्षण न करके उसके दो मुख्य प्रकारों अयोग और वियोग का लक्षण दिया है—

अयोग—' (कभी मिल नहीं हा) एमे अद्भुत राग वाल युवक और युवती की परस्पर विभाव आदि के द्वारा असगति अयोग है। (विभाव आदि के रहने पर भी मिलन नहीं होता अर्थात् प्रेमादि के हृदय म रहने पर भी)।^३

१ शकान्तिव्यभिचारा मतापायनुभावोऽभिनायमानप्रवामरूपो विप्रलम्भ ॥३०॥

—काव्यानुशासन, हेमचन्द्र, त्रिंताय वृत्ति, निशयमागर प्रेम

२ तयापस्वोभिर्भो रत्या वृत्ति शृंगार उच्यते।

मयोगो विप्रलम्भश्चत्वेन तु त्रिविधो मन।

तो तयोभयो वाच्यौ बुधैयुक्तवियुक्तयो ॥५॥

—वाग्भट्टालकार वाग्भट्ट, खेमराज श्रीरुद्राण्य, वैकुण्ठेश्वर नेस

३ परम्पर विवावाचैयू नोऽद्भुत रागयो।

असगतिरयोगोऽस्मिन्शावस्वा त्थोरपि ॥

—भावप्रकाश शारदातनय पृष्ठ ८५

विद्योग—'सम्भाग मग्न युवती और युवक के विप्रसय (दूरीकरण) को विद्याग कहा है।'^१

अथाग और विद्याग में सामान्य विभावादि लक्षण के अनुरूप ही हानि है फिर भी रति ग्याया भाव का अनुवृत्ति हानि न यत् अगार के ही भन् है।^२

अथाग और विद्याग का परिभाषाभाषा में स्पष्ट ही है कि ये अमग मिलन से पूर्व और मिलन के बाद के विप्रसयम्भ रूप है।

साहित्यशास्त्रकार विप्रसय का विप्रसयम्भ सम्बन्धी परिभाषा भी भोग की परिभाषा में पूरा सम्यक् रखता है। विप्रसय के अनुसारा— अनुसारा के अत्यन्त उत्तम हानि पर भाग्य प्रिय समागम तथा शोका का उम विप्रसयम्भ कहते हैं।^३

प्रिय समागम के लिए यत् भी अभाण्ट गद्य का प्रयोग ही हुआ है।

समगमाधरकार पण्डितराज उगनाथ ने विप्रसयम्भ के एक दूसरे मौलिक तथा सूक्ष्म अर्थ का समझा है जिसके अन्तर्गत समीप पर्यन्त भी उनके पूर्ववर्ती आचार्य भाज और विप्रसय उगनाथ स्पष्ट नहीं कर सकें थे। भाज और विप्रसय दाना इस तथ्य तक का अन्वय है कि जहाँ रति के प्रकृत हानि पर भी प्रिय समागम नहीं होता वहाँ विप्रसयम्भ अगार होता है। उनके सम्मुख यह बात भी विनयुक्त स्पष्ट थी कि प्रिय व्यक्ति के समागम हानि पर भी प्रिय समागम अभी-वर्षा सम्भव हो जाता है जब (मान की लता में)। किन्तु क्या यह बात तथा समझा पाय थी कि उगनाथ कारण क्या है? इसी का उत्तर हम पण्डितराज जगन्नाथ ने इन का प्रयत्न किया है।

पण्डितराज के अनुसारा— अगार समान प्रकार का है मयोग और विप्रसयम्भ। यदि स्था-गुण्य का समागम के समय प्रसन्न हो तो मयोग अगार कहलाता है और विद्याग के समय होता है विप्रसयम्भ अगार। परन्तु मयोग या अथ स्त्री पुरुष का एक स्थान पर रहना नहीं है बल्कि एक स्थान पर रहने के लिये गुण्य में भी यदि ईर्ष्या-आदि हो तो विप्रसयम्भ समकाली घटन किया जाता है। अथा उक्त विद्योग का अर्थ भी अलग रहता है। अर्थात् स्था-गुण्य का अर्थ भावना जागरण है। अतः यत् मानना चाहिए कि मयोग और विद्याग एक प्रकार का विनयुक्त और यह—मिना हुआ है और विद्योग

१ कि लालि ३३ २२३ के म योगसम्भ ॥

२ कि लालि ३३ २२३ के म योगसम्भ ॥

— उपसंहार शारदाधर, पृष्ठ ८४

३ कि लालि ३३ २२३ के म योगसम्भ ॥

४ कि लालि ३३ २२३ के म योगसम्भ ॥

— अथर्ववेद में अथर्ववेद पृष्ठ ८३ में अथर्ववेद शारदाधर

५ कि लालि ३३ २२३ के म योगसम्भ ॥

— अथर्ववेद पृष्ठ ८३, विप्रसयम्भ, अथर्ववेद पृष्ठ ८३

हुआ हूँ यह जान ।^१

जगनाथ की उपयुक्त परिभाषा की व्याख्या हमारे ध्यान में इस प्रकार की जा सकती है—“उनकी परिभाषा व अनुसार मयोग और वियोग जाना दशाया में प्रेम की स्थिति अभिन्न है । मयाग और वियोग का प्रकार की चित्तवृत्तिया मात्र हैं और वह हैं—‘मिना हुआ हूँ और विछुटा हुआ हूँ का जान’ ।

पण्डितराज मयाग और वियोग का चित्तवृत्तिया मात्र मानकर हम बात का उत्तर दे रहे हैं कि दोनों पक्षा के परम्परानुरक्त और एक स्थान पर हान पर भी प्रिय मयागम क्या नहीं होता । व कहते हैं कि उमका कारण है ईश्या आदि के कारण विछुटा हुआ हूँ ऐसा जान । ‘विछुटा हुआ हूँ यह जान ही प्रमिया की उम मयुक्तावस्था में भी विप्रनम्भ शृंगार को उपस्थित करता है ।

पण्डितराज उमय पक्षा के (विमी कारणवा) अलग रहने की अवस्था में और उनमें विमी प्रकार का मनमुटाव न होने के कारण मिला हुआ हूँ इस जान का अवस्थिति ‘मयाग शृंगार’ मानते हैं । इस दशा में पूर्वानुराग, प्रवाग और वरण यह तीनों प्रकार के विप्रलम्भ मयाग शृंगार के अन्तगत आ जायेंगे क्याकि रति भाव की उत्कृष्टता और तमयता में ‘मिना हुआ हूँ यह जान ना रहगा ही । किन्तु साथ ही यह नहीं भूल जाना चाहिए कि भाव के मिनन व साथ प्रयत्न म्यूल मिनन भी भाव की पूणता के लिए परमा वश्यक माना गया है । अतः स्थूल रूप में जब तक मिनन न हागा तब तब अभीष्ट की प्राप्ति न होने से विछुटा हुआ हूँ यह जान आवश्यक रूप में विद्यमान रहगा । एमी स्थिति में जिस मन स्थिति में जगनाथ विप्रलम्भ शृंगार में ‘मिना हुआ हूँ यह जान मानकर उम मयाग की स्थिति मानते हुए विप्रलम्भ शृंगार का दाप बताते हैं, वह दाप नहीं रहता । क्याकि विछुटा हुआ हूँ यह जान भाव के मिनन की तमयता के साथ अवश्य उपस्थित रहता है ।

जिसका पण्डितराज दाप कहते हैं उमी का हम गुण मानकर चलेंगे । उनके इस भाव की व्याख्या हम इस प्रकार करग कि विप्रनम्भ भाव की तमयावस्था में मिलन के, अथवा सम्भोग के समस्त भाव-वभव का भी अपनी परिधि में समेट लेना है । किन्तु उम मिलन की चरम प्राप्ति में ‘विछुटा हुआ हूँ, यह जान जब बाधा उपस्थित करता है तो प्रमी उम विद्रोह की व्यावृत्ता में पुनः प्रिय का पान के लिए विकृत हो उठता है । इस तरह विप्रनम्भ में विरह की भावना अथवा प्रिय का अभाव-पीडा का जन्म होता है ।

१ तत्र शृंगारो विविधः, मयोगो विप्रनम्भश्च । रते सयोगकालावच्छिन्नत्वे प्रथम । वियोगकालावच्छिन्नत्वे द्वितीय । सयोगश्च न दम्पत्यो सामानाधिकरण्यम् । एकतल्परायनोऽप्याप्यात्सुदभावे विप्रलम्भरवैव वृणान् । एव वियोगोऽपि न वैयधिकरण्यम् लोपरयोक्तत्वात् । तस्मादनाविमौ मयागवियोगाभ्यावन्त वरणवृत्ति विशेषौ । यमयुक्तोवियुक्तस्यास्मीति धी ।

—रमणभाष, पण्डित राजगनाथ, शृष्ट सरया ६० नागश भूट का टाका संहिता, प्रकाशक निरय मागर प्रेम, बम्ब

विरह की भावना एक और मिलना हुआ हूँ इस जान क कारण प्रेमी का उसकी बसती की याद मिलना है और दूसरी धार में भाव में प्रिय से मिलता हुआ ही हूँ इस चेतना के कारण उमक प्रेम का वियोग की अवस्था में और अधिक घुट करती है।

इस विराधा भावनाओं के अद्भुत सामजस्य के कारण हा विप्रलम्भ में सम्भाव मुग और अनुराग का अधिक गाना करने की शक्ति आती है। भोजन कहा भी है—

विप्रलम्भ के बिना सम्भाव पुष्टि को प्राप्त नहीं करता जमे कपायित वस्त्र पर रग अधिक उड़ता है।^१

विप्रलम्भ शृंगार में स्त्री और पुरुष की चेष्टाएँ (विरह) दुःख जय, तड़पन गन्धरा हाती है।^२

विप्रलम्भ के प्रकार

विप्रलम्भ शृंगार के अनेक प्रभेदा का वर्गीकरण हम भारत के नाट्यशास्त्र में नहीं मिलता। केवल कारण विप्रलम्भ और वरुण रम के अंतर का भारत ने अवश्य स्पष्ट किया है। परन्तु धनधारणों आचार्यों में ना इतना उल्लेख ही नहीं है। मसूत काव्य शास्त्रों में विप्रलम्भ का अर्थवचन वर्गीकरण स्पष्ट नहीं किया है। काव्यानुवाक के १४वें अध्याय का प्रथम बर्णना में स्पष्ट है विप्रलम्भ तो चार प्रकार का माना है—

विप्रलम्भ नाम ता शृंगार चार प्रकार का हाता है—प्रथमानुराग मान, प्रथम पौर वरुण।^३

स्पष्ट है वाद धात्र तत्र विप्रलम्भ का वर्गीकरण इसी रूप में चला आ रहा है। कुछ और धात्रों ने विरह विप्रलम्भ विप्रलम्भ का एक पाँचवाँ भेद भी माना है।

१ प्रथमानुराग (पूथराग)

प्रथमानुराग का परिभाषा दत्त हूग स्पष्ट कहता है— आनातन भाव आदि से ही विरह अधिक स्पष्ट रूप में आ गया है। उसे नाचन-नायिकाओं की लज्जा का प्रथम

१ नलिना विप्रलम्भ सम्भाव पुष्टिरनुत्त।

काव्यसिद्धि काशी भावनार्थ-पुस्तक ॥

—सम्भाव १ अर्थवचनम्, पृ. ११ पर १५५ लक्षण सख्या ५०, त्रिपथ सागर प्रेम, पृ. १।

२ अर्थवचनम् न वेदितव्यं इत्यादि

३ अर्थवचनम्

—वही लक्षण सख्या ५३।

४ अर्थवचनम् स्यात् अर्थवचनम्

प्रथमानुराग नाम

अर्थवचनम् १॥ १॥

नुराग कहते हैं।^१

“कठिन काम से तप्त वे दाना हिम सलिल मणाल और कदलीदल आदि का खवन भी करते हैं, निंदा भी करते और डाँकी फवते भी हैं।”^२

भोज ने प्रथमानुराग की परिभाषा इस प्रकार की है— जिनका पहले कभी मिलन न हुआ हो उसे युवक-युवती की अभिलाषा जब मुद्गर मक्त्प का रूप धारण करती है तो उसे प्रथमानुराग या पूर्वानुराग कहते हैं।^३

मुद्गर मक्त्प का अर्थ है स्नह भाव से एक दूसरे के विषय में सोचना विचारना आदि। अतः भोज की परिभाषा को दूसरे शब्दों में उसे भी कहा जा सकता है कि पहले जिनका कभी सयोग नहीं हुआ है एक युवक-युवती वामनायुक्त हृदय सजब परस्पर स्नेहभाव रखते हुए एक दूसरे के विषय में स्मणीय भावा में परिपूर्ण होकर साचते विचारते हैं, तो उनकी उस अवस्था को पूर्वानुराग या प्रथमानुराग कहा जाता है।

शृंगारप्रकाश में भोज ने प्रथमानुराग का प्रतिश्रुत्यादान, (प्रतिश्रुति + आदान) श्रवणादि से अट्टण किया गया कहा है। अयान गुण श्रवण आदि से पूर्वानुराग का उत्पन्न होना कहा है।

हमचन्द्र ने पूर्वानुराग अथवा अभिलाषा विप्रलम्भ का दो प्रकार का माना है— (१) दवजय, (२) परवसताजय।^४ दवजय विप्रलम्भ प्रतिताभग आदि के कारण हाता है और परवसताजय गुञ्जना की उपस्थिति के कारण।

गुञ्जना की उपस्थिति में लज्जादि के कारण मिलन में जड़ बाधा होनी है तब परवसताजय अभिलाषा विप्रलम्भ हाता है। इसी को कुछ लोग न विप्रलम्भ का पाँचवा भेद विरह विप्रलम्भ भी कहा है।

शारदातनय ने विप्रलम्भ के इस भेद (पूर्वानुराग) को पूर्वानुराग न कहकर अयोग कहा है। अयोग का विवेचन पहले ‘विप्रलम्भ’ की विवेचना में किया जा चुका है। शारदातनय के अनुसार “अदभुत राग वाले युवक और युवती में विभावादि के उपस्थित रहने पर भी जब मिलन नहीं होता तब अयोग विप्रलम्भ हाता है। (द्विगुण विप्रलम्भ

१ आनोकनादिमानप्ररुग्गुहरागयोरमप्राप्ती ।

नायक्याया चष्टा स प्रथमोविप्रलम्भ इति ॥ २ ॥

—काव्यालंकार, ऋट्ट, अध्याय १४, चौतन्त्रा सम्मल साराण ।

२ हिममणिलचन्द्रचन्दनमणालकदलीदलादि तदैते ।

द्वारामरतापौ सेवेने निन्त निपत ॥

—वहा ।

३ प्रागमगतयोर्नोरभिलाषा प्रवतते ।

सकलपरमथायोऽनुराग स प्राच्य उच्यत ॥ ४७ ॥

—भरस्वनाकिठभरण, भोज, पञ्चम परिच्छेद ।

४ देवदारवस्याभ्यामाषो द्वेषा ॥ २ ॥

—काव्यानुशासन, हेमचन्द्र, द्वितीय वृत्ति, निखय भाग

मन्त्रणा विवेचन—(परदानतय) ।

वने भी पूजानुराग और अयाग के गाय म कोई अंतर नहीं है। भोज के अनुगाय अनुगाय का अर्थ वह प्रेम भाव है जो मयाग के साथ अथवा उसके पश्चात वन्दता है। यथा मयाग म पूज जा रति भाव उदरन हाता है वह पूर्वानुराग है। अयाग का अर्थ भी मयाग म पूज का अर्थव्याही है।

मात्रित्यपणकार विश्वनाथ न पूजानुराग का विशद विवेचन किया है। विश्वनाथ का पूर्वानुराग मन्त्रणा व्याख्या एव प्रचार है—

मौर्त्यानि गुणा व श्रवण दान स परस्पर अनुरक्त नायक नायिका वी समागम म पूज का दगा का नाम पूवराग है। दूत भाट और सली आदि के द्वारा गुणा का श्रवण शान्त है। शान एतवान चित्र स्वप्न म अथवा साभान ही हाता है।”

अभिनाय चित्ता स्मृति गुणकथा, उद्दग प्रलाप, उमात्, व्याधि, जडता और मृति (मरण) ये दग काम दगार्गे विप्रनम्म म हाती हैं।”

इन्द्रा का नाम अभिनाय है। प्राप्ति के उपाय आत्ति का नाम चित्ता है। जड शनत का मिरन न रहता उमात् है चित्त न बहकन स अटपटी वाना का बहना प्रलाप है। मोषनि गाय वाणुता दुःखता आत्ति व्याधि हाती है। अया तथा मन के चेष्टा पूज शान का नाम जडता है और मरण को मृति कहन हैं।”

‘यद्यपि म्य तत्र विच्छिन्न दान स मरण का वणन नहा किया जाता तथापि मरण तु न दगा का वणन कर दना चाहिए। यदि गान ही पुनर्जीवित हो ता मरण का भी वणन कर दन हैं।

१ मयागदगाय विच मन्त्रणावश ।
दशविशो यद्व्यानी पूजाम म वयत ॥ २०॥
अय तु मरथय दूय मयागुगत ।
इन्द्रा विचय मायागवने न शनम् ॥२१॥

—मात्रित्यपण विश्वनाथ, तय परि देव ।

२ मयागदगाय विच मन्त्रणावश ।
दशविशो यद्व्यानी पूजाम म वयत ॥२०॥

—वरी ।

३ मयागदगाय विच मन्त्रणावश ।
दशविशो यद्व्यानी पूजाम म वयत ॥२०॥
अय तु मरथय दूय मयागुगत ।
इन्द्रा विचय मायागवने न शनम् ॥२१॥

—वरी ।

४ मयागदगाय विच मन्त्रणावश ।
दशविशो यद्व्यानी पूजाम म वयत ॥२०॥
अय तु मरथय दूय मयागुगत ।
इन्द्रा विचय मायागवने न शनम् ॥२१॥

—वरी ।

‘कुद्र आचाय दन काम दगाघ्रा को इस प्रकार कहते हैं—सबसे पहले नयनानुराग, फिर चित्त की आसक्ति, उसके बाद सकल्प (मिलने की इच्छा) और तब निद्रानाग, उन्माद, मूछा और मरण । पहले स्त्री का अनुराग वणन करना चाहिए । अनन्तर उमके इंगित, चेष्टित आदि का दक्कुर पुरुष को अनुराग निबद्ध करना चाहिए । यद्यपि पुरुष का अनुराग भी पहले ही सक्ता है परन्तु उक्त प्रकार से वणन अधिक हृदयगम हाता है ।’

“पूरराग तीन प्रकार का होता है—१ नीली राग, २ कुमुम्भ राग, ३ मजिष्ठ राग । जा अधिक चमक चमक मे युक्त नही निन्तु हृदय मे वभी दूर नही होता, वह नीली राग है । कुमुम्भ राग वह है जो गोभित तो खून हो परन्तु जाता रहे । मजिष्ठ राग उस कहत हैं जो गोभित भी हा और जाय भी नही ।”^१

शारदातनय न भी भावप्रकाश मे राग का नीली, कुमुम्भ और मजिष्ठ राग मे वर्गीकरण किया है किन्तु यह पूवराग के भेद हैं यह वान स्पष्ट नही की । मजिष्ठ राग को उहोन उत्तम, नीला राग का मध्यम और कुमुम्भ राग को अधम राग माना है ।^२

पण्डितराज जगन्नाथ मे पूव विप्रलम्भ का विशद विवेचन साहित्यदपणकार और अय आचाय कर चुके थ । अत उहोने उसके प्रभेदा के विवेचन की आवश्यकता नही समझी ।

२ मान

दूर के अनुसार ‘ईर्ष्या भ युक्त नायिका, नायक म, अय नायिका के सम्बन्ध मे उत्पन्न हुए दोष का लक्ष्य करके जिस विकार का प्राप्त हाती है, उसे मान कहत है ।”

नायक के दोष—

१ नयनप्रीति प्रथम चित्तासगस्ततोऽथ सकल्प ।

निद्रा च द्रुम्भुना विषयनिवृत्तिरनानारा ॥

तत्र च—

आनो वाच्य रिन्था राग पुम पश्चात्तदिङ्गितै ।

आनो पुरुषानुरागे मभवत्यप्येवमधिक हृदयगम भवति ।

—साहित्यदपण, विश्वनाथ, ततीय परिच्छेद ।

२ नालो कुमुम्भ मजिष्ठ पूवरागोऽपि च जिना ॥११५॥

न च्यातिरोभन यन्नापैति प्रेम मनोगतम् ।

तनालारागमागया ॥ यथा शाराममीतयो ॥११६॥

कुमुम्भराग तत्प्रादुयदपैति च शानने ।

मनिष्ठरागमादुम्भद् यानपैत्यनि शोभन ॥११७॥

—साहित्यदपण, विश्वनाथ, ततीय परिच्छेद ।

३ (दरिद्र भावप्रकाश—शारदातनय, चतुर्थोऽधिकार पृष्ठ सरथा =१ प्रकाशित ओरियल इस्टाट्यूट, बरोदा, १९३० ।

४ मान स नायक व विकारमायाति नायिका सेष्या ।

उदिस्य नायिकात्तरमम्भमसुम्भ दोषम् ॥११५॥

—काव्यालकार, रण्ट, अयाय १४ ।

‘द्वारा स्था व प्रति गमन समय बला और आनाप मध्यम श्रणी वा दोष है । आचारन छाया दाप है किन्तु उमका समय जाकर दगने वा प्रयत्न बडा दाप भी है और मध्यम प्रसार वा भी ।’

नायिका इन दापा वा इन चिह्ना व द्वारा पहचानती है—

नायक व वस्त्रा म (शक्ति-य आदि के कारण), अंगों पर नलगत आदि से, वायव्यजन और मन्त्री वचन आदि के कारण ।”

‘यह दोष का बाल, पात्र और प्रगमादि के अनुसार दाप त्रम स तीन प्रकार का है—असाध्य दुःखसाध्य और सुखसाध्य ।’

म (प म का) की परिभाषा वा त्रम प्रकार कहा जा सकता है कि नायक के अथ नायिका व प्रति गमन करत म अथवा उमस आलाप करन से अथवा उसको केवल देखने मात्र म हा नायिका त्रिम विचारवा प्राप्त हानती है उस मात कहते हैं । अथ नायिका के प्रति गमन नायक वा सबसे बला दाप है । उमस आलाप करना मध्यम और उसको त्रमस छाया दाप माना जाता है । मान दग गान और परिस्थिति के अनुसार असाध्य दुःख-साध्य और सुख-साध्य हाता है अथवा वभा ता नायक व द्वारा मनुहार किए जान पर नायिका मानती ही नहा, वभी कठिनाद म मानती है और वभी उसका मनाना अत्यत मरत हाता है ।

मान की परिभाषा सरस्वतीवटाभरण म भाग इग प्रकार करत हैं—“प्रेम की गति, मग म समान स्वभाव म ही कुत्ति है । जत्र हनु के त्रिना अथवा हेतुपूर्वक (कारण अथवा अकारण) (मन, ना) आदि त्रमस निषेध त्रिया जाता है तत्र मान त्रिप्रलम्भ हाता है ।’

‘दृष्टारप्रसाग म भाज न मान वा महत सुदर चित्रण त्रिया है । उनके अनुसार मान मा + म ता त्रमस व मन म बना है य त्राना ता ही निषेधात्मक हैं । प्रेम वा कुत्ति माग इन (तत्र, नहा) म भरा पत्रा है ।

(ग मर ध्यात त्रन वा त्रान है कि बीजगणित के अनुसार दा निषेध एव स्वीकृति व मूरत हात है । मा और त्रता निषेधात्मक त्रवेत्ता म त्रान तत्र मरत त्रन त्रान त्रवेत्ता

दृष्टिम हाता है, सच्चा नहीं। मान ऊपरी होता है, वस्तुन तो मानी पक्ष स्वय भी प्रेम की अभिव्यक्ति के लिए आतुर होता है।)

आग निरुक्ति के अनुसार मान का अर्थ बरते हुए भोज कहते हैं कि निरुक्ति म मान का अर्थ है पूजा, वाचन, मापन। (पूजा मे ता मान विप्रलम्भ मे होन वाली मनुहार आ जाती है मापन म दूसर पक्ष के प्रेम को आपने की बात), बोधन भाग के शब्दा म वह ज्ञान गयवा अभिमान है जो दुख के हतु का भी सुख का साधन मानता है। मान म प्रेम के अस्तित्व का बाध होता है।

भोज के 'मान सम्बन्धी विश्लेषण को हम दूसरे शब्दा म ऐसे भी कह सकते हैं कि मान, विप्रलम्भ शृंगार की वह अवस्था है जिसम एक पक्ष के अथवा दोना पक्षा के मा, न आदि निषेधात्मक शब्दों के कहने स प्रेम की सन्तुष्टि म अवरोध उपस्थित हाता है। उस दसा म प्रेम की गहराई की नाप की जाती है, (दूसरे पदा की) मनुहार की जाती है, और दुख देन वाली मान की उस अवस्था को सुख का साधन समभा जाता है।

शारदातनय न भी 'मान की काफी सुदर और मनावधानिक व्याख्या प्रस्तुत की है। शारदातनय के शब्दों म 'मनोरथ निरोधन का मान कहत हैं। मा, न आदि शब्दा की बीप्सा से (आवृत्ति से) निरोध ही मान कहलाता है।^१

"यह मान ईर्ष्या और प्रणय के भेद से स्त्री और पुरुषा म दो तरह का माना गया है। (नायक के) सपत्नी के दगन, स्पश और (उसके गुण) श्रवण को न सहते हुए। स्त्रिया की ईर्ष्या जब मनोरथ को रोकती है तो उसे ईर्ष्यामान कहते है।"^२

ईर्ष्यामान तीन प्रकार का है—

- १ अनुमा,
- २ अयम्भ,
- ३ श्रवण।

गोत्रस्वलन, भोगाक और स्वप्नायित (स्वप्न म बडबटाना) मे नायक के दूसरी नायिका म प्रेम का अनुमान किया जाता है। अत अनुमान के द्वारा उत्पन्न होने वाले इस मान का अनुमा ईर्ष्यामान कहत हैं। 'अध्यक्ष इति द्रय गाचर होता है और दासी, मली आदि के मुख मे मुनना ही 'श्रवण है।

१ म एव मान श्लुक्नो मनोरथनिरोधनम् ।

मा नेति वाप्सया रोधो मान श्लुक्च्यते बुधै ॥

—भावप्रकाश शारदातनय, चतुर्थोपिकार, पृष्ठ ७६, गैकबाड, ओरिएण्टल सीराज ।

२ श्रवणयरोधेन मान श्रापसयोर्दिधा ।

सपत्नोत्पशनस्पशाश्रवणान्महता स्थिरा ॥

ईर्ष्या स्त्राया तथा रोध श्रव्यामान उवाह्वन ॥

—भावप्रकाश, शारदातनय, चतुर्थोपिकार, पृष्ठ सप्तम्या ७६ ।

प्राप्तमान का परिभाषा ता शारदातनय से पहले और किसी न स्पष्ट नहीं किया था। प्राप्तमान का अर्थ तो बताया गया था किन्तु उस अर्थ को भी गौण रूप से कहा किन्तु दिया गया है इनकी किसी न भी जानने का प्रयत्न नहीं किया था। शारदातनय न प्रथम तब से उक्त व्याख्या प्रस्तुत की है। उनका अनुसार—

मान प्रथम प्रथम तथा राधा के आश्रय से उपायित प्रेम यदि प्रथम का प्राप्त होता वह प्रथम (मान) कहलाता है।^१

उनका प्राप्तमान की परिभाषा विद्वानों का उहाँ तक रचिवर हागी, कहा नहीं जा सकता। किन्तु वह वाक्य मनाशानिक और उचित प्रतीत होती है। शारदातनय की प्रथम मान मन्त्रणा परिभाषा का और स्पष्ट नहीं। म इस प्रकार समझा जा सकता है कि ईर्ष्या मान में हा दूरी पथ द्वारा अनुसार किण जान पर हृदय में जब मान नहीं रहता, केवल मान का अभिनय रह जाता है और उस अभिनय के द्वारा मान को स्थिर रखा जाता है, किणम कि मनाशय अनुचित म निर्गम रहता है तो वह प्रणयमान होता है।^२ मानो पथ के मान जान पर अनुसार करन वाक्य पथ जब मान बनन लगता है तब भी प्रणयमान उपायित होता है।

शारदातनय का अर्थ है कि प्रणयमान स्था-पुरुष कोना म हो सकता है किन्तु स्थानात करन स्थिया म न होता है।

प्राप्तमान स्था-पुरुष दाता का वर्णनीय है परन्तु ईर्ष्यामान केवल स्थियों का ही वर्णित किया जाता है। यदि पुरुष म स्था-पुरुष हा तो वर की सम्भावना ही अधिक है।^३

इसका मतलब यह है कि शारदातनय का यह दृष्टिकोण कि वह केवल स्थियों में जाता है पुरुष म तदा पुरुष म वर स्थानात त रहकर वर का मग धारण करता हुआ भी पूरा मनाशानिक है। प्रथम भाव से श्रोत प्रोक्त पुरुष ता हृदय अर्थात् आहत हान पर ध्यान रित ता म ईर्ष्या करन हा अनुचित त रखा वह या तो स्वयं मर जाएगा अथवा मरता मार जाता। शारदातनय की समझ भी उक्त अर्थ ता आन्त करन वाक्य व्यक्तित्व के नाम म मनाशय मनाशय ही है। प्रथमपत्नी नायिका म भी पुरुष मान न करणा पथ करन उपायित यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है। मन्त्रणा का-पदास्थियों म केवल शारदातनय त हा मन्त्रणा मग धार मान किया है। उनका वाक्य भी इस दृष्टि का विलक्षण और की उपायित नता है।

१. शारदातनय, शारदातनय, अनुपाधिकार पृ० ७६।
२. शारदातनय, शारदातनय, अनुपाधिकार पृ० ७६।

३. शारदातनय, शारदातनय, अनुपाधिकार पृ० ७६।
मन्त्रणा का-पदास्थियों म केवल शारदातनय त हा मन्त्रणा मग धार मान किया है।

साहित्यदपणकार विद्वनाथ मान की परिभाषा करते हुए कहते हैं—“वाप का नाम मान है, वह दो प्रकार का होता है, एन प्रणय से और दूसरा ईर्ष्या से उत्पन्न । प्रेम की उल्टी ही चाल हानी है इसलिए दाना के हृदय में भरपूर प्रेम होने पर भी जिना कारण ही एक-दूसरे पर जा कोप है वह प्रणय मान है ।”^१

‘पति की अथ स्त्री में आमक्ति देखने पर या अनुमान करने पर अथवा किसी से मुन नेन पर ईर्ष्यामान होता है । यह तीन प्रकार में हो सकता है—

१ स्वप्न में अथ नायिका के सम्बन्ध में नायक का बड्यटना ।

२ नायक के सम्भोग चिह्न का देखना ।

३ नायक के मुह से अनायाम अथ नायिका का नाम निकल जाना ।^२

विद्वनाथ का मान सम्बन्धी उपयुक्त विवेचन ऋत्विवादी ही है किसी मौलिक तथ्य का उदघाटन साहित्यदपणकार न नहीं किया है । साहित्यदपण के मान सम्बन्धी विवेचन में केवल एक वान विरोध ध्यान देने की है और वह है कि विद्वनाथ ने मान को एक विषय अवस्था में विप्रलम्भ शृंगार न मानकर सम्भोग शृंगार का सचारी भाव ही माना है । विद्वनाथ कहते हैं—

‘यदि मान अनुनय (मनुहार) के समय तक न ठहर सके तो उस विप्रलम्भ शृंगार नहीं समझना चाहिए, किन्तु सम्भोग का सचारी नामक भाव ही जानना चाहिए ।’^३

विद्वनाथ का कहना कुछ सीमा तक ठीक है । दूसरे पक्ष द्वारा मनुहार किए जान पर भी जब रोप के कारण मनोरथ की सतुष्टि का निरोध किया जाता है तब ही मान विप्रलम्भ होता है, क्योंकि विरह की भावना वही उपस्थित हानी है । अभीष्ट की प्राप्ति में जहां वह (मान) बाधा नहीं पहुँचाता, वहां वह वियाग अथवा विप्रलम्भ शृंगार नहीं हो सकता । क्षणिक मान सम्भोग के उ कप में सहायक ही होता है अतः वह सम्भोग का सचारी भाव ही होगा । किन्तु फिर भी प्रकय प्राप्ति की अवस्था में पहुँचने से पहले उसमें वियोग का जो दुःख होता है वह ‘मान की विरह वदना ही है ।

पण्डितराज जगन्नाथ ने विप्रलम्भ का विवेचन करते हुए कहा है कि एक तल्प पर क्षयन करते हुए दम्पति के हृदय में भी जब ईर्ष्या आदि के कारण अंतर आ जाता है, तो विप्रलम्भ शृंगार का वर्णन किया जाता है । मान विप्रलम्भ की कोई अलग परि

१ मान कोप स तु ष्ठा प्रणयेषाममुद्भव ।

द्वेषो प्रणयमान स्वाधमाद सुमहत्त्वपि ॥ १६८ ॥

प्रेम्य कुन्निगामित्वात्कोपो य कारण विना ।

—साहित्य दपण, विरहनाथ, तृतीय परिच्छेद ।

२ पत्युरथप्रियामग्नो दृष्टेऽथानुमित्तं श्रुते ॥ १६६ ॥

दृष्ट्या मानो भवेत्प्रीयाया तत्र त्वनुमित्तिश्च ।

उत्पन्नानामिदमोगाद्गोत्रस्त्वन्मममा ॥ २०० ॥

—वही

३ अननयपयसा सत्त्वे त्वस्य न विप्रलम्भभेदता, किन्तु सम्भोग मन्चार्यारयभावत्वम् ।—वही ।

भासा उठाने नहीं की है। भक्त हरि ने मयोग के समय हान वाल वाले इस विरह का मयत वगिन कहा है—“जा एक साथ रहकर भी मन में अंतर रखते हैं उनका नाम भा विद्याम म (पूवानुराग प्रवाम आदि विप्रलम्भ क और प्रभारा स) विद्याप दुष गयो है। १

३ प्रवास

प्रवाम विप्रलम्भ शृंगार का सबसे मुख्य भेद है। प्रवास विप्रलम्भ के वणन में कविना ने पृष्ठ क पलट भर डाल है और फिर भी कभी उनकी तपित नहीं हुई है। प्रवास क वषा क लिए ही कवियो ने छह ऋतुष्रा और वाग्दमास आदि की उदभावना की है और कभी यहाँ नायक म एक वद्वन माहिय प्रकृतिक विभिन्न दया के वणना का और प्राकृतिक वातावरण के मानव मा परपन्न वान प्रभाव का, तयार हो गया।

पूरराग तो मिलन की अभिलाषा मात्र है उसमें विरह की तडपन होती तो है किन्तु कभी तहा जमा प्रवास के विरही भुक्तभागी की हाती है। एक ने सुख देखा ही नहीं वरन उमरी कानता मात्र की है और दूसरा उम भोगकर उसमें वचित कर दिया गया है। मान में मिलन की सम्भावना बहुत निरस्त ही हाती है किन्तु प्रवास में तो प्रिय का उगाया हुआ प्राम फन भा वन उगता है परन्तु फिर भी कभी-कभी विरह की अवधि पूरा नहा हाती। घन विप्रलम्भ शृंगार की यह अवस्था अत्यंत मार्मिक है विरह की भावना का मने अधिव प्रस्पृटिन जाने का अरसाग भी इसमें ही मिलता है।

कान प्रवास की परिभाषा करत हुए वाल्यानकार म कहा है—‘नायक विरह जाणना, जा रहा है चला गया य मय प्रवाम कहान है। तनु विवक्षा (ऋतु के अनु गार उगत हान वातो इत्या) के अनुसार य तीन अभिलाषाएँ भी प्रवाम कहलाती हैं—प्राणा माना घाता है अथवा घाया हुआ है। २

कान का तापय यह कि नायक क विरह जान की सम्भावना स लेकर उसने चले जाने का अवस्था मत्र का तथा उमक विरह जान म उत्पन्न प्रियोग की सब आगवाभा का प्रवास विप्रलम्भ कहा जाता है। विद्यापान में ऋतुष्रा क प्राकृतिक वातावरण क प्रभार क कारण मार मार हृदय में उत्पन्न सामाप्य का जो अनुभव होता है, वह आणना, घाता है अथवा घाया हुआ है एसा जो आभाम जाना है, उम भी प्रवास विप्रलम्भ हा कान है।

भाकन मरग्या कानाभरण म प्राग की परिभाषा इस प्रकार की है—“युवक

१ १२२ 'जा एक साथ रहकर भी मन में अंतर रखते हैं उनका नाम भा विद्याम म ।

—शृंगार शारु भक्त हरि श्लोक म० ६६ ।

२ कान विरह की अवस्था में तनु विवक्षा प्रवाम उमौ ।

३ य मय प्रवाम कहान है । ४ प्राणा माना घाता है अथवा घाया हुआ है । ५ एसा जो आभाम जाना है । ६ युवक

युवतिया के नए अथवा प्रौढ़ अनुराग म (एन के) देशान्तर आदि म जान क कारण जा चिरकाल तक व्यवधान पड जाता है, उसे प्रवाम कहते हैं ।^१

भोज की परिभाषा रूद्रट की परिभाषा से अधिक सुष्ठु और स्पष्ट है । रूद्रट वस्तुतः प्रवास म हान वाली विरही की मानसिक अवस्थाया के विस्तारण से उसका लक्षण स्पष्ट करने का प्रयत्न करते हैं और भाज सीधे-साधे गण्य म यह कहकर कि नायक अथवा नायिका के अथ देश मे जान मे अनुराग म जो बाधा उपस्थित होती है वही प्रवाम विप्रलम्भ है, प्रवास के लक्षण का ज़िलबुल स्पष्ट कर देते हैं ।

शृंगारप्रकाश मे वास शब्द को उसके तीन अर्थों म ग्रहण करके प्रवास शब्द का तीन विभिन्न अर्थों म विश्लेषण किया गया है । भोज के अनुसार वास शब्द का पहला अर्थ निवास है निवास का अर्थ है रहना । प्र उपसर्ग का अर्थ है प्रतिभूल अर्थात् प्रवास का अर्थ है चले जाना । प्रवाम का यही अर्थ सबसे अधिक प्रचलित है । वास का दूसरा अर्थ भाज आच्छादन (कपटा) लत है । प्र उपसर्ग का अर्थ है विशेष, यहा प्रवास का अर्थ होगा, विशेष प्रकार का आच्छादन । अतः भाज के अनुसार प्रवास शब्द, प्रिय व्यक्ति के चने जान पर (नायिका द्वारा) धारण किया गए विशेष प्रकार क वस्त्रा की आर भी मनेत करता है । प्रवास का तीसरा अर्थ एकाकी वियोगी के एकांत निश्वासा से है जिससे वियोगी को कष्ट हाना है, इसी से उसको प्रवास कहते हैं । भोज का प्रवास शब्द का उपयुक्त विवेचन, प्रवास विप्रलम्भ सम्बन्धी व्याख्या म काफी उपयुक्त और समीचीन है ।

भोज के पश्चात् हेमचन्द्र ने अपने काव्यानुशासन म 'भिन देशत्व' का (नायक नायिका के) विभिन्न देशो म रहने को प्रवाम कहा है । उन्होंने प्रवाम का तीन कारणों से होना कहा है "प्रिय व्यक्ति के कायवग, गापवग अथवा सम्भ्रम चले जान से 'प्रवास' हाता है ।"^२ कृष्ण का कायवग मथुरा म द्वारिका चले जाना कायवग, यक्ष का कुबेर के गाप से रामगिरि पवत पर रहना गापवग और अचानक किसी भय के कारण के उपस्थित होन पर नायक का देशान्तर चले जाना सम्भ्रम प्रवास है ।

शारदातनय की प्रवास सम्बन्धी परिभाषा म कोई नवीनता नहीं है । हेमचन्द्र का अनुकरण ही यहा भी हुआ है । प्रवास क सम्बन्ध म शारदातनय कहते हैं— भिन देशत्व को प्रवास कहते हैं । यह शाप से भी होता है बुद्धि से सोच-नमभकर भी और सम्भ्रम भी ।"^३

१ देशान्तराणि भिन्नौ व्यवधान चिराय यन् ।

नवेऽनुरागे प्रौढे वा प्रवाम मोऽभिधीयते ॥४६॥

—सरस्वती कण्ठाभरण, भोज, पंचम परिच्छेद ।

२ प्रवामो भिनदेशत्वम ।

कायशापसम्भ्रमै प्रवाम ॥ २२॥

—काव्यानुशासन, हेमचन्द्र निताय अध्याय ।

३ प्रवामो भिनदेशत्व तच्छापाद्बुद्धिपूर्वक ।

सम्भ्रमादपि तत्रैव बुद्धि पूर्वस्तिथा मन ॥

—भावप्रकाश, शारदातनय-चतुर्भोधिकार ।

बुद्धि में गाँव मगभार हाँस वाता प्रवास हमचंद्र के कायवश से कुछ भिन्न
नग है। मत्रम व नागय को गारणातय में अरस्य स्पष्ट किया है—महमा उत्पन्न होन
वा न दवा अयना मानुषी विप्लव का मत्रम रहने है।^१

साहित्यशास्त्र में प्रवास का उदाहरण म प्रवार दिया गया है— 'कायवश, गाप
वग अयना मत्रम (मय) वग नायक क अय दग म चल जान को प्रवास कहते हैं। उसम
नायिका के धारर और अयना म मनानता मिर म एग वणी एव निद्रास, उच्छवास,
राग्न और भूमिपन्न अति का वणन किया जाता है। अगों म अमौष्ठव साताप, पाडुता
और तुवना, अरुचि और अधारना अति दमक वरण है।^२

म १५ म वना जा गवता है कि प्रवास वह विप्रनम्भ शृंगार है जिसम कायवश,
धारणा अयना मरम नायक क अय दग म चल जान में नायिका अत्यंत दुखी हाता है।
मनान अय धारण करक एग वणी गवती है, नायक के वियाग में अत्यंत अधीर रहती
है अयना दुखना जाता है जिना वस्तु स उम रचि नहा रहती और साताप सहती
है वह (वभी-वभा) मूर्च्छित हा जाती है।

४ वरण विप्रनम्भ

वरणा विप्रनम्भ का सबसे प्रथम उदाहरण हम भरत मुनि के नाटयशास्त्र में ही मिल
जाता है। रग विरह नामक अध्याय में शृंगार रस का विवचन करत हुए भरत ने
शृंगार रस के एग अर वरण विप्रनम्भ और वरण रस का अंतर स्पष्ट किया है। भरत
मुनि का कहना है कि यद्यपि वरण विप्रनम्भ और वरण एव वरुणरम एव ही जमी
परिस्थितियाँ म उत्पन्न होत है (अयान स्पृजन क नाग म) किंतु दाना की प्रवृत्ति म
मीनर अंतर है। वरण रस म पूण निरगम भाव अयान नराय की अवस्था रहती ह
और वरण विप्रनम्भ म (रति स्यावा हान म) गाप १ भाव रहता ह अर्थात् अभिलाषा
वरावर रना रता ह।^१

नाटयशास्त्र में बतित इस तथ्य की और रूढ़त में सम्भवत ध्यान नहीं दिया है।
दृष्ट द्वारा दी गई कर्ण विप्रलम्भ की परिभाषा कर्ण रस की परिभाषा ही हो गई है।
कर्ण विप्रलम्भ की परिभाषा रूढ़त इस प्रकार करत है—

“नायक अथवा नायिका में से किसी की मृत्यु हो जाए अथवा कोई मृतकल्प हो
उससे उत्पन्न प्रलाप को कर्ण कहत हैं। (नायक और नायिका में, इन दोनों अथ
यात्रा में होने से) कर्ण विप्रलम्भ चार प्रकार है।^१

कर्ण विप्रलम्भ का लक्षण सरस्वती कण्ठाभरण में दत्त हुए भोज कहत हैं—“प्रिय
युवक के दूसरे लोक में चले जान पर जन दीना युवती निरन्तर दुःखी हाती है, वहा
कर्ण विप्रलम्भ हाता है।^२

भोज का यह लक्षण भी कर्ण रस में कुछ भिन्न नहा है। दीना युवती के निर-
न्तर दुःखी होने का स्थायी भाव गान ही माना जाएगा। गारदानयन में भावप्रकाश में
हा है—

‘कुछ लोग का मत है कि विषाग का एक भेद मरण है परन्तु यह ठीक नहीं,
क्योंकि मर जाने पर जो प्रलाप हाता है वह गान ही है।^३

भरत के परवर्ती इन सभी आचार्यों की दृष्टि कर्ण विप्रलम्भ के विषय में स्पष्ट
नहीं थी। सभी कर्ण विप्रलम्भ का कर्ण रस में मिलान कर दत्त रहे थे। उनके सम्मुख कर्ण
रस और कर्ण विप्रलम्भ का अन्तर स्पष्ट नहीं था। यदि प्रिय युवक के परलोक चले
जान पर दीना युवती का निरन्तर विलाप कर्ण विप्रलम्भ है तो कर्ण रस कहा हागा ?
यह प्रश्न इन आचार्यों से पूछा जाता तो सम्भवत यह लाग परेगानी में पड जात अथवा
उसका उत्तर यह दत्ते कि पति-पत्नी सम्बन्ध में मृत्यु के बाद होने वाला गोक कर्ण
विप्रलम्भ है और माता-पुत्र सम्बन्ध में होने वाला गान कर्ण रस। किन्तु क्या उनका
यह उत्तर ठीक हाता ? निश्चय रूप में नहा क्योंकि गोक के स्थायी भाव हा जान पर
कर्ण रस हागा कर्ण विप्रलम्भ नहीं। विप्रलम्भ वही हागा जहा स्थायी भाव रति विश
मान हागा। रति प्रवृत्तिमूत्रक है और गान निवृत्तमूत्रक।

१ कर्ण स विप्रलम्भो यान्यनरो त्रियेन नायकयो ।

यदि वा मृतकल्प स्यात्तान्यस्मद्गत प्रलपेत् ॥३०॥

—कायानकार, रूढ़त, अथाय २४, चोक्ष्वा मर्त्या सारान ।

२ लोकान्तरगते यूनि वल्लभे वल्लभा यत ।

भरा दुःखाथतः जन कर्ण स तन्व्यतः ॥३०॥

—सरस्वती कण्ठाभरण, पंचम परिच्छेद ।

३ विभोमेने मरणमिति क्विन्त्वात्समेतु ।

मातृत्वयत्र यान्य प्रलपच्छोक एव म ॥

--भावप्रकाश गारदानयन, चतुर्थोपधकार, पृष्ठ २३ ।

गायकवाह्य औरिण्डल मारान ।

उमत्त गति से बहती हुई सरिता की आशलिप्त लहरों में उवशी के उत्तरीय की कल्पना करके राजा कहन लग—

‘तरंगा क रूप म ब्रूवटाक्ष करती हुई, पक्षिया के स्वर म मखला का आभास देती हुई, उठने हुए भागा में अस्त-व्यस्त उत्तरीय धारण करके आगे बढ़ती हुई और बाधाओं से बचनी हुई सरिता के रूप में मरी उवशी ही है। नहीं किन्तु मुझे छाड़कर उवशी सागर के पास क्या जाएगा ? यह अवश्य सरिता ही होगी।

राजा की यह दशा उमाद की ही है जहाँ जड़-चेतन का भेद उह नहीं रहा है। आशा निराशा के संधप में मन चक्कराचूर हो रहा है। वियाग में राजा की सहानुभूति का क्षण अत्यन्त विस्तृत हो गया, मानव से आगे मानवतर जगत, पशु-पक्षिया तक भा वह पहुँच गया। गजपति को अपनी प्रियतमा के साथ विलास करत देखकर राजा उससे ईर्ष्या नहीं करते।

‘मैं पृथ्वी के राजाओं का अधिपति हूँ तू गजपति है। मरी प्रियतमा की भाँति तुझे भी अपनी प्रियतमा प्रिय है। हम दोनों सब बातों में सदाग हैं किन्तु भाग्य न करे कि तेरा वियाग अपनी प्रियतमा से हो।’^१

इस तरह वन प्रदगादि से उवशी का पता पूछते पूछते राजा ने जब एकलता का आलिंगन किया तो वह उवशी के रूप में परिवर्तित हो गई और तब इनका पुनर्मिलन हुआ।

‘अभिमान गाकुतलम्’ में दुवासा के शाप के कारण दुष्यन्त शकुन्तला को न पहचान सका और उमन उस निरमृत किया। कुलपुरोहित की सम्मति से राजा ने निश्चित किया कि प्रसव के समय तक वह पुरोहित के यहाँ रहेगी और यदि उसने चक्रवर्ती सम्राट के लक्षणों से युक्त पुत्र को जन्म दिया तो दुष्यन्त उम स्वीकार कर लगे।

राज्ञी-पीटती शकुन्तला पुरोहित के यहाँ जा रही थी कि एक अदृष्ट सत्ता उम उठाकर ल गई। राजा ने समझा विपत्ति टल गई। कुछ समय के उपरांत मत्स्य के उदर में से अभिमान अगुलिका के मिल जान पर राजा की सम्पूर्ण स्मृतियाँ सजीव हो उठी। यहाँ से दुष्यन्त का विरह करुण विप्रलम्भ है। राजा के मन में यह सात्वना रहती है कि शकुन्तला का उठाकर ल जान वाली सत्ता सम्भवत मनका हो, परन्तु फिर भी विरह की अवधि अन्तत है और मिलन की आशा एक दुराशा मात्र।

१ तरंगभ्रमङ्गा लुम्बितविश्वप्रेथिरमना
विक्रपता फेन वमनमिव सरम्भशिविलम् ।
यथाविद्ध यान्ति रत्नलितमभिमगय बहुशो
नयी भावेनय नुवमसाहना सा परिणना ॥

अथवा परनाथमरिदवैषा । न खलुक्शा पुण्यव समपहाय समुद्राभिमारिणा नविव्यति ।

—विश्वामोवशाय चतुर्थोऽङ्क, श्लोक २०

एक गानव-युद्ध के प्रसंग में मरीचि ऋषि के आश्रम में इनका पुनर्मिलन होता है। वरुण विरह के इस प्रसंग में कालिदास ने दुष्यंत द्वारा शकुंतला के चित्र लेखन आदि की विधि कावचन किया है।

वरुण विप्रलम्भ के सम्प्रत्यय में ससृष्ट कविया का सबसे प्रिय विषय सीता निरासन या क्या रही है। माता निर्वासन में परिस्थिति लगभग 'शाकुन्तलम्' से मिलती जुड़ती है। 'गानुन्तनम्' में गानुन्तला का त्याग पाप के कारण हुआ। सीता निर्वासन में, निर्वासन बनव्य और लारापवात् के कारण। मिलन दाना में अनिश्चित हो गया है दुष्यंत ने यह पूछता नहीं जानता कि गानुन्तला जीवित है और राम भी नहीं, किन्तु गानुन्तला और सीता दोनों पति के लिए व्याकुल हैं व मिलन की आशा नहीं छोड़ सकी हला यह निश्चित है। दुष्यंत और राम भी प्रिय मिलन की आशा निराशा के मध्य में तड़पते हैं।

सीता निरासन की रचना में सम्प्रति दो प्रमुख वाक्य अथ दिडनाग की 'गुणमाता' और भवभूति के 'उत्तररामचरित' है। रघुवंश में भी बौद्धाभाषण इस प्रसंग का उपनय है। कालिदास के राम और सीता दानो ही अत्यंत सयत हैं। कर्तव्य मान में सावित्र्या के नायक नायिकाओं की व्यापक भी बाधन न बन सकी। अत्यंत पान बढ़ता है राम ने सीता को निर्वासित कर दिया किन्तु उसका यह तात्पर्य नहीं कि परिस्थिति के बाधन ने वह आहत नहीं हुए थे। मम का घाव बंदल एक स्थान पर प्रसट होता है। मित्रन बन में सीता का एकाकिनी छोड़कर लक्ष्मण जब लौटकर उनका मरण राम का दते हैं ता—

लक्ष्मण ने सीता का सौ गानुन्तल राम चुपचाप वस ही आँसू गिराने लगे जब पोष माग में चत्मा तुपार मिष्ट वरनाता है। लाक निन्दा के भय में राम ने सीता को पर में निरासित किया था हृदय में नहा।^१

सावित्र्या के राम के य मोन अथ किसी भी महदय के हृदय का आन्दोलित करने का पयात्^२। व्यापकी मोन-सहनशीलता का मुखरता पहुँच ही नहीं सकती है?

सीता के निर्वासन की माता व्यापकी ही भवभूति के 'उत्तररामचरित' का विषय बना। सीता को निरासित किए तम वप उनीत हा चुके हैं। शम्भूज वय के प्रसंग में तम जनस्थान में जान हैं। यहाँ भवभूति राम और सीता को एक स्थान पर एक साथ उगिया करत हैं। भावनी भागारण के वर्णन में सीता अदृश्य हैं। जनस्थान के चिर परिचित साधारण में राम का पूर्वस्मृतिवाजी जीव हा उठती है—

दूत परिचित व ॥ पशिया और मगा का दलकर जिनका मधिनी निमल जन, रघुवंश में सीता और हरित तथा में स्वयं अपन हावो ने साजन करती थी आज मेरे

^१ शम्भूज राम महता मरुत्तमः राम वनदश्या ॥

^२ कौन न के इन गृह निरसित न के दुःख जनन ॥

य की व्यथा का उद्दाम प्रवाह प्रवाहित हा उठा है जा पत्थरा को वेधन म नी समय
१

राम की त्रथा का और भी वगन के लिए जनस्थान की बनदेवी वासती न
जालम्न दिया—

तुम मरी जीवन हो, मरा द्वितीय हृदय तुम हो, मरे नेत्रा के लिए चंद्र की
रोत्सना व देह के लिए अमृत हो ।”

इन मधुन वचना स उस भोली भाली वा बहनाकर अच्युत और कहन स
या (अथात तुमने उसके प्रति एसा दुव्यवहार किया है ।) १

रासन्ती की कटुता राम क प्रति बढती ही गई

ओ नगस ! या तुम्ह उहुत प्रिय है किन्तु इसम अधिक अयग क्या होगा ? क्या
मने क नी यह नाचा कि निजन वन म एकाकी भीता का क्या हा न दुआ हागा ? ”

हनाश, निराग राम के पास इसका उत्तर ही क्या था किन्तु अभिन्न मित्र
तासन्ती क न मुख हृदय की आगका व्यक्त न हाती, यह असम्भव था । राम न लज्जित
सा हाकर उत्तर दिया

मन्वी इसम साचने वा अवकाग ही कहा है । चंद्रकिरणा म निर्मित उसका
मधुन गरीर अवयव ही हिल पगुमा का आस बना हागा और वह एक वर्षीय भृग गावक
की भाति भयभीत नेत्रा से विस्मित सो देखती ही रह गई हागी । १

१ करकमलविनाशरम्भुनोवारशणै
रत्नजकुनिकुरद्धान् मैथिली यानपुष्यन्
नवनि नम विकाररउपु हृत्पु कोऽपि
द्रव एव हृदयस्य प्रस्फोटमन्दबोग्य ॥

—उत्तररामचरित, तृतीय अंक, श्लोक २५

२ त्व नाहित त्वमपि म हृदय द्वितीय
त्व कामुद्रा नयनयोर्मृत त्वमग्ने !
इत्यादिनि प्रियशतैरनुभव मुग्धा
तामैव—रान्तमववा किमिहोचरेषु ॥

—बहा, तृतीय अंक, श्लोक २६

३ अत्र कठोर या किं त प्रिय
किमयशो ननु धारमत परम् ।
किमभवाद्रिपिन हरिणादश
वथय नाथ कथ वन मन्यमे ॥

—व १, तृतीय अंक, श्लोक २७

४ सखि किमत्र मन्तव्यम् ?
नस्तैकहायनररङ्गविजोलक्ष्ये—

ननस्या परिस्फुरितगमभरालसाया ।

ज्योत्स्नामयाव मनुवालनखालकल्पा

महादिभरङ्गलतिशानियत विदुष्या ॥

—बहा, तृतीय अंक, श्लोक २८

राम की आगगा से सीता व्यक्ति हो उठी। एकवारगी ही वह चीत्कार कर उठा— आर्य में जीवित हूँ। किन्तु उनके वचन और दशन दोनों ही राम के लिए दुलभ थे, राम का गाल घटना गया वह मूर्छित हो गए सीता से न रहा गया, उन्होंने स्पष्ट से उन्हें चेतना प्रदान की, किन्तु त्यक्त साता स्वयं कापति के समुख व्यक्त करे यह उनके लिए वर्जित था। राम इस स्पृहानुभय का अपना उमाद समझते रहे। उनका यह विश्वास था कि साता इस लोक में नहीं है। इसलिए राम का विलाप प्रिय के अनिष्ट में उत्पन्न शक्य था, अन्त करणरत्न का परिचायक है।

निवासन के नाप के कारण राम सीता के लिए यद्यपि अलभ्य थे, किन्तु अपनी और प्रिय आना की उपस्थिति में मिलन की आशा उनके मन में न रही होगी यह असम्भव है। निर्वाचन राजा का कृत्य विधि की निन्दित अथवा देवी प्रकोप ही था जिसके कारण मिलन की अवधि अनिश्चित हो गई थी। सीता के लिए मिलन की आशा बिलकुल लप्त हो गई होगी यह हम नहीं मानते। अतः सीता के पक्ष में यहाँ भी कर्ण विप्रवृत्त ही माना जाएगा। राम के दशनमात्र से सीता का पत्नीत्व और मातृत्व प्रत्यास ही जाग उठा था। तमसा में उन्होंने कहा था

‘भगवती तमसा ! पुत्रा के स्मरण और उनके पिता की यहाँ उपस्थिति से अनायास मुझे एसा तान लगा है कि मैं भी मसारिणी हूँ।’¹

प्रदवमय के प्रसंग में राम वाल्मीकि के आश्रम में जाते हैं और गुरुजनों, कुलदेवी भागीरथी प्ररुषती और वाल्मीकि के कहने से सीता को स्वीकार करते हैं। किन्तु यह मिलन राम के लिए आगतात ही था क्षणमात्र पहले तक राम की कल्पना में सीता के जावित हान का सम्भावना भी नहीं थी।

‘कुत्माना का प्रारम्भ सीता के निवासन से होता है। दिडनाग की सीता मलयत बुद्धिमती है। हिन्य पशुमा से युक्त उस निजन प्रश्न में लक्ष्मण जब राम का सदेश उन्हें मुनात है

‘तमापना के अर्थ से मैं तुम्हारा त्याग किया है भावदोष से नहीं (प्रम की कमा के कारण नहीं) ता सीता का मारा क्षाम दूर हो जाता है। वह लक्ष्मण से कहती भी है— इस गणा में राम ने मरा सारा वष्ट दूर कर दिया है।’²

१ अना—अनादि तमसे दला अरु तमसुनरगेण उरमिदपशुत्तया राम उ विदुषो स्थिषा गण गणनाय मुमार्गिणी हि मनुजः । —उत्तरामचरित, तात्व अक

२ अनानं वदवमदे अनसा भत्या।
म इ तवाम मरे जे न नु नावशपत् ॥ २॥
त ८२ विल निदिश म्हेत्या मे।

अना—सोपनमध्य में शीलन ॥२२॥
२३ म २२ २३ अमाराय ॥ २२ ॥

—कुत्माना प्रया अक, मप्याय जयचन्द और नाममन।

सीता की सयत गम्भीर व्यथा इन शब्दों में व्यक्त होती है—

“मेरी ओर से राम से कह देना कि उस तपोवनवासिनी ने यह प्रार्थना की है—
मैं सब दोषों से पूर्ण हूँ, तब भी अतीत के परिचय से, वह बेचारी अनाथ है अथवा केवल
यह कि सीता है (उसका अस्तित्व भी जीवन में है) मुझे याद कर लना।”

अदभ्युक्त यज्ञ के प्रसंग में राम ‘दण्डकारण्य’ जात हैं, पूर्वस्मृतियाँ जाग उठती हैं।
लक्ष्मण से वह कहते हैं—‘यही वह स्थान है जहाँ सीता के सुकुमार विमलय-सदग कर
को पकड़े हुए हम घूमते थे, अत्यंत सुखद स्मृतियाँ ही हमारे वार्तालाप का विषय थीं।
सीता के चरण-पीडन से तट की रेत आद्र हो जाती थी।’

सरोवर के तटवर्ती प्रदेश में सीता भी वही पाम ही उपस्थित थी किन्तु वाल्मीकि
के वरदान से अदृश्य था। अनेक वर्षों के उपरांत राम के पुनर्दशन से सीता के हृदय की
भावबहुलता इन शब्दों में प्रकट हुई है—

“प्रिय का दर्शन मन में प्रसन्नता भर रहा है, इन्होंने मुझे निर्वासित किया है अतः
क्रोध है कृशगात हो गए हैं इसका दख है। विरह के कठिन नियमों का पालन कर रहा है
इसलिए मन में गदग है, चिर परिचित हैं इससे अनुराग जाग रहा है। पति है अतः आदर
भाव है। लव-कुश के पिता का देवकर आज ऐसा लगता है कि मैं भी गहिणी हूँ। इन्होंने
मुझे दोषी ठहराया है इस कारण मैं लज्जा से मरी जा रही हूँ।”

राम को विलाप करते देखकर सीता स्वयं को रोक नहीं पा रही किन्तु क्या कर
स्वयं उनके शब्दों में—

“चक्रवाकी की भाँति रात्रि के आगमन से प्रिय के पास रहने पर भी मैं दूर हूँ।”
निर्वासित उस प्रणयमानिनी के जीवन का अभिगाप धन गया था।

१ एक विमल वस्त्रादी विरहविदम्बो—सा तपोवण वामिण्या सव्वहा सोमष्टअणिहिदिय अनलिय
वियणवेत्ति जइ अ२ खिग्गुणा चिरमरिचिदत्तिवा, अण्णाहेत्ति वा सादत्ति वा सुनरयमेत्त एव
अण्णाहिदम्बा ।—इति ।

—कुन्दमाला, प्रथम अंक

२ विसलय सुकुमार पाण्डिमालम्ब्य देया
विविधरतिसग्गीभि सङ्गथाभिर्दिना त
चरण गमन वेगाम वरस्य स्मरामि
सुतपयसि तटिन्या सैकते चङ्गमस्य ॥ —कुन्दमाला, वही, तृतीय अंक, श्लोक १२

३ अहो तिग्गेत्ति परिणेतो, चिरप्पवामोत्ति मणु, परिणवामोत्ति उ वेओ, थिरणुत्तकोत्तात्ति अहिमार्य
चिरपरिचिदोत्ति अणुराओ, दमणीओत्ति उक्कएटा, सानित्ति वटुमार्यो, कुसलवाण ताणोत्ति कुट्टु
विणी सभावो, अवराह पविसिदत्ति लज्जा । य जाणामि अअउत्तमण्येण वादिम अन्न
अणुभवामित्ति ।

—वही, तृतीय अंक

४ दिग्भवावमाणा विधिवारिदपिअममाअमा विय चक्रवाद् इणे एव पवास वगामित्ति ।

एक ही एक और अचानक पर राम का मूर्च्छित हाते देख वह अपने को न रोके सती और अपने आचल से वायु करने लगी। सीता के अदृश्य होने पर भी राम उनके आचल का परड लत ह सरोवर जन म उनकी प्रतिच्छाया देखकर मिलन की आशा भी बंधन जाती है, यही से 'कुन्माला' में राम के पक्ष में भी करुण विप्रलम्भ का प्रारम्भ हो जाता है। 'कुन्माला' मुख्यतः प्रणयमान में परिपुष्ट करुण विप्रलम्भ ही है। लाकापवाण्ड रूपा गाप की बुद्धि हान पर उनी जन्म में राम-सीता का मिलन होता है।

'प्रणय' का प्रयाग यद्यपि कवि न किया है किन्तु उसका अर्थ वहाँ निवास है प्रणय विप्रलम्भ नहीं क्याकि अतीत के वनवास का भी उ होने 'वनप्रवास' ही कहा है। विरह के दो चार विभक्त क अतिरिक्त एक पाचवा विभेद एकपक्षीय प्रेम की स्थिति में दर्शाता है। इस स्थिति में प्रमी अपने को यह धोखा देने का प्रयत्न करता है कि जब वह प्रिय से प्रेम करता है तो फिर प्रतिदान न मिलने पर भी उसे दुःख ही क्या है—

'उन्मा सौम्य अत्र तक मरी आँखों में है स्पष्ट मरे गरीर में, सब मेरे कानों में, हृदय हृदय पर स्थित है फिर भाग्य न मुझसे छोना ही क्या है ?''

वल्पना का यही आदर्श 'हृदय हृदय पर स्थित है' एकपक्षीय प्रेम का मूल आधार है किन्तु यथाय की वास्तविकता और उम वास्तविकता में 'अभाव' का अस्तित्व विरही को बचाटना रहता है। वल्पना यथाय पर आवरण भले ही डाले रहे, उसे मिटा नहीं सकता नभा तो यह अपने को मात्तना दन की, भूटा भुलावा देने की बात है— भाग्य न मुझसे छोना ही क्या है ?

अपराध काव्य में विरह भावना

वस्तुतः प्राचीन काल में अपराध का बहुत साहित्य सम्पूर्ण उत्तर भारत में विरहगुह्या मिलता है। अपराध को विद्वान हिन्दी का पूर्व रूप मानते हैं। उसमें अनेक प्रसंग और स्पष्ट काव्य अर्थ उपलब्ध हैं। अधिकांश में बाकी रूपरेखा और लक्ष्य धार्मिक हान पर भी उनमें घनायाम जीवन के विविध चित्रों का समावेश हो गया है। फलतः अंगार और उमक अतमन विरह की भी अनेक स्थितियाँ आई हैं। यहाँ अपराध काय के कुछ प्रसंगों में विप्रलम्भ की कुछ स्थितियों का अध्ययन करने का प्रयत्न किया गया है। विप्रलम्भ के विविध अंगों में अनुसार उम काव्य का सक्षिप्त अध्ययन करना ही यहाँ नय है।

* कम अत्र, गुह्य परिसर अत्रे अत्रि ४२७।
'अत्र' अत्र गुह्य विप्रलम्भ कि ए दारण।

वराग

दिव्यदृष्टि घाहिल नामक कवि का लिखा हुआ पद्मश्री-चरित काव्यग्रंथ घम क वरण म सुन्दर प्रेमकाव्य है। इसमें कवि न पद्मश्री के दा जोरना की क्या कही है।

अपने पहले जन्म म पद्मश्री वसन्तपुर के नागरिक बनसेन नामक एक धनिक वश्य के पुत्री धनश्री थी। वह भाइया के पास रहती था और तीव्र-व्रतादि किया करती थी। पन अनावश्यक हस्तक्षेप न भाई भाभिया के बीच म भेदभाज उत्पन्न कर दती थी। वजम की धनश्री हा दूसर जन्म म हस्तिनापुर क राजा इन्द्रपतिगन्ध की पुत्री पद्मश्री इ और उसके पूवजम का भाई धनदत्त अर्थाव्या के डाना अर्थाकदत्त का पुत्र समुद्रदत्त।

एक दिन वसन्त ऋतु म अपूवश्री नामक उद्यान म इन दाना का मिलन हुआ और दाना एक-दूसरे के प्रेम म आवद्ध हो गए। यहाँ कवि न पद्मश्री के पूर्वानुराग और प्रिय की विह्वलता का सुन्दर वर्णन किया है। पूर्वानुराग म प्रकृति का रूप उद्दीपन है। अणन म काइ विनोपता नहा, कोयल का कूकना और भँवग का गूजना आदि वृद्धिगत उपमान ही हैं।

पुष्पदत्त न षायकुमार-चरित नामक धार्मिक खण्डकाव्य म चित्रदर्शन स प्रेमा पति का निर्देश किया है।

मुदसण चरित (मुदगन चरित) म पूवराग क अतगत काम के प्रति उपालम्भ का वर्णन मिलता है। मुदसण की भावी पत्नी मनोरमा काम को उपालम्भ देती है

“ओ दुष्ट काम ! रुद्र ने तुम्हारी देह जला दी था ता उसका प्रतिगौर महिला पर (अवला पर) क्या लेते हो, उस पर क्या क्रोध करत हा ? मूल ! तुमन पाचा वाण तो मुझ पर छोड़ दिए अथ स्त्रिया को किसमे विद्ध कराग ।”

मान विप्रलम्भ

एक भानिनी नायिका की दगा तथा पति द्वारा उमकी मनुहार का वर्णन पुष्पदत्त न बड़ी सफलता से किया है—

‘बधू नीचा मुझ किए बठी थी तो पति न कहा कि तुम्हारा मुख मनिन क्या है ? जैसे बादल म एक बिजली ही छाभा पातो है वन क पक्षिया म एक कोकिला गानिन होती है उसी प्रकार मरी छाभा तुमसे है। तुम्हारे राप मे मरा प्रेम और भी घना होता है। पति के इस प्रकार मनुहार करने पर वह विद्युत् के बग जस स्वास लने लगी। चञ्चल नेत्रो स हरिणी को भी तिरस्कृत करने वाली वह नायिका पति को आकषित

१ पुष्पु पुष्पु सा पभण्ड वणिय ताव,
रे रे मयरदय खल सहाव।

रुदेष आसि तव दग्ग रुद्र, भण महिलहि अप्परि कोण कोहु।

पचवि महु लादवि हियए काण अण्णणए कय हणिय हसि त्रयाण।

—अपभ्रंश साहित्य, डा० हरिवंश कोदंड, १९५२, पृष्ठ १५३

करन लगी।^१

पायकुमार चरित्त से ईर्ष्या भाव का उदाहरण लिया जा सकता है। कनकपुर का राजा जब धर अपनी बन्ती रानी विशाननरा और छोटी रानी पृथ्वीदेवी के साथ जब शोडादान म जाता है तब छाटी रानी अपनी सपत्नी के वभव से आश्चर्य चकित हो जाती है और अपनी सबी स कहती है न मखी। जिन नयना ने दुजनो को प्राप्न सुखी और निज मज्जना पर पतित दुखा का निहारा, व प्रिय नन फूट क्यो न गए। ईर्ष्या से पृथ्वीदेवी महन मन जातर नगरान जिन क मन्त्रि म जाती है।

प्रम म नदभार उत्पन्न हो जान पर मान से मिलते जुलते 'अमय भाव' की व्यजना धात्रि व पउममिगि चरित्त (पथ शी चरित्त) म मिलती है। इस प्रमय म धनथी की रानी भाभी यगामती का विरह प्रणन है—

यगामती प्रिय के निष्ठर वचना म वनाग्नि से दग्ध बनलता के समान हा गई। प्रत्य त गुरुत्त्य क भार त बह गया गिवित्त हो गई माना किमी ने सिर पर मुग्दर से प्रहार किया हा। और पुरुष द्वारा रणभय म भगाय गए कायर के समान उसका सौभाग्य मूय चुप हो गया। नणे का जग जम तटवर्ती पलाग व वध का उमूलित कर देता है वसे ही (प्रिय व वगार वचना म) उसका मुरताभिगय उमूलित हो गई। नवयौवन के कामाग्नि प्रसार क मन्त्र्य सताग जमक हृत्य म प्रमूत हो गया। रोती हुई यशोमती के उज्वल श्रौं माना नही धांरू हा व। मिह की दष्टि म पडी व्याकुल हरिणी सी सतप्त यगामती दाध नि त्रास लन लगी।^१

- १ हृदयमुद वः वरक्षिभनया। वा हृद मुदु मनिनाननियी।
 पन मां पक्ष विचुनड। वनमाह पक्ष कोरवड।
 एह माक्षे ने पक्ष तुड।
 एव वने रोपविानऊ। जावउ तह रभ्य प्रेम धनउ।
 रविद म गयउ रमण वशा। तन् रन नडि वगहकर रवमा।।
 नन नदन गुगन निरि हरिना। रविनता मन्त्रवना वरुणा।।

—रि । वाच्यसारा राहुल मारतृत्वयन उपिता नाथिका)
 मादि पुराण, कृठ ५६७

- २ वमक्ष विन वरंण त्रिपुरगु
 १६-भाषन वड लव विह मरण।
 तूठ वरुण वनर भरण
 त्रि वि गिय नावड वामरगु।
 १६११ मरुवरु मः वन
 वरुण रणगु मरु वम।
 १६१३ १६ १६११११११

कवि के इस विरह वणन में अतिरजना नहीं है, हृदय की विधुब्धता ही है। नदी के बग से पलायक उमूलित हा जानक सद्गति के बटोर वचना में मुरनामिलाप (भौतिक और आत्मिक अस्तित्वों के मिलन) के नष्ट होने की उपमा कवि की अत्यन्त भौतिक उदभावना है। यगोमती की शारीरिक अवस्था के चित्रण में भी स्थूलता नहीं है, उसकी मानसिक स्थिति की अधिक मार्मिक व्यंजना करने की समयता ही है।

‘आरक्तनयन, हास्यरहित निस्तेज मुख और विपुल कान्ति वाली यशोमती की रात्रि निश्वास छाड़ते और करुण प्रदान करत हुए जब तस व्यतीत हुई। आभरण रहित यगोमती उस कुदशाखा के समान दिखाई देती थी जिस पर से सब पुण्य बोन लिए गए हैं।’

प्रवास विप्रलम्भ

प्रवास विप्रलम्भ का एक उदाहरण अशोक वाटिका में स्थित विरह विधुर। सीता के विरह-वणन में स्वयंभू की रामायण में प्राप्त है—

“राम के वियोग में दुखी, आखा से अश्रु बहाती हुई, मुक्त केश और कृशगत सीता के मुख का चुम्बन करत हुए भ्रमर, पुष्पा का तिरस्कार कर रहे थे। वह ताड़न करके उन्हें हटाती नहीं था।’

हनुमान ने सीता को इसी व्यानावस्थित मद्रा में देखा और निश्चित किया कि ‘जो पमित राहवचन सा घतित अगुत्यत उ अर्थात् राहवचन ने जा मुद्रिका भेजी है उसे मैं सब (स्त्रय का छिपाकर) फक दूंगा। राम की मुद्रिका को पाकर सीता की जो दशा हुई वह भी अत्यन्त हृदय स्पर्शी है

रोवनिप निवर्णह उज्जवाह
अमुयह नाह मोचाहला ।

नय बुन्न हरिणि जिह ण्डि सोह
अनिय त्र मुयद नमाम दाह ॥ १/१३॥

—अपभ्रंश साहित्य, डॉ० हरिवंश कोटवाल, पृष्ठ १७६

२ आरत नयय विन्दाय वयल
उन्मुक्क हास पमरत साम ।
दरमलिय कति, कलुष स्यति
उविग्ग दाण, नि स नयल याय ।

आहरण विवर्णह विगय हार,
उच्चखिय कुसुम न मुन्द साह ॥ —वशो म० पु० १/१४, पृष्ठ ७४ ७६

३ राम विअर्य टुम्पणिया, अमु अत्रोन्विय लोयणिया
मोषवन केम कवोलु मुमा, ण्डि विमट्टन जणय मुया
आणर नयय कमलु अलहण्डि, मुट्टु य देति पुण्णुय पतिउ ।

—विन्दा कान्धारा, राहुल साहूव्यायन, पृष्ठ ६२

‘तवियह सीधा एवि विह । वियसिय सरिया होइ जिह ॥

ष मह लक्षण मसि जाण्टा इन । तित्ति विरहिय गिम्ह तण्टा इव ॥”

अथवा ‘सीता की स्थिति एक विकसित सरिता के सदा हो गई। वह मणसाद्यन-गणि-यात्सना के मदग और तपित के लिए-यानुल ग्रीष्म ऋतु की तपणा की भांति हा गड।’ विकसित सरिता रहकर सीता के हृदय में न समा सकने वाले भावावेश, मणसाद्यन गणि-योत्सना कहकर उनके हृदय की अप्रकृत गति की व्यञ्जना कवि ने की है। यह गति और हृदय प्रिय का स्मृति चिह्न पान में उद्भूत हुआ था। ग्रीष्म-तपणा में विरह का व्याकुल प्यास की समव व्यञ्जना है।

पुष्पदंत के विरह वषण अत्यंत स्वाभाविक है मस्तिष्क का चमत्कृत करने वाली उठा उनमें नहीं है। एक वियागिनी का चित्र पुष्पदंत इस प्रकार खींचते हैं

वियोगिनी का मनयानिल प्रलयानल के समान भूषण सन के बंधन के समान ध। स्नान सोक स्नान के सत्ता अ-छा न लगता था और वसन तो व्यसन ही था। चंदन विरह का अग्नि के लिए इंधन के समान था।”

महापुरिस गुणालकार में भी मिलन के समय की अनुकूल वस्तुएँ कस विरह में प्रतिरूल लगने लगती हैं इनका सुन्दर दिग्दर्शन है। राम की विरह दगा के विषय में कवि कहता है—

सीता के वियोग में राम का जल विष के समान और चंदन अग्नि के समान गिगाद दता है।”

मानव भावनाओं और जीवन की परिस्थितियों के साथ प्रकृति के जीवन के गाम्य और रूप परिवर्तन का भी कवि ने देखा है। सीताहरण के प्रसंग में पुष्पदंत कहते हैं—

माता राम और लक्ष्मण के आनन्द के अस्त हान के सदा ही मूय भी अस्त हो गया। नभ भी अपने पति तिनकर के विनीत हान पर विधवा हो गई। उसी का बलवत्त बारात के रूप में और टट हुए हार के माता तारो के रूप में बिखर गए।”

एक स्थान पर उष्या वषण में पुष्पदंत कहते हैं—

१ हिंदी काव्य पदार्थ, पृष्ठ ६८

२ नरया ननु नरया ननु ननु ननु करि बडउ ग्याव

दहागु मु व गहागु क गुड कू तवमगु

ननु ननु रिह दृषमदु

कमल मणि, मा गु-२३ ॥

—अनभंश माहित्य टा० इरिग ओकट. मा १० १० १० १० १० १०

३ पदार्थ म० पु० ७३/१/८, पृष्ठ ५

“सध्या के आगमन पर रात्रि में कमल मुकुलित हो जाते हैं, साथ साथ विरहिणी का मुख भी कुम्हला जाता है। दिनकर (प्रभातकाल में) भुवन का अपनी ताम्र किर्णा से पूष करके जस चयवाकुल और पद्मजा को जीवन दता है वम ही विरही-जन का भी।”

अनन कार्या में व्यस्त रहने के कारण विरहा का दिन ता भरनता में व्यतीत हो जाता है, रात्रि नहीं धीत पाती, यही इमना तात्पर्य है।

पउमनिरि चरिउ म समुद्रदत्त और पद्मश्री के वियोग वणन ‘प्रवास के अनगत मिलते हैं। दन दाना का जय अननक वप एक साथ रहते बीते गए थे ता ‘वराहदत्त’ नामक लेखवाहक ने समुद्रदत्त की माता की व्याकुलता की सूचना उनका दी और वह साकत जाने का तयार हुआ। वही प्रवाय की योजना है।

पथिक द्वारा सदेश कहलवाने को प्रथा भारतीय का य परम्परा में बहुत पुराना है। मस्कृत के स्फुट पदा में पथिक ने सदेश कहती हुई अननक विरहिणिया की उक्तिर्या मिलती हैं। इमा पद्धति पर अब्दुल रहमान ने ‘सदगरासक’ लिखा है।

‘सदगरामन’ के प्रारम्भ में कवि एक प्रोपितपतिका नायिका का चित्र खींचता है—

“भर हुए वक्षस्थल और तनु कटि प्रदेश में समद्व विजयनगर की एक त्रेष्ठ युवती नमित नना में अनवरत अश्रु बहाती हुई मानस में प्रिय का दर्शन कर रती थी। विरह की अग्नि में गारा ग्यामल हो गया था—जस चन्द्रमा को राहु ने ग्रस लिया था। दुख से परितप्त होकर वह निश्वास ल रही थी, अग तडप रहे थे।’

तभी उमन एक पथिक का आवा और उसके हाथ प्रिय के पास सत्तग भजन का उत्कण्ठित हा उठे। अव्यवस्थित मानसिक दगा के कारण उसके समीप पहुँचने की जितनी जल्दी करती थी उतनी ही देर लगती जाती थी। पथिक के पास भीष्म पहुँचने की चूटा में कृपागी की मखला गिर गई उमे उठाया तो हार टूट गया, टूटे हुए हार के भाती चुनने लगी ता पायल से उनभर गिर पड़ी। पथिक सदास के बिना ही न उला जाए इस आशका से फिर भी चलने का साहस किया। नावावा से कचुकी फट गई, कमलकरा में अपने अधनग्न वक्षस्थल को ढकती हुई-सी भी वह सदा कहने के माह को न त्याग सकी। कर्णाद्र नेत्रा और आसुआ से गदगद कण्ठ से पुकार उठी—पथिक ठहरो, तनिक भरी बात भी सुनत जाओ।

उस नसर्गिक सौ-दय की प्रतिमा की यह दशा देखकर पथिक ठिठक गया ॥

१ जिदि रयणिदि कमल मउलियादे

दिदि विरहिणिय वयण मउलियादे

ता उकउनर पकयह तव किरण पुरिय सुवशोयक
विरहवह गर गारा यणह नाविउ देतु समुगउ दिखरक।

विरहिणा न परित्र स पूत्रा— तुम वहाँ के रहने वाल हो और कहा जा रहे हा।' उस
 जब अपना मतलब स्तम्भनीध बनाया तो यह दीधनि स्वाम लेकर अँगुलियाँ चक्का
 लगी, नभा में पड़ कर कंधे की तरफ कापन लगी, मुहम एक गन्द भी निकला, प
 का बीच टूट गया और फूट फूटकर रान लगी। ' उच्छ्वाम, वेपथु और अश्रु में युक्त
 उदम लगा या यह चित्रण अत्यन्त मार्मिक है।

पवित्र गारा धारज वधाय जान पर उसने प्रिय के प्रति यह सन्देश कहा—
 'तुम्हारा विरह म मरे या इमलिन जाण गीण नहा हो जाते क्योकि हे नाथ ! वे तुम
 मितन की आत्मा में जीवित हैं।

राम क प्रहार मरे गरीर का ही धन विक्षत कर सके है हृदय को नहा, क्या
 हृदय म तुम म्रिन हा। '

विरह से मध्य करन की गतिन मुझ में अब नही रही इसीसे रोती हू। पगु य
 वा जाए तो गोपा ता कवन रो ही मवता है गोपान ही उह वापस ला सकता है (सा
 दूग अतीत क मुन तुम्हार जिना मुझे प्राप्त नहा हो मन्ते) सन्देश बहुत लम्बा है वह
 नहा जा सकता। उन प्रिय से केवल इतना कह दना कि हाथ का वगन अब दोना हाथ
 मण नाथ पहना जा सकता है और छाटी अगुली की मुद्रिका हाथ में आ जा
 है। '

१ विनयनवर कवि वरमणि,
 उद्योधिरेधारथि विरुडनरक धरदुपउर
 गगणगु पशु गिर ननपवाह पवहति दाहर
 किंता गदि कगुयानिगु गइ सामनिमपव नु
 गगण रादि विविधत नारादिवर मगनु
 तथा
 पुमर नायग मर कवत
 प मनाउनुवमुह, न जमर अरु अशु मोडड।

—मन्त्र रामक शितीव प्रथम पं, २६, २५, सिंधी जैन ग्रन्थ म

- २ 'इ विरहपदरम पूरिआइ विद्वानि ज न अगाइ ।
 उ म वरु वमरइया भागई शाइ लगनि ॥ —वरी द्वितीय प्रथम पद ७२
- ३ 'विरह परिगद ६ वरु पदराविउ निरवदिउ ।
 गुग ह ग हउ इपउ पुम मन्नागिउ विविउ ॥ —वरी, विनाय प्रथम, पं ७०
- ४ मरग मन्नाग विरह सुउ ग अचउउ निरवति ।
 प वा कभ पनाग पर, पगु ममिदि दुग्मनि ॥
 मन्नागउ मदिपरउ हउ कइगह अउमथ ।
 मन्नागिउ इकति वरिणइ व वि सुमाया हत्य ॥
 मन्नाग मन्नाग पर मर कइगु न आइ ।
 मन्नाग मन्नाग उ मर, सुा वाहरी सुमाइ ॥ —वरी, पद ७४, ७०, ७१

विरह के विषय में अब्दुल रहमान ने दो एक स्थानों पर बहुत सुंदर उक्तियाँ कही हैं—

“विरहाग्नि का जन्म अवश्य ही बड़वाग्नि से हुआ होगा, जितना इसे शत्रुघ्रा से सीखा जाता है उतनी ही यह धधकती है। विरह निश्वास भेलती हुई विरहिणी अवश्य समाप्त हो जाती यदि आसू न होत।”

‘तुम्हारे विदेश गमन से मुझे लाभ ही हुआ, सम्भवतः अमरत्व का वर्दान प्राप्त हो गया, क्योंकि विरह का एक दिवस एक वर्ष के सदृश बीतता है।’

पथिक ने विरहिणी से पूछा कि कब मैं वह एसे विरह में तड़प रही है। उच्छ्वास लेकर उसने उत्तर दिया, “जब से वह निर्मोही मुझे छोड़कर चला गया है।”

इसके पश्चात् वह छन्दोग्रा के सौंदर्य, उनके हास विलास तथा अपन ऊपर पड़े हुए उनके प्रभावों का वर्णन करती है। शीघ्र में प्रारम्भ होकर यह छन्दोग्रा वर्णन नम से वर्षा, शरद, हस्त, गिरि म होता हुआ वसंत में समाप्त होता है। शरद का वर्णन करते हुए वह कहती है—

“सौभाग्यवती स्त्रिया श्रीडा करती है और मेरी रात्रि उद्विग्नता में हाँसती होती है। घर घर में गीत गाए जा रहे हैं, समस्त कण्ठ भाग्य ने मेरे बाँटे में ही दे दिया है।”

‘हे पथिक! क्या उस दिन मैं रात्रि का निमल ज्योत्स्ना का विकास नहीं होता? क्या अरविन्द के पुष्पा का मखन करत हुए हम कलरव नहीं करते? क्या प्राकृत (नसर्गिक) काव्य का स्रोत (किसी भावुक हृदय से) फूट नहीं पड़ता? क्या काविल पञ्चम स्वर में राग नहीं अलापती? प्रिय नीरस है जो शरद के इस मोहक वातावरण में घर का स्मरण

१ पा व पिय वन्दानलहु विरहग्निहि उष्पति।
न सित्तउ दोरसुयदि, नलइ पल्लि ननि ॥
मोसि-न विवडन सासं दोउन्हणहि पमय-दा।
निवटत बाहमर लोययाइ धूम-य सिच्चति ॥

—म देश रामक, शिवाय प्रक्रम, पद = ६ ६०

२ फलु विरहग्नि पवासि तुअ
पाइउ अग्निहि जाइ पियइ भणु।
विरु जाव तउ लदधु वरु
हुअउ सवन्दरतुल्लउ इवकु दिणु ॥ —वही पद ११४

३ इम किवि कलि करहि सपुन्निअ,
+इ पुणु रययि गनिय उ वनिय।
अच्छइ घर घरि गाउ रान्णउ
य्यु इकट्टु कट्टु मह दिनउ ॥ —वही, तृतीय प्रक्रम, पद १ ०

नया करता, यह मैंने समझ लिया है।^१

मुनी सत्कार ऋतुग्राहक मौन्द्य की छाया में जब प्रसन्नतापूर्वक अपनी जीवनचर्या में व्यस्त रहता है तब निरही अनपेक्षित क अनुशासन में एकाकी घुट घुटकर रह जाता है, उमर करण उच्छ्वासों का दहन बड़े विश्व में मुनन वाला कोई नहीं होता यही इस पदभ्रमण वषण का सार है। प्रकृति का रूप उद्दीपन ही है।

अनुत्तरहमान न अपनी इस निरहिणी का और अधिक राग का प्रवर्तन नहीं किया। पवित्र क जान क पञ्चात जम नायिका न दक्षिण की ओर मुह फेरा ता सम्मुख ही प्रिय का ध्यान हुआ।

मदरा क त्रिण गुण को नून रूप में भजन की पद्धति का उत्सव 'वतान्य पवन क वषण में पुष्पदत्त न किया है—

जहाँ पक धान क नशा को गुण ग्यात है और कृपक कयाद्या के लिए द्रुतत्व का काम करत है।

जहि पिकर क नम कणिमह चरति सुय दूयत्तणु हलिणिह करति।^२

अपभ्रंग क मुक्तियों में भी प्रवास विप्रलम्भ का चित्रण मिलता है। एक प्रोषित पतिरा नायिका की उक्ति है—

'प्रिय न प्रथामाथ जात हुए जितन दिन उताण व, उह गिनत गिनत नख स मरी म्भुलियां जोण हो गइ।'^३

एक प्रथामा नायक मध का मग्गि घत करके कहता है—

यदि मरी प्रियतमा स्तही हागी ता मरे वियोग में अब तक मर गई हागी। यदि जावित है ता प्रवश्य हा निस्तह है। त मध दोना प्रनार से वह सुन्दरी मैंने खो दी। अब तुम्हारे मरजन न क्या ?

१ कि 'दि' १ 'पद' पुरह जुह गि'म गि'मगतव'—
 अइ वरत न युगत ह्य फलमवि र'व'ह ।
 अइ पायउ ग'दु १ र श'ह मुनविन पुण रा'ण
 अइ वरत ग'दु युग'त कोर वावालयि ना ग ।
 महमदर अइव प'पूमि ग'दु
 अ'न'उउ परु वु'उममरु ।
 अ' सु'ग'उ प'दिय । अण गिउ पिउ
 मरह ग' उ'उ मरह धरु ॥

—मन्त्रा रामक नृनाय प्रथम, पद १०३

२ अमभरा साहित्य, डा० हरिवंश बोद्ध
 ३ अ न, दिवगा १ अ'ग १२१ पव' उण
 "ग' ग'— १ अ'ग'उ अ'र'ि अ'उ न'द'ण ॥

—अपभ्रंश साहित्य, डा० हरिवंश बोद्ध

४ अ' १ 'उ'ग'ी न' मरव अइ वरत नि नइ
 'व'र'ि 'प'र'र'ि मरव पण कि ग' उ'इ ग'उ म'इ ॥ —वहा

एक वियागिनी की यह अभिनाया कितनी प्राणवान है—

‘ प्रिय यदि मिल जाऊँ ना मैं अप्रूप कौतुक करूँ, जस पानी मिट्टी के कटार में समा जाता है, मैं भी सवाग न्यस उमम वम ही समा जाऊँ । ’

करण विप्रलम्भ

करण विप्रलम्भ के उदाहरण के रूप में स्वयंभू रामायण का मन्दादरी विलाप लिया जा सकता है। पति के गव के मन्मुख विनाप करती हुई मन्दादरी अपने अतीत के सुखा का स्मरण करना है

बार बार गान का आनन्द करता हुआ करुण रुदन मन्दादरी करने लगी। नन्दन वन का मनाहर वातावरण तथा पारिजात तृक्ष वं पुष्प मुझे याद आते हैं। तुम्हारा मेरे शरीर के भाग में डूब जाता (नाभिके सौन्दर्य और स्तन मदन आदि में) तथा बार-बार आलान करना मुझे याद आ रहा है।

यह ठीक है कि पति के अभाव में उसका माय व्यतीत हुई प्रणय जोड़ाया का भी अभाव हो जाएगा किन्तु गौतम का प्रचण्ड सागर जब उमड़ रहा था, पति का सबसे मुख पड़ा हो तब तो प्रणय की ये अनुभूतिया अचेतन के गहनतम गह्वर में पड़ जानी चाहिए। उस समय उन प्रताप का याद करके राना हास्यास्पद-सा लगने लगता है। प्रेम की गम्भीरता के अभाव का परिचायक हाकर वह कामुकता की ध्वनि ही अधिक देता है।

कुछ आग चलकर मन्दादरी की विरह वेदना अवश्य ही मार्मिक हो गई है।

‘बार बार रानी हुई मन्दादरी कहती है, हमद्वारा उठो। ‘कब तक सोने रहाग? यदि सोना ही है तब भी पृथ्वी पर इस प्रकार माना तुम्हें क्षामा नहीं देता।’

इस क्षण ऐसा लगने लगता है जस मन्दादरी भूल गई कि उनके पति की मृत्यु हो गई है। लक्ष्मण का अनुत्तरीय बभ्रव का त्याग करके ऐम माना उस असह्य हो उठा।

‘तिमद्विह महापुत्रिम गुणलकारु म रावण की मृत्यु के अवसर पर मन्दादरी के विलाप में करुण रस है करुण विप्रलम्भ नहीं—

ह दगानन । तुम्हारे बिना यदि जीवन है तो उसमें दुख ही दुख है। हा ।

१ नर नन्द पाव सु पिउ अक्रिया बुडड करीसु

पाण्डु नवद सतिव तिव मन्वा परसोसु ॥

—अपभ्रंश साहित्य, डा० इरिवरा कोड

२ पुपुवे पुपुवे गथणगथ गायरे । कडुशाकडु कर मन्दादरी
शृणु वणे दिवति मणोरि । सुनरमि पारिवाय-तरु भनरि
वृष्टथ वनिह थण परिवृष्टणु । सुनरमि लीला पकय तादणु ॥

—दिन्दी काव्यधारा सद्गुल साकृत्याज, पृष्ठ १११

३ पुपुवि पुपुवि मन्दादरी जपः । उठ भटारा कित्तु सुपद ।
जव वि शिरारिउ विदर्ये सुचउ । तो विण्य सोहहि भदियने सुचउ ॥

नहा करता यह मैं समझ लिया है।'^१

सुखी मसाला ऋतुओं के सौन्दर्य की छाया में जब प्रसन्नतापूर्वक अपनी जीवन-वर्षा में व्यस्त रहता है, तब विरही अतृप्त के अनुशासन में एकाकी घुट घुटकर रह जाता है उसके कक्षण उच्छ्वासा का इतना बड़े विश्व में सुनने वाला बाई नहा हाता यही इस पट-ऋतु बर्षण का सार है। प्रकृति का रूप उद्दीपन ही है।

अद्भुतमान न अपनी इस विरहिणी का और अधिक रात का अवसर नहा दिया। पथिक वं जान वं पंचान जम नायिका न दक्षिण का आर मुँह फरा ता स मुख ही प्रिय का आत हुए दया।

सत्तै वं विण गुक को दूत रूप में भोजन की पद्धति का उल्लेख 'वसन्त्य पत्र वं वणन में पुष्पदत्त न किया है—

जहाँ पके धान के कणों को गुक खाते हैं और कृपक कयात्रा के लिए दूतत्व का काम करते हैं।

जहाँ पिकक कनम वणिमह चरति सुय दूयत्तणु हलिणिह करति।^१

अपभ्रंग के मुक्तवर्षों में भा प्रवास विप्रलम्भ का चित्रण मिलता है। एक प्रोषित पतिना नायिका का उक्ति है—

प्रिय ने प्रवासाथ जाते हुए जितने दिन बताए थे, उह गिनत गिनते नख स भरी ओलिया जीण हा गइ।^१

एक प्रणामी नायक मध को सम्झि घत करक कहता है—

यदि मरा प्रियतमा स्नेही होगी तो मरे वियोग में अब तक मर गई होगी। यदि जावित है तो अत्रय ही निस्सह है। हे मध, दोनों प्रकार से वह सुदरी मैं खा दी। अब तुम्हारे गरजन में क्या ?'

- १ किनहे स गणु पुरे जुइ शिंमि शिम्भतचह
 अ० कतरउ न कुणान हम पत्रवि रविइ ।
 अइ पायउ गणु पद का मुललिय पुण राख
 अइ पचउ गणु कुणउ को० कावालिय भाइण ।
 म० महइ अइव पचुमि गण
 आमसिउ घणु कुमुमरु ।
 अइ सुखउ पहिय । अणरमित पिउ
 मरइ सम० जुन मरइ घरु ॥

—स श रामक, तृतीय प्रकरण, पद १-३

- २ अपभ्रंश साहित्य टा० हरिवंश का ३३
 ३ न मद्रु विद्या दिग्दशा ११७ पद्यमन्त्रेण
 ४ अणु पणुलिय अणुवित पत्ररि भाउ नइण ॥

—अपभ्रंश साहित्य, टा० हरिवंश कोवच

- ५ अ० मयगदा का मुद्रय अइ जीवइ नि नइ
 ६ अइ वि पवारि गरय पणु कि ग अइ खत नइ ॥ —वहा

एक वियागिनी की यह अभिनाया कितनी प्राणवान है—

“प्रिय यदि मिल जाएँ तो मैं अप्रुव वीतुक बरूँ, जस पानी मिट्टी के बटारे में समा जाता है, मैं भी सवाग रूप से उसमें बम ही समा जाऊँ ।”

करुण विप्रलम्भ

करुण विप्रलम्भ के उदाहरण के रूप में स्वयंभू रामायण का मन्दोदरी विलाप लिया जा सकता है। पति के शव के स मुख बिनाप करती हुई मन्दोदरी अपने अतीत के मुखों का स्मरण करती है

बार बार गगन को आशान करता हुआ करुण नन्दन मन्दोदरी करने लगी। नन्दन वन का मनाहर वातावरण तथा पारिजात तरु के पुष्प मुझे याद आते हैं। तुम्हारा मेरे शरीर के भाग में डूब जाना (नाभि के सौन्दर्य और स्तन मदन आदि में) तथा बार-बार आलिंगन करना मुझे याद आ रहा है।”

यह ठीक है कि पति के अभाव में उसके साथ व्यतीत हुई प्रणय नीडाना का भी अभाव हो जाएगा किन्तु गीत का प्रचण्ड सागर जब उमड़ रहा हो, पति का शव स मुख पड़ा हो तब तो प्रणय की ये अनुभूतियाँ अचेतन के गहनतम गह्वर में पड़ जानी चाहिए। उस समय उन वाता का याद करके राना हास्यास्पद सा लगने लगता है। प्रेम की गम्भीरता के अभाव का परिचायक हाकर वह कामुक्ता की ध्वनि ही अविश्व देता है।

कुद्व आगे चलकर मन्दोदरी की विरह बधना अवश्य ही मार्मिक हो गई है।

‘बार बार रानी हुई मन्दोदरी कहती है, ह मट्टारक उठो। क्व तब सोते रहाने? यदि सोना ही है तब भी पृथ्वी पर इस प्रकार मोना तुम्हें शाभा नहीं देता।”

इस क्षण ऐसा लगन लगना है जब मन्दोदरी भूल गई कि उसके पति की मृत्यु हो गई है। लक्ष्मण का अनुत्तरीय वचन का त्याग करके ऐसे मोना उसे असह्य हो उठा।

‘तिसट्टिह महापुरिम गुणनकारु में रावण की मृत्यु के अवसर पर मन्दोदरी के विलाप में करुण रस है करुण विप्रलम्भ नहा—

ह दगानन ! तुम्हारे बिना यदि जीवन है तो उसमें दुख ही दुख है। हा !

१ जइ रुइ पावामु पिउ अकिया कुडु करीसु
पायाउ नवइ सरवि तिव न बगे परसोसु ॥

—अपभ्रंश साहित्य, टी० हरिवंश चौडक

२ पुणुवे पुणुवे गवणगण गोवरि । कलुण्णकडु करं मदोवरि
खण्ण वणे दिव्वत्ति मणोहरि । सुमरमि पारियाय तह मनरि
कुण्डण वाविडे धण परिवट्टणु । सुमरमि लोला पकथ ताडणु ॥

—हिन्दी काव्यधारा सौंदर्य साहित्यायन, पृष्ठ १११

३ पुणुवे पुणुवे म नोवरि जपे । उठं भडारा कित्तु सुपड ।
जइ वि शिरारिउ विडुए सुत्तउ । तो विण सोइहि भडिये सुत्तउ ॥

प्रियतम ! कहते हुए अन्त पर मैं वह अपनी छाती पीटन लगी ।^१

करकण्ड चरित्र में मुनि वनकामर न सयाग और वियाग दोनों के सुंदरचित्र खींचे हैं। नायक की अपेक्षा नायिका के पक्ष में लिख गए वियाग वणन अधिक मार्मिक हैं। वनकामर के वियाग वणना में शरीर के ताप को सूचित करने वाली ऊहा का प्रयाग नहीं है बल्कि अनुभावा के प्रयाग से हृदय को छूने का प्रयत्न किया है जिसमें पाठक की मबरना ही जगती है।

विद्यावरी द्वारा करकण्ड के समुद्र में ल जाए जाने पर रतिवगा के विलाप का वणन है—

‘जब प्रसन्नमल नरसिंह (करकण्ड) जन में निरुप्लुत हुआ गया तो वह राने लगी। थ्रेण्ट भामिनी रतिवगा दुखी हो गई। सारा धर्म कापने लगा, चित्त अयवस्थित हो गया और वह मूर्च्छित हो गई।’

विरह की मरण दगा का वणन भी कवि ने बड़ी चतुराई से कर दिया है—

‘मैं बचारी नारी अब जीवन कैसे त्रिताऊ। तुमसे बिछड़ जाने पर जीवित रहूँ
घयया मरू।’

रतिवगा की आभ्यांतर स्थिति का बाल्य जगत पर कसा प्रभाव पड़ता है, इसका निराशन कवि ने कराया है—

‘समुद्रजल विक्षिप्त हो उठा नौकाएँ परस्पर टकराने लगीं। हा ! हा ! का
वणन घाद गूजन लगा। उससे शोक न मनुष्य व्याकुल हो गए।’

मन्नावती के विलुप्त हो जाने पर करकण्ड के विलाप का वणन है। वह व्याकुल
होकर कभी नाग्य का कोसता है कभी पशुपति से उसके विषय में पूछता है। इस वणन में

१ यह विष्णु जगि नाम्ना न जि त्पत्त मसु सु संहितम् ।
हा विषयम् । मणु साया उरु वदर विर वमेति अनवरु ॥

—अपभ्रंश साहित्य टा० हरिवंश कोदक,
म० पु० १२/१३ पृष्ठांत, पृष्ठ ८४

२ वा करकण्डाय विषयि अणु जनि पड्डि
ना मयर्षि तोर्षि पमरिय तोर्षि अउरिउ ॥
रदरय मुभामिण्या य पणु वामिणि विमणुनया ।
मन्वय कवि त्रिति चमविकय मुदगया ॥

—अपभ्रंश साहित्य टा० हरिवंश कोदक पृष्ठ १६५

३ गार करकण्ड आवर अदय को मरउ ।
परिषु य तुर्षि वामिण्यर्षि कि मरउ ॥ —(७ ११ १, १२) करकण्ड चरित्र
४ इ-नाई-न कूउ मयत्त ननु अनरपरि जायद मे-नदाह ।
हा वा रउ उरिउ करकण्ड नहो माण गररर मनवतदि ॥

—वर्षा (७, १०, ६, १०) करकण्ड चरित्र

कोई विशेषता नहीं है।

'पउमसिरी चरिउ म समुद्रदत्त जब अपनी पत्नी पद्मश्री का लौटा लान के लिए हस्तिनापुर जा रहा था तब केलिप्रिय नामक पियाच न उन दोनों के बीच मन मुटाव उत्पन्न कर दिया। समुद्रदत्त का सदह हो गया कि उसकी पत्नी किसी अन्य पुरुष से प्रेम करती है। समुद्रदत्त न पद्मश्री की अवहलना कर दी। पद्मश्री न पति क सम्मुख करण क्रन्दन किया, अनुनय विनय की किन्तु उसन एक न सुनी और उद्विग्न मन से साकेत को लौट गया।

अपन नगर का लौटत समय कौशलपुरी म न द नामक वणिक् की पुत्री कात्ति-मती स विवाह किया। यह उसके पहले जन्म की स्त्री यगोमती थी।

पद्मश्री न विरक्त होकर तपश्चया का आश्रय लिया और अन्त म माध को प्राप्त किया।

पद्मश्री क विरह की अवधि के अनन्त तथा मिलन के लगभग असम्भव हान स करण विरह का अवकाश यहां उपस्थित होता है। कवि क धार्मिक उद्देश्य के कारण उसका पूर्ण प्रस्फुटन नहीं हो सका प्रत्युत पयवसान विरक्ति म हुआ है।

समुद्रदत्त द्वारा परित्यक्त पद्मश्री की विरह वदना अत्यन्त मार्मिक है—

‘उस बाला की दशा दुखिनी हरिणी के समान हो गई। (प्रभात होने पर) जैसे आवाग म चद्र और नक्षत्रों की कात्ति विलुप्त हो जाती है वैसे ही (वियोग के कारण) पद्मश्री निस्तब्ध हो गई। प्रभात काल म चन्द्राक के बढत हुए आनन्द के समान उसका शोक बढने लगा, कुमुद के समान उसकी आँखें मधुचित हो गई और सूर्योदय के साथ सन्ताप का उदय हुआ। बाला के दुर्भाग्य के सदस्य प्रकाश महीतल पर स्थित हो गया। समुद्रदत्त के समान हृष भी पद्मश्री को परित्यक्त करके चला गया’^१

परपीडन (Sadism)

भारतीय काव्य-शास्त्र क अनुसार दिय गए विरह के इन चार रूपा के अतिरिक्त मनाविश्लेषण शास्त्र की दृष्टि स विरह भावना का अध्ययन करते समय 'परपीडन' नाम

१ अच्चेइ काल विह दु न हरिणा, नइ कलुण्ड भक्ति विनाइ रयणि ।
पउमसिरी चरीरइ जेम्ब कति, नकखत निवह नइयलि गन्ति
‘स्थि सु’ व नामइ तमोडु, कुवकुऊ रउ पनरद नारमोडु ।
गमणो वि चडु विच्छाउ नाउ, सय न्वि व वियभइ चक्रवाउ
नयण न कुमयद सनुयनि आमा इव दइउ तिसउ होनि
उगमइ करुण सनाउ नाइ रवि बुद्धि जेम्ब निमि खवउ नाइ ।
धत्ता—

हरिसो इव निगाउ कुमरु, मइसतु पट्टियउ ।

दोहनगु जेम्बवर बालहि उयलि महायलि सठियउ ।

—अपभ्रंश साहित्य, डॉ० हरिवंश कोइक, (३), १५, २-पुष्पसिरी चरित) पृष्ठ १८२-१८३

की प्रति का विरहपण हमने किया था। परपीठन में प्रेमी का अह्न आहत होने पर, प्रेम पात्र का काट पहुँचाकर स्वयं का तुष्टि करना है।

‘मुदमग चरित म आडावाहन राजा की, रानी अमया रूपपाउ श्रेष्ठी के पुत्र मुत्तगन म प्रेम का प्रतिगन न पाकर निगन हो, नाखूनो म अपने शरीर को बधकर चिन्ताने जाती हूँ, जिनम राजा अरवा उमके कमचारी मुत्तगन का पवत्त लें। यदि मानवत्त (वितर) आकर मुत्तगन की रक्षा न करता तो वह अवश्य ही नसित किया जाता। अमया का चिन्ताना परपाउन की वनि का अवमतप रूप है।

रहस्यवादी विरह भावना

बौद्धधर्मावलम्बी साधको की रचनाया में प्रतीकात्मक आलम्बनो के प्रति विरह का निर्देश मिलता है। गररपा का एक पद है—

‘ऊब पवन पर गररी वाचिका रहती है। उसक अंग मोरपक्ष से शोभित हैं, गले में गजा की माला है। गरर उम पाने के लिए पागल है। वही तुम्हारी गहिणी सहब मुन्दरी है।’

यहाँ मन्त्रपद, पवन माना गया है। उसक सर्वाच्च शिखर पर महामुद्रा या मूल प्रति नरात्मा का वासस्थान है।

यही विरह भावना प्राग चलकर हिंदी में कबीर आदि सतों के ‘दागनिक रहस्य ना’ के रूप में विवक्षित हुई।

अपभ्रंश का विरहकाव्य और प्रकृति

अपभ्रंश में कवि ने प्रकृति में विरह के अनक सुन्दर चित्रों को दखा है। वहाँ वह मानव के लिए करल जड़ पट्टाधार मात्र अथवा उद्दीपन न रहकर चेतना से निविष्ट प्राणी का भाग्य भाग्य लगती है। इस रूप में अपभ्रंश काव्य की विरह सम्बन्धी कुछ उपमाएँ और उत्प्राधाएँ अत्यन्त सुन्दर बन पड़ी हैं।

एक स्थान पर मध्या-वर्णन में दिव्य-दृष्टि धाहित प्रकृति का आलम्बन रूप लेकर विरह भावना का सुन्दर दिग्गमन करात है—

‘मध्या के समय कमल बत्त होने की है उनम से भ्रमर निकल निकलकर उड़ रू है। एमा प्रवीर हाता है उम (भ्रमर के त्रियोग में) कमरिनी वाजलयुवत अनुश्रो से रो

* ऊब ऊब पाव नद कमर मररी माला।

मररी प द परदिग मररी विरग मुत्तरामाया।

अमरी मररी प न मररी मो हर गजा गहाडा मो हारि।

मुत्तरा ॥

रही हो।”^१

पद्मश्री के विषय में कवि कहता है—

“पद्मश्री ऐसे दीप नि श्वास छाड़ रही थी, जस प्रीष्मकाल में घन जल से सिक्त पवत।”^२

उच्छ्वासा की उष्णता और उनके बाष्प-गदगद होने की समथ व्यंजना इस उपमा में है।

बाहिल ने पद्मश्री के उच्छ्वासों की तुलना पावतीय पृथ्वी से की थी। स्वयंभू इसमें ठीक विपरीत पृथ्वी के उच्छ्वासों की तुलना इसी भाव के अन्तर्गत करत हैं—

कयइ माहय मामहो मेइणि ।

पिय विरहण व मूसई कामिणी ।^३

अर्थात् वहाँ माधव मास (वसंत ऋतु) में पृथ्वी की सुगंध ऐसी लगती थी माना विरहिणी नि श्वास ल रही है।

विन्तु प्रकृति का यह आलम्बन रूप अपभ्रंश में अत्यन्त विरल है। अधिकांशतः अपभ्रंश के कवि न प्रकृति का उद्दीपन रूप लिया है। अलग अलग ऋतु, मास, मौसम विरही के लिए अना-अना मत्त लात हैं। मायारण जीवन में अस्त-व्यस्त की अपेक्षा विरही प्रकृति के अतिविक्रमों को आ जाता है। इसके अतिरिक्त भी प्रकृति और उमम होने वाला परिवर्तना का प्रभाव मनास्थिति के अनुसार मानव हृदय पर पड़ता ही है। प्रकृति का हम बिनास यौवन उमात् विरही की वेदना को तीव्रतम बनाता रहता है क्योंकि मन की अभिलाषा जत्र अनुकूल वातावरण में उद्दीप्त होकर तप्त होना चाहती है तभी विरह का व्यवधान तपित के माग को कुण्ठित कर देता है। ऋतु वणन, वारहमासा आदि इसके अन्तर्गत ही हैं। इस विषय में मय प्रथम अपभ्रंश प्रेमकाव्य के कवि बच्चर' की कविता के कुछ अंशों का यहाँ देखने का प्रयत्न है।

बच्चर न पट ऋतुओं को उद्दीपन रूप में रखकर विरही की पीड़ा का सुन्दर चित्रण किया है। प्रीष्म ऋतु एक विरहिणी के मन में अभिलाषा जगाती है—

दिशाआ म (लू) चल रही है, मैं अकेली हूँ मेरा हृदय काप रहा है। घर में प्रिय नहीं है। ट पथिक । मुना, मन में कुछ इच्छा हा रही है।

पावस के मनोहर वातावरण में प्रिय घर नहीं आया। विरहिणी उसे पत्थर हृदय बताकर उनाहना देती है—

१ कमलिषि कमलुनिन मटुयरहि अमुएहि रूपं मव-जलेहि ।

—अपभ्रंश साहित्य डॉ० हरिवंश कोटन, पृ० १२२ १२३

२ दीउन्ड मुयइ नोमाम कव धण भलिल सित्तु गिरि गिम्ह नेम।

—वहाँ (२, १५, ६६, पृ० १२२ १२३, पत्रमसिद्धि चरित)

३ हिनी काव्यभारा, राटुल साइत्यायन

४ टिमइ चलइ दिअअ दुन्द, हम इकलि बहू ।

पर यहि पिअ सुयहि पदिअ । मन इइइ वडू ॥ —वहाँ

“आकाश में मधु बटक रहे हैं, जल बरस रहा है मनाहारी शीतल वायु बह रही है, कनक-कांति निचुत नच्य कर रही है निच फूल रहा है परंतु प्रिय का हृदय पत्थर का बना है। वह प्रिय पाम नहीं आता।”^१

वसंत में प्रकृति का सौंदर्यमय रूप विरहिणी को विवश बना रहा है—

‘किमुक फल रहा ह चंद्र की ज्योत्स्ना त्रिकसित है। आम्र मजरी से परिपूण हैं, शिण का शीतल वायु बह रही है, विरहिणी का हृदय काप रहा है। वेतकी का पराग सब शिणमो म फला हुआ है, सम्पूण वातावरण पीत राग से पूण है। हसखि ! एतौ वसंत ऋतु में प्रिय पाम नहीं है क्या करू।’^२

जिनपक्ष गूरि न विरहिणी के मन पर पावस के प्रभाव को इन सरल शब्दों में व्यक्त किया है—

भ्रम भ्रम भव भ्रम भ्रम भव ए धीशुनिय नबकइ ।

बरर बरहर बरहर ए विरहिणी मणु कपइ ॥^३

“पावस में विजयी की तडपन के साथ विरहिणी का मन भी एकदम काप उठता है।”

मानिनी के मान का आदना का ख और मारा का शोर खडित कर देता है। वह जो प्रिय सप्टी उगे जो तिमन सोचा था कि अब प्रिय के सम्मुख कभी धात्र नहीं होगा, उसे पावस के मधुर वातावरण में जम कर मार दिया। हृदय की कामल शृंगार भावनाएँ विसाँ गन्तम में गड्ढे में उलभूत हो उमरगा अस्तिर जाना लगा जिस चार पकड़ा गया हो।

‘मया के गान में जम मार नाचत है, वस-वस मानिनी अस्तिर हा जाती है, एमा प्रानत जाता है माना चार पकड़ा गया हा।’

धारहमासा

प्राचीन ज्ञान में ऋतु के विरहा पर भाव तथा ऋतु परिवर्तन का निरूपण का प्रथम स्थान रमान पर होता रहा है। अथवा म ऋतु हा नहीं मास मान के बदलते हुए

१. बरिषे बरि नमः पणु गणु मिप्रत पवण मणहरणु
कगम 'पशर' शुरु रिनु र प लसा गावा ।
पापर रि र दिप्रना पप्रना मिप्रत ग धाउर ॥

—रि गी का पवार, राहुल साहयवायन, पृष्ठ ३१८

२. कि शक पणु गणु मिप्रत पवण मणहरणु
गणरग वाउ म म नउ पन , इव दिप्रो गी धाप्रो ॥
क पद गू व म वी उ पमरइ प मर म वउ गाम ।
धाउ कपन क र म । उरिषर कन ग वाव पाम ॥

—वर्ग पृष्ठ २२४

३. यदी गूठ ४२२

४. मेहरा नर कन रप, रिम विमि नारन नार ।

गिन रि न माण ग कन लर मशीण विमि नार ॥ —वही, पृष्ठ ६०२

परिवर्तन को भी देखा गया। विनयचन्द्र सूरि की 'नमिनाथ चतुष्पदिका' में बारहमासे का प्रथम उल्लेख मिलता है। हिंदी में अपभ्रंश की इस काव्य पद्धति का खूब प्रचलन हुआ, अनेक बारहमासे लिखे गए।

'अद्विजन माम म नेमिनाथ के बिना राजलदेवी ग्रामू बालती रही। शीतल चंद्रमा, चंदन व हिम सब उसके लिए जलन लगे। प्रिय क बिना सब विपरीत हो गया।'

पूस के महीने में वह प्रिय में प्रायना करती है—

"पूस के महीने में ह प्रिय ! अब अपना रोप छाड़ दो मुझे अपना पद नखा के समीप स्थान दो। कष्टपूर्ण यह ठीकी रात्रि अब क्तिआए नहीं बीतती।"

"फागुन के महीने में पतझड़ हाती है ता ऐसा लगता है जस राजल के दुख में तरु रा रह हा।" यहाँ प्रकृति कवल उद्दीपन ही नहीं है सुख दुख की महचरा भी हैं।

जैठ का सूप भी जस विरह की अग्नि में ही तप्त हा रहा था और नदिया घन क वियोग से सूख रही थी।"

सखि राजल में कहती है— 'आ मुग्धा ! तू नमि नमि करती है योत्न बीत रहा है क्या यह तुझे जात नहीं है। सम्पूर्ण सत्तार पुष्प रत्ना में परिपूण है किन्ती अय भर्तार का वरण क्या नहा कर लती ? "

विवश राजन प्रेम के मम में अनभिन्न मन्वी को मूकता पर सूखी हँसा हँसती हुई भी कहती है, 'ह सखि ! तू गँवार है, मरा मतार नमिजुमार ही ह, अ य बाइ पुष्प नहीं हो मक्ता। क्या काई गावर पर चक्कर फिर गवे पर सजार हाता है।

अपभ्रंश विरह काव्य में प्रकृति का अर्थ रूप

उद्दीपन रूप के अतिरिक्त प्रकृति का अर्थ रूपा में भी देखा गया। प्राकृतिक उपकरणों का प्रस्तुत में रखकर अपभ्रंश द्वारा मानव स्वभाव की व्याप्ता कराई गई। हमचन्द्र सूरि कहते हैं— 'उम दिगा की ओर देखकर ह भ्रमर न रा। वह मालती अब

१ आसामामं प्रम पवां राजन मिलह दिग नमिनां

दद चंद चण्य हिम मोड, निथ भत्तारह नड विवरीड ॥१॥

—अपभ्रंश मार्ग १५, टी० 'रिविण बोद्ध

२ पामि राम सखि छोकिवि नां। रात्र रात्रि भर मयखइ पाक

पण्ड साड नवि रथरि विहाइ। लण्य दिग मान दुग अमाइ ॥१७॥ —वहा

३ फागुन बापुणि पन पन्नि, पावल दुखल कि तरु रावति ॥२॥ —वहा

४ त्रिठ विरह जिमि तापइ मूरु, दुख वियोग मुमय नइ पूरु ॥३२॥ —वहा

५ नमि नेमि तू करना मुदि। तुवगु जां थ जाणिस मरुदि

पुरिम मयथ भरियड सत्तारु। परख अनरड पुइ मत्तारु ॥१२॥ —वहा

६ मोला तड मग्ना गमारि। बार अद्वत नमि बुभार।

अन्न पुरिस बुद अपुण्य नरुइ। गदवरु ल हड कु रा सखि चणइ ॥१६॥ —वही

दूर रहने में है जिनके प्रियोग में तू मर रहा है।^१

यहाँ व्यक्ति द्वारा कवि विश्वासघात से पीड़ित किसी विरही प्रेमी का आशान्वित मन का प्रत्यक्ष कर रहा है।

मनष्य में बसा जा सकता है कि अपभ्रंश में विरह के वे रूप जो परवर्ती काल में हिन्दी में उद्भवता में मिलते हैं प्रथम बार प्राप्त होते हैं। 'दारहमासा' इसका उदाहरण है। यह काव्य जहाँ एक धार प्राचीन परम्परा को सुरक्षित रखता है वहाँ दूसरी धार नवान के लिए भाग निर्माण भी कर रहा है। इस रूप में इसका अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है।

प्रारम्भिक हिन्दी काव्य में विरह भावना

द्वार और विरह नाम हिन्दी-काव्य के प्रारम्भ से ही काव्य का मुख्य अंग रहे हैं। मधुविद्यमिनि हिन्दी के रामक काव्या में तथा १५वीं, १६वीं, १७वीं और १८वीं शताब्दी में प्रथम शताब्दी काव्या में विरह के अनेक सुन्दर प्रसंग उपलब्ध हैं। प्रस्तुत अध्याय में हम युग के कुछ प्रमुख काव्यग्रन्थों की विरह भावना का अध्ययन करने का प्रयत्न किया गया है। ये काव्य ग्रन्थ—नरपति मालव का बीसलदेव रामो चन्द का पृथ्वीराज रामा और प्रतापनामा कवि का डोला मारुत दूहा। 'बलिहकिमणी री पृथ्वीराज रामा' यद्यपि परवर्ती ग्रन्थ है किन्तु उक्त कुछ उम्र परम्परा का होने के कारण उनके साथ रखा गया है। विद्यापति का पदावली कानन से दस युग की कृति है अतः उनका प्रियतम इभा के अन्तर्गत है। यहाँ भी विप्रलम्भ के विविध भेद ही विवक्षित का आधार है।

पूरवर्ग

पूरवर्ग चित्र शत रूपन दगत अयना गुण धरण से उत्पन्न होता है। उपा अतिरिक्त और मन अमयता के प्रेम का उदभव और विकास इमा प्रकार हुआ था। माला मारुतों का प्रेम भाँदयो काटि था था। कवि यद्यपि इन दोनों को नाममात्र के लिए बचपन में ही विहाई-मून में साथ लाता है किन्तु उनका यह सम्बन्ध नहीं के बराबर है क्योंकि उगरी स्मृति माला प्रेमिका में सन्निही को नहीं रहना।

उद्ध वरसरी मारुतो विदु वरसारउ वत।

वानपणइ परण्णी पछइ, अन्तर पडयउ अनत ॥^१

उम समय मारुणी उध वप की था और उनका पति तीन वप का। बालपन में

^१ मरुत में कृति कुंठ रण्य ३ मा दिम जोइ म रण् ।

मा मालइ दमत रण्, जउ तुई मरहे विधोइ ॥

—अपभ्रंश साहित्य शाला हरिवर कोदण्ड, पृ० २६६

२. ६७१ मरुत दूहा, नागरी प्रकाशना मन्सा, देहा ६६

ही विवाह होने के कारण दोनों में भारी अन्तर पड़ गया।

वस्तुतः मारुणी का प्रेम उसकी युवावस्था के प्रथम स्वप्न दशन द्वारा उपा के प्रेम की तरह ही अकुरित होता है।

इसके आखण्ड मारुणी, मूली मज बिछाई।

साल्हकुँवर सुपनइ मिल्यउ, जागि निमासउ खाइ ॥^१

इस 'पूरवराग' को रति-कामना वह मक्ते हैं पूण अनुराग नहीं। यह यौवन की उपा में प्रथम अभिलाषा ही है—साल्हकुँवर सुपन मिल्यो जागि निमासो खाइ। विवाग का दुख उसके लिए अनात बदना है इस बेदना के प्रथम परिचय में मारुणी स्त्री-मुनभ लज्जा, शील और मयादा से हा काम लेती है। न तो वह मूर्च्छित हाली न उमका विनापन करती—

श्रीवा का हाथा पर रखकर चिंतित मुद्रा में मारुणी चातक का भाति प्रिय की प्रतीक्षा करती है। (प्रिय मिलन को) आसा से लुब्ध मारुणी विरह की थाह लाजती है, दिन गिनती है। विदग के माग में अनक वाबाएँ हैं किन्तु यह बचारी उनको नहा जानती।

उकवी सिर हय्यडा, चाहती रम लुब्ध।

ऊँची चढि चात गि जिउ मागि निहालइ मुग्ध ॥

थाह निहालइ, दिन गिणइ, मारु आमालुग्ध।

परदस घाघल घण, बिखउ न जाणइ मुग्ध ॥^२

'थाह निहालइ' में प्रतीक्षा जन्य धम्य, 'आसा लुब्ध' में आगा, 'बिखउ न जाणइ मुग्ध' में अकस्मात् अनुभूत इस प्रथम वियोग बदना से अपरिचय की घृति है।

सन्धिया विरह का हाल सुनकर जब उसे बताती है कि स्वप्न में आया हुआ व्यक्ति उसका पति साल्ह कुमार है तो मयादा का बाध टूट जाता है। मारुणी के हृदय में काम-ज्वाला घघक उठती है। 'सम्भा वयण मुदरी मुण्या, उठी मदन की भाल।' उसकी दगा का वणन करते हुए कवि कहता है—

बाबहियउ आसाड जिम विरहिणि करइ विलाप ॥^३

आसाड के पपोह की तरह विरहिणी विलाप करती है

जब ही बरसइ घण घणउ तब ही कहई प्रियाव ॥^४

जब अर मेघ बरसता है तब-तब वह प्रिय का बुलाती है।

फिर कहती है कि बादल के उमडन के साथ ढाला भी मरे हृदय में उमड आया। ये बादल तो अपनी ऋतु में ही बरसते हैं किन्तु मेरे मन तो नित्यप्रति ही वषा करत

^१ गीता मारुणा इहा नागरा प्रचारिणी सभा, दोहा १४

^२ वही, दोहा १६ १७

^३ वही, दोहा २६

^४ वही, दोहा २६

रहन हैं

ऊनमि आई बहली, ढालउ आयउ चित्त ।

यो बरमइ रितु आपणी नइण हमारे नित्त ॥^१

गारीरिक मिलन का अभिलाषा का स्पष्ट बणन भी हम यहाँ मिलता है

बीजलियां चहलावहलि धामय आभय कोडि ।

उद रं मिनउमी सज्जणा कस कचुकी छोडि ॥^२

बादल-बादल की कोर पर बिजलिया की चहल-पहल हो रही है। अपनी कचुकी का बचन तोड़कर मैं भी अब प्रिय से मिलूंगी।

रहावन है— घायल की गति घायल जाणे विरहिणी मारुणी' कुररी पक्षी की विरह व्यथा में पाडित हा जाती है

बुभडिया वनिअल बियउ मुणी उ पखइ वाइ ।

ज्यांरी जाडी बीछडी, त्या निसि नीदन आइ ॥^३

'कुररी पक्षिया के वर्णन रज और पय फडफडाने की ध्वनि में मुनी, सत्य है जिसकी जाडी बिट्ट गइ उसको रात्रि में नीन नहा आती।'

प्रिय के मिलन के माग में बहुत से पवन व धने जगला का ध्यान करके मारुणी विरह हा उठती है। विधाता में प्रार्थना करती है—'दह विधाता पखडी', हे विधाता मुझे पय से जो जिनम माग की कठिनाइयाँ पारकर मैं प्रिय से मिल सकू। किन्तु भाग्य की बलवत्ता देखकर बहती है कि पख होने से क्या? चकवी के भी तो पख है परन्तु रात हान पर वह प्रिय सतत भी नहीं मिल सकती।

पखडिया ईं विउ नही दव आबडू ज्याह ।

चकवी वइ हइ पखडी, रयणि ण मलउ त्याह ॥^४

और तब—

जब साऊतव जागवइ जब जागू तव जाइ ।

मारू ढालइ मभरइ रणि परि रयण बिहाइ ॥^५

स्वप्न में आया हुआ प्रिय जब प्रत्यक्ष-मा हान लगता है तो नींद खुल जाती है। प्रिय मिलन नहीं हो पाता।

मारुणा की व्यथा में पाडित हाफर पिता जब गडिया को ढोला के पास लेजा है तो मारुणा सदा बहता है—

१ 141 नं. २२, नागरी प्रचारिणी मभा, गेहा ४२

२ वहा २११ ४६

३ वहा २११ ५०

४ वहा २११ ५५

अकथ कहानी प्रेम की किणसूँ कही न जाइ ।

गूग का सुपना नया, मुमर-मुमर पिछताइ ॥^१

‘प्रेम की कहानी अकथनीय है वह किसी से कही नहीं जाती । गूग के सपन की भांति हो गई है जिस याद करके पछताता है ।’ अपनी अकथनीयता में यह कहानी अत्यंत मार्मिक है किन्तु न कह सकने के कारण में जब अतिशयोक्ति आन लगती है तो वह बीभत्स हो जाती है ।

सदगा मति मोकलउ, प्रीतम तूँ आवस ।

आंगलडी ही गलि गया नयण न बाचण देस ॥^२

प्रिय उत्तर में सदशा न भेजना स्वयं आ जाना (मैं मदेशा भजन में अगमध हूँ) अंगुलिया गल गई हैं । आँखा से (कठिनाई में लिखा) सदशा पढा नहीं जाता ।

दाडी मारुणी की दशा का जो वणन गेला में करत हैं वह अत्यंत मार्मिक है । मिलन की क्षीण आगा की ममथ व्यजना इन शब्दों में हुई है—

आसालुधधी हु न मुइय सज्जन जजालेइ ।

मारु सेकइ हथ्यडा भीणे अगारेइ ॥^३

‘प्रियतम के स्वप्न से प्रेरित मिलन की आगा से लुब्ध हुई मारुणी मरी नहीं । वह ऐसे जी रही है जैसे कोई अपना हाथ बुझे अगारा से सक रहा हो ।’

इस सन्देश को सुनकर दोला के हृदय का प्रेम भी जाग जाता है, साचने लगता है कि जिस मन चारों दिशाआ में निरकुश घूमता है यदि हाथ भी बसे ही फल सकत तो प्रिया को आलिगन पास में बांध लेता

जिउं मन पसरइ चिहुं दिसइ,

जिम जउ कर पसरति ।

दूरि थका ही सज्जणा, कठा ग्रह करति ॥^४

‘दोला मारुणा दूहा’ में लोक भावना मुखरित है । उसमें विरहानुभूति की सीधी मार्मिक अभिव्यजना ही अधिक है, ऊहा बहुत कम स्थाना पर है । दोला मारुणा का प्रेम ‘पूर्वराग’ है सामंती युग की मर्यादा की रक्षा के लिए, कवि ने इह अवोध अवस्था में विवाह-संस्कार में बाधा है ।

पथ्वीराज रासो में शशिब्रता विवाह के प्रसंग में ‘पूर्वराग’ के लिए रूप गुण को विस्तार देने के पश्चात् कवि अपना ध्यान गतिब्रता और पथ्वीराज के प्रथम मिलन के

१ दोला मारुणा दूहा, नागरी प्रचारिणी मन्ना, दोहा १२६

२ वहा, दोहा १४४

३ वहा, दोहा २०६

४ वही दोहा २१४

रहत है

ऊनमि आइ बहली, ढालउ आयउ चित्त ।

यो बरान्द रिनु आपणी, नइण हमारे नित्त ॥^१

गारीरिक मिलन का अभिलाषा का स्पष्ट बर्णन भी हम यहाँ मिलता है

बाजुनियाँ चहलाबहलि आभय आभय कोडि ।

कए र मिनउगी सज्जणा उस कचुकी छोडि ॥^२

रातल-बान्त की कार पर त्रिजलिया की चहल-पहल हो रही है। अपनी बचुकी के बंजन नोडकर मैं भी अब प्रिय में मिलूगी।

कहावन है— घायल की गति घायन जाण विरहिणी मारुणी' कुररी पक्षी की विरह व्यथा में पीड़ित हो जाता है

कुभडियाँ बनिअल त्रियउ, सुणी उ पसइ वाइ ।

ज्याकी गाडी बाट्टडी, त्या निसि नीदन आइ ॥^३

कुररी पक्षियाँ क कारण रउ आर पल फडफटाने की ध्वनि मैंने सुनी, सत्य है जिसरी जोडो बिट्टु गई उमका रात्रि में नीट नहा आती ॥^४

प्रिय में मिलन के माग में उठूत में पवत व घने जंगलों का ध्यान करके मारुणी बिचर हा उगती है। त्रिघाता में प्रायना करती है— 'दह बिघाता पखडी', हे बिघाता, मुझ पर तू का जिनमें माग का कठिनाइयाँ पारकर मैं प्रिय में मिल सकूँ। किन्तु भाग्य ने बलवत्ता देखकर कहती है कि पल हान से क्या? चक्री के भी तो पल हैं परन्तु रात हान पर वह प्रिय सतव भा नहीं मिन सकती।

पगनियाँ इ बिउ नहा देव आवडू ज्याह ।

चरवी बइ हूद पखडी रयणि ण मलउ त्याह ॥^५

श्रीर तय—

जब साजें तय जागवइ, जब जागूं तव जाइ ।

मारु तोलइ सभरइ रणि परि रयण विहाइ ॥^६

मृग्य में आया हुआ प्रिय जब प्रत्यक्ष सा हान उगता है तो नींद खुल जाती है। प्रिय मिलन नहा हो पाता।

मारुणी की व्यथा में पीड़ित हुएर पिता जब टाडिया को डोला के पास नजद है तो मारुणी उदा कहता है—

१ वा मारुणी का नगर प्रसारण सुना, दोहा २१

२ बहा गाहा २६

३ बहा दाहा २०

४ बहा, गाहा ७१

५ बहा ६ गा ७५

भारतीय साहित्य में शृंगार और विरह भावना

अथ कहानी प्रेम की किण्वों कही न जाइ ।
गूंगा का मुपना भया मुमर-मुमर पिछनाइ ॥'

'प्रेम की कहानी अकथनीय है वह किमी से कही नहीं जाती । गूंगे के सपन की भांति हो गई है जिस याद करके पछताता है । अपनी अकथनीयता में यह कहानी अत्यन्त मार्मिक है किन्तु न कह सकने के कारणों से अतिशयोक्ति आन लगती है तो वह बीभत्स हो जाती है ।

नदगा मति माक्लउ, प्रीतम तूँ आवम ।
आंगलही ही गलि गया नयण न वाचण दम ॥'

प्रिय उत्तर में मन्शन भजना स्वयं आ जाना (मैं नदगा भजन में असमर्थ हूँ) अंगुलियाँ गल गई हैं । आँखा में (कठिनाई न लिला) सदा पड़ा नहीं जाता । बाड़ी मारुणी की दशा का जो वर्णन ढोला में करत है वह अत्यन्त मार्मिक है । मिलन की शीघ्र आशा की समय व्यजना इन शब्दों में हुई है—

आनालुघी हु न मुद्दय सज्जन जजालेइ ।
मारु सक्इ हृदयडा नीणे अगारेइ ॥'

प्रियतम के स्वप्न से प्रेरित मिलन की आशा से लुब्ध हुई मारुणी मरी नहीं । वह ऐसे जी रही है जम काई अपना हाथ बुके अगारा से सेंक रहा हा । इस मन्दस को सुनकर ढोला के हृदय का प्रेम भी जाग जाता है साचने लगना है कि जस मन चारो दिगाआ में निरकुंग घूमता है यदि हाथ भी बस ही फल सकत ता प्रिया का आलिगन पाग में बाध लेता

जिउँ मन पसरइ चिहुँ दिसइ,
जिम जउ कर पसरति ।

दूरि यकाँ ही सज्जणा, कठा अह करन्ति ॥'

'ढोला मारुणा दूटा' में लाक भावना मुखरित है । उसमें विरहानुभूति को सीधी मार्मिक अभिव्यजना ही अधिक है, ऊँटा बहुत कम स्थान पर है । ढोला मारुणा का प्रेम 'पूरवाग' है मामन्ती युग की मर्यादा की रक्षा के लिए, कवि ने इह अवबोध अवस्था में विवाह-संस्कार में बाधा है ।

पञ्चीराज रासो में शक्तिव्रता विवाह के प्रसंग में पूवराग के लिए रूप गुण का विस्तार देने के पश्चात् कवि अपना ध्यान शक्तिव्रता और पञ्चीराज के प्रथम मिलन के

१ ढोला मारुण दूहा, नागरा प्रचारिणी मन्त्र, दोहा १५०
२ वहाँ, दोहा १५४
३ वहाँ, दोहा २०६
४ वहाँ, दोहा २१४

प्रसाद पर कटित करता है। पृथ्वीराज जिनका वणन शशिब्रता एतन दिनास मुन रही थी उहा को आज माधान लखनर वह रामानी उतनास न परिपूण हो गई। इस स्वप्नित ना गान पर हम एकाएक विस्वास नहा हुआ।

नन प्रयत कटाछ सुरग विराजही,
क प पुद्धन को जाहि प पुद्धन लाजहा।
नन मन म गान जु प्रयतन मा कहै।
काम कि गी पविराज नद करिन लहै ॥८६॥^१

प्रायः पावनना क विग कवि काननचारी-नयन मग की उपमा करत है किन्तु कानन तस मिचनना को लखनर उनके परस्पर वातालाप की कल्पना चंद की ही सूक्त है। विगपता केवल नयन और श्रवण की बातचीत की ही नहीं प्रत्युत कठु पुद्धन का जाहि प पुद्धन लाजहा की भी है।

पद्यावती विवाह-वर्णन म मुग क गारा पृथ्वीराज का रूप गुण वणन मुनकर पद्यावती का सुभा जाना और पृथ्वीराज क पास मदन भेजना वर्णित है। उसके आन पर आगतपतिना नायिका पद्यावती क उल्लास क वणन म भाव परिवर्तन का स्पष्टान कवि ने सूक्तता म किया है।

तन चिक्कट चार उगया उतार।
मनन मयन नव सत सिगार ॥
भूपन मगाय नपमिप अनूप।
मजि नन मना मनमयन भूप ॥^२

विद्यापति क प्रेम-वर्णन अत्यंत सजीव हैं। प्रेम तत्त्व की तह तक पहुँचकर उसके वास्तविक रूप क स्पष्टान का प्रयत्न विद्यापति न किया है। नायक नायिका क प्रथम स्पष्टान म एक नई पिपासा एक मधुर पादा का जन्म होता है

गजा भवनए पखन न मन
मध मान उप तांति लता जनि।
हिरण्य सत दई गल ॥^३

मधमाना म रिजती क अचानक उदय हान का भाँति य भी प्रमी को चकाचौंध करता है। प्रेम की प्राथमिक अनुभूति की तुलना तन्ति लता क बनने म प्रमी का तडपन का बाप ना है।

१ भाँगाउ पुष्य राज रामा, शशिब्रता विवाह प्रसंग, पृष्ठ ६५

म पाठक हजाराप्रसाद द्विवेदी तथा रामचरितसिंह

२ पृष्ठ ११ मधु पृष्ठ १०, म पाठक हरिहरनाथ टण्डन

३ विद्यापति काव्य-कला पृष्ठ ३८ (२) नमयः, रामकृष्ण बेन पुरा

‘पूरवराग’ में प्रिय-दशन की लालसा, इस तरह एक गालिनी नायिका का बचोटती है

अवनत आनन कए हम रहलहुँ
 वारल लावन चार ।
 पिया मुख रुचि पिअए धाम्नाल
 जनिसे चाद चकोर ॥
 नतहुँ मय हठ हठि मा आनल
 धएल चरनन राखि ।
 मधुप मानल उडए न पारए
 तइअथा पसारए पाखि ॥^१

“मुख नीचा किय मैं अपन इन चार नना का रोकती रहा किन्तु य प्रिय क रूप मुधा के पान के लिए ऐस दौडे जस चकार चाद की ओर दौडता ह । हठपूर्वक मैंन अपन चरणा की ओर इ ह केन्द्रित किया किन्तु मधुपान में मतवाला मधुप चाह उड न सक पक्ष तो पसारता ही है । रूप दान की प्रबल इच्छा, लज्जा क अकुण स बवम हा रही है, उसा की सुन्दर व्यजना यहा पन्व पसारन में है ।

विद्यापति की दृष्टि में प्रेम एक चिर-तपणा है जिसका तपित आयु पयन्त नहीं है ।

मखि कि पूछसि अनुभव माय ।
 स हो पिरित अनुराग बखानिए
 तिल तिल नूनन होय ।
 जनम अवधि हम रूप निहारल
 नयन न तिरपित भेल ॥^२

कुल-भवादा, यश अपयग का ध्यान प्रेमा की नहीं होता—

कुल गुन गौरव सति जस अपजस
 तन करि न मानए राधे ।
 मन मवि मदन महादवि उछलल
 बूढल कुल मरजाद ॥

बेसि किसन रुक्मिणी री राठौडराज प्रियोरारज री कही में व्याकरण, पुराण, स्मृति और बंद वेदागा का रुक्मिणी ने पढा, उनमें भगवान की अपार महिमा को जाना और वह उनसे प्रेम करने लगी । भगवान के गुणा का परिशीलन करके, श्रेष्ठ वर की प्राप्ति की जो इच्छा जगी उससे रुक्मिणी महादेव व पावती का

१ विद्यापति का पदावली, पद ३८, रामवृद्ध बेनापुरी

२ वही, पद २२८

पूजन करने का तत्पर हुई—

व्याकरण पुराण स्मृति सामन्निविधि
 वद व्याख्येय गट घग विचार ।
 जाणि चतुर दम चौसठि जाणी
 घनन घनन तमु मधि अधिवार ॥
 मांभलि अनुराग वयो मनि स्वामा
 वर प्रापति वदन्ति वर ।
 हरि गुण नणि ऊपनी जिवा हर
 हर निणि वत् वररि हर ॥^१

रुक्मिणी का प्रेम कृष्ण के गुण-श्रवण से उत्पन्न पुरुषराग है ।

माता पिता रुक्मिणी का विवाह दृष्टान्त में करना चाहते थे किन्तु माई रसम ने शिशुपाल के गाय विवाह निश्चित कर दिया । ममस्त बन्धव और ऐश्वर्य ने शिशुपाल रुक्मिणी का ब्याहृत आया । अथ स्त्रियाँ पद्मिनी के समान प्रमत्त थी किन्तु रुक्मिणी उगा थी कुमत्तनी के समान ।

पद्मिणि आनि पून परि पद्मिणी ।

रुक्मणी वमादणी ह्य ॥^२

जाता के भरण में वह पथिका का दम रहा थी । उस सुतनु का गरार महत में था किन्तु मन कृष्ण में भिन्न गया था । अर्धमिन्नित वाजल की स्थाही व नल की लक्ष्मी जनारत मन कृष्ण का पत्र लिखा

जाती मगी चरि चरि पथी जाव
 भूवणि नन मुमन तमु मितित
 लिखि गग काजल नल लक्ष्मि
 मति वाजल आनू मितित ॥

पत्र में लिखा कि विवाह का वना में कवल तीन दिन राकी हैं, इस पहचान के शिष्य में क्या बहूँ ? अम्बिका के मन्दिर में मैं पूजा के रहाने आऊंगी । अरण्य को अरण्य में जान कृष्ण तुम्हारी ही अरण्य हैं ।

त्रिति दाह वगन वना आग ते
 पणु भिन्नु वहिज आ पात ।
 पूजा मिमि आविनी पुरयोत्तम
 अम्बिकालय नयर धारात ॥^३

१ 'व्याकरण का पुराण, पृ २२-२३, टापर राममिह और प मूलकण्य पाराक गारा सम्पादित

२ ४६, ४६ ४२

३ ४६ ४२ ४६

रविमणी ने यह पत्र एक ब्राह्मण को दिया। द्वारिका में ब्राह्मण के हाथ सदशा पाकर कृष्ण कुन्दनपुर जान को तत्पर हुए। उधर रविमणी सोच रही थी

‘भगवान् प्रवक्ष्य रह गए, इतनी दर तो पहले जहान कभी नहीं की थी।’ वह चिन्तानुर हो उठी तभी एक छोक हुई—

रहिया हरि महि जाणियो म्पमणि
बीध न इवडी डील कई ॥
चिन्तानुर चित इम चितवन्ती
थई छोक तिम धीर पई ॥^१

छोक से कुछ धम बंधा। सामने ब्राह्मण को आता देखकर—

चलपन धियो दुज देखे चित
सक न रहति न वृद्धि सकति।
आ आव जिमि जिमि आसन्नी
तिम तिम मुख धारण तकन्ति ॥

सदशा मुनन को तत्पर नायिका के ‘वपथु और ‘स्तम्भ’ अनुभावा का सुन्दर वणन कवि ने इन शब्दों में किया है—वह पीपल के पत्ते की भाँति कापतो थी और जस-जस ब्राह्मण निकट आता था, वह अकीरता से प्रताक्षा कर रही थी। प्रेम के प्रतिदान की अनिश्चितता और उत्कण्ठ के कारण उत्पन्न ‘स्तम्भ’ का मनोवैज्ञानिक दिग्दर्शन किया गया है।

ब्राह्मण ने यह सदशा मुनन पर कि किसने पधारया लोक कहति’ रविमणी पावती के मन्दिर में गई। कृष्ण वहाँ से उनका अपहरण करके द्वारिका ल गए।

रुक्म के मनिका में कृष्ण के युद्ध के पदचिह्न कवि ने कृष्ण रविमणी के आमोद प्रमोद का वणन किया है।

रविमणी ‘री बेन’ राजस्थान के रासा प्रचा का पद्धति का ही विरह-काव्य है। किन्तु रविमणी का प्रेम शुद्ध लौकिक नहीं है प्रिय में प्रेम का स्थान पर पूज्य बुद्धि ही अधिक दिखाई पड़ती है। क्योंकि कवि स्पष्ट कहता है कि चौदह दिशाआ और चौंसठ बलाओ में उसने कृष्ण का अधिकार पाया था

जाणि चतुरदस चौंसठ जाणी।

अनन्त अनन्त तसु मधि अधिकारा ॥

और तब सदेश बहा था

सरण तुभ असरण सरण ।^२

भगवान् की महिमा जानकर भक्त इष्ट के प्रति प्रयत्नशील होता ही है।

१ विद्यापति का पदावली, पद ७२ ठाकुर रामसिंह और प० मूयकरण पारीक द्वारा सम्पादित

२ वही, पद ७२

३ रविमणी रावल, पद ५=

मान विप्रलम्भ

मान का प्रसार का कहा गया है इर्ष्यामान और प्रणयमान। विद्यापति में दाना प्रसार का मान बंधन मिलता है। इर्ष्यामान में नायिका नायक के गरीर पर अन्य नायिका द्वारा किए प्रणय चिह्न से प्रयत्न नायक की किसी अन्य चेतना से उमकें अन्य के प्रति अनुमान का अनुमान करती है। विद्यापति का राधा कहती है

बुहुम नश्रानप नखखन गोइ ।

अधरक नाजर अणलह योइ ॥२॥

नइमान छपन कपट बुधि तारि ।

रोचन अहन बनन नन चारि ॥४॥^१

प्रणय का प्राधिकार में भी कभी न मान का अस्तित्व कहा जाता है

राश मापक रतनहि मंदिर

नियमय मयनर मूव ।

रस रस गारुन दन उपजस

काह चवन तज हस ॥२॥^२

मान का एक आवश्यक अंग मनुहार है। विद्यापति कहते हैं

नागर अचन कन अरि नागरि ।

हसि मिनता करु अघा ॥४॥^३

इत मान का कारण राधा की समझ में नहीं आता

रग मयि मूक मान ।

कारन सिछधो भूभए न पाइए ॥४॥

राधा का यह गान उनका भावपन का परिचायक है।

बोसलदेव रासो का राजमता बारह बरस तक प्रिय का लिए तड़पती रही थी। प्रिय का आगमन की वृत्ति में राजमता का उत्प्रेक्षा और हृदय विह्वलता का वर्णन इन गानों में हुआ है

घारा रनो नन हायडड लगाई ।

जोनिव बाएरु है मल्ला गई ॥

नजन त घांनू मरिया ।

यज हन नटस्यां गाभग्या राव ॥^४

यस गाय चरुड का हृदय में लगाने हेतु वस्त्रा का हृदय में लगाने की दृष्टि राजमती

१ 'बदल १६१' १२वीं, पद २३८

२ 'बदल १६१' १२वीं, पद २३८

३ 'बदल १६१' १२वीं, पद २३८

४ 'बदल १६१' १२वीं, पद २३८, सुभाषितक मंत्रालय बनारस

झाँझा में अश्रु डालती है और कहती है

“सौमन्या नरेण मुभने कव भेंट करणे ।”

शृंगार के प्रति उसकी उदासीनता का एकदम लाप हो गया। गाय के उछड़े का हृदय लान से वसना को अत्यन्त प्रेम में हृदय लगान की उपमा बड़ी सगक्त है।

मिनन की बला उपस्थित हान पर यह विह्वलता ही ‘मान बन गई। मनुहार की आकांक्षा में ही प्रेमी टूटता है। प्रणयमान का चिच कवि ऐसे उपस्थित करता है

रूठी गोरी ग्रन्थग न लेहि ।

पत्यग बइसइ नवि पान नु लेहि ॥

ऊभी दइ छइ औलभा ।

करि लागइ अरि माइ पूछइ वाह ॥

कत भरासा काई करी ?

वारा वरस कीम रह्य्या नाह ? १

रूठी हुइ गारी आलियन नहा लती। पलग पर बठा है किंतु पान नहीं लता।

मुल मांकर उपालम्भ दती हुइ कहती है

ह प्रिय तुम्हारा क्या भरासा ? तुम पर विश्वास कस कसे ? बारह वरस तक स्वामी (भर बिना) कस रह ?

प्रवास

हिन्दी के प्रारम्भिक ग्रन्थों बीसलदेव रासा, पृथ्वीराज रासा, ढाला मारूरा दूहा आदि में प्रनाम के मुदर चित्र मिलते हैं। संस्कृत काव्यशास्त्रियों ने प्रनाम को शाप हेतुक और नायकतुल्य बनाया है, हिन्दी के इन ग्रन्थों में प्राण चित्रों के आकार पर यदि हम उसका एक और विभेद प्रणयहेतुक कर दे तो अनुचित न होगा। यहाँ नायक या तो किसी अन्य नायिका के प्रणय का अनिलापी होकर नायिका को छोड़ जाता है अथवा प्रणयनी के किसी व्यस्य से ग्राह्य होकर उसकी पूर्ति के लिए निकल पड़ता है।

ढाला मारूरा दूहा में ढोला मारूणा में मिलने की इच्छा जब मालवणी के सम्मुख प्रकट करता है तो वह विकल हो उठती है। अनेक प्रकार से वह ढाला का रोकने का प्रयत्न करती है ऋतुधा के उड़ीपन प्रभाव का बताकर, उट को अपनी आर मिलाकर, किंतु अन्त में असफल हो जाती है। जब ढोला विदेग जान को प्रस्तुत हो ही जाता है तो दुखी होकर कहती है—‘ओ प्राण तू बड़ा निलज्ज है, तुमसे निकला भी रहा जाता। प्रियतम के विछुड़ते समय तू नहीं निकला मुझे लजान के लिए रह गया।’

हृद रे जीव निलज्ज तू, निकस्यु जात न तोहि,
प्रिय विछुड़त निकस्यउ नहीं रह्यउ लजावण मोहि ॥ १

१ बीसलदेव रासा, तनाय सग पर ८४, मन्दाक सत्यनावन वमा

२ ढोला मारूरा दूहा, दोहा ३७३

मानवणी का प्रेम पति-परायणा स्वकीया का प्रेम है जो सीता का अनुमुह्यता के उपलक्षणानुसार पति क मधु बधिर और अन्ध स्त्री में अनुरक्त हान पर भी कम नहीं हो सकता। जा शोना मानवणी के सत्संग से जान वाल मुग्ध से अत्यन्त तिरस्कार भाव से बहता है

मूडा, मगण ज पवित्रा म्हाकुञ्ज बह्यउ करेज,
नर मण चल्ण मण अगर् मालवणी दाग ज ॥^१

'ह मुए तू गणराज पत्नी है हमारा एह कहना करना—नी मन चदन और एक मन धारा नर मानवणी का दाह कम करेता।

उमा गार्हकुमार के त्रिण मानवणी विधाता से, विनती करती है—“ह विधाता मुझ परामन बन्धी बना नहा बनाया। मैं माग में प्रिय भाहकुमार के ऊपर छाया करती रहता।

गार्गनि नाइ न मिरजिया अजर लागि रहत।
बाट बनता माहू प्रिय ऊपर उह करत ॥^२

मानवणी का विरहता और उनके जीवन का निरन्तरता का उपमा खाली सुराही के तरह मारुता दूटा के निमाता न उनकी व्यथा को भरकर बना दिया है
आदि विरहता मूलतः प्रिय करि उनरियाह।
मनराता से प्रिय ज्यउ प्रिय नइ परहरियाह ॥^३
न। प्रियतम। छत्र करके तुमन मुझ के प्रिया। मनमाल की सुराहा की तरह पात करके तुमन मुझ के प्रिया अन्ध आ जाया।

योगचन्द्र रामों में गार्गनि परण वामनद्वय का उर्गीमा वाया और उनकी पत्नी गार्गनि की विरह-व्यथा प्रकृत है। गार्गनि की अपन राय और बाहुबल पर बना बन था।

विज उमर के परिपूरित राजा के राजमता न गहा
भरत न जाना के मा भरतार

गर्गनि न जाना के मानवणी राय
ना गार्गनि घणा और मुसाव ॥
एह उगाता के प्रिया
मानवणी के मान जु मानि ॥^४

१. मालविकाग्निमित्रम् ३।४

२. ३।४।३२

३. ३।४।३२

४. ३।४।३२, ३।४।३३, ३।४।३४, ३।४।३५, ३।४।३६, ३।४।३७, ३।४।३८, ३।४।३९, ३।४।४०, ३।४।४१, ३।४।४२, ३।४।४३, ३।४।४४, ३।४।४५, ३।४।४६, ३।४।४७, ३।४।४८, ३।४।४९, ३।४।५०, ३।४।५१, ३।४।५२, ३।४।५३, ३।४।५४, ३।४।५५, ३।४।५६, ३।४।५७, ३।४।५८, ३।४।५९, ३।४।६०, ३।४।६१, ३।४।६२, ३।४।६३, ३।४।६४, ३।४।६५, ३।४।६६, ३।४।६७, ३।४।६८, ३।४।६९, ३।४।७०, ३।४।७१, ३।४।७२, ३।४।७३, ३।४।७४, ३।४।७५, ३।४।७६, ३।४।७७, ३।४।७८, ३।४।७९, ३।४।८०, ३।४।८१, ३।४।८२, ३।४।८३, ३।४।८४, ३।४।८५, ३।४।८६, ३।४।८७, ३।४।८८, ३।४।८९, ३।४।९०, ३।४।९१, ३।४।९२, ३।४।९३, ३।४।९४, ३।४।९५, ३।४।९६, ३।४।९७, ३।४।९८, ३।४।९९, ३।४।१००

तब—

घणक त्राल बस्यो मन माहि ।
चित चमकियउ बीमलराय ।
हूँ बीसद्वया ते वेदिटा ।
म्हा तु वरस वारइ की लाव ॥^१

“स्त्री का बोल मन में चुभ गया, बीसलराय चीक सा गया। मैं अब तक भूला था, अच्छा हुआ तुमने जगा दिया। अब वारह वरस के प्रशंसक लिए जाऊँगा।” राजमती को पता न था कि प्रिय इतनी जल्दी रुठ जाएँगे उस बचारी ने क्षमा याचना भी की

हूँ पराकी घणी । माकियउ रोस ।
पाव की पाणही सुँ कियउ रास ॥^२

‘मैं नीच हूँ गरीब हूँ, ई स्वामी । अपने शोध का त्याग कोई पाव के जूत पर शोध करता है।’

तब राजा ने कहा

जीभ न जीभ बियागना ।
दव का दावा कुपली मल्ही ।
जीभ का दावा न पागुरई ॥^३

“अब बात बनाने से बात नहीं बन सकती। अग्नि का जला हुआ वक्ष कापलें फक सकता है किन्तु वचन का जला हुआ आदमा नहीं बनपता।

राजा ने जाने की मन में टान ला। मखिया ने राजमती का बुरा भला कहा
निगुणी गुण हाई ता प्रीय क्या जाई ?^४

निगुणी म गुण हाता ता प्रिय क्या जाना ?^५

बचारी राजमती कठिनाई में पड़ गई। सब उस ही बुरा कह रहे थे। उसने बहुत चाहा कि राजा अपने जान का विचार स्वगित कर दे। मूर्ख निकालन वाल पण्डित से प्रायना की, “तुझे हाथ की मुदरी दूगी, मूर्ख के दिन एक मास देर से निकाल दना।”

मास एक वीलबावज्या
दूजइ फरस प्रीय समभाई ।
देशम हाथ कउ मुदडउ,
सोवन निगी नद कपिला गाइ ॥^६

पण्डित ने प्रयत्न करके भा देख लिया किन्तु वह असफल रहा। बीसलदेव विदेग

- १ बीसल देव रामो, श्रिताय सग, पद ५
- २ वहा, पद ६
- ३ वही, पद १=
- ४ बना, पद १६
- ५ वहा, पद २५

जान लगा। घोरः

चालइ उतिगणा, धन जाण न दहि ।
 क माहि मारि, बइ मायि तु लेहि ॥
 अचन गहत धन रही ।
 एव इवती जावन पूर ।
 भूनी सज वीदेस पीउ ॥^१

विना जात दूष (प्रिय का) वह स्त्रिया जान न दती थी। या तो मुझे मार दो या साथ न बना। वह अचन ही पकटती रह ग- पूष यौवन म एकाकी। प्रिय के विदेश म जान न सज मनो हा जाणगी। भाभी न वासलदव ना समभाया परन्तु उसकी भी जब नवन एव न सुनी ना राजमना नना हा गइ। सम्भवन चलत समय अपापुन हा जाए तो राजा न जाण इम रिचार न अपापुन क परिचायक पणु पणिया से भी उसन विनती का रि प्रिय न सम्भग जात नमय आ जाना। उसकी विवगता तत्र बहुत ही बरुण-सी प्रतात हावी है जय वह महन पन सान नाग स विनती करती है कि विदेश म जाते हुण प्रिय ना रि सान राग तो सान की ननोरा म दूष पिलाऊगी।

उतिगणउ धरि रावज्या ।
 जु म्हा का प्रीय पादो जाहुडइ ।
 रावन बचोवा ताहि पारस्यु दूष ॥^२

बिना विर ना राजमनी बीमनदव का रोक न सकी। उसके प्रति अगाध प्रेम गनकर भी राजमन्य उतव व्यग्य ना न भूत सता। जय वह पति ना आवल पवडकर गयी ना त एव तान बीमलन्य न अ- गकर उमरा आतिगन भी गिया। जब राजमती न रा रागन रहा रि नम्हार रिना धर उजाड मुनगान हो जाएगा तो उनन उगे मनाते हुण रहा— गारा उठा गुगार करतम्हार निण बहुत सी बचुसी प्रीय हार लाऊंगा।

आचला गृता प्रसाडी छइ आण ।
 हमा गन राइ नई भाजिय वाण ॥
 ता धन रावइ पीउमू ।
 गिररर रणी ! तइ न गयी मान ॥
 एर सगं धर आरज्या ।
 या रिण नाहचद हाइ धरि सान ॥^३

उठा उठी गारी करि सिगार ।
 नागणउ रीचउ नवगर हार ॥

^१ ५७५ ४४५५ ६५५ ५७, ५६ ३०, मय ५७ मयव वन बना, नागण प्रचारिणी मभा

^२ ५६ ५६ ३६

^३ ५६ ५६

पहिर नु चाली नवरगी ।
 वावन चन्दन अग सहुभाई ॥
 चित फारया मन उचटया ।
 ह्ठी गौरी रहइ गलिलाई ॥^१

राजमती बिलम्ब उठी । वीसलदेव चला गया । पति के जाने के बाद राजमती का महल नूना हा गया । उस सून मन्दिर में वह बिल्लाकर रोती है मोर की-सी बदना अपन स्वर में भर कर

प्रीय बोलाव धन रोवती जाई ।
 सूनउ मन्दिर मलहइ छ घाह ॥
 मा धन कुरलइ मोर ज्यु ॥^१

उसका रात दिन चिन्ता करने में बीतता है
 दिवसनइ रात मी चिताता जाई ।

वह अपन हृदय की भत्सना करती है—तू पत्थर का बना है या लाह का जो प्रिय के बिछुड़न पर भी निदयी नहीं फटता, यद्यपि जजरित हो गया है ।

फटि रे हिया ! नीवालूवा ।
 पाथरी घडीयो के नीघट लाह ॥
 करयभलीया फूटइ नहीं ।
 सगुणा प्रीतम तणो विद्याह ॥^१

ह विधाता तूने मुझे बनखड की काली कायल क्या नहीं बनाया, किसी चम्पा की डाली अथवा अगूर की दाखा पर अपने जोड़े के साथ बठती—

सूरह न सिरजी वीणु भाई ।
 बन-खड काली कोईली ।
 बइसती अब कइ चप की डालि ।
 बइसती दाख वीजोरडी ।
 इणि दुख भूरइ अबला वालि ॥^१

वियोग में अतीत की स्मृति व भी स्वप्न बनकर साकार हो जाती थी किन्तु उस स्वप्न के मिलन में भी विदेश जान का यथाथ बाधा बन जाता—

याज सखी सपनतर दीठ ।
 राग चूरे राजा पत्यमे वईठ ।

१ वीसलदेव रासो, दिताथ सर्ग, पद ६४, सम्पादक मलयनाथन बमा, नागरा प्रचारिणी समा

२ वही, तृतीय सर्ग, पद १

३ वही, ३

४ वही, पद ४

ईसा हो भभारो मइ भयीयो ।
जो हूँ सोहिणई जाणती सौच ॥
दृष्टि कर जातो राखती ।
जब जागु जीव पडि गया दाह ॥^१

'ह सखा' आज राजा का मपन में देखा था। राग (प्रेम) में चूर राजा पलंग पर बठ था। इसी बीच में (अतीत की वास्तविकता की बुधली स्मृति से) में दुखी हुई। जा स्वप्न में भी मैं सचमुच जानती कि राजा चले जाएँगे तो उन्हें हठपूर्वक रोक लेती किन्तु जब (पवरावर) जागा तो राजा का अभाव में फिर पीड़ित हो गई।^२

विरह में राजमती मत्त-सी हो गई। वह चन्द्रमुखी मत्तवाली सी राजा के आंगन में घूमती रहती आँखें लान रहती और भौंहे भूले हुए भ्रमर सी भ्रमित, शरीर इतना दृघ हा गया था कि मौसम का अभाव में अंगुलियाँ मूँगफली सी दिखाई पड़ती थी।

समी-बदनी जीतयो भात मयद ।
आपडिया रतनालियाँ ॥
नीहरा जाण भमर भमाय ।
मगफली सी आँगुली ॥^३

उस मूँगफली से घान प्यास और विरहों को नींद तो आती ही वहाँ है। राजमती की महदगा उदग है। गारर का कृपा व्याधि की सूचक है।

नूख नहीं प्रीम ऊदती ।
उणी पटा नाद कहा थी हाई ?^४

अगहन में दिन छाटे होते हैं (रातें बटा) सन्दशा के अभाव में चिन्तित राजमती की पीड़ा और बढ़ गई

आषण जर दिन छोटा हाइ ।
सखी सदगा मोखलउ काइ ॥
सत्गाहि बनज पडया ॥^५

'अगहन में दिन छोट होने लग। सखी काइ सत्शा के आवा। सदगा में भी कोई बजह पड़ी है अथवा बाधा पड़ी है कि (सत्गा रहा आया)।

पूजक महान में जाइ के आगमन के साथ वियोगिनी राजमती का हृदय भी पीन से जटोभूत हो गया

सखी सखी हिक लाने छइ पाम ।
धन मरती मति लावउ हो दोम ॥
दुग नानी पजर हुई ।

१ ५५, ५६, ५७, ५८, ५९, ६०, ६१, ६२, ६३, ६४, ६५, ६६, ६७, ६८, ६९, ७०, ७१, ७२, ७३, ७४, ७५, ७६, ७७, ७८, ७९, ८०, ८१, ८२, ८३, ८४, ८५, ८६, ८७, ८८, ८९, ९०, ९१, ९२, ९३, ९४, ९५, ९६, ९७, ९८, ९९, १००, १०१, १०२, १०३, १०४, १०५, १०६, १०७, १०८, १०९, ११०, १११, ११२, ११३, ११४, ११५, ११६, ११७, ११८, ११९, १२०, १२१, १२२, १२३, १२४, १२५, १२६, १२७, १२८, १२९, १३०, १३१, १३२, १३३, १३४, १३५, १३६, १३७, १३८, १३९, १४०, १४१, १४२, १४३, १४४, १४५, १४६, १४७, १४८, १४९, १५०, १५१, १५२, १५३, १५४, १५५, १५६, १५७, १५८, १५९, १६०, १६१, १६२, १६३, १६४, १६५, १६६, १६७, १६८, १६९, १७०, १७१, १७२, १७३, १७४, १७५, १७६, १७७, १७८, १७९, १८०, १८१, १८२, १८३, १८४, १८५, १८६, १८७, १८८, १८९, १९०, १९१, १९२, १९३, १९४, १९५, १९६, १९७, १९८, १९९, २००, २०१, २०२, २०३, २०४, २०५, २०६, २०७, २०८, २०९, २१०, २११, २१२, २१३, २१४, २१५, २१६, २१७, २१८, २१९, २२०, २२१, २२२, २२३, २२४, २२५, २२६, २२७, २२८, २२९, २३०, २३१, २३२, २३३, २३४, २३५, २३६, २३७, २३८, २३९, २४०, २४१, २४२, २४३, २४४, २४५, २४६, २४७, २४८, २४९, २५०, २५१, २५२, २५३, २५४, २५५, २५६, २५७, २५८, २५९, २६०, २६१, २६२, २६३, २६४, २६५, २६६, २६७, २६८, २६९, २७०, २७१, २७२, २७३, २७४, २७५, २७६, २७७, २७८, २७९, २८०, २८१, २८२, २८३, २८४, २८५, २८६, २८७, २८८, २८९, २९०, २९१, २९२, २९३, २९४, २९५, २९६, २९७, २९८, २९९, ३००, ३०१, ३०२, ३०३, ३०४, ३०५, ३०६, ३०७, ३०८, ३०९, ३१०, ३११, ३१२, ३१३, ३१४, ३१५, ३१६, ३१७, ३१८, ३१९, ३२०, ३२१, ३२२, ३२३, ३२४, ३२५, ३२६, ३२७, ३२८, ३२९, ३३०, ३३१, ३३२, ३३३, ३३४, ३३५, ३३६, ३३७, ३३८, ३३९, ३४०, ३४१, ३४२, ३४३, ३४४, ३४५, ३४६, ३४७, ३४८, ३४९, ३५०, ३५१, ३५२, ३५३, ३५४, ३५५, ३५६, ३५७, ३५८, ३५९, ३६०, ३६१, ३६२, ३६३, ३६४, ३६५, ३६६, ३६७, ३६८, ३६९, ३७०, ३७१, ३७२, ३७३, ३७४, ३७५, ३७६, ३७७, ३७८, ३७९, ३८०, ३८१, ३८२, ३८३, ३८४, ३८५, ३८६, ३८७, ३८८, ३८९, ३९०, ३९१, ३९२, ३९३, ३९४, ३९५, ३९६, ३९७, ३९८, ३९९, ४००, ४०१, ४०२, ४०३, ४०४, ४०५, ४०६, ४०७, ४०८, ४०९, ४१०, ४११, ४१२, ४१३, ४१४, ४१५, ४१६, ४१७, ४१८, ४१९, ४२०, ४२१, ४२२, ४२३, ४२४, ४२५, ४२६, ४२७, ४२८, ४२९, ४३०, ४३१, ४३२, ४३३, ४३४, ४३५, ४३६, ४३७, ४३८, ४३९, ४४०, ४४१, ४४२, ४४३, ४४४, ४४५, ४४६, ४४७, ४४८, ४४९, ४५०, ४५१, ४५२, ४५३, ४५४, ४५५, ४५६, ४५७, ४५८, ४५९, ४६०, ४६१, ४६२, ४६३, ४६४, ४६५, ४६६, ४६७, ४६८, ४६९, ४७०, ४७१, ४७२, ४७३, ४७४, ४७५, ४७६, ४७७, ४७८, ४७९, ४८०, ४८१, ४८२, ४८३, ४८४, ४८५, ४८६, ४८७, ४८८, ४८९, ४९०, ४९१, ४९२, ४९३, ४९४, ४९५, ४९६, ४९७, ४९८, ४९९, ५००, ५०१, ५०२, ५०३, ५०४, ५०५, ५०६, ५०७, ५०८, ५०९, ५१०, ५११, ५१२, ५१३, ५१४, ५१५, ५१६, ५१७, ५१८, ५१९, ५२०, ५२१, ५२२, ५२३, ५२४, ५२५, ५२६, ५२७, ५२८, ५२९, ५३०, ५३१, ५३२, ५३३, ५३४, ५३५, ५३६, ५३७, ५३८, ५३९, ५४०, ५४१, ५४२, ५४३, ५४४, ५४५, ५४६, ५४७, ५४८, ५४९, ५५०, ५५१, ५५२, ५५३, ५५४, ५५५, ५५६, ५५७, ५५८, ५५९, ५६०, ५६१, ५६२, ५६३, ५६४, ५६५, ५६६, ५६७, ५६८, ५६९, ५७०, ५७१, ५७२, ५७३, ५७४, ५७५, ५७६, ५७७, ५७८, ५७९, ५८०, ५८१, ५८२, ५८३, ५८४, ५८५, ५८६, ५८७, ५८८, ५८९, ५९०, ५९१, ५९२, ५९३, ५९४, ५९५, ५९६, ५९७, ५९८, ५९९, ६००, ६०१, ६०२, ६०३, ६०४, ६०५, ६०६, ६०७, ६०८, ६०९, ६१०, ६११, ६१२, ६१३, ६१४, ६१५, ६१६, ६१७, ६१८, ६१९, ६२०, ६२१, ६२२, ६२३, ६२४, ६२५, ६२६, ६२७, ६२८, ६२९, ६३०, ६३१, ६३२, ६३३, ६३४, ६३५, ६३६, ६३७, ६३८, ६३९, ६४०, ६४१, ६४२, ६४३, ६४४, ६४५, ६४६, ६४७, ६४८, ६४९, ६५०, ६५१, ६५२, ६५३, ६५४, ६५५, ६५६, ६५७, ६५८, ६५९, ६६०, ६६१, ६६२, ६६३, ६६४, ६६५, ६६६, ६६७, ६६८, ६६९, ६७०, ६७१, ६७२, ६७३, ६७४, ६७५, ६७६, ६७७, ६७८, ६७९, ६८०, ६८१, ६८२, ६८३, ६८४, ६८५, ६८६, ६८७, ६८८, ६८९, ६९०, ६९१, ६९२, ६९३, ६९४, ६९५, ६९६, ६९७, ६९८, ६९९, ७००, ७०१, ७०२, ७०३, ७०४, ७०५, ७०६, ७०७, ७०८, ७०९, ७१०, ७११, ७१२, ७१३, ७१४, ७१५, ७१६, ७१७, ७१८, ७१९, ७२०, ७२१, ७२२, ७२३, ७२४, ७२५, ७२६, ७२७, ७२८, ७२९, ७३०, ७३१, ७३२, ७३३, ७३४, ७३५, ७३६, ७३७, ७३८, ७३९, ७४०, ७४१, ७४२, ७४३, ७४४, ७४५, ७४६, ७४७, ७४८, ७४९, ७५०, ७५१, ७५२, ७५३, ७५४, ७५५, ७५६, ७५७, ७५८, ७५९, ७६०, ७६१, ७६२, ७६३, ७६४, ७६५, ७६६, ७६७, ७६८, ७६९, ७७०, ७७१, ७७२, ७७३, ७७४, ७७५, ७७६, ७७७, ७७८, ७७९, ७८०, ७८१, ७८२, ७८३, ७८४, ७८५, ७८६, ७८७, ७८८, ७८९, ७९०, ७९१, ७९२, ७९३, ७९४, ७९५, ७९६, ७९७, ७९८, ७९९, ८००, ८०१, ८०२, ८०३, ८०४, ८०५, ८०६, ८०७, ८०८, ८०९, ८१०, ८११, ८१२, ८१३, ८१४, ८१५, ८१६, ८१७, ८१८, ८१९, ८२०, ८२१, ८२२, ८२३, ८२४, ८२५, ८२६, ८२७, ८२८, ८२९, ८३०, ८३१, ८३२, ८३३, ८३४, ८३५, ८३६, ८३७, ८३८, ८३९, ८४०, ८४१, ८४२, ८४३, ८४४, ८४५, ८४६, ८४७, ८४८, ८४९, ८५०, ८५१, ८५२, ८५३, ८५४, ८५५, ८५६, ८५७, ८५८, ८५९, ८६०, ८६१, ८६२, ८६३, ८६४, ८६५, ८६६, ८६७, ८६८, ८६९, ८७०, ८७१, ८७२, ८७३, ८७४, ८७५, ८७६, ८७७, ८७८, ८७९, ८८०, ८८१, ८८२, ८८३, ८८४, ८८५, ८८६, ८८७, ८८८, ८८९, ८९०, ८९१, ८९२, ८९३, ८९४, ८९५, ८९६, ८९७, ८९८, ८९९, ९००, ९०१, ९०२, ९०३, ९०४, ९०५, ९०६, ९०७, ९०८, ९०९, ९१०, ९११, ९१२, ९१३, ९१४, ९१५, ९१६, ९१७, ९१८, ९१९, ९२०, ९२१, ९२२, ९२३, ९२४, ९२५, ९२६, ९२७, ९२८, ९२९, ९३०, ९३१, ९३२, ९३३, ९३४, ९३५, ९३६, ९३७, ९३८, ९३९, ९४०, ९४१, ९४२, ९४३, ९४४, ९४५, ९४६, ९४७, ९४८, ९४९, ९५०, ९५१, ९५२, ९५३, ९५४, ९५५, ९५६, ९५७, ९५८, ९५९, ९६०, ९६१, ९६२, ९६३, ९६४, ९६५, ९६६, ९६७, ९६८, ९६९, ९७०, ९७१, ९७२, ९७३, ९७४, ९७५, ९७६, ९७७, ९७८, ९७९, ९८०, ९८१, ९८२, ९८३, ९८४, ९८५, ९८६, ९८७, ९८८, ९८९, ९९०, ९९१, ९९२, ९९३, ९९४, ९९५, ९९६, ९९७, ९९८, ९९९, १०००

१ ५५, ५६, ५७, ५८, ५९, ६०, ६१, ६२, ६३, ६४, ६५, ६६, ६७, ६८, ६९, ७०, ७१, ७२, ७३, ७४, ७५, ७६, ७७, ७८, ७९, ८०, ८१, ८२, ८३, ८४, ८५, ८६, ८७, ८८, ८९, ९०, ९१, ९२, ९३, ९४, ९५, ९६, ९७, ९८, ९९, १००

२ ५५, ५६, ५७, ५८, ५९, ६०, ६१, ६२, ६३, ६४, ६५, ६६, ६७, ६८, ६९, ७०, ७१, ७२, ७३, ७४, ७५, ७६, ७७, ७८, ७९, ८०, ८१, ८२, ८३, ८४, ८५, ८६, ८७, ८८, ८९, ९०, ९१, ९२, ९३, ९४, ९५, ९६, ९७, ९८, ९९, १००

३ ५५, ५६, ५७, ५८, ५९, ६०, ६१, ६२, ६३, ६४, ६५, ६६, ६७, ६८, ६९, ७०, ७१, ७२, ७३, ७४, ७५, ७६, ७७, ७८, ७९, ८०, ८१, ८२, ८३, ८४, ८५, ८६, ८७, ८८, ८९, ९०, ९१, ९२, ९३, ९४, ९५, ९६, ९७, ९८, ९९, १००

४ ५५, ५६, ५७, ५८, ५९, ६०, ६१, ६२, ६३, ६४, ६५, ६६, ६७, ६८, ६९, ७०, ७१, ७२, ७३, ७४, ७५, ७६, ७७, ७८, ७९, ८०, ८१, ८२, ८३, ८४, ८५, ८६, ८७, ८८, ८९, ९०, ९१, ९२, ९३, ९४, ९५, ९६, ९७, ९८, ९९, १००

अपनी स्थिति की व्यजना स्वयं अपन शब्दा में इस प्रकार करती है
 कवियक भूपडा होई मसाण ।^१

कवि की कल्पना-सा सुन्दर महल शमसान-सा हो गया है ।

'माह' में समस्त मृष्टि अत्यन्त शीत से काप रही है किन्तु मदार के वन के
 समान विरहिणों का हृदय भी जल रहा है

माह माम पडयो अतिसार ।

जल थल महीयल सुहू कीया छार ॥

आक दयत्ता वन दह्यो ।

आली माहि थो दाघउ छइ गात ॥^२

विरहिणी को लगता है जैसे फाल्गुण की वायु ससार को जला रही है
 सखी बाव फरूकती जाइ ससार ।^३

चत्र में सबको होली के वातावरण में रगा देख राजमती विकल हा उठती है ।
 सब ओर मुखी वातावरण से घिरे रहने पर व्यक्ति के लिए अपने मुख का अभाव और
 तीव्र हो जाता है

चत्र मासा चतुरगी नारि ।

प्रीय विणु जीवू कवण अघार ?^४

वसाख में अनाज पक गया, पानी सीला-सा हां गया, पान भी पकने लग, किन्तु
 राजा पराए द्वार पर घोड़े की लगाम थाम धूम रह है ।

फिर जेठ आया, बिना जलाए ही दावान्न जलन लगी । धरती पर पर नहा रखा
 जाता

धरती पाई न दणउ जाई

अनबलई दव परजलई ॥^५

इस तरह दस वष बीत गए । ग्यारहवें वष राजमती ने मखी से कहा

आगुली गीणता दिन गया ।

काग उडावता दूपइ छइ वाह ॥^६

"विरह की अवधि के दिन अँगुली से गिनते गिनते व्यतीत हो गए । काग उडाते-
 उडाते बाँह दुख गई ।"

१ बासलदव रासो तृतीय संग, पद १०, सम्पादक—मलयज वन बसा नागरी प्रचारिणी सभा

२ वनी, पद ११

३ वहां पद १३

४ वही, पद १३

५ वही, पद १६

६ वही, पद २३

तब पंडित क द्वारा राजमती न राजा के पास सदेश भेजा ।

पंडित न रानी का विरह-दशा का जो वणन राजा से किया है, वह भी अत्यन्त मार्मिक है

पूलह की बडा मीयल जजीर ।

जावन राखी चोर ज्यू ॥'

कुल मयाग की उड़ी तथा गील अर्थात् लज्जा की उसन जजीर बनाई है। इसी से उान यौवन के चार का पकड रग्या है ।

यम तरह राजमती का विरह काफी मार्मिक है। विरह में व्यतीत हुए बारहा मासा में नाह की निगहिणी न प्रकृति का काफी निकट से दखा है। उदनीपन रुद्धियन नहा है स्थान स्थान पर उनमें नवीनता मिलती है—घनाज पक गया, पानी सीला-सा हा गरी पान भी पक गा ।

पध्वीराज रातो में प्रयास विरह के दा मुख्य स्थल है। एक तो पध्वीराज की वनोज यात्रा के समय उनका प्रवत्स्यपतिका रानिया के द्वारा उनका रोकन के प्रयत्न स्वप्न २१व समय में दूसरा मयागिता विवाह के उपरांत पध्वीराज के गौरी से माचा लन जान के समय ६६व समय में ।

पहन में वनोज जाने के लिए प्रस्तुत राजा इच्छनी के महल में सम्मति लन के लिए गत है। वह श्नु वणन करके उनसे रदन के लिए प्राचना करती है। उम समय बसन्त श्नु है

नररि अर फुल्लिना उदर रयनीय दिध दाम

नरर भाव भुलन भ्रमत मकरदव सीन ।

बहन वान उभनति अति विरह अगनि विध

कुह कुहन बल वठ पत्र रापस रति अगिय ।

पय लगि प्राणपति बीनबो, नाहनह मुभ चित धरहु

गिन गिन धवडि जुवजन पटय वत बसन्त न गम करहु ॥'

इच्छनी की प्राचना सुनकर पध्वीराज रदन जात है और दूगरी रानी की माचा लन के लिए अगती श्नु में उनका मूल में जात है। वह भी श्नु का वणन करके उन्हें जान में रोन नुखा है। इसी तरह श्रीधम वर्पा, सरद हुमत, गिगिर सत्र श्नुएं एक एक रातो में महल में निपत जाती हैं।

इन श्नु वणनों में हम श्नुधो की विपत्ता के साथ यह उल्लेख बराबर मिलता है कि प्रिय में सयुक्त सुगी क्या है और विरही दुखी क्या। गिगिर वणन में रानी कहती है

१ कनक ४ पृष्ठो १११ व ११२, पद ५२

२ १५ पृष्ठो १११, पृष्ठ ५२८, सम्पादक कश्मिराव साहनसिंह

आगम फाग ध्रुवत, कत सुनि मित्त सनेही ।
 सीत अत तप तुच्छ, होइ आनन्द मन ग्रही ॥
 नर नारी दिन रन, नन मदमाते डलन ।
 सकुच न हिय छिन एक, वचन मनमाने बुल्ल ॥
 सुनी कत सुभ चित करि रयनि गवन किम कीज्जिय ।
 कहि नारि पिय विन कामिनी, रिति ससिहृ गज्जिय ॥^१

पश्वीराज की प्रत्यक्ष रानी रति के लिए आह्वान करती है। राजा अपना जाना मत कर दते हैं।

प्रवास विप्रलम्भ का दूसरा अवसर मयागिता के विवाह के पश्चात् है। महाराज के राज आनमणवारी गौरी से मोचा लेने जा रह हैं मयागिता के जीवन का यह नाम मिलन और प्रथम वियोग है। इस स्थल पर कवि ने मयागिता की दिगा कत बडा मय चिन खीचा है

नप पयान पोमिनि परपि, घटि साहस घटि एक ।
 सुकथ केलि पियूप पिय, जतन करहि मपि केक ॥
 जतन करहि सखि केव लय करि जय-जय जपहि ।
 दन कष्ट कर मिडि, यरकि धरहर जिय कपहि ॥
 इह प्रयान नप करत, परी सजागि धरा धपि ।
 सपी करत सब जतन, चलत पयान तहौ नप ॥६७॥^२

राजा जा रह हैं, यह जानकर उस पयिनि (मयागिता) का साहस एक घडी म गया। सखियों के उपचार का कोई प्रभाव न पडता था, आह शब्द के साथ भुह से न जय बोलती थी, कष्ट से दात बढ हो गए। शरीर धराता और हृदय घडकता था। रति के प्रयाण करते ही मयागिता भूमि पर गिर पडी। व्याधि, उन्माद, जडता वषयु र मूच्छा अनुनावा तथा सचारियों का धनन वहा मयागिता का विरह दसा की सुन्दर जना कर रहा है।

जब पश्वीराज के प्रयाण का घेतक घडियाल बजा, तब—

दुतिया चढ पुनिन जिर्म, वर वियोग बडि बाल ॥^३

द्वितीया का चड्रमा बडकर जसे पूर्णिमा के रूप मे परिणत हो जाता है, वस ही मयागिता का वियोग बडा। नयन अन् स हो गए और वह मूर्च्छित हाकर भूमि पर गिर डी

पश्वीराज रासी, पृष्ठ ५८६, सम्पादक कविराज मोहनमिह
 सविप्त पश्वीराज रासी, पृष्ठ १३६, सम्पादक हजारीप्रसाद द्विवेदी तथा नामवरमिह
 बही, १२७

नही सूर सामंत परिवार दस,
 नही गज्ज वाज भण्डार निलेस ।
 नही पगजा प्रान ते अत्ति प्यारी,
 नही गोप महिला, इत चिनसारी ।
 नही भगनयनी चरन तलास,
 नही कूक काका सबद् उलास ॥^१

अतीत के वैभव विलास के साथ प्राणप्रिय रानिया की स्मृति भी राजा को चोटी है। इसको अतीत में प्राप्त उपलब्धिया के अभाव का रदन ही कहा जा सकता है, किसी विगिष्ट प्रिय व्यक्ति के अभाव की विरह वदना नहीं। सकडा रानिया का अत पुर म छोडकर आन वाले सामन्ती राजा से इसने अधिक आशा भी नहीं की जा सकती।

करण विप्रलम्भ

विद्यापति की राधा के विरहको यहाँ वियोगावधि के अन्त होने के कारण 'करण विप्रलम्भ' के अन्तगत लिया गया है। कृष्ण मथुरा चले गए। राधा सखी से कहती है

सखि मोर पिया ।

अबहु न आओल कुलिस हिया ॥२॥

नखर खोआओलु दिवस लिखि लिखि ।

नयन अघाउल पियापथ देखि ॥४॥^१

सखि मेरा प्रिय वज्र-हृदय है। अबधि के दिन लिखते लिखते नाखून घिस गए, प्रिय का पथ देखते-देखते आँखें पथरा गई।

नभी स्वप्न का क्षणिक मिलन राधा की व्यथा को तीव्रतम बना जाता है

सपनहु सगम पाओल

रग बढाओल रे ।

से मोरा विहि बिषटाओल

निन्दआ हराएल रे ॥६॥^१

स्वप्न में कृष्ण से रग बढ़ रहा था कि विधाता ने बाधा डाल दी, नींद नष्ट हो गई।

विद्यापति की पदावली में धारहमामा रुद्धिगत ही है, उद्दीपन रूप है, कोई विगय नवीनता नहीं है।

अन्त में विरहिणी राधा का वणन विद्यापति इस प्रकार करते हैं

१ सङ्घित पृष्काराज रामो पृष्ठ १४४ सम्पादक इजाराप्रसाद द्विवेदी तथा नामवरसिंह

२ विद्यापति का पदावली, पद १६४, सम्पादक रामवृक्ष बेनापुरी

३ वडा, पद १६३

लोचन नीर तटनि निरमान ।

वरण कलामुक्ति तथिहि मनान ॥२॥^१

“घाँवा के नीर की नयी का निमाण बरव राधा उसी में स्नान करती है।
विद्यापति की राधा का विरह स्वयं एक स्वतंत्र चित्रण का विषय है। अतः उसकी
मासिकता का विस्तार में न जाकर यहाँ बचन संक्षेप मात्र किया है।

नवितकाव्य में विरह भावना

साहित्य में युग-युग में अभिव्यक्त विरह भावना का अध्ययन विवेचन करते समय हमें यों ही कि नर-नारी के महज सम्बन्ध में परिस्थितिवश अवरोध उत्पन्न हुआ जान पर पान का रूप उगमगम नहीं रहता है जो प्रारम्भ में था, अर्थात् ऋग्वेदिक काल में (प्रारम्भ उमका अतिवृद्ध है क्योंकि वही मानव की भावनाओं का प्रथम लिपिबद्ध प्रमाण है)। इसी की ११वीं १२वीं शताब्दी तक भारत में परिस्थिति कुछ कुछ परिवर्तित हो गई थी। निरंतर हाते हुए विदेशी आक्रमणों के विप्लव में भारतीय जन-जात का हानि-हानि का जीवन जीते रह सक्ता था ? १४वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक इन परिवर्तित हालातों में परिस्थिति का रूप पदान्तर स्पष्ट हो गया। उस कठिन काल में नर-नारी का परस्पर उ मुखी भाव न रहा होगा यह तो नहीं कहा जा सकता किन्तु यह प्रत्यक्ष है कि जीवन की गणभंगुरता के भाव में मानव के मानस का पूर्णतः अभिभूत कर दिया और इन निरन्तर स्वाभाविक प्रति के प्रति भी विरक्ति का विषय बीज उगम लगा। दृग-पान के प्रारम्भ के माय नर-नारी के सहज प्रेम की अभिव्यक्ति नुपत ही होती दिखाई पड़ती है।

अपने का किमी के अस्तित्व में विलीन करने के माग में जब अवरोध उत्पन्न हुआ तो भावुक का मानस विद्रोह करने लगा। वह किमी एम की राज करने का आतुर हो उठा जो पादिका की नीति नदर न हो, जिसमें समाकर उसकी भावनाएँ गांधवत हो जाएँ और घन में उसे वह भिन्न भा गया। बलपना के सौख्य में भावुक ने आतुर प्रिय प्रार्थना के प्रति अपनी भावनाओं का प्रेषित कर दिया। कुछ न सगुण साकार की बलपना की जो मानव की नीति भावनाओं का आत्मन प्रदान करने हुए भी अनदर का घोर पुद्ग ने अपने प्रिय के विनयव्यापार रूप से स्वयं को सन्तुष्ट करते हुए उन किमी रूप में शामिल करना अनुचित समझा। किमी व्यक्तिव में सीमित न होकर पर भी निराकार के उपासना का प्रिय धरूप न रह सका, उसका रूप बना यह एक रहस्य है। मन की भावनाओं का आत्मन चाहिए इच्छातिष्ठे कभी जम निगुणिया का प्रियतम भा भावना की लक्षणा में सगुण सम्पन्न मानव का अतीन्द्रिय रूप धारण करने को बाध्य हुआ। भावना के घोर प्रथित अनिरक में यह अतीन्द्रिय भी न रह सका और कभी पुकार

व दिन कव आबहिगे माइ

आ कारनि हम दह धनि है मिलियो अग लगाई ।^१

इस युग के निगुण उपासका में एक और खीर और उनकी परम्परा है, दूसरी और जायसी प्रभृति सूफी कविया की। सूफी साधकों ने लोक में प्रचलित कथानुमा के प्रवाह में आध्यात्मिकता का रंग भरने का प्रयत्न किया है। प्रवृत्ति के प्रवाह में प्रेम और विरह की अनक अभिव्यक्तियाँ इनके काव्य में उपलब्ध हैं। अपनी सब विरहानुभूतियाँ को यद्यपि ये सूफी साधक आध्यात्मिक बताते हैं किन्तु कुछ इन गिन शब्दों को छाड़कर उसकी आत्मा 'नैतिक' ही प्रतीत होती है। इसी से मध्ययुग के विरह-साहित्य का इस धारा का इस काल में अतन्त्र रखकर भी उसका विवचन यहाँ पथक रूप से किया गया है। सूफिया के प्रतिनिधि कवि जायसी हैं अतः उनके पद्यात्मक के विरह विवचन के द्वारा हम परम्परा के काव्य की विरहानुभूति की प्रकृति को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है।

पूराराग

पद्यावत—जायसी के पद्यावत में पूवराग कई स्थानों पर मिलता है। इसका प्रथम दिग्गान तब होता है जब हीरामन लोता रतनसन से पद्यावती का रूप-गुण बणन करता है। रतनसन का प्रेम स्वयं जायसी के अपने शब्दों में भ्रमर का प्रेम था, उमम एकनिष्ठता का अभाव था। उमम रूप का लोभ कह सकते हैं।

हीरामन जा कँवल बखाना । मुनि राजा होइ भँवर भुलाना ॥^२

× × ×

कहू सुगध धनि कम निरमनी ।

भा अनी सग कि अवहा कली ?^३

पद्यावती के दान के बाद प्रेम की पीड़ा बढ़ गई

मसि नना, लिखनी बरूनी, रोइ राइ लिखा अकत्य ।

आखर दहै, न कोइ छव, दीन्ह परंवा हत्य ॥^४

नना (क अश्रु) की स्याही व पलकों की लखनी बनाकर जो पत्र लिखा गया था उसमें लिखा था

ननहि नन जा बधि गए, नहि निक्स व वान ।

हिए जा आखर तुम्ह लिखे, ते मुठि लीह परान ॥^५

नना के वाण विशिष्ट रूप से चुभ गए हैं। हृदय में जो अक्षर तुमने लिखे हैं उन्होंने मेरे प्राण ल लिए हैं।

१ कबार अ-बाबला, श्यामसुन्दरनास

२ जायसी अ-बाबला, पृष्ठ ८, रामचन्द्र शुक्ल

३ वही, पृष्ठ ३६

४ वही, पृष्ठ ६६

५ वही, पृष्ठ ६७

कहा नहीं अनिगपोनित भी है

पाता लिखा सबरि तुम्ह नाँवा । रक्त लिख आखर भए सावाँ ॥^१

तुम्हारा स्मरण करके जो पत्र लिखा है उसमें (हृदय के दाह के कारण) रक्त व लिख अक्षर श्याम बण के हो गए हैं ।

रतनमन का यह लोभ एकनिष्ठ प्रेम में तब हा परिणत होता है जब पद्यावता का साहचर्य प्राप्त कर लेता है । उस एकनिष्ठता का दिग्दर्शन तब होता है जब सिंहल के रास्त में पद्यावती व समुद्र द्वारा अग्रहृत होने पर तक्षमी उसका रूप धारण करके रतनमन व पाम प्राता है, और—

दखि मा कवल भवर होइ भावा । माँस लोह वह बास न पावा ॥

तब—

निरखत आइ लछमी दीठी । रतनमन तब दीही पीठी ॥^२

तक्षमा न कहा

हों राना पद्यावती रतनमन तू पीठ ।

तो रतनमन न उत्तर दिया

का तुझ नारि बठि अस रोई,

फूल साइ प वाम न माई ॥^३

रतनमन व पद्यावता का नाम जपने पर उसमें (पद्यावती में) जो विरह की पीड़ा उत्पन्न होती है, वह भी तक्षमी एक व्यक्ति के लिए नहीं है । वह यौवन मुलभ भावनाओं की उचलता ही है जो एत तक्षमी भी एव की उोज करती है जिह व अपना सब कुछ अर्पित कर गईं

कह यह और कवल रस लवा

आइ पर हाइ धिरनि परवा ॥^४

धाय व पूछन पर वह कहना है

परिउ अयाह धाय । ही जीवन उरधि गभीर ।

तहि बितबों चारिहू दिसि जा गहि लाव तीर ॥^५

यह रतनमन त्रिगुण की साज नहीं कर रहे थी । उसे किसी एव एस की आवश्यकता थी जो मोहन व उरधि में उबार लके ।

मान विप्रलम्भ

जायगी व पद्यावती में मान का प्रवकाश नहीं करायें ही था, क्योंकि रतनमन

१ ४१-११ प्रवकाश १४ १७ पंजाब, पुन

२ ४१, ५४ १०३

३ ४१ ५४ १०३

४ ४१ ५४ ७३

५ ४१ ५४ ७४

मारहू न सकुमार नद के कुमार ताहि
 ग्राय री मनावन समान सब तथिक ॥
 हसि हसि सोह करि करि पाय परि परि,
 कशोराय की सो जब रहे जिय जाकि कै ।
 ताहीसम उठे घन घार घोर, दामिनी सी
 लागी लौटि श्यामघन उर सा लपकि क ॥^१

प्रकृति का उद्दीपक रूप भी इस मिलन में सहायक होता है ।
 इष्यामान का भी अत्यंत सुन्दर उदाहरण कृपाराम के काव्य में मिलता है—
 इन्द्र धनुष सी पति अवरन को शोभा ।
 निरखि बधूमन उपजो पूरन शोभा ॥^२

पति की अधरकान्ति की शोभा इन्द्रधनुष के समान देखकर बधू के मन में क्षोभ उत्पन्न होने से यह ध्वनि निकलती है कि नायिका अत्यंत सभोग दुखिता है । पति के हाठ अत्यनामिका के काजल तथा अत्यंत प्रसाधन आदि के चुम्बन के कारण अनेक वष के हो गए हैं इसी से नायिका समझ लेती है कि प्रिय अत्यंत स्त्री के समाप होकर आया है और दुखी हो जाती है । रीतिकाल की इन उन्नतियों में ऊहा कही भी दृष्टिगोचर नहीं होती, सामंती युग की विवग-नारा के हृत्पथ की मार्मिक अभिव्यक्ति मिलती है, जो विद्रोह नहीं कर सकती केवल आह भर सकती है । ईर्ष्या का कारण मनोवैज्ञानिकों ने शक्ति या अभाव और विवसाता का अवलम्बन माना है जहाँ आहत व्यक्ति अपने को हीन अनुभव करते हुए पीड़ा पहुँचाने वाले को दण्ड नहीं दे सकता वही ईर्ष्या होती है । इसी कारण ईर्ष्यामान से पीड़ित नायिका का श्राध पति पर इतना नहीं होता जितना प्रतिपक्षी स्त्री पर होता है । पति के सम्मुख मान का अभिप्राय केवल अपने ग्रह को प्रतिष्ठित करने के लिए होता है और जहाँ उसकी भा आगा नहीं रहती वहाँ मान की अभिव्यक्ति नहीं होती, वह बसल मन का शोभ बनकर रह जाता है—

निरखि बधू मन उपजो पूरत शोभा ।^३

एक स्थान पर प्रिय के चित्रण में न सन्तुष्ट होकर पति बिताती हुई नायिका को नागि समझाती है—

आगिन सा बाँव अन्न ग्राह की न भागी भूख
 पानी की बहानी रानी प्यास क्या बुभाई है ?

१ २६० नो. १—रानि शगर (फराब), १५४ १४

२ ४६१, (हरातन), पृ ४ ३

३ ४६१ ५४ ३

ऐसे दिन ऐसे ही गँवावति गँवार कहा
चित्र देखे भिन्न के मिले को सुख पाई है ॥^१

यह रीतिकाल की विशेषता है कि कवियों ने शारीरिक पक्ष की अवहेलना नहीं की। वे भक्तिकाल के कवियों की भाँति अपारिधिव से प्रेम नहीं कर रहे थे जो पानी की कहानी' मान से सतुष्ट हो जाते अथवा उसके अतीन्द्रिय रूप को प्रेम करते। वे इस पथ्वी के जीव थे और हाड मांस से युक्त पथ्वी के जीवा से ही प्रेम भी करते थे। परम्परा युक्त राधा-कृष्ण शब्द को उहाने अवश्य अपनाया किंतु उनकी विशेषता इनके सम्मुख नायक नायिकाओं से तनिक भी अधिक नहीं है। इसे लोग अश्लीलता भी कह सकते हैं और यथार्थ भी किन्तु हमारी समझ में तो यह यथाय ही है। इतना अवश्य है कि यथाय जीवन के सम्पूर्ण चित्र को यह कवि आत्ममात नहीं करत उसके एक अंग मान को केवल लेते हैं।

एक मानिनी की अनुनय करते करते थककर सखी उसे समझाती है—

नाही अब सुख देत है केशव,
नाह सदा सुख देत रहैगो ॥^२

मान की 'नहीं' 'नहीं' का अर्थ तो वही करना पड़ेगा अथवा हँसी में रोना हो जाने का भय है। कहने का तात्पर्य यह है कि रीतिकाल में मान व उसकी मन स्थितियों के अनेक मनोरम चित्र मिलते हैं जिनमें इतिमता लगामान भी नहीं है।

रीतिकाल के प्रवास वणनों में कोई विक्षेप नवीनता नहीं है। प्रकृति का उददीपन रूप ही मिलता है। मिलन के समय की सब मुखद वस्तुएँ वियोग में दुखदाई हो जाती हैं—

आँखें मनभावने जे विविध विद्यावने जे,
सकल सुहावने डरावने स क गयो ॥^३

सूर की 'प्रिया विन सापिन काली रात की अनुभूति यहाँ भी मिलती है—

तुम विनु सूनी राति वारी साप ह्वै है खाति,
राति सेज देखि देखि छाती उमगति है ॥^४

कही प्रकृति भी विरही की समवेदना में कुम्हलाने लगती है। जायसी की ऊहा का प्रभाव यहाँ दृष्टिगत होता है—

प्यारी को परसि पौन गयो मानसर प जु
लागत ही और गति भई मानसर की।
जलचर जरे धौ सेवार जरि छार भई
जल जरि गयो पक मूकयो भूमि दरकी ॥^५

१ डा० नगेन्द्र—रीतिशृंगार (किराव), पृष्ठ १८

२ वही, (किराव) पृष्ठ १८

३ वही (गग), पृष्ठ ८

४ वही, (गग), पृष्ठ ८

५ वही, (गग), पृष्ठ ८

इस उद्घात्मक पद्धति के समक्ष रीतिकाल में ही अत्यन्त मार्मिक अभिव्यक्तियाँ भी मिलती हैं। ठाकुर की विरहिणी कहती है—

कवि ठाकुर कूवरी के बस हूँ
रस में बिस बावरो बो गया है।

मनमोहन को हिलिबो मिलिबो
दिन चारिक चांदनी हो गयो है ॥^१

ईर्ष्या भाव नायिका की असहाय अवस्था को और भी कचोट रहा है। बहुत रोने-घोने के स्थान पर वह अपने अन्वकारमय वर्तमान और भविष्य का यातना सहती हुई अतीत के उज्ज्वल क्षणों की स्मृति में डब जाती है—‘दिन चारिक चांदनी हो गयो है।’

विरह में एतना तो नाद नहीं आती और यदि आती है तो स्वप्न में प्रिय का दर्शन केन्द्रों को तीव्रतर कर जाता है—

सापन हो फुलवाई गई,
हरि एक भरी भुज कठन मली।

होँ सकुची कोउ सुदरा देखत,
जे जिन बाह सो बाह पहली ॥^२

यमण अभाव की पीड़ा को अधिक उद्दीप्त कर देते हैं—

ठाकुर भार भय गये नीद के।
दखहुँ तो घर भाँक अवेली ॥^३

प्रेमी की यही आशा विरह की पीड़ा को सहने की शक्ति उभारकर देती रहती है—

बाह अरे मन साहस छाँडत,
बाह उदास है दहू तज है।

जे मुख के दुख आये चले गये,
एक सी रीति रही नहिं रहे।

ठाकुर नाको अरोस कर हम,
या जग जालन भूल न एहे।

जानै सयोग में दीहो वियाग,
वियोग में सो का सयोग न दहै ॥^४

इस भाषा की प्रेरणा प्रेमी की एकनिष्ठता है जिसके विषय में ठाकुर कहते हैं—

१ शं० नर०—(पं० गार, (ठाकुर), पृष्ठ २०२

२ वरी, पृष्ठ २००

३ वही पृष्ठ २००

४ वही पृष्ठ २००

एक ही सो चिर चाहिए और ली
 बीच दगा कौ पर नहिं डाको ।
 मानिक सो मन बेचिके मोहन
 फेर कहा परखाइवा ताको ॥
 ठाकुर काम न या सबकौ
 अब लाखन म परवा नहै जाको ।
 प्रीति करे मैं लग है कहा,
 करिक इन और निबाहिवो वाका ॥^१

प्रेम पान के विपरीत होने पर प्रेमी उससे प्रेम करना नहीं छोड़ता, यह उसका दोष नहीं तो किसका है ?

कवि ठाकुर भूल कछु अपनी
 तिहि त तुम्ह दोष न दीजतु है ॥^२
 ठाकुर को सच्चे प्रेम की सफ़ाता पर पूण विस्वास है—
 कवि ठाकुर या निज भेद मुनो
 अरुभावत सो मुरभावत है ।
 परमेसुर की परतीत यही
 मिल्यो चाहत ताहि मिनावत है ॥^३

निष्कप रूप में कहा जा सकता है कि दरबारी वातावरण होने पर भी रीतिकाल की कविता में विरह का मार्मिक अभिव्यंजना का अभाव नहीं है। समय के प्रासादन तथा परम्परागत काव्य परम्परा के प्रभाव से अतिशयोक्ति पूण कविता भी हुई किन्तु वह उसके उज्ज्वल रूप को विस्मृत नहीं करा सकती।

१ ला० नगेन्द्र—रीतिशृगार (ठाकुर), पृष्ठ २००

२ वही, पृष्ठ २००

३ वही, पृष्ठ २००



द्वितीय सङ्क
विषय-विवेचन

प्रथम अध्याय

प्रारम्भिक आधुनिक हिन्दी-काव्य में विरह-भावना

आधुनिक युग का प्रारम्भ, युगचेतना और भारतेन्दुयुगीन कविता

ऐतिहासिक दृष्टि से आधुनिक युग का प्रारम्भ सन् १८५७ का नाति के साथ हुआ। १८५७ के विप्लव में भारत की जीण गण सामंती-व्यवस्था का गहरा धक्का पहुँचा। अंग्रेजों की प्रबल शक्ति के सम्मुख राजा, रईम, वादगाह और उमराव सब विखर गए और देश की सामाजिक व्यवस्था का एक नय गिरे में निमाण होना आवश्यक हो गया। अंग्रेजों ने एक ओर जहाँ भारत को पराधीन बनाया था वहाँ दूसरी ओर (अपनी सुविधा के लिए ही सही) नवीन यातायात और व्यवसाय के साधन डाक, तारघर, रेल आदि भी दिए थे। परिवर्तित परिस्थितियों के अनुरूप देश में एक नवीन व्यावसायिक बग का जन्म हो गया जो आगे चलकर मध्यवर्ग के रूप में विकसित हुआ। रेल, डाक, तारघर आदि के सहायक से अंग्रेज भारत में एक नए शासन स्थापित करना चाहते थे, वह उनकी स्वायत्त मित्रि का अस्व था। किन्तु यही अस्व उनके लिए घातक मित्रि हुआ। व्यावसायिक मध्यवर्ग में ही देशभक्ति के बीज उगे और बने जिनके विप्लव के कटु आस्वाद के समुद्र अंग्रेज अधिक दिन भारत में न रह सके, एक गताब्दी के समाप्त होते होते उह भारत छोड़कर जाना पडा।

यद्यपि १८५७ से पहन ही पश्चात्य प्रभाव भारत पर पयाप्त मात्रा में पड चुका था किन्तु इस नाति के पदनात शासन की वागडोर 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' के हाथ से निकलकर 'ब्रिटिश साम्राज्य' के हाथ में चली गई। इसमें पून अंग्रेजों का ध्यान राज्य-विस्तार का और ना अब विजित राज्या के पुनगठन और शासन-व्यवस्था की ओर गया। शासन की दृष्टि से अनेक नीतिपूण प्रयाग भारत में किये जाने लगे। सन १८५७ ई० की नाति हमारे इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। यद्यपि स्थूत्र दृष्टि से देश में से यह अनुभव होता है कि अंग्रेजों ने मुगल, मरहठा, अमीर, उमरावों का दबावर भारत का बडा उपकार किया, एकछत्र शासन के शातिपूण मुख-ममद्विमय राज्य की स्थापना की किन्तु वास्तविकता यह नहीं है। भारत का शासन अंग्रेजों के लिए बरदान मित्रि हुआ। उहाने उस अपन देश के धन-बन्धव का बचाने का साधन बना लिया। एक ओर जहाँ उहाने भारत के पुराने उद्योग धंधों का समाप्त किया वहाँ दूसरी ओर नवीन युग के

आविष्कार, 'कलयुग' की विशेषताओं से परिचित नहीं कराया। उनका मुख्य उद्देश्य भारतीय कच्चे माल का अंग्रेजी मिला म खपाने का था, यदि यह न होता तो नवीन मशीनों का परिचय से भारत में ही धन समृद्धि की वृद्धि हो सकती थी। भारतीय औद्योगिक पहल सामन्तो के परस्पर विग्रह से पांडित्य अथवा विद्वानों वस्तुओं की बाढ़ ने उह मिलकुल समाप्त कर दिया। मशीनों के बन हुए मस्त माल के सामुख बन ठहर सके, उहाने उद्योग के छोड़ छोड़कर खेती बाड़ी अपनाना प्रारम्भ किया किन्तु वहाँ भी बेरोजगारी का हा सामना करना पडा। कृषकों के पास उत्पादन के नवीन साधन न थे। ग्राम्य व्यवस्था अस्त व्यस्त हो गई। उनी माटी वस्तुओं के लिए भी भारत पश्चिम का मुह नारन लगा।

भारत-दु के व्यक्तित्व के प्रभाव से आधुनिक हिन्दी काव्य अत्यंत प्रोत है अतः उमक प्रारम्भक काल को भारत-दुका न कहते हैं। एक युग के अंत और दूसरे के प्रारम्भ का काइ तिथि निर्धारित करना अत्यंत कठिन काय है क्योंकि नवीनता के आगमन में पुरातन के अवगण अनायास ही लुप्त नहीं हो जाते किन्तु फिर भी नवीन में काइ विगणना रहनी है जा पुरातन में उसका सम्बन्ध विच्छेद कराती हुआ-सा प्रतीत होती है। यहा विगणना नारने दु के साहित्याकाश में अवतरित होन के साथ दिखाई देता है। इस युग में भारतीय जीवन और साहित्य प्राचीन परम्परागत रूढ़ियों को मोड़कर नवीन विधात के माग का खोजता हुआ दिखाई पडता है।

उम युग के प्रत्येक विद्वाने का नन्मुख यह स्पष्ट था कि अंग्रेज वाणिज्य वृत्ति से प्रेरित हैं व भारत के धन को लूट रहे हैं। उसका भित्तारी बना रह है। किन्तु गत-श्रिया में फली हुए राजनीतिक अराजकता की अवस्था के से मुख व अतक सुव्यवस्थित राज्य का वर्तमान समभव था। इसी से भारत-दु और उनके समकालीन प्रसिद्ध कवियों में भारत का आर्थिक अवस्था के प्रति अस्व-ताप और शोभ का भाव होते हुए भी राजसक्ति परावर मिलती है—

अग्रज राज मुख साज सब मुख नारी।

य धन विद्वान् चरि जात यहै अति स्वारी ॥

—भारते-दु

१८१७ की प्राति के विषय में भा उन्नीसवीं शताब्दी के इन प्रसिद्ध कवियों में अंग्रेजों के प्रति सद्भावना और नक्ति का भाव है।

सबप्रथम वाग्विलास के लेखक 'मदन' की कृति में हम इन प्राति का उल्लेख मिलता है। अतः आधुनिकता का राजा हरिश्चन्द्रसिंह जा तथा गोरीशंकरसिंह जी की प्रशंसा करते हुए सबक कहते हैं—

गुणगन व हरिया उभे दान मान के रूप।

परसाह अग्रज के मन मन सोहित रूप ॥

बोनइस स तेरा प्रगट सम्मत हो छितिकत ।
बलवा मे हाकिमन की करी सहाय अनन्त ॥^१

तथा

सुनतहि या विधि को समर पुसी भये अगरेज ।
पिलत सारटीफिक्ट हू दी-ह्यौ सहित मजेज ॥^२

सुप्रसिद्ध कवि प्रतापनारायण मिश्र का मत इस सम्बन्ध में देखना अत्यन्त आवश्यक है। नातिकारिया के प्रति मिश्रजी की कोई सहानुभूति नहीं है। वह इस विषय में अंग्रेजों की प्रशंसा ही करते हैं—

सन सत्तावन माहि जब कछु सेना विगरी ।
तब राजा दिशि ही रही सुदढ ह्व परजा सिगरी ॥
दुष्ट समुक्ति अपन भाइन वहाँ साथ न दीहा ।
भाजन दिन विद्रोहिन कर दल निरवन की हा ॥
ठोर ठोर निज घर लुटवाए अरु फुकवाए ।
प्राण खोय बहु त्रिटिश वग के प्राण बचाय ॥^३

वद्रीनारायण चौबरी 'प्रेमघन भी नातिकारी सिपाहिया का मुख बताते हैं और उनके दमनकर्ता अंग्रेजों की दयादृष्टि की सराहना करते हैं—

देसी मूढ सिपाह कछुक ल कुटिल प्रजा सग ।
कियो अमित उत्पात, रच्या निज नामन का ढग ॥
बन्यो देश में दुख वनि गई प्रजा अति कातर ।
फेरयो तुम तब दया दीठ भारत के ऊपर ॥^४

उपयुक्त उल्लेखों से प्रतीत होने लगता है कि उस युग में साधारण भारतीय अंग्रेजों के साथ था, वह नातिकारियों का मुख विद्रोही समझता था। इन कवियों के इन विचारों का देखकर आश्चर्य होता है। अंग्रेजों के प्रति प्रशंसा के क्या अर्थ य वह समझ में नहीं आता। डॉ० वाण्ये ने अपने प्रबंध 'आधुनिक हिन्दी साहित्य में उन अनात अंग्रेज कवियों का भी उल्लेख किया है जिनकी समवेदना भारतीय नातिकारियों के साथ थी, जिन्होंने स्पष्ट स्वरा में अंग्रेजी शासकों की भत्सना की है। तब क्या यह प्रसिद्ध कवि भी जनजीवन के साथ होकर अंग्रेजी विजेताओं को भत्सना नहीं दे सके यह स्पष्ट नहीं होता।

रायबरेली जिले के बजरग भट्ट न शकरपुर के राना बेनीमाधवसिंह की प्रशंसा करते हुए लिखा है

१, २ डॉ० लक्ष्मीसामरवाण्य—आधुनिक हिन्दी साहित्य, पृष्ठ २८१

३ वही, पृष्ठ २८१-२८२

४ वही, पृष्ठ २८२

हिम्मत को हाकिम हजारन में देखि आयो,
 खेदिके हटायो अगरेज हू सकाना है ।
 जाको तेज तीखन तपत महिमण्डल मे,
 हटिगे उलूक से न लागत ठिकाना है ।
 कहै वजरग वसवस अचतस भयो,
 कम्पनी विलाइत सकल बिललाना है ।
 नेक न डेराना छीन लीह्यो तोपखाना,
 वीर बांधे वीर बाना बस राना विरमदाना है ॥^१

एक अन्य कवि जालाराम ने भी बनीमाधव बक्ससिंह की प्रशंसा में लिखा है—

चण्डिका क चल बस लडत हैं अकेल फौजे
 आया लीना धेरि गोला खूब ही बजायो है ।
 मारे जनरल और कडनल को बंद की हो
 मारे कपतान गौरा भेट ही चलायो है ॥^२

श्री बाण्येजी के अनुसार कोटारा जिला इटावा में बुंदेला की मरदानी रानी की प्रशंसा में एक गीत इस प्रकार मिलता है—

खूब लडी मरदानी अरे भासी वाली रानी ।
 बुरजन बुरजन तोप लगाइ दइ, गोला चलाय अस्मानी ॥
 अरे भांसी वाली रानी, खूब लडी मरदानी ।
 मारे सिपाहिया को पडा, जलेबी आपन चवाई गुडधानी ॥^३

प्रसिद्ध हिंदी कवियाँ क इस विषय में मौन का कारण केवल यही समझ में आता है कि ये कवि मध्यम व्यावसायिक वर्ग के व्यक्ति थे। पिछली नौ शताब्दियों से भारत में व्यवसाय की क्षति से यक्षुच य अत १८५७ के पश्चात शांति के स्थापन का इन्होंने अभिनय किया। व किमी भी ऐसी बात का समर्थन नहीं करना चाहते थे जिससे उन्हें सांख्य क्षति पहुंचे। सिपाहिया के विद्रोह को वे भय की दृष्टि से देखते थे किंतु अंग्रेजों के व्यापार की कूटनीति से भी वह कम भयभीत नहीं थे। यह जानते हुए भी कि धन रक्षण जा रहा है स्पष्ट गानों में उम सासन का विद्रोह करने का साहस उनके पास न था।

इतना होते पर भी सामंती मरदानियों के अभाव पर लगे हुए इन व्यावसायिकों में प्रीति की नरजाग्रति का सा नवीन चेतना प्रस्फुटित होती गई जो समय पाकर भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन का रूप में अभिव्यक्त हुई।

१ दा० १८५५ में बाण्ये—आधुनिक हिंदी साहित्य, पृष्ठ २२३

२ वही, पृष्ठ २८५

३ वही, पृष्ठ २८६

१८५७ में जब भारतीय शासन की बागडोर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हाथ से निकलकर अंग्रेजी सरकार (महारानी विक्टोरिया) के हाथ में आई तो उसे सुव्यवस्थित रूप से चलाना आवश्यक हो गया। इससे पूर्व 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' अपने आधीन राज्या की व्यवस्था स्वयं-स्थान पर सैनिक बल से किया करती थी। अब मुगल सम्राट के पतन से राज्य का विस्तार बहुत बड़ा हो गया अतः विलायत से आया हुए कर्मचारियों से ही काम न चल सकता था। राज्य के विधान का मुचारू रूप से चलाने के लिए अंग्रेजों को अंग्रेजी पढ़े लिखे युवकों की आवश्यकता पड़ी। १८५७ में ही कई विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई। यह कार्य यद्यपि अंग्रेजों सरकार के हित के लिए किया गया था किन्तु भारतीयों को इसमें बहुत लाभ हुआ। अंग्रेजी पढ़े लिखे लोगों की सरकारी दिनोंदिन बढ़ने लगी। 'लाड मकाले' की दृष्टि भारतीय साहित्य के विषय में कितनी ही संकुचित क्यों न रहे हो किन्तु उनकी रिपोर्ट से अंग्रेजी भारत में शिक्षा का माध्यम बनी। इस नवीन शिक्षा को भारतीय मध्यवर्ग ने काफी अपनाया। अंग्रेजी साहित्य के प्रणयन और अध्ययन से नवयुग की जागृति और विज्ञान तथा स्वतंत्रता सम्बन्धी विचार भारत के उर्वर मस्तिष्क में धर करन लग गे।

उन्नीसवीं शताब्दी तक पहुँचते पहुँचते अधिकांश भारतीयों के धर्म 'हिन्दू धर्म' का रूप अत्यन्त विकृत हो गया था। रामा और कृष्ण की लीला के नाम पर मठों मंदिरों में कुत्सा और व्यभिचार पोषित हो रहा था। अतः हिन्दुत्व के रूप को सुरक्षित रखना आवश्यक हो गया था। सन् १८७५ में आयसमाज की स्थापना हुई जिसने धर्म और धार्मिक अधविश्वासा को छानबीन करके उनमें सुधार के मार्ग को प्रदर्शित किया। अंग्रेजी पढ़े लिखे युवकों में श्रीयुक्त राममोहनराय का नाम चिर स्मरणीय रहेगा। बाल-विवाह बहिष्कार विधवा विवाह व मती प्रथा उन्मूलन से उनका नाम अविच्छिन्न रूप से सम्बद्ध है। सन् १८७६ में मडम बल्लवटस्की और कनन अलकाट भारतवर्ष में आए और विद्योत्सोर्गिकल सोसाइटी की स्थापना की। इससे उन्होंने एक ओर भारतीयों को पाश्चात्य-विचार-दर्शन से परिचित कराया दूसरी ओर भारत की पान गरिमा क गौरव को भी उचित श्रेय दिया, श्रीमती ऐनी बेसेंट ने इस मत को और अधिक प्रोत्साहित किया। इन सबके फलस्वरूप भारत की प्रमुक्त आत्मा फिर से जाग उठी। विवेकानन्द जैसे महान् चिन्तकों का जन्म हुआ जिन्होंने भारतीय दर्शन और अध्यात्म का नए सिरे से वैज्ञानिक विश्लेषण किया।

उपयुक्त परिवर्तित परिस्थितियों में युग की चेतना का कविता में मुखर होना स्वाभाविक था। राजनीतिक सामाजिक और आर्थिक कारणों के फलस्वरूप उत्पन्न हुई इन सभी समस्याओं पर विचार और चिन्तन भारत-दुकालीन कविता में हुआ। भारत के दुःख दारिद्र्य और आर्थिक अवस्था पर क्षोभ, उसकी पराधीनता पर चिन्ता, राजनीतिक और शासन सम्बन्धी सुधारों की माँग तथा आपसी संगठन के लिए भारतीयों को प्रोत्साहन आदि के भाव भारत-दुकालीन कविता में स्थान-स्थान पर मिलते हैं।

सामाजिक कुरीतियों के उन्मूलन का प्रचार भी इस युग के कवियों ने किया। इन कुरीतियों में मुख्य थी जातिभेद, अविद्या, स्त्रियों की शिक्षाहीनता, विवाहों के समय का अपव्यय वगैरे विवाह बाल-विवाह और विधवा विवाह निषेध। भारत दुकालीन कवि भारत की वर्तमान दुदशा का नाम भारतीयों को कराकर उनमें प्राचीन गौरव के भाव जगा रहे थे माय ही मातृभाषा के प्रचार का महत्त्वपूर्ण कार्य भी कर रहे थे।

किन्तु जसा कि पहले कहा जा चुका है इन कवियों ने अंग्रेजी सत्ता का स्पष्ट निरास नहीं किया न ही विद्रोहियों के प्रति सम्बन्धना के भाव प्रकट किए। इसका कारण सम्भवतः अंग्रेजी सत्ता का अत्यन्त भी रहा हो जसा कि भारत-दु के इन शब्दों से स्पष्ट होता है—

कठिन मिपाही द्रोह अनल जा जलबल नासी।
जिन भय सिर न हिला सकत कहूँ भारत वासी ॥^१

—भारते वृ

भारत की दुदशा के प्रति ये कवि सजग थे, स्वतन्त्रता के भाव भी इनमें थे किन्तु इनकी स्वतन्त्रता का अर्थ ब्रिटिश शासन का निष्कासन नहीं था प्रत्युत अंग्रेजों के अधिकार में रहकर ही ब्रिटिश साम्राज्य के स्वतन्त्र नागरिकों के अधिकारों को प्राप्त करना था। अंग्रेजों को निकालकर १८५७ से पहले की अवस्था में दशा की पुनरावृत्ति नहीं चाहते थे। अतएव अवसर उपस्थित होने पर भारतीय जनता की माँगों को सरकार के सम्मुख उपस्थित करते थे साथ ही जुमली, राजकुमार आगमन, राजकुमार जयभारतव के समय प्रशस्ति-गीत लिखकर अपनी राजभक्ति प्रकट करते थे।

भारत-दुकालीन कवियों का युग चेतना के प्रति कृत 'मानसोपायन' के प्रारम्भ में भारत-दु के इस पत्र से अत्यन्त स्पष्ट हो जाता है—

'अंग्रेजोपम स्नेहपूजास्पद प्रिय कुमार

जय आपसे कुछ भी कहने की इच्छा करत हैं ता चित्त में वस विविध भाव उत्पन्न होत हैं। कभी भारतवर्ष के पुरावत्त के प्रारम्भ काल से आज तक जा वने बड़े दृश्य यहाँ बीत हैं और जो महायुद्ध, महागोभा और महादुदशा भारतवर्ष की हुई हैं, उनक चित्र नेत्र के सामने लिय जात हैं। कभी हि दुदशा की दशा पर करुणा उत्पन्न हानी है कभी स्नेह कहता है कि हाँ यही अवसर है खूब जो खालकर जा कुछ हृत्पत्र में बहुत काल से भाव और उद्गारसंचित हैं उनका प्रकाश करा। पर साथ ही राजभक्ति और आपका प्रभाव कहता है कि गबरदार हृद से आगे न बढ़ना, जा कुछ विनती करना बड़ी नम्रता और प्रमाण के साथ। इधर नई रोगीनी के शिक्षित युवक कहत हैं— 'मिली-बरा वा जगदीश्वरों'। मुनत-मुनत जो थक गया, कोई मस्तिष्क की बात कहो। उधर प्राचीन भोग कहत हैं हमार यहाँ ता 'सर्वत्रेवमया नृप' लिखा है जितना बन सब इनका भार करो। जितने यहाँ के बाघी इतने मूढ़ हैं कि इन बातों को धन तक जानत ही नहीं। जाने

ही से, हजारों वर्षों से राजमुख से बचित हैं। आज तक ऐसा शुभ सयाग आया ही नहीं कि आप सा सुखद स्वाभी इनके नत्रगाचर हो। इसी से तो आपको आगमन से इनका क्या आनंद हुआ है वह कौन जान सकता है। प्रिय! हम सब स्वभावसिद्ध अभक्त हैं। बेचारे छोटे पद के अग्नेजा का हमारे चित्त की क्या खबर है य आपनी ही मन छानक पकाने जानते हैं। अतएव दाना प्रजा एकरस नहीं हो जाती आप दूर वस मारा चित्त देखने वाला कोई नहीं बस ठुट्टी हुई। आपको आगमन के कवन स्मरण से दय मद्गद और नेत्र अनुपुण हमी लगा के हो जाते हैं और सहज में आप पर प्राण रोछावर करने वाले हमी लोग हैं क्योंकि राजभक्ति भरतखंड का मिट्टी का सहज गुण पर कोद कलेजा खोलकर दखन वाला नहीं।

जिस तरह आप अनक कौतुक देखते हैं कृपापूर्वक इस प्रजा के चित्त की आतमी शीघ्र से (क्याकि वह आपके वियाग और अपनी दुदगा से मतप हो रहा है) बना हुई सररीन का भी सर कीजिए और उस परिश्रम का क्षमा कीजिए जा इसक मन में हो क्याकि हमन तो चाहा कि थोडा लिख और यह बहुत थोडा ही है पर आपको प्रेम देने का बहुत है।

१ जनवरी, १८७७ ई०

हरिश्चंद्र^१

युवराज की प्रशस्ति में भारतेन्दु गाते हैं—

बहुत दिनन की मूखी डाढी, लीना भारत भूमि।
लहिहै अमत बप्टि सो तुव पदपङ्कज चूमि ॥
जेहि दलमल्यो प्रवल दल लक बनुबिधि जवन नरेस।
नास्यो अरम-अरप सबहिन के मारि उजारयो देस ॥^१

—भारतेन्दु

इनसे स्पष्ट बात होता है कि औरगजब तथा उत्तरकालीन मुगल सम्राटों के साम्राज्य में भारत की प्रजा सुखी नहीं थी अतः उसने अग्नेजा का स्वागत किया। भारत की दुदशा से ये क्षुब्ध थे और इनको अग्नेजा से बड़ी आशाएँ थी जो अक्सर आनंद पर यत्र तत्र प्रकट हो जाती थी।

इस प्रकार आधुनिक हिंदी कविता के प्रारम्भिक काल में राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक स्थितियों के फलस्वरूप नवीन विषयों का आगमन हो रहा था। समष्टिगत स्तर पर भारत की दुदशा स्त्रियों की शिक्षा, बाल विवाह विधवा विवाह बहिष्कार आदि सामाजिक कुरीतियों पर प्रकाश डालती हुई अनेक रचनाएँ हो रही थी और इन सबमें सुधार का आग्रह भी था। भारतेन्दु कालीन कविता भाव में अधिक विचार प्रधान है अतः समष्टिगत स्तर पर यद्यपि युगचेतना के फलस्वरूप उत्पन्न प्रभाव

१ अजरलगात—भारतेन्दु अथावना, दूसरा भाग, पृष्ठ ७२१-२२

२ बही, पृष्ठ ७२३

काफी स्पष्ट था कि 'तु वयक्तिक क्षेत्र में इन विचारों को जीवन की विविध परिस्थितियों में मान कवि नहीं गूँथ सका। वयक्तिक स्तर पर रची गई कविता का रूप परम्परागत ही रहा।

गुगल के क्षेत्र में रीतिकालीन प्राचीन परिपाटी का अनुसरण ही कवि न किया गया और कृष्ण की गृहार-लीलाएँ ही काव्य का विषय बनती रही। भारतीय पुराणों का रवा 'निहान' में से कवि उन स्थलों को न चुन सका जो स्त्री-पुरुष के वयक्तिक सम्बन्धों के भाव-नय युग के जागरण का भी मुखर कर सकतें, जसा कि आग चलकर द्विदशकाल की कविता में हुआ। न ही पौराणिक चरित्रों में युगानुकूल कोई मौलिक परिवर्तन हुआ। अतः भारत-काल की गृहार-सम्बन्धी रचनाएँ अपने युग से बिलकुल असम्पक्त पुरानी परम्परा का प्रतिध्वनिमान रह गई। जीर्णविशेष इस कविता में यदि कहने को कोई मौलिकता है तो क्या सम्बन्धी है भाव-सम्बन्धी नहीं। कला के क्षेत्र में नय छ-दो—न जला विरहा मलहार आदि का समावग लाकगीता के आचार पर और रखता तथा गजल कानिर्माण उन् के प्रभाव से हुआ। भाव के क्षेत्र में प्राचीन परिपाटी का अनुसरण ही माना रहा।

आधुनिक युग में उत्तर मध्यकालीन विरह भावना का अवशेष (भारते दु युग)

भारत दु युग के मासकृतिक जागरण सम्बन्धी विवेचन से स्पष्ट है कि १८५७ के स्वतंत्रता आन्दोलन रूपी जाति के भूचाल ने प्राचीन रूढ़ियों की नींव पर खड़ी सामंती दमनता को ढा दिया था। समाज की सृष्टि का नवीन सिरस निर्माण आवश्यक हो गया था जिसकी दमनता को बनाने के लिए भारत की चूना मिट्टी के अतिरिक्त पश्चिम का ताँहा प-स्टील भी अनिवार्य हो गया था। कहने का तात्पर्य यह है कि नवीन विचार-परम्परा पश्चिम के सम्पन्न म-ध्याकर स्वयं को मुदढतम बना रही थी स्वतंत्रता के नवीन विचार भारतीय समाज की नींव में धर कर रहे थे, किन्तु उस भूचाल में भी यत्र यत्र जोण खण्डहर उच गए थे जहाँ पुराना चूना मिट्टी मूल सड रहा था। बख्तखर जहाँ एक धार अपनी पुरानी भव्यता और एखव्य के दिना का स्मरण दिलाते थे वहाँ दूसरी धार, उनमें रिहीन निजन म-ध्याकर अतीत के लिए रात-थे। न उनमें वह चमक थी न गान धोर गौरव। सामंती जीवन के अवशेष अत्यन्त हीन रूप में उपस्थित थे, वही-वहाँ पुरातन बभय रितास का आभाम उसमें मिल जाता था।

भारत-दु युग में कविता के यद्यपि विविध विषय जा रहे थे जसा कि मासकृतिक जागरण के विवरण में स्पष्ट है विदिया के प्रति आकांग, अपनी मुदगा और उसके गुणार के लिए आग्रह आदि। किन्तु गृहार-उम का न में भी उही सगी गती सामंती दमनता में बनना रहा इसमें नवानता उसका स्पग करके उज्वल न बना सकी। भारतीय गृहारी कवि अपनी मसृष्टि और इतिहास से कविता का विषय चुन सकता था, या उमक समाज धोर जाइन का परिवर्तित परिस्थितिया के अधिक धारु रूप बटना, उसको

वह नवीन विकास का पथ भी दिखलाने का प्रयत्न कर सकती था जसा कि आगे चलकर द्विवेदी युग में हुआ भी। भारत-मन्दु काल का शृंगारी कवि प्राचीन परम्परा से ही विषय सामग्री लेता रहा। कहीं-कहीं भक्ति साहित्य और अधिकांश रीतिसाहित्य उसकी कविता सामग्री के आभार बने। रीतिकाल में अलफार, छंद तथा शृंगार की विविध स्थितियों के विषय में काफी कुछ लिखा जा चुका था, अब उस तरह लिखने के लिए कुछ भी अवशेष नहीं रहा था। अतः जो कुछ लिखा गया वह परम्परा का पिष्टपपण मान रह गया। कजरी विरहा मल्हार आदि की उद्भावना अवश्य हुई कहीं-कहीं प्राचीनता के बभब का आभाम भी मिलता रहा। इस युग की शृंगारी कविता प्राचीन सीमती खण्डहरा में उठने वाली विलास की प्रतिध्वनि मान बनकर रह गई जिसमें कहीं कहीं बात स्पष्ट सा मुनाई पडता थी अधिकांश बुधली धी, उलभा सी अस्पष्ट और फीरी सी।

इस सम्बन्ध में डा० वाण्येय ने कहा है

अंग्रजी राज्य के विस्तार के साथ साथ कवियों को राजा-प्रय की प्राप्ति में कमी होती जाती थी। पादचात्य प्रभाव और दंग की दीन होने दंगा के कारण विद्वाना और मुदर समाज का ध्यान वृष्ण के कलि-कुजा की आर से हटकर भारत की पतितावस्था और अर पट भोजन न पान वाली पीडित और दरिद्र जनता की तरफ गया। ता भी रोवा अयोध्या, मुठालिया, रामपुर (जिला मथुरा), काशी हरिहरपुर आदि राजदरवारा और काशी मथुरा प्रयाग कानपुर आदि माहित्यिक केन्द्रों में शृंगार की रचना नवीन प्रभावों से बाहर रहने के कारण और कुछ माहित्यिक परम्परा के रूप में बराबर हो रही थी। कवि समाज (काशी) और रसिक समाज (कानपुर) जसी सम्थाया न भी प्राचीन परम्परा बनाए रखने की चष्टा की। स्वतंत्र रूप से समस्या पूर्तियां के रूप में कवि अपनी रचनाएँ करते थे। हिन्दी साहित्य के इस सन्नान्ति काल में प्राचीन परम्पराया से एकदम विमुक्त हो जाना आसान भी न था।^१

रीतिकाल में शृंगार का विशद विवचन हो चुका था। उस समय के कविया न अपनी प्राप्ति और स्तुत्य रचनाया से साहित्य के इस ध्रग की सवाग पूति करती थी। इसलिए इस काल के कविया को अपनी प्रनिमा का चमत्कार दिखाने का अवसर कम रह गया था। प्राचीन साहित्य का जो कुछ प्रभाव शेष रह गया था उसी के अन्तर्गत अब के कवि उमका पिष्टपपण करते रहे। परंतु इस पिष्टपपण में भी ब कोई विगप और महस्वपूण कला कौशन न दिख सके।

कुछ मुदर रचनाया को छोडकर यह साहित्य अपने प्राचीन गौरव में हीन और क्षीण रूप में हमारे सामने आता है।^२

भारते दुकालीन शृंगारी कविता के विषय में डा० वाण्येय का उपयुक्त मतलब ठीक ही है किन्तु उनकी इस बात में महमत नहीं हुआ जा सकता कि उन सन्नान्ति-काल

१ डा वाण्येय—आधुनिक हिन्दी साहित्य, पृष्ठ २५६ ५७

२ वही, पृष्ठ ३५६ ५७

म कवि का प्राचीन परम्परा में विमुक्त होना सरल न था। भारते दु युग यद्यपि प्राचीन और नवीन के बीच की कड़ी है किन्तु फिर भी उसका झुकाव नवीन की ओर अधिक है। इसीमें वह आधुनिक युग का प्रारम्भ भी है। इस युग का शृंगारी कवि भी युग समस्याओं से कंधे से ना मिलाकर चल सकता था यदि वह सामंती व्यवस्था के अयोग्य परिवारों के वातावरण से स्वयं को मुक्त कर लेता।

जा कुछ भी हा, कहने का तात्पर्य यह है कि इस युग के शृंगार और फलतः विरह भावना में पूर्व परम्परा की तुलना में कोई विशेष परिवर्तन दिखाई नहीं पड़ता। विरह भावना यद्यपि हृदय की वस्तु है अतः मूल में वह वही है जहाँ सृष्टि के आदिपुरुष और नागों में परम्पर आकषण का अनुभव किया था किन्तु फिर भी परिस्थिति प्रेरित परिवर्तन में अनुकूल उसका रूप बराबर बदलता रहा है। इस युग में भी बदल सकता था परन्तु उगा नष्ट हुआ। जहाँ तब विरह का सम्भव है भारते दुकालीन कविता का नाग आधुनिक काल से अधिक रीतिकाल से है।

विरह के पूर्वराग प्रथम और मान विभक्त अपने परम्परागत रूप में ही मिलते हैं। कर्ण विप्रलम्भ परम्परागत नहीं है किन्तु यत्र तत्र विश्वामघाती प्रिय के प्रति भी अनन्त प्रेम संज्ञान के रूप में मिल जाता है। मनोत्राणिक दृष्टि से उस एक पक्ष की उदासीनता के कारण उत्पन्न सम्भव विच्छेद की स्थिति कह सकत है। सम्भव विच्छेद में प्रेमी पक्ष प्रेम का प्रतिदान न पाने पर भा प्रिय की काल्पनिक मूर्ति हृदय में मजबूत रखता है और जन्म-जन्म में प्रिय से मिलन की कामना करता है। रीतिकाल में मान का काफी उणन हुआ है किन्तु भारत दुकाल में वह अत्यन्त विरल है। अविनाग विरह वर्णन इस युग में प्रवास व अन्तर्गत मिलते हैं जिनमें कहीं कहीं प्रापितपतिता के अनुभावों की सुन्दर अनुभूति तथा गकुल आदि का उस पर प्रभाव अत्यन्त सुन्दरता से लक्षित है। विरह के सम्बन्ध में पटञ्जल चारहमासा आदि का विनाग वर्णन भी प्राप्त है, उसका विवेचन विरह के विभिन्न भागों के अन्तर्गत न करके पथक रूप से किया गया है।

पूर्वराग

पूर्वराग में प्रेमी का मन प्रिय के अंग, गुण अथवा चित्र दर्शन आदि से उसके प्रति आमत हा जाता है। मिलन में पूर्व की दम स्थिति में मिलने की विवक्षता रहती है। प्रेमी का ऐसा प्रतीत होना है जहाँ उसका अर्थ ऊपर धन नहीं रहा। सम्पूर्ण विश्व प्रियमय ही दिखाई पड़ता है नत्र उसी का अर्थना चाहते हैं वान उसीका गुण अथवा करना चाहते हैं और विद्वान् उसकी कथा कहते तन्त्र नहीं होती। जब तक मिलन का कोई उपाय नहीं आए तब तक प्रेमी विवक्षता का अनुभव प्रेमी से होता है। उन्नी विवक्षना में प्रेमी अपने नेत्रों की तुरा बना रहता है जिनके कारण उसकी वह अशा हा गई है

मान कानि काहू की न आनत रछव उरनाज
नाज मानहुँ रगातल तन गए।

हारी हाँ सिखायत उठानत न क्या हूँ तोप
 एस ही कछुक छलद्य दन छले गए ॥
 द्विजदेव जा दिन त दरस दिखाय कहूँ
 अतिही निकट मनमाहन चले गय ।
 हाते जो हमार तो हमारी कही मानत री
 बीस त्रिसे आली मेरे नन बदले गय ॥^१

—द्विजदेव

“य मर नत्र किन्ही की लज्जा नहीं मानत, इनके हृदय की लज्जा तो जने रसातल को चली गई है। ममभाते-समभाते में थक गई किन्तु इह धय नहीं हाता न जान किस प्रपन्न क वग म य हो गए हैं। जिस दिन से वह प्रिय दिखाइ दिया है उसके निकट ही रहते हैं। हे मन्वी य नत्र अवश्य ही भ्रम भरे नहीं हैं यदि होत ता क्या मरा कहना न मानत ?

हरिश्चंद्र की नायिका प्रिय को सम्प्रोचित करके अपन नना की दशा का वणन दून प्रकार करती है

यह सग म लागिय डोल सदा, बिन देखे न धोरज
 आनती हैं ।
 दिनहु जो वियाग पर हरिश्चंद्र ती, चाल प्रल
 की मु ठानता हैं ॥
 बरूनी म थिरें न, भप उभप, पल म न
 समाइवो जानती हैं ।
 पिय प्यारे तिहार निहार बिना, अखियाँ
 दुखिया नहीं मानती हैं ॥^१

—हरिश्चंद्र

दुखिया अखिया का न मानना परम्परागत है परंतु नेत्रों की विकलता का सूचक “बरूनी म थिर न, भप, उभप हरिश्चंद्र की अपनी मौलिक उदभावना है। पलकों के स्वाभाविक गति में बद होने खुलन को भी आखें सहन नहीं कर सकती, निरन्तर एक-टक प्रिय की प्रतीभा में खुली रहती हैं, उसकी वाट जोहा करती हैं। प्रती ना करती हुई आखा की विकलता का अत्यन्त सजीव वणन है।

लज्जा की बेड़ी प्रिय को नत्र भर निहारने भी नहीं दती, प्रेमिका इसे तोड़ देना चाहती है—

१ द्विजदेव—हफाजुल्लाह खाँ का द्वारा विरह विषय के कवित्त व मन्त्रैशा ६२, पृष्ठ -२०

२ भजनराम बा० प०—भारतेन्दु प्रभावना (प्रेम भाधुरा), पद ४३

जरी ऐसी लाज, अब कौन काज जान आज
लखन न दीनो भरि नन प्राण नाथ को।^१

किन्तु रहाम तो पहल ही कह चुक है—

खर खून खासी खुशी बर प्रीति मद प्राण ।

रहिमन दाव न दर्जे जानत सकल जहान ॥

लज्जा चाह इसको कितना बचाटे मन में य अर्पण भाव चाह जितन छियाव
परन्तु क्या उस ससार की दृष्टि से बचा सकती है ? मेल परी बात, राजा रक जान लत
हैं और खवाइ बातें वनान लगत हैं

ब्रज में अब कौन कला बमिए, बिन बात हीचौगुनौ चाव कर ।

अपराध बिना हरिचंद जु चवाइन घात कुदाव कर ॥

पौन मीं गौन कर हो लरी पर, हाथ बडाई हियाव कर ।

जा सपनहू मिल नखालता सौतुस मय खवाव कर ॥^२

—हरिचंद्र

बिना अपराध के ही अपने वारे में गत बनाते दलकर मन का हियाव खुल जाता
है साहस बढ़ जाता है । विद्रोह करता हुआ मन कहता है कि जब वदनाम ही हो गए तो
फिर प्रिय से मिलन का उपाय करने में हानि क्या है—

नाम धरो मिनरा ब्रज तो, अब कौन-सी बात को साच रहा है ।

त्या 'हरिचंद जु औरहू लागन, मायो बुरो अरी सोऊ सहा है ॥

होना दुनी सुतो होय चुकी इन बातन में अब लाभ कहा है ।

लागै कलकहू अब लग नहि तो सखि भूल हमारी महा है ॥^३

'जब कलक लग ही गया तो प्रिय का सानिध्य मुख भी क्यों न प्राप्त किया
जाए ?' परन्तीया क मन की यह प्रक्रिया अत्यंत स्वाभाविक है । इसी से लोक लज्जा का
तिलाजलि देकर दु साहस से वह प्रिय से मिलन का उपाय करती है । मखी हितपो किरौं
का समभाना-बुभाना उस अर्च्छा नहीं लगता—

माहि औरन सा कछु काम नही, अर ता जा कलक लग्यो

सा लग्यो ।

रग दूसरो और चढ़या नही, अलि सारन रग रथ्या

सा रनो ॥^४

—हरिचंद्र

१ अत्रालाप— तरु-दु मन्थानो (धम माधुरी), पद ६०

२ १६१, पद २०

३ १६१, पद ११२

४ १६१, पद ११६

सखिया भी साचती है कि इसका तो दिमाग खराब हो ही गया है साथ हम भी क्या अपना करें, उसके पास आना जाना छोड़ देती है। किसी निकटतम सखी का मन नहीं माता। जब वह उसे समझाती है कि ऐसे पर पुरुष के साथ निरकुश धूमन से कलक लगता है तो यह खीझ जाती है, 'तुम्हें इससे क्या हम कुछ ही करे, यदि हम कलकिनी है तो तुम हमारे पास क्या आती हो ? न आया करो वही तुम्हें भी कलक लग जाए।

ही कुलटा ही कलकिनी हों, हमन सब छाड़ि दयो सब खोलीं ।
आछी रहौ अपने घर मे तुम, क्या यहा आइ करेजहि छोनी ॥
लागि न जाय कलक तुम्हें कहु, दूर रहौ सग लागि न डोलौ ।
वावरी हो जा भई सजनी, तो टटा, हमसे मति आइव वाली ॥^१

—हरिदचंद्र

पूरवराग में प्रेमी के मन में प्रेम का उद्दाम प्रवाह रहता है वह किसी प्रकार की बाधा भी सहन नहीं कर सकता। मा-बाप भाई बहन, सखी और सहली सब प्रिय के सम्मुख परायण हो जाते हैं। प्रेमी हृदय की इसी मनावृत्ति का सुंदर दिग्दर्शन भारतेन्दु के उपयुक्त पदा में होता है।

पूरवराग की इस स्वाभाविक अनुभूति के अतिरिक्त रीतिकाल की ऊहा वाली प्रवृत्ति भी भारतेन्दु काल में मिल जाती है। 'हफीजुल्लाह खा के हजारों में दिया गया किसी अनात नामा कवि का यह पद देखिए—

साइ मेरी बीर जोई लाव बसबीर ताहि दहो
दाऊ बीर मेरो विरह बँटाइले ।
नजन छपाकी पीर छपना छपाय पीर छपा कर छप
तो छपाकर छपाइन ॥
मदन लगेहै घाय घाय से कहौरी बाय
यरी मेरी घाय नक मोहूँ तन चाइले ।
देह मेरी थरथराइ देहरी चढो न जाइ दहरी
तनक हाथ देहरी नघाइल ॥^२

वही रीतिकालीन ऊहा है। मन में सिमिटकर रह जाने वाली विरह व्यथा की अनुभूति नहीं है, दौड़कर घाय को बुलान का आग्रह है। चंद्रमा मदन की अग्नि को अधिक तीव्र कर रहा है। दहरी नहीं लाधी जाती, कप दगा है, धबराकर पुकारती है 'अरे कोई मुझे देहरी तो लेंधवा दो। अनुप्रास और यमक के चक्कर में स्वाभाविक अनुभावा की ओर कवि ने ध्यान नहीं दिया है।

एक और स्थान पर एक कवि 'प्रणय मान को अत्यंत स्थूल अथ में संता है।

१ प्रेम साधुता, पद ६५

२ हफीजुल्लाह खाँ का हजारों—विरह सम्बन्धी कवित्त और मयैय पद ७, पृष्ठ ३०६

जरी ऐसी लाज, श्राव कौन काज जान आज
लखन न दीनो भरि नन प्राण नाथ को।^१
किन्तु रहीम तो पहले ही कह चुके हैं—

खर खून साँसी खुशी बर प्रीति मद प्राण ।
रहिमन दाब न दम जानत सकल जहान ॥

लज्जा चाहे इसका कितना कचाटे, मन मय अपने भाव चाह जितने द्विग
परन्तु क्या उस नसार की दृष्टि से बचा सकती है ? मल परी बात, राजा रक जान त
हैं और चबाइ वानें बनान लगत है

त्रज म अथ कौन कला बसिए, बिन बात हीचौगुनी चाव कर ।

अपराध बिना हरिचन्द जु चबाइन घात कुदाव कर ॥

पौन मा गौन कर ही लरी पर, हाथ बडाई हियाव कर ।

जा सपनहू मिल नदलाल ता सौनुस म य चबाव कर ॥^२

—हरिश्चन्द्र

बिना अपराध के ही अपने वारं में उगत बनाते दम्पक मन का हियाव खूब जाता
है गाहस बढ़ जाता है। विद्रोह करता हुआ मन कहता है कि जब बदनाम ही हा गए ता
फिर प्रिय से मिलन का उपाय करने में हानि क्या है—

नाम धरी सिगरा त्रज तो, अथ कौन-सी बात को साच रहा है ।

त्या हरिचन्द जु औरत लगन भायो बुरा अरो साऊ सहा है ॥

होनी हुती तुता हाथ चुकी इन बातन में अथ लाभ कहा है ।

सागै कलकह अर लग नहि, तो सति भूल हमारी महा है ॥^३

“जब कलक लग ही गया तो प्रिय का सानिध्य सुख भी क्या न प्राप्त किया
जाए ? परकीया के मन की यह प्रक्रिया अत्यन्त स्वाभाविक है। इसी से लज्जा को
विनाशित करने में वह प्रिय से मिलन का उपाय करती है। सखी, हितवी किय
का गमभाना-बुभाना उग प्रच्छा नहीं लगता—

माहि औरत सा बछु काम नहीं प्रय ता जा कलक लग्या

सा लग्यो ।

रग दूगरो और तइगो तहोँ घनि सागरा रग रग्या

सा रग्या ॥^४

—हरिश्चन्द्र

१ मदनमोह १—१११ २ मदनमोह (नम मा ३१) पं ६०

३ मदन, पं २०

४ मदन, पं ११२

५ मदन, पं ११३

सखिया भी साचती है कि इसका तादिभाग खराब ही हो गया है साथ हम भी क्या अपना करें, उसके पास आना जाना छोड़ देता है। किसी निकटतम सखी का मन नहीं माता। जब वह उसे समझाती है कि ऐसे पर पुण्य के साथ निरकुण्ठ घूमन से कलक लगता है ता यह खीझ जाती है, तुम्हें इसमें क्या हम कुछ ही कर, यदि हम कलकिनी हैं तो तुम हमारे पास क्या आती हो? न आया करो कहीं तुम्हें भी कलक लग जाए।^१

हो कुलटा हो कलकिनी हों, हमने सब डांडि दया सब खोली।
आँधी रहो अपने घर में तुम, क्या यहाँ आइ करेजहिं छोली॥
लागि न जाय कलक तुम्हें कहु, दूर रहो सग लागि न डाली।
बावरी हों जा भई सजनी, ताँ हटा, हमसे मति आइक बोलो॥^२

—हरिश्चंद्र

पूरराम में प्रेमी के मन में प्रेम का उद्दाम प्रवाह रहता है वह किसी प्रकार की बाधा भी सहन नहीं कर सकता। मा-बाप, भाई बहन सखी और सहली सब प्रिय के सम्मुख परायण हो जाते हैं। प्रेमी हृदय की इसी मनोवृत्ति का मुद्गर दिग्दर्शन भारत-दु के उपयुक्त पदा संहाता है।

पूरराम की इस स्वाभाविक अनुभूति के अतिरिक्त रीतिकाल की ज्हा वाली प्रवृत्ति भी भारत-दु काल में मिल जाती है। हफीजुल्लाह खाँ के 'हजारें' में दिया गया किसी अनात नामा कवि का यह पद देखिए—

सोई मेरी वीर जोइ लाव बलवीर ताहि देहों
दाऊ वीर भरो विरह रँटाइल।
नजन छपाकी पीर छपना छपाय पीर छपाकर छप
ती छपाकर छपाइल॥
मदन लगेहै धाय धाय से कहौरी धाय
यरी मरी धाय नक मोहूँ तन चाइले।
देह मेरी थरथराइ देहरी चढो न जाइ न्हरी
तनक ह्याय देहरी नषाइल॥^३

वही रीतिकालीन उहा है। मन में सिमिटकर रह जाने वाली विरह व्यथा की अनुभूति नहीं है, दौडकर धाय का बुलाने का आग्रह है। चंद्रमा मदन की अग्नि को अधिक तीव्र कर रहा है। दहरी नहीं लाधी जाती, कप दगा है धवराकर पुकारती है अरे कोई मुझे दहरी तो लेंधवा दो। अनुप्रास और यमक के चक्कर में स्वाभाविक अनुभावा की आर कवि ने ध्यान नहीं दिया है।

एक और स्थान पर एक कवि 'प्रणय मान' को अत्यंत स्थूल अय में लता है।

१ प्रेम भासुरी, पद ६५

२ हफीजुल्लाह खाँ का हजार—विरह रुम्ह या कवित्त और मवैय पद ७, पृष्ठ २०८

दूती नायक को एक धोर ता बताती है कि वह नायिका मकरद म डूबने से डरती है दूती धोर कहती है कि वह मान कर रही है। वस्तुतः स्थिति मान की न होकर पूवराग की मय दशा से है—

एक हनी सीनी पर एतप न एत मान भई
अनि दूतरी विरह ज्वाल जरती ।
पास धरा चदन मुवान ही बड़े ताप होती
जा समीर ता उसान न उमरती ॥
चान की रेग रत्न आभा अक्षसख मुतो
रगत जनन प न रहत जन रती ।
त्यावती गाविद अरवि की कनी में रावि
जा न मकर मीच डूबिवा उरती ॥^१

तबमो नायिका विरह ज्वाला में जनती हुई अत्यंत कृपाय ही गई है, चान ॥ गुण में शरीर का ताप बढ़ जाता है। समीर के स्पृश में साँस बन्द होन लगती है। चान की क्षीण रसायन ताप वह हा गद है किन्तु फिर भी मान करती है। प्रिय के ससग रूपी मकरद म डूबने में वह डरती है। 'यह स्थिति नायिका के मान की सूचना न देकर पुष्प के अंग की अतिमाता की सूचना देती है इसी में वह नायक के निकट आन में अभाव है। तिनू कामनायना उत सता रही है अतः नियोग की मिलने की अभिलाषा से अग्नि में जन-जनकर वह दुःखों का गई है, उपचार अच्छा नहीं लगता।

पूवराग में विरह में स्पष्ट है कि उसका दिग्दर्शन इस युग में परम्परागत है। रवि की भाव आहता के अनुसूय हरिचन्द्र के काव्य में उसकी प्रथिया का स्वाभाविक धोर मनायतिर चिपण हुआ है।

मान

श्री-पुष्प के उन्मुगी भाव में मान यह स्थिति है जब ईर्ष्या अथवा रिती धोर कारण रति पत्नी अथवा प्रिय प्रियामा के बीच में मन मुटाव हो जाता है। य दाना समीप रहने पर भी तथा हृदय में प्रेम का भाव हान पर भी एक-दूसरे से दूर दूर रहत हैं। प्रेम की परस्पर परिणति नही होती 'मा' धोर 'न' के नियमोचर रत्न से नायिका अथवा दूती का पत्र पत्रना करता है।

मान का वाक्यांतरिका न ही प्रचार का माना है प्रणय मान धोर इत्यादि। प्रारंभ में धारण में अथवा उगम पुष्टि हान में प्रणयमान होता है। मान के समय जब मन्तर करता हुआ पत्र ही वाक्यर रूपागत है तब प्रणयमान की स्थिति होती है। इसमें

^१ मकरद म डूबने का अर्थ है विरह निरान पद २६, पृष्ठ १० नरक की विषय का

^२ विरह में अभाव का अर्थ है अभाव में प्रेम का अभाव

^३ विरह में अभाव का अर्थ है अभाव में प्रेम का अभाव

मनुहार कर्ता पल के रूठ जान पर मान कता पय स्वय म पढ़ताता है कि मैंन मान क्या किया ? इस काव्यशास्त्रिया न प्रेम भाव का तीव्रता प्रदान करने वाला गुण बताया है।^१ इस स्थिति में मानकता प न म विरह-व्यथा का जन्म होता है क्योंकि प्रेम की एकात्मता के माग में बाधा उपस्थित होती है।

इप्यामान तब होता है जब प्रिय के किसी अय व्यक्ति में अनुरक्त होने से प्रेमीपण स्वय को हीन अनुभव करता हुआ अपन प्रतिपत्ति में दर्पणा करता है।^२ इप्यामान का चित्रण नायिका के पक्ष में ही अधिक होता है, पुरुष इप्या की व्यथा का सहन नही कर सकता वह प्रतिपत्ति में बदनाम का उपाय करता है। इप्या आहत व्यक्ति का दुःख विद्रोह ही है।

भारत-युग की नारी सामन्ती पुरुष के कठोर अक्रुण में सहमी हुई-सी प्रतीत होती है और इसीलिए वह दुःख विद्रोह भी पति के सम्मुख नही कर सकती। हरिश्चन्द्र की नायिका में स्त्री-मुलत्र इप्या और मान का पूण अभाव है। वह आहत होकर, मान-हानि सहकर भी प्रिय का कृपा की आकांक्षा ही करती है। सम्भवतः यह उस युग का प्रभाव है या जयपुर के विनास का नारा में बन्द नारी पराधीनता के दीन-हीन जीवन को ही अपनी निधि अपना मान अभिमान समझ बठी थी। परराधी पति का रापपूण तिरस्कार करने के म्यान पर वह उनके मामन विधिपाती है—

होँ ता तिहारे सुत्ता सो मुची,
मुम सों जहा चाहिए रन विताइए।
प विनती इतनी हरिचन्द
न रुठि गरीब प नोह चढाइए ॥
एक मता से किया तुम सा निन
साज न आव जा आप न द्राइय।
रुसिब सा पिय प्यारे तिहार
दिवाकर रसन हैं क्या बताइय ॥^३

अय स्त्री के माथ रात्रि व्यतीत करने वाले नायक का प्रातः समय अपनी प्रिया के पर पकड़कर मनाना नही पडता, वह अब भी नोह चढा सकता है तथा वह नोह न चपान की विनती करता है। इस प्रकार की उक्तिया का प्रेम का आहत होना कह या पराधीनता का जीवन का अग बन जाना ?

इप्यामान का क्षीण स्वर कहीं मुनाई भी पडता है तो वह भी पति के प्रति दीन विनय के अतिरिक्त कुछ नहीं है—

- १ विरह का काव्य शास्त्र में बाधा विवचन प्रथम अ माथ में दर्शाए
- २ प्रथम अ माथ में विरह का मनोवैज्ञानिक विवचन दर्शाए
- ३ दा० ना०—रात्रि शृंगार

तुम चारि याम रजनी के जागा ग्रान साथ
 हम विरहानल की ज्वालन सा जागती ।
 तू घरबसा ज तिहार घररसी प्यारे हम परबसी
 त्वहै तिनकी धौ कहा गती ॥
 मनन कवा द्रव्य नाल म महाउर की भोर ही ।
 निहारि और भार लगि जागती ।
 और ज हमारा लागी तुम सा अनाम साल
 तिन अथ प्राखिन की पलकें न लागती ॥^१

उम या की नारी अपन एकनिष्ठ प्रेम के अपमानवता को ताडना नहीं द मवता,
 यह काय की व्यस्तता में अपन हृदय के तडपत हुए भावा का मुला दना चाहती है—
 फसिब सा पिय प्यार निहारे,
 त्वाकर फसत है क्या उताइय ॥

दिन भी नहीं निरानना जा गहकाय की सलमता में अपनी व्यथा का भूल जाऊँ,
 गारा रात्रि गयाका यतात हान न निद्रारहित और भयावह-सी प्रतीत होता है।^१
 अप्यामान की यह विरह-व्यथा अत्यंत मामिग हृत्प्यस्पर्शी और असत्य है।

प्रणयमान के चित्र भी यत्र-तत्र उपनयन हात है उनका रूप परम्परागत ही है—

कणु दाउ गुनार्ई मगम करो सजनी रजनाद सवा नरे ।

कग राट के घुघट घाट करया बरल रूप त्पोर तनन करे ॥

एत्रि गानन प्रान पियार की हरि हियो हरक्या लगिब को गरे ।

रि मान गया पहिन निय का पिय को फिरि पाइन पानि पर ॥^१

नायिका मुग्धा है उम व्यथ ही तग करन के निण तायक कुछ उरा मला कहता
 है। "मरा प्रभाण गफन हो जाता है—नायिका रुठकर मुह पर लती है, घुघट की
 घाट में नरर उड़ जात है। किन्तु मान अधिन दर नहा ठहरना, यह प्रिय के गल से निरट
 जाता है जब उमर मरन स्वभाव पर मुग्ध उमका प्रिय पाँव पकड़ लेता है। मनुहार का
 प्रथमर हा उपस्थित नहा हाता। वही नायिका के हाथ और अनुभावा का बन्ध मुन्दर
 और मुक्ति का धन है।

एक और नायिका मान मगमर की अपनी दुष्ट बुद्धि का तागती है कि उउर
 कारण प्रिय के मरन व्यथ हा करह को। अब समन में नहा घाता कि प्रिय का कउ
 मनाए—

निगदि विमदि हिया कयकि कयकि उठतार

मरगामन न कदुया नीन जान सा ।

^१ हा म न हा म का ह म ग क ह म १ वा क व १०-११-२२, प ३ ३००

^१ १५-१६-१७-१८-१९, ११-१२-१३-१४-१५-१६-१७-१८-१९

एकता न लागे मुकुतान के अनेक हार बकस
 दराज काज रूप मा न साज सा ॥
 भवत कविद्र ऐसे नाह सा गुनाह विन किया
 मैं विगार धार टरे कहा टोने सा ।
 एरी तू कुमति मोमा कलह करायो अथ
 सुमह कराव कौन सावरे सलोन सा ॥^१

मनुहार करता हुआ प्रिय मनात मनात रूठ गया तब गव के कारण यह न मानी, अथ मिलन के माग म बाधा हा जान में अत्यंत व्यथित हो उठी है 'मुलह कराव कौन सावरे सलोन सा ।' प्रेम के क्षेत्र म यह मान मनुहार छाट माट भगड जीवन की एक स्वरता को भंग करते हैं, व प्रेम के नाथ को तीव्रतर करते रहन हैं ।

प्रवास

नायक के किसी भी कारणवश विदाग जाने को प्रवास कहते ह । प्रवास विप्र-
 नम्भ का हा सबसे अधिक वणन काव्य म हुआ है क्योंकि इमकाल की दीघ अवधि होने
 के कारण वियाग-व्यथा की विभिन्न दशाया का दिग्दान सम्भव होता है । काव्यशास्त्रियों
 ने इसे 'काय हतुक और 'शाप हतुक कहा है । एत तोमरा भेत् 'प्रणय हतुक भी हो
 सकता है जसा रत्नसेन का सिंहलद्वीप गमन था ।

पति के विदेश जाने पर ही नहीं किन्तु उसका समाचार मात्र सुनने से ही नायिका
 के हृदय म विरह-व्यथा उत्पन्न हो जाती है । प्रिय के मगन का भावी अभाव उसका
 उदान कर देता है—

जा दिन ते चाह मुनी नाह के गरनवारा तवही त
 सुधि खान-पान की विसारी है ।
 भवत कविद्र व गिगार आभरण टारे सखिन
 सा बोलनि हँसनि डारी चारी है ॥
 वज्रल कलित वाक दगन म आस फिर परी
 मनोमोननि कालिंदी धार कारी है ॥
 कौन सी भरम कह परम सजीली वाल
 मोन तपसीली खडी मोन म निहारी है ॥^२

नायिका को पहनना ओढ़ना अच्छा नहीं लगता, सखिया म हँसती-बोलती नही ।
 वाजन से युक्त उसके मन अधुआ म डूबे रहन हैं । वह अपनी व्याधा को प्रकट नहीं करती,

१ इनामल्लाह रा का इनाम पृ = ३ विरह म व था कवित्त श्रीर मवेवे पृष्ठ ३२७

२ इतीशुल्का रा का इनाम, विरोध रय के चुड़चुड़ाव हुए कवित्त सनेदी में, पर १००, पृष्ठ २५०

मोन तपस्विनी की तरह भवन में चुपचाप उस छिपाय रहती है।

रज पापम में बाधला में प्रायना करता है कि प्रिय के जान से पहले हा बरस जाए जिना वह अपना जाना स्थगित कर दे। किन्तु जब वह नहीं बरसने, जाने की बेला उपस्विन हा जाती है ता पुनः कर अपनी सखी से रहना है, य व्यव ही रजन के लिए घाए ह म उपनाए क लिए नहीं—

कह धर्ममह महाभारि म दखियत गरितनु दत
तो क्या बारिद कहाय है ?

नर सहाय नाम एकऊ न आए हाइ
रजन घाए मेरी गरज न घाए है ॥^१

निम्नलिखित पंक्ति में उद्धृत सुभाषित का अनुवाद में प्रतीत जाना है। यह भारतादु की रचनाया में मिनना है प्रवत्स्यपतिवा' का प्रिय क प्रति आग्रह है—

रासहि जा तो अमगन हाय
आ प्रेम नम जा कहे प्रिय जाइय।

जा रहे जाहु न तो प्रभुता
जा कुछ न कहे तो सनह सनाइय ॥

जा हरिबन् कहे तुमरे गिन जो है न,
ता यह पयो पतिघाइय।

तासो पयान समे तुमरे हम,
का कहे घाप हमें समभाइय ॥^१

प्रवत्स्यपतिवा की पंक्ति में अनुभूति से अधिन पाकचानुरी है। विरह जात हुए प्रिय से हम प्रहार तक विला करना हृदयस्पर्शी नहीं लगता कवीन्द्र कवि की नादिरा का मोन व्यथा पत्यंत मार्मिक है—

मोन मो नरम क परम नजीती बाग
मोन तपमीना सखी मोन में निहारी है।

—कवीन्द्र

प्रापितपतिवा का विरह-व्यथा को हरिबन् द न मुतरला न मुतर दिया है—

पारो गति घाग की मति परि मद म मुग
मो नरी मो मु क दह लागी गियरान।
पारग मो बुद्धि नई हसी काहू घाग नई
मुग क समान जिपतित लाग दूर जाय ॥

^१ 'विरह-व्यथा' का मोन तपमीना सखी मोन में निहारी है।

^२ 'विरह-व्यथा' का मोन तपमीना सखी मोन में निहारी है।

^३ 'विरह-व्यथा' का मोन तपमीना सखी मोन में निहारी है।

हरीचंद्र रावरे विरह जग दुखमयी भयो
 कछु और होनहार लागे दिसरान ।
 नन कुम्हलान लाग वनहू अयान लागे
 आओ प्राननाथ अब प्राण लाग मुरभान ॥^१

विरह के बढ़ना से विरही के सब सुख नष्ट हो जाते हैं । प्रिय के बिना कुछ अच्छा नहीं लगता, बुद्धि पागल-सी हो जाती है, साचने विचारन की शक्ति क्षीण तथा बह बच-सी जाती है, मुख कुम्हलाया-सा हो जाता है और नत्रो में भी उल्लास नहीं रहता । केवल एक आशा के सहारे विरही जीवित रहता है, वह यह कि उसका प्राणप्रिय कब आएगा ? विरही को एक रट ही लगी रहती है । ' हे प्राणप्रिय कब आओगे मरे प्राण नष्ट होने लगें । इस आशा के सहारे विरही बियाग की अवधि काटता है, अपने प्राण नष्ट नहीं होने देता और हृदय में प्रेम को सजाव रखता है ।

तुलसी की सीता की 'मुनहू विनय मम विटप असोका' सत्य नाम कछु हरू मम शाना' की पद्धति पर प्रकृति से अपनी सहायता के लिए याचनाक वक्त इस युग में भी मिलते हैं—

हे असाक शाक हरि हरि को मिलाय माहि
 लोटि को गपय करि साचा निज नाम को ।
 ह पलाश आग पूरि दूरि करि निज नाम
 अहे पारिजात करि पूरो भम काम को ॥
 ह रमाल लाल को लवाय य रसाल रूप
 हे तमाल धरे हो स्वरूप तुम श्याम को ।
 तात तुम्ह जानिय गुपाल मिले दीनचाल
 काह को विहाल हाल दसियत वाम को ॥^२

कृष्ण के विरह में दुखी राधा की उद्वेग, प्रलाप, शथिल्य और जडता की दशाओं का चित्रण चण्डीदत्त के इस पद में अत्यंत ममस्पर्शी है—

विरह विहारी के विकल बिलस्रात बाल
 बोरी सी लगति दुख अतिशय मलान की ।
 चण्डीदत्त आहिक धर है पग इत उत
 धूमि के गिरी है ज्या धरी है दह आन की ॥
 सास न भरत प शिथिल सी दिखाई देत
 होनी न मिटाइ मिट विधि बलवान की ।
 अतर लपटि काल्हि कुजन में भेंटी
 आज धूरि में घुरेटी लेटी बटी वषभान की ॥^३

१ इफांजुल्ला खा का इजारा, विरह मन्वन्धी, पद ४८, पृष्ठ ३१८

२ वहाँ पद ५१, पृष्ठ ३१८-३१९

३ वहाँ, पद ३, पृष्ठ ३०८

रोनिक्तातीन वाक्य पद्धति से प्रभावित, बारहमासा में बवार क प्रभाव वाक्यकृत करता हुआ यह पद भी उदा मुन्दर है। प्रकृति के विषम ज्वर से जलता हुआ विरही अपने दृश्य या वस्तु का छिपान का कस प्रयत्न करता है, दक्षिण—

द्विभिनी जोवन में शक्ति करोखन में
 हियरा में हिलकी दूगन श्रेमुना रम।
 तानिनास कहे श्रान कामिनी कुरग ननी
 दामिनी ज्या दखि जाति दमक दुभार म ॥
 जोह म ट्टगी दुग एस क्या महगी
 जम सीता पार मागर के रघुवर पार म।
 नन्द क कुवर बाहू कमा कही पहा जान
 छाडि वपमान की कुधरि दुभार म ॥^१

प्रत्यक्षपतिता का उठान और श्रु के भावा की मुन्दर व्यजना यहाँ दूति की शक्ति में दृश्य है।

विरह की शक्ति व्यतात करनी हुई नायिका प्रिय के श्राने के लिए मगुन बनाती

६—

गिरि गिरि जात कात्र पायन की गिवनाय
 किरि किरि बिनाक श्रार सगुन मनावती।^१

जय तभी मनुखून गदुन हा जात हैं तो विरहीणी के जीवन में उत्साह छा जाता है। विरह इसार दुग या वह भूत जानी है, यथा ग पीला हुआ मुल श्रानन्द की शक्ति में यक्षमन जाता है। मुन्दर काग का शान जाना श्रान म मनायास उमग का होना, हृष प्रदुल्लभास बाजूबद या टूटना और गिर की साडी निस्तरना विरहीणी के लिए प्रिय के भावा श्रागमन की सूचना के हृषातिरक से वह नूम उठती है—

बाति गया काग श्राज बड भार श्रागन म
 श्रानि उमग मनुखा सरसति है।
 बाहन यहाता बड बाजूबद टूटि जान
 तराशिर सारी सरसति है ॥
 तीबा निदराय पधिनाय मुग श्राशन त्या
 श्रापुर मनग क उरात्र शरसति है।
 श्रानन शान द या सनाई श्रानि छा बाहा
 श्राद श्रात्र गाद श्राति बाद शरसती है ॥^१

१ मन्दीरवाली म १११ १७१७ १७१७ १७१७ १७१७ १७१७ १७१७ १७१७ १७१७ १७१७

२ १७१७ १७१७ १७१७ १७१७ १७१७ १७१७ १७१७ १७१७ १७१७

३ १७१७ १७१७ १७१७ १७१७ १७१७ १७१७ १७१७ १७१७ १७१७

भारतीय पारिवारिक जीवन में पति लौटकर आने के समय पहले परिवार के लोग से मिले बिना पत्नी से नहीं मिल सकता। विरह में पति के आने की प्रतीक्षा करती हुई नायिका यही सोचती है। समाज की परिस्थितियों का काव्य में ध्वनित होना बड़ा स्वाभाविक है—

आवगो कुजबिहारी जब नर नारि सब मिलि मगल गाइक।
 वजगी अतन्द्र बयाई तव गुरु लोग सब मिलि हैं उर लाइकैं ॥
 लोग बिदा करि साभहि श्याम भुजापहि कोमल अंग लगाइक।
 बहुरो कबहुँ दिन ह्व है भटू बज आयो पिया कहिहै बोज आइक ॥^१
 प्रवास में प्रिय का गुणकथन और उस प्रदेश भेजने की पद्धति का चित्रण भी स्थान-स्थान पर हुआ है।

करसा कर ग्रथि कपालन छव भरि अक भटू बहुरो उर लावत।
 मेरे लिए हरि चम्पकली अबली गुहि हार हिय पहिरावते ॥^२

× × ×

पाती मैं कहा लौं लिखौं कहियो पथिक जाय भयो
 साईं कियो रहै काहू कं न कहन ही।
 जानि के अघीन तजी तलफत मीन लौं न आनी उर
 दया भरे कपट में एन ही ॥
 सावरे मैं तरसत रावरे को गोहन को कहा कहीं
 मरे मन मोहन को मोन ही ॥
 कसो घरी घरि नन देखे बिन चन है न
 प्यारे सुख दन हाय लगे दुख दन ही ॥^३

नायिका के पक्ष में ही नहीं नायक के पक्ष में भी विरह की व्यञ्जना इस युग में उपलब्ध है। सावन के मादक वातावरण में प्रिया की याद हृदय को झकझोर देती है, स्मृति का भाव कवि इस तरह व्यक्त करता है—

घाघरे की धुमड उमड चारू चूनी को पायन मलूक
 मखमल वार जारे की।
 भकुटि कुटिल छूटी अक्क कपोलन प बड़ी बड़ी
 आखिन में छवि लाल डोरी की।
 तीखन तरल जराउ जरबीली जार स्वेदकन
 ललित बलित मुख गोर की।

१ दशानुल्काई लौं का डगारा, विरह सम्बन्धी पद = ५

२ वही, पद = ७

३ वही पद = २०

नूतन न नामिनी को गावन गुमान भरी
सावन मधुपति मचावन हिंडोरे की।^१

करण विप्रलम्भ अथवा सम्बंध विच्छेद

काव्य शास्त्रियों ने करण विप्रलम्भ की स्थिति तब मानी है जब प्रेमी युग्म में एक पक्ष के मरणपरान्त दूसरा पक्ष उसके जमांतर में भी सत्तरीर उससे मिलन की अभिलाषा करता है।^२ करण विप्रलम्भ की स्थिति तब भी काव्य में मिलती है जब सत्तरीर के साथ नहीं कि युग्म में एक पक्ष तक प्रिय के मरण के पश्चात् प्रेमी उससे मिलन की कामना करता रहता है।^३ 'रति' इसका उदाहरण है। मिलन जब इस जीवन में असम्भव या प्रतीत हो और प्रिय के जीवित होने न होने का पता न हो तब भी करण विप्रलम्भ होता है, यदि मिलन की आशा प्रेमी में बनी रह जाय कि उत्तररामचरित की सीता और राम तथा शकुन्तलम् के दुष्यंत और शकुन्तला की स्थिति है। इनके प्रतिरिक्त प्रिय जीवित हात हुए भी तथा उसका पता हान पर भी जब मिलन असम्भव हो जाए और प्रेमी का मिलन की आशा जम जम में बनी रहे और वह विरह में तड़पता रहे तब भी करण विप्रलम्भ की स्थिति ही माननी चाहिए। इसमें प्रिय यद्यपि चाह प्रवास में जाय किन्तु इस जन्म में उससे मिलन दुर्लभ हो जाता है। यथापि का तिरस्कार न करके प्रेमी फिर भी अपने मन में प्रेम को जीवित रखना चाहता है। राधा का प्रेम और विरह इस प्रकार का है।

प्रिय की उदासीनता के कारण अथवा विश्वासघात से जब सम्बंध विच्छेद होता है तब प्रेमी अपने हृदय में उसकी काल्पनिक आदर्श मूर्ति संजोय रखता है और उस ही प्रेम करता रहता है। प्रेम के दोष में दानो पक्ष चेतन होते हैं अतः एक में हृदय परिवर्तन कोई अनहानी बात नहीं है।^४ इस प्रेम को एक पक्षीय प्रेम कह सकते हैं। किन्तु उस विरही की मनोस्थिति बिलगुन यही होती है जो शास्त्रीय करण विप्रलम्भ में है। प्रिय के लिए जीवित हुआ न हुआ बराबर है। यह करण विप्रलम्भ शास्त्रीय करण विप्रलम्भ से और भी अधिक करण इसलिए है कि यहाँ प्रेम के प्रतिदान में मरण जसी बाधा हानकर प्रिय की उदासीनता होती है। मरण पर प्रिय का क्या नहीं, उदासीनता पर क्या होता है अतः विरह की वेदना और भी अधिक होती है। प्रेमी प्रिय का हृदय परिवर्तन चाहता है। राधा और नायिका का विरह इसी श्रेणी का है। काव्य में विरह की स्थिति मन स्थिति का बड़ा मार्मिक चित्रण मिलता है। नायिका विश्वासघात पाने पर स्वयं को अत्यंत विषम अनुभव करती है। मुबनेय का उचित है—

१. मीरा—मनोहरनी नरक राय कलिका, विरहा वरुण, टूट ६०, पृष्ठ २२१

२. विरह का काव्य शास्त्रीय विवेचन प्रथम अध्याय में दिलाए।

३. विरह, विरह का शास्त्रीय विवेचन 'मनोहरनी' नामक विवेचन (प्रथम अध्याय)

तजिक कुल की कुलकानि सब तुम सा हम आनि क प्रीति करी ।
 मुवनेस ग्रहो मई हौ ब्रज म वदनाम सोउ मन मैं न धरी ॥
 निबही न सोई अब तो तुम सा लगी तारिख मैं नही एकोषरी ।
 परमेश्वरई अब जानत हैं कहत न बन हम प जा परी ॥^१
 वह अपनी व्यथा का वणन किसी से नहीं कर सकती । लोग हँसगे, बातें बनाएँगे
 अत चुप बठी रहती है—

जानत कौन है प्रेम विथा केहि सो चरचा या
 वियोग की कीजिए ।

को कही माने कहा समझ कोऊ क्यों विन
 बात की रारहि लीजिए ॥

कूर चवाइन म पडिक हरिचदजू क्यों इन
 बातन छीजिए ।

पूछत मोन क्या बढी रही सब प्यारे कहा इह
 उत्तर दीजिए ॥^२

‘अपने मन की व्यथा को हृदय में छिपाए रहती हूँ । क्या कहूँ, कहूँगी तो लोग
 बातें बनाएँगे अत चुप रहती हूँ । प्रसाद की निकल मत बाहर दुबल ग्राह लगेगा तुम्हें
 हँसी का शीत’ उचित का भाव महा भी मिल जाता है ।

प्रिय से मिलने की सब आशा समाप्त होने पर भी मन उस नहीं भूलता । मृत्यु
 नहीं आती । समाज का निरादर भुलसाए जाता है किन्तु पापी प्राण न जाने किस आशा,
 से शरीर का त्याग नहीं करता—

सब आश तो छूटी पिया मिलिब की
 न जाने मनोरथ कौन सज ।

हरिचदजु दुख अनेक सहै प अडे हैं
 टरना कहूँ को भज ॥

अब सो निराशक हू बठि रहै सो निरादरहू
 सो कछू न लज ।

महि जानि पर कछु या तन को केहि मोह त
 पापी न प्राण सज ॥^३

विरही उमादी हो जाता है । वास्तविक स्थिति का ज्ञान उसको नहीं रहता ।
 अभिसार के लिए नायिका अब भी सहृदय-स्वयल पर जाती है, प्रिय विलम्ब होने पर भी
 जब नहीं आता तो सोचती है कि राह में आते हुए कहीं काँटा चुभ गया होगा । प्रतीक्षा

१ इफ़ीजुल्लाह साँ वा इन्सारा, विरह सम्बन्धी कविच सवैये, पद ३५, पृष्ठ ३१६

२ वही, पद २१

३ वही, पद २२

करत-वरत प्रात काल हो जाता है चिड़ियाँ चहचहान लगती है, तब—
 तबि तबि चहु घोर जकि सी रही है धकि बकि
 बकि उठ छकि छल की लगन म ।
 हाहा बलगीर का बताय मेरी बीर एरी धाय धाय
 ब्रभति है कुज के मगन म ॥
 नद क विशोर चितचार बित खड ह्व है
 बहूँकुश कण्टक पगन म ।
 अजूर न भाए बनमाली बित गए आली
 बोली चटकाली लाली सहवि गगन म ॥^१

इस पर भी प्रिय यति मन्त्र भेज नि मुझे भूल जाओ अथवा ईश्वर से एका
 करण दखो तो सहनशक्ति की सीमा हा जाती है। एक आर तो 'रत्नावर' की वि
 हिणी गायियाँ की तरह नायिका ब्रह्म से भी कृष्ण की मूर्ति मिलाने को आगुर हो जाती
 घोर यति बह न मिल तो लौट घाने को प्रस्तुत। दूसरी आर बुद्धिवादी युग की प्री
 तिपि-भी कहती है कि ह उद्वय यति व पृथ्वी के जीव नहीं हैं तो कुब्जा के वक्षस्वत
 हाय रस कस गुण का अनुभव कर रहे हैं। निरागा का ईर्ष्या इधन दती हुई सी प्रती
 होनी है—

बुबिजा जग र वहा बाहर है नदलाल न जा उर हाय धर्यो ।
 मधुरा वहा भूमि की भूमि नहीं जहें जाय के प्यारे निवास कर्यो ॥
 हरिचन्द न बाह्र का दाप कछू मिलिहै सोइ भाग से जा उतरयो ।
 सबवा जहाँ भाग मिल्या नहीं हाय वियोग हमारे ही बटि परयो ॥^२

गायिया का विरह भी वरुण विप्रलम्भ ही है। भारत-दु युग को गायियाँ टूण
 व विरह म पागन हृद हृद भी उनक बहाना घोर उनकी वाय-व्यस्तता को बस ह
 परम्परागत रूप म स्वीकार नहीं कर सकती। टूण के प्रपच को व जानती हैं प्रत
 फट्टी हैं यति टूण हमम मिलना चाहत ता मधुरा भूमि पर ही है घाटाश म नहीं, व
 मिस गज उ थ। तब यही है कि व हम स मिलना नहा चाहत। गायियो म इस वक्तव्य
 का प्राधुनिक-युग को सत्रा बुद्धिवाणी बतना व पनस्वरूप उलान वहा जा सता है।

पट् श्चतु षणन

भारत-दु कान की शृंगारिन कविता म प्रकृति का उद्दीपक रूप हो प्रतर रहा
 है। श्चतु का विरहा क मत्र पर कमा प्रभाव पदता है, वह उसकी वदना को उद्दीप्ति विष
 नांगि करती रहती है दगी का विमर् वषन इस गुण म दुष्मा। श्चतु के उपस्थित हान पर
 हा नहीं प्रपूष उमरु प्रागमन को घाटाका मान घ नी विरही उद्दिग् हो जाता है।

वसंत

वसन्त ऋतु के विषय में भारतेन्दु युग के सभी शृंगारी कविया ने कुछ न कुछ भाव व्यक्त किए हैं। वसंत ऋतुराज है, उसका प्रभाव विरही पर सबसे अधिक हो यह स्वाभाविक ही है।

एक प्रोपितपतिका नायिका का सखी समझती है कि वसन्त के उपस्थित होने पर तो प्रिय अवश्य ही आएगा। क्या आम, कदम्ब व टसू मफूल लगेंगे। कोकिला गाएगी तब भी प्रिय का मन आद्र न होगा ?

फूलनदे अब टसु कदम्बन अम्बन बोरन छावन देरी ।
री मधुमत्त मधूवन पुजन कुजन शोर मचावन देरी ॥
बया सहि है सुकुमारि विशार अरीकल काकिल गावन देरी ।
आवत ही बनिहै घर कतहि बोर वसतहि आवन देरी ॥^१

—किशोर कवि

एक दूसरी विरहिणी वसन्त के आगमन पर पति के आने की अभिलाषा करती है—

होन लागे शार चहूँ ओर प्रति कुजन म त्याही पुज पुजन
पराग नभ छायागो ।
फूल फल साजन को आयमु विपिन माहि शीतल
सुगध मद पीन पहुँचायगो ॥
द्विजदव भूले भूलै फिरत मलिदन की सुखमा विलोकि
हिय सुखसरसायगा ।
आए हूते आग ते हरीलन के लोग इत आवत
हमार उत ऋतुपति आयगो ॥^२

—द्विजदेव

इस अभिलाषा के साथ कहीं कहीं आशका भी हाती है कि यदि वसन्त के न आने पर भी प्रिय न आए तब क्या होगा ?

भूल भूल सोर बन भावर भरेंगे चहूँ फूलि फूलि
किशुक जके से रहि जाय है ।
द्विजदव की सौं वह बूजनि बिसारि कूर कोकिल
कलकी ठौर-ठौर पछिताय हैं ॥

१ पद्मनु हनारा—परमानन्द सुहाने श्रृंगार संग्रहात, किशोर कवि, पृष्ठ ६, नव-किशोर प्रेस लखनऊ में सन् १८६४ में प्रकाशित।

२ वही, द्विजदेव, पृष्ठ २१

कचाट को तीव्रतर करता रहता है—

मलयगिरि मारुत के मिसि विरहाकुलनि
दिशि दिशि ब्यालन को विष बगरायोरी ।
तापर किगोर तसो पचम नवलराग
कोक की कलान भीनो काविलन गायोरी ॥
कौन मुनि मौच मान लौचे कौन मिलन को
शौच कौन श्याम देखि नेह सरसायारी ।
आमन के भीर लाग अकुरन मोर लागे
भौर लागे भ्रमन वसन्त अब आयोरी ॥^१

—किगोर कवि

विरही को वसंत के सब सुखद उपकरण दुखी दिव्वाई पडत हैं। 'जामुना को लगा देखकर उसे एसा लगता है जैसे जामुन के वक्ष की हरियाली को किसी ने जला दिया हो और कायले अवशेष रह गए हैं। कोयल कराहती-सी लगती है वायु विष से मरी हुई तथा पलाश वन अग्नि से दग्ध-सा प्रतीत होता है। 'नरेश कविकी इस उक्ति में कायल का कराहते हुए से प्रतीत होना अत्यंत स्वाभाविक है किन्तु जामुना का कायले जसा लगना अतिशयोक्ति ही कही जाएगी। इस प्रकार की दूर की सूझ भारतेन्दु कालीन कविया को रीतियुग में विरासत में प्राप्त हुई थी—

भोरिसे कौन लय वन बाग य कौन जुग्रामन की हरियाई ।
कोयल काह कराहनी है वन कौने चहुँदिशि घूरि उडाई ॥
कसो नरेश बयारि बहै यह कौन धौ कौन सा माहुर नाई ।
हाय न कोउ तलाश कर य पलागन कौन दवारि लगाई ॥^१

—नरेश

विरही को मृग वनन्त की अग्नि से तडपते-से प्रतीत हात हैं और कोयल भी अपने समान ही तप्त प्रिय को रक्षा के लिए पुकारती हुई सी लगती है—

प्यार के वियोग आली उठी आगि वृन्दावन
जरती सदेह कुजे सुदरी महा महा ।
बीर कचनार आँच उठती पलासन त
कुमुम करील डीठ परति जहा जहा ॥
मन्साराम ति हैं भेटि आवत समीर बीर
तजो जात तन ताती लागति तहा-तहाँ ।

१ पद्मसु का इबारा, किगोर कवि, पृष्ठ ७

२ वही, नरेश कवि, पृष्ठ २६

मृग घणभारे बिललात है भँवर वार
कोयल हूँ कोयल पुकारती कहाँ कहाँ ॥^१

—मसारास

वही-वही वसन्त की तपन जलन का विशद वणन न करके जन केवल उसके प्रागमन पर अपनी विरहिणी की दशा का व्यक्त करता है ता अनुभूति प्रत्यन्त मार्मिक हो जाती है—

जानति ही न वसत को प्रागम बठहि ध्यान धरे निजु पी को ।
एत म कानन धार सा घाइके कानन म परयो बाल पिनी को ॥
ह रघुनाथ कहा कहिय वहि घायो हा आया गरो भरि तीको ।
लोचन वारिज सा घंसुवा का घथाह बह्यो परवाह नगी को ॥^१

—रघुनाथ

वसन्त के प्रागमन की नायिका को मुधि नहीं थी, यह प्रिय के ध्यान में मग्न बठी थी। इतने में ही कायल ने कूक कर उसका ध्यान भंग कर लिया, वसन्त के प्रागमन की सूचना पाकर उसका गला भर आया और नदी के प्रवाह के समान अविरोध प्रभु उसका नशा से बहन लग। अतिशयाक्ति से विहान स्वाभाविक अनुभावा में विरहिणी की दशा का यह बिषय वास्तव में विरह काव्य की निधि है। तप्त उच्छ्वास और मोन प्रभु विरहिणी की व्यथा का मुत्तर बना रहे हैं।

किसी विरहिणी का प्रिय वसन्त ऋतु में आने वाला था। सतिया न उस टाइम लिया था कि जब कायल कूबगी तभी प्रिय से मिलन होगा तब तक धय रखो। इसी घाटा पर विरह क दिन व्यतीत करती हुई नायिका वसन्त के प्रागमन पर उद्विग्न हो जाती है—

ताहि वसन्त के घायल ही मिलिहै इननी रहि राखी हिनूज ।
सा अब प्रभति है तुम सा कछु प्रभेजे भर उमान हूज ॥
बाहत आय रही रघुनाथ म आदने घाय क बासर पूज ।
दगु मधुवत गुंज बहुदिनि जानत यानि क्यातउ कूज ॥^१

—रघुनाथ

विरही आग पर वसन्त के इस पातक प्रभाव का दग्धर रूप यदि विधाता को उमाहना दता है। सगार में यदि विधाता न नर-नारी का उत्पान ना कर लिया था तो उसके बीच में परस्पर प्रेम सम्बन्ध क्या स्थापित किया? प्रेम का सम्बन्ध ही क्या था मयोग और विषाग का विधान क्या बना दिया? यदि विषाग की व्यथा भी थी

१ कूबड का इतना प्रभाव न करे, पृ ४४

२ कूबड, रघुनाथ पृ ४५

३ कूबड पृ ४५

थी तो भूल कर भी कम से कम वन उपवनो में वसंत का प्रसार तो नहीं करना चाहिए था।

लोक न सँवारो न विगारो कछु लोक न सँवारि
नर नारिनि सँवारतो ।

की-ह नर नारि तो न प्रेम को प्रचार देतो
प्रेम को प्रचारो तो न मन को प्रचारतो ॥
मन को प्रचारोतो प्रचारो ना सयोग देतो
की-हे जो सयोग तो वियोग न विचारता ।
नन्दराम कीहा जो वियोग विधनातो भूलि
बारे वन बागन वसत न बगारतो ॥^१

—न दराम कवि

वसन्त के दिन भी समाप्त होने लगते हैं तो विरही के धय का वाद टूट जाता है—

बीतन लागे वसत के वागर औधि की आस अज अभिलाखी ।
मण्डन थ इतने सग राम पियारे की सीखन तीखजनाखी ॥
धीण भई तन मोतन अतर दाह निरतर कौन सभाखी ।
दाखण भार अगार की आगि रुई म लपेट कहा लग राखी ॥^२

—मण्डन कवि

‘वसंत के मोहक वातावरण में कामाग्निसे दग्ध शरीर की रक्षा कहा तक कहीं ।’

वसंत ऋतु का चंद्रमा मानिनी के मानरूपी दुःख को तोड़ने के लिए सुभट योद्धा बन जाता है । वसंत के समस्त उपकरण उसकी सेना के सैनिक बनकर अपने बल का प्रयोग करते हैं । तत्कालीन युद्ध की परिस्थितियाँ वसंत का यह रूपक अत्यन्त सुंदर है—

तारे जहा सुभट नगारे पिवनाद जहा
पदल चक्रोर कोर बाघे बदवेग की ।
गुजरत मोर पुज कुजरत मोर जहाँ पौन भकभोर
घोर घनक हुमेग की ॥
भनत कविद्र शर फौज है वसत आखी मिस तत
कत सा मनोज मनावेश बी ।
मानावरी गढी प गुमान डाइवे को अज चढी है
सवारिया निशाकर नरेश की ॥^३

—कवि द्र कवि

द्विजदेव और भारतेन्दु दोनों इस युग के सबसे प्रेष्ठ शृंगारी कवि कहे जाते हैं वसंत के सम्बन्ध में दोनों की उक्तियाँ ही अनुपम हैं । वसन्त के आगमन पर द्विजदेव कल्पना

१ षट्सतु का हजार, नन्दराम, पृष्ठ ३०

२ वधी, मण्डन, पृष्ठ ४८

३ वधी, कविद्र पृष्ठ ६

करा है कि काम-देव और रति विरहिया को सताने के लिए अपने वसन्तरूपी इन्द्रजान का प्रचार करते हैं। इस काय की सफलता के लिए वे नई-नई युक्तियाँ खोजते रहते हैं—

गुजरन लागो भौर भौर बलिजुजन म बवलिया के

मुय तें कुहवन बढ लगी।

द्विजदन तस बछु गहम गुलाय तें

चहकि चहूँधा चटनाहट बढ लगी ॥

नागा सरमावन मनोज निज धोज रति

विरही सतावन की बतियाँ गढ लगी।

गान नागी प्रीति रीति बहुरि नई सी

नवनह उनई सी मति मोह सा मढ लगी ॥^१

—द्विजदेव

रमल के मानव वातावरण में वहाँ किसी कुज में छिपकर कामदेव अपने रूप का पुनरुत्तर बनाने लगा और रति, विरहिया को बस सताया जाय इसके नव-नये उपाय खोजने लगी। नवीन स्नह उमड़ पाया और प्रेमिया के मन पर उसका उमादरु प्रभाव पाने लगा। वसन्त ऋतु या इसमें ज़ीव और मजल वषण और वहाँ मिलेगा? एक शोचित चित्र नया न मनुग छा जाता है—वहाँ किसी बाने में काम और रति अपने अपने प्रयाग की गई मुक्तियाँ, रीतियाँ खोज रहे हैं।

वसन्त के उन मानव रूप के विपरीत विरहिया नायिका के जीवन में वसन्त के प्रागमन की मामिल बल्पना भारतन्तु नही है। जीवन में वसन्त का प्रागमन उल्लास का साक्ष्य होता है किन्तु विरही के जीवन में वह व्यथा का मूर्तिमान रूप बन गया है—

पीरो तन परयो पूनी सरसो सरस साई

मन मुरभाना पतभार मानो लाई है।

घोरो स्वास त्रिविध समार सी बहति सता

घनियाँ बरसि मनु करि सी लगाई है ॥

हरियन पूनें मन मन क मगुवन सा

ताहि मा रमान बाज बदि वी थोराले है।

तर बिन्दे ते प्रान ब त क हिमत घन्त

तरी प्रेन जागिनी वसन्त बन साई है ॥^१

—हरिश्चन्द्र

यह हमारा काल वसन्त पौजा है यह ही नायिका के स्वरिचर में उसके व्यथा का प्रागमन मगमिलन के बर वसन्त का प्रागमन हुआ है। त्रिविध समार के सपुस उसके

^१ कालिका (१४४-१४५) पृष्ठ १४ (११) श्लोक के मूल कथना का मूल) — भारत मन्त्र
 १४४-१४५ पृष्ठ १४ मन् ११४०

उच्छ्वास निरन्तर उठते रहते हैं आखा से प्रेमसिक्त अश्रु रूपी मधु की वर्षा होती रहती है। आँसू के बौर की भाँति उसका सरस मन भी बोरा गया है। 'प्रेमयागिनी वसन्त-सी बन गई है।

वसन्त के उपयुक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि भारतन्दु युग में प्रकृति का रूप उद्घापन हाँते हुए भी पूणत परम्पराभुक्त नहीं कहा जा सकता। ऋतु विरही-मानस पर प्रभाव डालती है यह बात तो ठीक है और परम्पराभुक्त भी है किन्तु प्रभाव की परिस्थिति या की व्युत्पत्ति और उनके विभिन्न भात्मिक चित्र इन कवियों की अपनी मौलिक कल्पना है। इस युग के कवियों ने ऋतु के सम्बन्ध से विरही मानस की मनोस्थितियों को मथकर निकालने की चेष्टा की है और उसके क्षण भी दूड़े हैं। वसन्त के अतिरिक्त अन्य ऋतुओं के विषय में भी यह बात युक्ति सगत ही है।

पावस

दूसरी ऋतु जिसका विनाश वणन इस युग में हुआ वह पावस है। यद्यपि प्रत्येक ऋतु का अपना अपना आकषण है किन्तु वसन्त और पावस में दाना विशेष आकषक मानी गई हैं और अभी अनुपात से य अभाव में पीड़ित विरही के मन को मकमोरती भी हैं।

आकाश में जब ग्रीष्म की तपन के बाद मधु घुमडने लगते हैं, मूसली, प्यासी और मृतप्राय घरती में फिर से प्राण संचार होता है हरी भरी वनस्पति के मिस वह अपनी प्रसन्नता प्रकट करने लगती है तब विरही के लिए फिर एक बार कठिन परीक्षा का समय उपस्थित हो जाता है। सम्पूर्ण प्राणीजगत प्रकृति के उल्लास में जब डूब जाता है तब विरही का प्राण विकल हो उठता है, उसका क्या अपराध है वह भी क्या प्रसन्न नहीं हो सकता, उससे यह अधिकार किसी अनात प्रेरणा ने क्या छीन लिया है? केवल इसीलिए न कि जिस प्रिय में उसकी आत्मा ने अपना दर्शन किए थे वह उनके पास नहीं है। एसी ही परिस्थिति उत्पन्न हान पर द्विजदेव की नायिका प्रिय के पास वापस लौट आने की अनुमति के लिए पत्र लिखने को व्याकुल हो उठती है—

धुधरित धुर धुरवान की मुझाई नभ जनवर धार धरा
परसन लागी री।

द्विजदेव हरी भरी ललित कछार त्या कदम्बन की
डारै रस वरसन लागीरी ॥

कालिही तें देखि बन बलिन की बनक नवलिन की
मति अति प्ररसन लागी री।

वगि लिचु पाती या मघाती मनमोहन का
पावस अवाती त्रज दरसन लागी री ॥^१

—द्विजदेव

^१ पदस्तु का इकारा—परमानंद मुनिने द्वारा मयझीत, द्विजदेव, पृष्ठ १७०

सावन का माह अघियारी रात में जब पपीहा पिउ पिउ पुकारने लगता है
विजना की दमन हृदय में तड़पन सी उत्पन्न करती है तब मदमत्त यौवन और अभिलाषा
एक पीड़ित विरहिणी अपने घर की मूनी सेज में कामाग्नि से दग्ध फूट फूटकर रो पत्ती
है—

यौवन प्रवसा में विदेश मधुसूदन जी
निपट भ्रंघ्यारी कारी सावन की यामिनी ।
एकटक रटत पपीहा पिक नीलकण्ठ
हिया चमकत दमकत जब दामिनी ॥
मूने भज मंदिर में मुन्दिर विमूर बठी
प्रीतम मुजान बिन कस जिय भामिनी ।
नन भरि भरि डर मुस हरि हरि कर
उठरि उछरि पर काम नरी कामिनी ॥^१

—नीलकण्ठ

दादुर कोरिल व मार का गल उसकी बदना का तीव्रतर करता है, हृदय में
अग्नि-सी जलन लगती है—

सावन की रत मन नावन गोवि द जिन देत दुख नारन में
भिल्लिन क गोर हैं ।
वातिनास प्यारा अघियारा में चकित हात
उमडि उमडि पन पहरत धार हैं ॥
मून कुज मन्दिर में मुन्दिर विमूर बठि
दादुर य दहन मी लत चहु धार है ।
हिय में विवागिन क निरह की तन उठी
बूब उठी वापल कुहुन उठ मार है ॥^१

—जातिदास कवि

बार-बार उमड़ घुमड़कर वरमन हुए बागला क वातावरण में अगन जीवन की
भरमक रक्षा करला दुई निरश्रिणा हलाग हा जाती है । पापी पपीहा अपना रदन का त्याग
नहीं करला मन में काम भावना उत्पन्न करता है, पवन क नगर हृदय का भ्रमभार
रह है । मधुसूदन का मुन्दिर राग गान हुए मार हृदय में टीम उत्पन्न करता है—

वसा नरी गरि यह धरि निगा विनिगानि फरनन
मण्णल घमण्ण पन छायारा ।
पाडि विवाग परमापुर पगाहा पापी
पाउ-पीउ कह तन अवन जगाया रो ॥

१. पददुःख का इतना—पदमन
२. निरह क तन क विरह

इसका ता मधु १, न मक १५५ १८२ १८३

बहुत किशोर तसी पवन भक्वोरन सा मोरन
 त्वा महत मलार मुर गायारी ।
 बडे उडे बुदन विलाकि वारि धारा वीर
 अबही वरनि गयो फेरि नपि आयारी ॥^१

—किशोर कवि

इतन दिन तक प्रिय के वियोग में जीवन की रक्षा की किन्तु अब वर्षा में कैसे
 करूँ ?—

छाय के प्रेम गये जब ते तब त में बची
 करि काटि उपाय क ।
 पायक पावसरी ऋतु मा अब
 को बचि है उठि कोकिन गाय क ॥
 गाय कमो नन्दनाल बहै चपला चमकै
 चहु आर सौं आय क ।
 आय के हाय मिले नहि मोहन
 मेरी अटाप घटा रहो दाय क ॥^२

—नन्दलाल

सौभकर वह दुष्ट चातक, मोर, दादुर व पपाह को ताडना देने लगती है कि वे
 अपन क्रूर उमादक शष्पा को बन्द करें। पवन, बादल और बिजली भी अब उसके साथ
 कठिन व्यवहार न करें।

चातक चिट्ठेक मत मुरवा कुहुक मत
 नीगुर किहुँक मत नकी भननाय मत ।
 चक्वा चिकार मत पपीहा पुकार मत
 बुदभर धारमत धार घहराय मत ।
 कृष्णनाल गाय मत पीर उपजाय मत
 बालम विदेग पाय मन तन ताय मत ॥
 पौन फहराय मत चपला चवाय मत
 धाय मत धुरवा औ घन घहराय मत ॥^३

—कृष्णलाल कवि

× × ×
 घहरि घहरि घन सघन चहुँघा धरि
 छहरि-छहरि विप बिन्दु वरसावना ॥

१ पदऋतु का हजार—परमानन्द सराने गण संग्रहण, किशोर कवि, पृष्ठ १४८

२ वही, नन्दलाल, पृष्ठ १८६

३ वही, कृष्णलाल कवि, पृष्ठ १५१

द्विजन्म की सौं अन्न चूक मति दात्रि
 घर पातकी पपीहा तू पिया की धुनि गाव ना ॥
 फिर एम्मा प्रीसरन एहै तेर हाव यरे ।
 मटकि मटकि मोर गोर तू मचाव ना ॥
 हो तो भिन प्राण दह चाहत जोइ भव ।
 वतहि मरमि तू अकास बीच धाव न ॥^१

—द्विजदेव

आपाठ में ही पीत नवीन अक्षुर धरती से जग फूटन लगत हैं तब विरही को एसा
 लगता है जग में बादल उमक प्राण लेने घाय हा—

वहै कविराम पीरे अक्षुर मही त कड़े बनी पीर ।
 बनिता के देखें जल बाढ़ के ।
 वाम व उमाहव विरही जन दाहक य घाय,
 प्राण ग्रहव बलाहक अपाठ के ॥^२

—कविराम

आपाठ फिर साजन भा बीतने लगता है बादल उसकी व्यथा से निरपेक्ष बरसते
 रहत हैं तब विरही बिबाग हानर प्रिय से ही रक्षा की प्राधना करन लगता है—

वकी जग बूख तब गूर प्राण कागोराम,
 हरी हरी भूख हरे गोच सरसाती है ।
 भाव-भी नया है भोन नरे टुग पीन दीज
 छति लोन एसे पीन गीन परसनु है ॥
 हूइद्विनरग तूम घाय परसग अति विपति,
 हमारी ह्या विधाता दरखनु है ।
 । छूटी जाति दह,

तर-बार उमड घुमड़कर कर अरब कोप्पा है अदेह अर मह बरसनु है ॥^३

—कागोराम

करना दुइ सिद्धिया हताग
 ता, मन में काम भावनाएँ उत्पन्न होती हैं कि क्या जिन देश में प्रिय है उमम
 । मन्दार का गुत्तर राग मान हुए बालत ?—

व ॥ करो हरि यह अरि निहोवाइ डारे
 मागिपीन बठि बाल ना ।
 भासिउ पियाग परमानुर ग यह
 पाउ पीउ यह मान यह टालना ॥

१—बालन - सुरान द्वारा मद्रास में मद्रास, १९४१

भिल्लि गण मूक भई पावद सुनाव नाहि
 विपिन विहंग सग करत बलोल ना ।
 ऐसे समय दुद मोहि बुदन उठाय हाय
 पावस निशाना श्याम आवत अवीलना ॥^१

—दिवाकर

मकरन्द की विरहिणी के हृदय में दुविधा है कि या तो प्रिय के देश में वषा हाती ही न होगी अतः उनका मन कामोदीप्त न हुआ अथवा इतनी हुई होगी कि नदी-पथ भर गए और प्रिय माग में बाधा होने के कारण न आ सके। क्या चातक, पपीहा, मोर सब वहाँ मर गए जो प्रिय के भाव को नहीं जगाते। नायिका सखी से कहती है कि या तो शिव न फिर से काम भस्म कर दिया होगा या काम के पचवाण भी मर प्रिय पर प्रभाव न डाल सके होंगे—

कधौ वहि देश घन घुमडि न बरसत
 कधौ मकरन्द नदी नदपथ भरिगे ।
 कधौ पिक, चातक, चकित चरुवाक
 मत्त भये दादुर मधुप मार मरिगे ॥
 मेरे मन आवत न आली प्यारे आवत है
 काम कुर निवर महीतेधी निवरिग ।
 कधौ पचसर हर फेर के भसम कीहा
 कधौ पच शरजू के पाँचो शर सरिगे ॥^१

—मकरन्द कवि

बेनी कवि की विरहिणी विद्युत का उलाहना दते हुए कहती है कि हे विद्युत ! तुम वृक्षादि का नाश कर देती हो, मयूर और पपीहे तुमसे कापत हैं तब विरही के प्राणा का अंत भी क्यों नहीं कर देती ? उसको केवल तडपाकर ही क्यों छोड़ देती हो ?—

है अफसोसन रोखन वास विन हौसलता रहि
 रुखन सो भिरि ।

बेनी पपीहन मोरन हूँ हहरानन दूदि
 कर बहुत फिरि ॥

ज्या डरप तडप बिजुरी परकाहू वियोगिनी प
 नकहूँ गिरि ॥^१

—बेनी कवि

१ विद्युत का हजारा, दिवाकर कवि, पृष्ठ १७६

२ वही, मकरन्द कवि, पृष्ठ २१०

३ वही, बेनी कवि, पृष्ठ १६५

एक धार निरागा क ऐसे भाव जहाँ विरही के मानस को भवभोरते हैं वहाँ दूसरी धार काई प्रिय के प्रेम में अनंत विश्वास रखता हुआ, पावस के मादक वातावरण में व कस स्निग्धता हमें इसकी साक्ष्य करता है। एक नायिका अपनी सखी से कहती है—

भूमि घटा धन की गरज चमक चपला क्षिति छूँ फिर फेरि ।
 गोर बर चहुँ धोर से भार जु रिकर बर बलिषा कूक घनेरी ॥
 गाहुन मोरी गमीर लग केहि नाति सो धोर रहग धरेरी ।
 माहि बिना यह सावन की निगि भावन कस बिताव है एरी ॥^१

—गोकुल कवि

विरह ही टीस का दिग्गज भारतीय काव्य में स्त्री के पारमार्थिक कृत कृतियाँ बना है यानि वह प्रकृति में अधिक भावुक और सहजशीला है, प्रेम का प्रतिदान न पाने पर ना वह अपने भाव का पापण बड़ी सफलता से कर सकती है। इसका यह अर्थ नहीं है कि पुण्य में विरह का कोमल वृत्ति होती ही नहीं, हाँती है किन्तु अपने गम्भीर स्वभाव और काय अस्वस्तता के कारण वह उसकी अभिव्यक्ति नहीं होना देता। विरह की विषयना नायक का धोर गम्भीर प्रकृति में मल नहीं खाती इसीलिए हमारे यहाँ नायक के पक्ष में उमरा दिग्गज बहुत ही कम हुआ है किन्तु फिर भी यत्र तत्र उसकी कलक मिल जाती है। अपने मन को समझाते हुए नायक कहता है—

प्राणप्रिया भिनि है मन नू न तरस न तरस न तरस न तरस ।
 छिन एत क्षमा कर मन हिय न सरस न सरस न सरस न सरस ॥
 रसिरंग धरे विरहा भय तो न दरस न दरस न दरस न दरस ।
 दन सावहि प्यारा पटा तब तो न दरस न दरस न दरस न दरस ॥^१

—रसिक दिहारी

विरह की बदना प्रिय से विगुन हान पर ही नहीं होती, विवाह की प्राप्ति मात्र ही ना हो सकती है प्रथमपत्निका में उमकी स्थिति इसी रूप में है। प्राप्ति में भेद देते कर नायिका कामना करती है कि वर्षा हो जाय ता उसका पति निराग जाय वा विचार स्पष्ट कर *। जब पानी नहीं बरसता तो वह माँस को उताहना देती है—

भार हाँ चलन परग्य प्राण प्यारे मुनि
 मरो दुग धाड़ धाड़ गगन पय छाय हैं ।
 बूँड न छूट जान पनब को ऊँ
 रवा रवा मरो प्राण छूट अब क्या न करि लाय है ॥
 कहे पनसिंह महाराजिद म दलिया
 बारि तनु दन तो क्या बारिद कहाए हैं ।

सकट महाय काम एकऊन आये हाइ
गरजन आये भरी गरज न आये हैं ॥^१

—धनसिंह

यमक की योजना से उक्ति अत्यंत सुंदर बन गई है। एक ओर बादल गरजकर नायिका के शृंगार भावा की उद्दीप्ति कर रहे हैं दूसरी ओर बरसते भी नहीं जिससे उसकी स्वाथ सिद्धि हो सके यह ध्वनि 'गरजन आये भरी गरज न आये हैं,' उक्ति से स्पष्ट हो रही है। नायिका के हृदय का यह सघन अत्यंत स्वाभाविक और सुंदर है।

कविबर रत्नाकर ने पावस के समस्त उपकरणों को नायिका के जीवन में समाहित किया है। पावस का मूर्तिमान रूप बनकर विरहिणी अत्यन्त हृदयस्पर्शी बन गई है—

रहति सदाद हरियाई हिय पायनि म
उरव उसास सो भकार पुरवा की है।
पीय पाय गापी पीर पूरित पुकारति हैं
सोई रत्नाकर पुकार पपिहा की है ॥
लागी रही नननि सौं नीर की भरी औं
उठे चित्त म चमक सो चमक चपला की है।
बिनु धनस्याम धाम धाम द्रजमण्डल म
ऊधौ नित बसति बहार बरसा की है ॥^२

—रत्नाकर

मूर ने भी 'निशि दिन बरसत नन हमारे कहकर अपने जीवन में पावस का आगमन घापित किया था किन्तु यहां नेना की भंडी के अतिरिक्त पपीह के शब्द से गोपिया की आतुर पुकार और विद्युत् से हृदय की टीस का साम्य अनुपम है।

मान विप्रतम्भ के प्रसंग में भी पावस का उद्दीपन रूप ही मिलता है। पावस की अधाधुध में कौन-कौन क्या-क्या नहीं लूट रहा? दूतिका नायिका ने कहती है कि तू मान के कारण समय को व्यर्थ ही गँवा रही है—

लीहे लेत जान काऊ छीने लत आनि वानि
लूट लेत कोऊ हठि लाज के समाज को।
द्विजदव की सा या अध्यारी अधाधुधि म
कि लत कोऊ काह मुख सम्पत्ति के साज को ॥
येरी मरा तोहि जऊ मानि मान दोष तऊ
समय बिचारि कीज ऐसे ऐसे काज को।

१ पट्टयनु का इजाजत, धनसिंह पृष्ठ १८०

२ कविबर रत्नाकर—उद्भव रातक, पृष्ठ ८६

ताहि इतमान के अनादरन घेरो

इत बादरन घरो जाय जाय त्रजराज को ॥^१

—द्विजदेव

पावम का उद्दीपन रूप हा इस काव्य में मुख्य रहा है। सुखी व्यक्ति मादक वातावरण में अधिक सुखी हा जाता है तथा दुखी अधिक दुखी, विरहा के मन की व्यापकता का अंग समझ में अधिक अभिव्यक्त होना स्वाभाविक ही है—

मरदार कवि न पावस को पुण्य पर कटु व्यंग करने का माध्यम भी बनाया है।

श्रावन पूरन मास अब यह कौन जला चित्त में अभिलाषी।

छाडत प्राणप्रिया अपनी पर भूमि तकावन को मति माखी ॥

ए मरदार विचार करो किनका सुध साथ सब मुचि नाखी।

माखी द दवन को कर में घर राखत है परकी वर राखी ॥^१

—सरदार कवि

सरदार को इस उक्ति से स्पष्ट हाता है कि भारत-दु युग में शृंगार विषयक रीति परम्परा का प्रतिपादन यद्यपि हो रहा था किन्तु साथ साथ नतिक विचार भी जाग रहे थे। अपनी प्रिया को छाड़कर अन्ध पर प्राप्त होना रीतिवादीन गुड शृंगार परम्परा का विरुद्ध गृहित न था। रूढ़िवादी सामंती पुरुष पर इससे अधिक कटु व्यंग और क्या हो सकता है— साखी द देवन को कर में घर राखत है परकी वर राखी^१।

यही नतिकता प्रायः चलकर द्वितीय युग में जब रीतिकाल के बिसासी अनाचार का पार विरोध हुआ तब पूणत अभिव्यक्त हुई यज्ञत और पावम का विरुद्ध विवेचन करके हमने कहा है कि भारत-दु युगीन कविया ने श्रुतु का उद्दीपन रूप में स्वीकार करके विरही मन की अनुरागनाम्बितिमा का श्रुतु का प्रयत्न किया है। अन्ध श्रुतु का वणन में कोई विगमता नहीं है। परम्परागत स्थितिमा का वणन उद्दीपन रूप में कविया न किया है अन्ध उद्योग वणन विगतार से न करके कुछ मक्षिप्त उदाहरण ही यहाँ प्रस्तुत किय गत हैं—

श्रीधर

एक नायिका श्रीधर का वातावरण का वणन करके प्रिय से रजन की प्राप्ति करना है—

मार तहमान ताम गाउ लखखाने सोध मतर गुलाब की

बमार रपटती है।

शुभर मुधार होत्र तूटा फुहार नार बार तान

दानन में धूप दपटति है ॥

ऐसे समय गौन कहे कसे के बनगा प्यार
 मुधा के तरंग प्यारा अग लपटति है ।
 चन्दन किवार घनसार के पगार दई
 तऊ आनि ग्रीष्म की भार नपटति है ॥^१

—सूधर कवि

वर्णन में प्रकृति के ताप का वर्णन न होकर रइसा के महला की सुविधाओं की सूची है। उसमें भी ताप का अनुभव करती हुई नायिका पति से कहती है, 'एम् समय म कसे जाओगे।' विरह के ताप की कोई अनुभूति यहाँ नहीं है।

एक और स्थान पर ग्रीष्म में प्रकृति के ताप का वर्णन करते समय यदि कवि उसमें हृदय के ताप की बात जोड़ देता तो उक्ति मार्मिक हो जाती किन्तु वह बबल इतना कहकर रह गया—

पवन भरान घूल लागी पहरान
 अर काम गरतान हिय उयत अशूक है ।
 मूय की चमक दूज घाम की घमक तीजे
 लूह की रमक त उठत तन बूक है ॥
 कहे बच्चुराम चाली चीर न मुहाय अद
 विना मिले श्याम क बलजा दूक दूक है ॥^२

—बच्चुराम

वातावरण की तपन का हृदय की व्यथा से क्या सम्बन्ध है यह यहाँ स्पष्ट नहीं होता ।

शरद

उद्दीपन—

फूले आसपास वास विमल विकास वास
 रहोन निशानी कहे मही म गरद की ।
 राजत कमल दल ऊपर मधुप मन
 छापसी दिखाई छवि विरह फरद की ॥
 श्रीपति रसिक लाल आली बनमाली विन
 बछु न उपाय भरे जिय क दरद की ।
 हरद समान तन भयो है जरद अद
 बरद सी लागती है चादनी गरद की ॥^३

—श्रीपति

१ पदच्छन्द का इजारा सूधर कवि, पृष्ठ १२७

२ वही, बच्चुराम कवि पृष्ठ १२६

३ वही, श्रीपति कवि पृष्ठ, २७७

नायर क पग म भी इस उदापन के प्रभाव का वणन उपलब्ध है—

गरद की ऋतु म उचाट चित्त प्रजराज

राघे का विरह व्याधो उठत या भाखि भाखि ।

किया कटा चाहत है रनि चारि चित चोरयर चद

चाँदनी की चटकहि राखि राखि ॥^१

—वेपथु कवि

राधा क विरह म तृष्ण चद्रमा से अपनी चाँदनी समेट लेने को कहत है ।

हेमन्त

उदापन—

पल पल दिन दिन यामिनी घटन लागी

नामिनी जगन लागी यामिनी यरत म ।

भनत दिवाकर मयोगिनी मुखीनी कीनी दु खिनी

वियागिनी लगीनी हमी हत म ॥

धर धर धरधर बाजत कपाट फट

गटफट सज प मज्ज छविवन्त म ।

सग्य यह पाय म जो आयो न हमार कत

होग प्राण छत नही पाय क हमन्त म ॥^१

—दिवाकर

गिरि

बारूँघि घार की पातु बहै यह गीत की इति है

बीम रिता म ।

रोति बरु गुग गा तगि राति रह्यो

हिम पूरि दिगा विदिगा म ॥

गाकुन डारिहे मन मरोरि तहाय

बहा तहै मानदिगा म ।

बोन का छह दिगयो तिया छतियो तनि ताह

की माह निजा म ॥^१

—गोबुल कवि

इस तरह भारत दु युग क पञ्चतु जगन म हम पूर परम्परा की श्रुतता ही पात

^१ पञ्चतु का प्रथम अंक, पृष्ठ २६६

२ अंक, पृष्ठ २६६

३ अंक, पृष्ठ २६६

है। नवीनता केवल विरह की विभिन्न मनोस्थितियों के दिग्दर्शन की है।

विरह भासा के रूप में भी प्रकृति वर्णन इस युग के काव्य में हुए किन्तु उनका रूप वही है जो पद्य-वर्णन में है अर्थात् उद्दीपन रूप है अतः स्वतंत्र रूप से उसका विवेचन यहाँ नहीं किया गया।

निष्कप रूप में कह सकते हैं कि भारत-दु-युग में विरह का विविध चित्रण हुआ है। उसका स्थूल रूप यद्यपि परम्परागत है किन्तु उसमें अनुभूति का अभाव नहीं है। यत्र-तत्र अपने युग की बुद्धि सजगता का प्रभाव भी विरह की अनुभूति में दिग्दर्शित हो जाता है।

यहाँ इस आर भी इंगित करना अनुचित न होगा कि भारत-दु-युग के इन कवियों के साथ प्राचीन विरह स्फुट का य की परम्परा आधुनिक युग में लुप्त हो गई।

हैं। नवीनता केवल विरह की विभिन्न मनोस्थितियों के दिग्दर्शन की है।

विरह भासा के रूप में भी प्रकृति वर्णन इस युग के काव्य में हुए किन्तु उनका रूप वही है जो पद्य-वर्णन में है अर्थात् उद्दीपन रूप है अतः स्वतंत्र रूप से उसका विवेचन यहाँ नहीं किया गया।

निष्कप रूप में कह सकते हैं कि भारत-द्वय युग में विरह का विविध विचित्र हुआ है। उसका स्थूल रूप यद्यपि परम्परागत है किन्तु उसमें अनुभूति का अभाव नहीं है। यत्र-तत्र अपने युग की बुद्धि सजगता का प्रभाव भी विरह की अनुभूति में दिग्दर्शित हो जाता है।

यहाँ इस ओर भी इंगित करना अनुचित न होगा कि भारत-द्वय युग के इन कवियों के साथ प्राचीन विरह स्फुट काव्य की परम्परा आधुनिक युग में लुप्त हो गई।

द्वितीय अध्याय

सांस्कृतिक प्रबन्ध कविता में विरह-भावना

यथा गतव्यं । क प्राग्भक्त क माय भारत की राजनीतिक परिस्थिति पर्याप्त परिचित है। अतः राजनीतिक जीवन भारत की धरती पर दृढ़ता से जन्म चुक चुका, राजनीतिक जीवन ही नहीं असम्भव माना ही गया था । राजनीतिक दासता के साथ सामाजिक और नैतिक पतन के अध की व्यवस्था विरूपाक्ष हो गई थी अतः विदेशी सत्ता का सत्त्व विद्रोह सम्भव न था ।

गणतन्त्र का उदय हुआ अतः अराजकता का अंग्रेजी शासन न भक्त किया था अतः साधारण जनता उनका प्रतिद्वन्द्वी थी । किन्तु प्रत्येक मनस्वी यह जानता था कि विदेशी शासन देश के लिए घातक है, आत्म-शोख उसे बचाव देता है । गणतन्त्र के उदय के पूर्व 'सम क्षति ही पूरति क्विण्णमपि प्राचीन गौरव का साह्वान करता था ।' मगठन के अभाव में इसी गिरी घाटा का कोई मूल्य न था । अतः जहाँ तक भारत के सांस्कृतिक जागरण का सन्देश देकर जनता के मुक्त सामाजिक जीवन का जगाना था जिसमें वह स्वतन्त्रता के मूल्य को समझ सकें वहाँ दूरी का अन्तर्गत का जीवन रहकर स्वतन्त्रता का आवाज का जीवन रचना का ('पूरे विश्व का मध्य उमर के अन्तर्गत का) ।

सांस्कृतिक जागरण के लिए उमर युग के विद्रोह विरह कवियों ने भारतीय गौरव का अन्तर्गत का जीवन के उन स्वभाव तथा परिस्थितियों को धरित किया जिनका मध्य में भारतीय गौरव और स्वानिमा न धरित था । आत्म-व्यक्तियों के जीवन के लिए घातक प्रबन्ध काव्या की रचना हुई ।

प्रबन्ध काव्या की रचना के विषय में डॉ० कृष्णदास ने अपनी 'साहित्यिक हिन्दु राष्ट्रियता का विकास नामक पुस्तक में लिखा है—' प्रबन्ध काव्य प्रायः परिवर्तन का नमूना है । अतः सामान्य साहित्यिक साधनों का कोई मूल्य नहीं रह जाता, जब तक कि यदि प्राचीन साहित्य और परम्पराओं को हटा जाय तो ही और नए साहित्यों, नई साहित्य और नए परम्पराओं का कोई निर्मित निरूपण नहीं हो पाता अतः परिवर्तन

काल में लागू सरल और साधारण प्रबंध काव्या की शरण लेते हैं। वीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में भी ठीक ऐसा ही हुआ।”^१

डा० कृष्णलाल का सांस्कृतिक प्रबंध-काव्य विषयक उपयुक्त विवेचन सवाग-सा प्रतीत नहीं होता। प्रबंध-काव्या की रचना उस युग में इसलिए नहीं हुई थी कि कविया को अपनी पुस्तक के लिए ‘मार्केट’ बनानी थी, बल्कि इस कारण हुई थी कि उनके द्वारा जनता के सामुख भारतीय संस्कृति के गौरव और आत्माभिमान का प्रस्तुत करना था। कहानी उनके कहने का सबसे सरल उपाय थी। इस युग के प्रबंध काव्य इसका प्रमाण है। परवर्ती प्रबंध-काव्या की रचना का उद्देश्य भी यही रहा।

राम और कृष्ण के महान् चरित्रों की महत्ता का पुनः स्थापन भी सांस्कृतिक प्रबंध कविता से ही हुआ। इससे पूर्व अनेक सामाजिक और धार्मिक कारणों से रीतिशाली में वह नीति परिपाटी के शृंगार तथा कला की प्रतिध्वनि मात्र बन गए थे। केवल अपनी जाति के आदर्श चरित्रों में ही आदर्श नहीं ढूँढा गया प्रत्युत परम्परा से शत्रु मान जाने वाले रावण सरोषे चरित्रों में भी कवि ने उस खोजने की चंष्टा की। ‘रावण’ महाकाव्य और ‘दत्तकुल’ जस प्रथा की रचना हुई।

शृंगार के क्षेत्र में कवि ने उसके परम्परागत रूप की स्वीकृति न करके नवीन भाग के निर्माण का प्रयत्न किया। एक ओर माण्डवी और उर्मिला जैसे उपमित स्त्री चरित्रों का उद्धार हुआ, दूसरी ओर शृंगार स्वतंत्र काव्य विषय न रहकर जीवन की विविध उलझी हुई परिस्थितियों में से एक बन गया जो जीवन की गति की अनुकूलता और प्रतिकूलता के अनुरूप अनेक रूपों में प्रवाहित तथा उन्नयनित होता रहता है। इनके फलस्वरूप राधा, भीमा, उर्मिला, माण्डवी और धयमालिनी (रावण की पत्नी) जैसे पात्रों की नई विधाएँ और सम्भावनाएँ प्रकाश में आईं। परम्परागत ‘विरह’ मासा और ऋतुवर्णन भी माय-माय हाता रहा किन्तु अधिकांशतः उनका वर्णन कवि का लक्ष्य न था।

प्रस्तुत अध्याय में द्वितीय युग के प्रसिद्ध प्रबंध लेखकों की रचनाओं से लेकर आधुनिक युग के वर्तमान प्रबंध काव्या तक को सम्मिलित किया गया है। यद्यपि अनेक प्रबंध काव्य इस युग में लिखे गए हैं किन्तु यहाँ केवल उन्हीं का उल्लेख किया गया है जिनका सम्बंध भारत की नवजागृति और संस्कृति से है तथा जिनमें विरह की अभिव्यक्ति किसी विविष्ट रूप में मुखरित हुई है।

सांस्कृतिक प्रबंध कविता की विरह भावना का विवेचन रामनारायण त्रिपाठी की स्वप्न और ‘पथिक’ रचनाओं से प्रारम्भ हुआ है। इसके पश्चात् जमना हरिप्रौढ के ‘प्रियप्रवास’ और ‘बन्ही बनवास’ तथा मथिलीकरण गुप्त के अनेक प्रबंध काव्या ‘सावेत’, ‘मणोघरा’, ‘जयद्रथ वध’, ‘दापर’, ‘जय भारत’, ‘गकुन्तला’, और ‘विष्णुप्रिया’, में प्राप्त विरह भावना का अध्ययन है। इनके अतिरिक्त आधुनिक युग के अग्र्य लक्ष्मणप्रतिष्ठ प्रबंध

द्वितीय अध्याय

सांस्कृतिक प्रबन्ध कविता में विरह-भावना

२०वाँ शताब्दी के प्रारम्भ के साथ भारत का राजनीतिक परिस्थिति पर्याप्त परिवर्तित हो गई था। अंग्रेजी राज्य के पांव भारत का धरती पर दबता से जम चुके थे, यह उल्लासना कठिन ही नहीं असम्भव सा हो गया था। राजनीतिक दासता के साथ सामाजिक और नैतिक पतन से देश की व्यवस्था विश्रुखल हो गई थी अतः विदेशी सत्ता का स्पष्ट विद्रोह सम्भव न था।

शताब्दियों में फली हुई अज्ञानता और अराजकता का अंग्रेजी शासन ने अतः किया था अतः साधारण जनता उनके प्रति कुतर्क थी। किन्तु प्रत्येक मनस्वी यह जानता था कि विदेशी शासन देश के लिए घातक है, आत्म गौरव उस कचोटता रहता था। डा० नगद्वय 'गदा' में वह 'इस क्षति की पूर्ति के लिए अपने प्राचीन गौरव का आह्वान करता था।' सगठन के अभाव में इनी गिनी आवाजा का कोई मूल्य न था। अतः जहाँ एक ओर इन मनीषियों का नश्य सांस्कृतिक जागरण का स देश देकर जनता के मुक्त आत्माभिमान को जगाना था जिससे वह स्वतंत्रता के मूल्य को समझ सके वहाँ दूसरी ओर कारागार की बन्दिया से बचे रहकर स्वतंत्रता की आवाज का जीवित रखना था (मूल विद्रोह का अर्थ उस समय कारागार था)।

सांस्कृतिक जागरण के लिए उस युग के विद्वानों तक कविता में भारतीय पौराणिक एवं ऐतिहासिक साहित्य के उन स्थला तथा पाना को अंकित किया जिनका सम्बन्ध भारतीय के गौरव और स्वाभिमान से प्रबिद्धि न था। आदश व्यक्तियों के अन्तर्गत के लिए अनेक प्रबंध का या की रचना हुई।

प्रबंध का या की रचना के विषय में डा० कृष्णलाल ने अपनी 'आधुनिक हिंदी साहित्य का विकास नामक पुस्तक' में लिखा है—'प्रबंधकाव्य प्रायः परिवर्तनकाल में ही मिलते हैं। जब प्राचीन साहित्यिक आदर्शों का कोई मूल्य नहीं रह जाता, जब जनता की रचि प्राचीन रुढ़ियाँ और परम्पराओं से हट जाती है और नए आदर्शों, नई रुढ़ियाँ और नई परम्पराओं का कोई निश्चित निरूपण नहीं हुआ रहता तब परिवर्तन

काल में लोग सरल और साधारण प्रबंध काव्या की शरण लेते हैं। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में भी ठीक ऐसा ही हुआ।”

डा० कृष्णलाल का सांस्कृतिक प्रबंध-काव्य विषयक उपयुक्त विवेचन सवाग-सा प्रतीत नहीं होता। प्रबंधकाव्या की रचना उस युग में इसलिए हुई थी कि कवियों को अपनी पुस्तका के लिए ‘मार्केट’ बनानी थी, बल्कि इस कारण हुई थी कि उनके द्वारा जनता के सामुख भारतीय सस्कृति के गौरव और आत्माभिमान का प्रस्तुत करना था। कहानी उसके कहने का सबसे सरल उपाय थी। इस युग के प्रबंध काव्य इसके प्रमाण हैं। परवर्ती प्रबंध-काव्या की रचना का उद्देश्य भी यही रहा।

राम और कृष्ण के महत् चरित्रों की महत्ता का पुनः स्थापन भी सांस्कृतिक प्रबंध कविता से ही हुआ। इससे पूर्व अनक सामाजिक और धार्मिक कारणों से रीतिकाल में वह नीति परिपाटी के शृंगार तथा कला की प्रतिध्वनि मात्र बन गए थे। केवल अपनी जाति के आदर्श चरित्रों में ही आदर्श नहीं ढूँढ़ा गया प्रत्युत परम्परा से शत्रु माने जाने वाले रावण सखी चरित्रों में भी कवि ने उसे खोजने की चष्टा की। ‘रावण’ महाकाव्य और ‘दत्तकुल’ जैसे ग्रन्थों की रचना हुई।

शृंगार के क्षेत्र में कवि ने उसके परम्परागत रूप की स्वीकृति न करके नवीन माग में निमाण का प्रयत्न किया। एक ओर माण्डवी और उर्मिला जैसे उपक्षित स्त्री चरित्रों का उद्धार हुआ, दूसरी ओर शृंगार स्वतंत्र काव्य विषय न रहकर जीवन की विविध उलझी हुई परिस्थितियों में से एक बन गया जो जीवन की गति की अनुकूलता और प्रतिकूलता के अनुरूप अनक रूपों में प्रकाशित तथा उन्नयनित होता रहता है। इसके फलस्वरूप राधा, सीता, उर्मिला माण्डवी और धर्ममालिनी (रावण की पत्नी) जैसे पात्रों की नई विभंगताएँ और नम्रभावनाएँ प्रकाश में आईं। परम्परागत ‘वारह मासा धोर ऋतुवर्णन’ भी माय-माय हाता रहा किन्तु अधिकांशतः उनका वर्णन कवि का नक्ष्य न था।

प्रस्तुत अध्याय में द्विवेदी युग के प्रसिद्ध प्रबंध लेखकों की रचनाओं में लेकर आधुनिक युग के वर्तमान प्रबंध काव्या तक की सम्मिलित किया गया है। यद्यपि अनक प्रबंध काव्य इस युग में लिखे गए हैं किन्तु यहाँ केवल उन्हीं का उल्लेख किया गया है जिनका सम्बंध भारत की नवजाति और सस्कृति में है तथा जिनमें विरह की अभिव्यक्ति किसी विगिष्ट रूप में मुखरित हुई है।

सांस्कृतिक प्रबंध कविता की विरह भावना का विवेचन रामनरंग त्रिपाठी की ‘स्वप्न’ और पथिक रचनाओं से प्रारम्भ हुआ है। इसके पदचात् नमश हरिऔध के ‘प्रियप्रवाम’ और वन्ही बनवास तथा मथिली-गण गुप्त के अनक प्रबंध काव्या ‘साकेत’, ‘यशोधरा’, ‘जयद्रथ वध’, ‘द्वार’, ‘जय भारत’, ‘गकुलता’, और विष्णुप्रिया, में प्राप्त विरह भावना का अध्ययन है। इनके अतिरिक्त आधुनिक युग के अग्र सग्नप्रतिष्ठ प्रबंध

काव्या में विरहाभिन्न चित्त के अध्ययन और चक्रन का प्रयत्न भी किया गया है य ग्रंथ हैं १ जयगकर प्रसाद की 'कामायनी', २ निराला का 'तुलसीदास', ३ डाक्टर बल्लभप्रसाद मिश्र का 'साकतसत', ४ द्वारकाप्रसाद मिश्र का 'कृष्णायन', ५ हरत्यालुमिह का 'रावण महाकाव्य', ६ रामानंद तिवारी की 'पावती' और गुरु भक्तिसिंह का 'नूरजहाँ'। शास्त्रीय विरहाभास की श्रेणी के अंतगत आन वाली कुछ प्रसिद्ध प्रबंध रचनाओं की विरह भावना की मनोवैज्ञानिक स्थिति और रससिद्धता का मूल्यांकन 'विरह अथवा विरहाभास' क शीपकस किया गया है, इसमें मधिलीकरण गुप्त की 'पंचवटी' और साहनलाल द्विवेदी की 'कुणाल' और 'उबानी' का उल्लेख है।

रामनरेश त्रिपाठी

(१) स्वप्न—'स्वप्न' नामक प्रबंध काव्य में कवि ने देशभक्ति के मूलभाव पर दृष्टि केन्द्रित करके नारी को पुरुष की मूल प्ररणाशक्ति के रूप में स्वीकार किया है। स्वप्न का नायक बसंत अपनी प्रिया पर आसक्त है। उसके रूप के समुद्र और नवा की भावना में वह डूबा रहता है। सुमना भी अपने पति की इस एकांत स्थिति में अत्यन्त प्रसन्न है। पावतीय प्रदेश की सुमना ने इन दोनों को आत्म विभोर कर रखा है।

दश पर चनु का भ्रातृमण होता है। सबके पति स्वदेश के स्वातन्त्र्य की रक्षा के लिए युद्ध में जाते हैं किन्तु सुमना स्वायत्त अपने पति को नहीं जान देती। जिन युवकों ने मानभूमि की रक्षा के लिए बलिदान किया था, उनके यश-सौरभ से वातावरण गूँज उठा, सुमना के पति का गुणगान किसी ने नहीं किया। वह विकल हो उठी। उसने पति से युद्ध में जाने की प्रार्थना की किन्तु वह नहीं गया।

निरास सुमना एक रात पति को सोता हुआ छाड़कर न जान कहा चली गई। बसंत पागल हो गया और उसके विरह में व्यथित रहने लगा।

बसंत का विरह वणन अधिकतर इति-व्यत्तरमक है। कवन शाली के कारण पीडा का अनुभूति पत्र काफी दब गया है। किन्तु फिर भी गीति काव्य के अनुभूति रूप यत्र-तत्र प्राप्त हो जाते हैं। स्मृति दगा सचारी बनकर विरह को उद्दीप्त कर रही है।

किन्तु दूसरे ही क्षण उसकी
नीरवता से व्याकुल होकर
अपने अधर रख दिए मैंने
उसके अरण वण अधरो पर
चौंकी उठी वह, किन्तु जानकर
मरी व्याकुलता का कारण
विद्युत सी झिलझिला पड़ी वह
हाय ! भूलता नहीं एक क्षण ॥^१

१ श्री रामनरेश त्रिपाठी—स्वप्न, पृष्ठ ४, पद १४

उमाद, प्रनाप, अश्रु, स्मृति और मूर्च्छा दगाघ्रा का समावेश स्थान-स्थान पर किया गया है—

उसके भूषण बमन उटाकर
हृदय लगाकर गदगद होकर
वार वार चुम्बन कर दा म
अश्रु गिराकर उह भिगोकर
सहसा उस निजन परम वह
सुमना बहकर गिरकर भू पर
मूर्च्छित सा रहना या प्रायः
बहुत समय तक उस स्मरण कर ॥^१

बुद्ध नवीन कल्पनाएँ अत्यन्त सुन्दर बन पड़ी हैं। संसार में अनेक ज्यातिपिड होने पर भी विरही का प्रिय के बिना अघकार ही दिखाई पड़ता है, इस भावकी व्यञ्जना बसन्त इस तरह करता है—

दीप, वह्नि, तारे हिमागु रवि,
हैं प्रकाश के स्रोत बहुत पर
प्रियाविना मुझको लगता है
अघकारमय यह मञ्जराचर ॥^२

रामनरेश त्रिपाठी द्विवेदी काल के कवि हैं अतः वणन की इतिवत्तात्मकता आदि विशेषताओं का उनके काव्य में होना स्वाभाविक है। किन्तु 'स्वप्न के अध्ययन से जात होता है कि यह कवि अपने विषय वणन में, अपने युग का प्रतिनिधित्व ही नहीं करता, आगामी नवीन युग की भावनाओं का बीजारापण भी करता चलता है। वैयक्तिक अनुभूति का सर्वात्म के मिस दखना स्थूल प्रेम को सूक्ष्म व अताद्रियरूप देना तथा अनन्त में चिर विरह का संकेत करना छायावादी युग की रहस्यात्मक अनुभूति की विशेषताएँ मानी जाती हैं। यहाँ बसन्त के विरह में हमें य सब मिल जाती हैं—

पता नहीं जिनके वियोग में
बन में नदी-सटी पर तह्वर
भरी तरह रुदन करत है
फूँ नाम के अश्रु गिराकर
कोई राता है अनन्त में
जिसके अश्रुबिंदु हैं उडुगण
आस नाम से तण तरुया पर
दिसरे रहत हैं जिनके कण

^१ रामेश त्रिपाठी—स्वप्न, मंग ४, पद ७

^२ वहाँ, पद २०

चश्मो से बहते हैं यह किस
विरही के हैं अथु अनवरत
ये प्रपात हैं किस विदग्ध का
अनल बुझाने में सतत रत
किसकी विषम वियोग व्यथा से
विह्वल है हृदयनमा का उर
प्रगतिशील होती सुमना भी
वही हाथ वो ही मिलनातुर ॥^१

विरही की यथा सम्पूर्ण विश्व को आद्र बनाती है और वह उसका करण विरहगान गाता है यह भाव भी नवान युग की कल्पना है। त्रिपाठी जी ने उस इस प्रकार व्यक्त किया है—

उसका विरह वेदना अगणित
बटा म हो उठी निनादित
हृदया म हो उठा चतुर्दिव
करुणा पारावार तरंगित ॥^२

इन नवीन अनुभूतिमा के साथ रीतिवालीन परम्परा के अवसप भी नायिका वणन म मित्र जाते हैं।^३ संक्षेप में 'स्वप्न' भारत दु काल क खण्डहरावशेषों की नई इमारतों म श्रद्धा-सा दिग्गड पडता है।

चरम नराश्य का स्थिति पर पहुँचकर बसंत स्वयं स और प्रेम से भी विरक्त हा गया। वह आत्म मुख की खोज करना लगा। यह आत्म-मुख एक नवयुवक की प्ररणा से उस दश की रथा म मिला। बसंत के सहयोग से देश की विजय हुई। राजाने उसका विजय मुकुट पहनाया। विजय मुकुट पहनने के अवसर पर जब उसने उम युवक की खोज की तो वह उसकी प्रियतमा सुमना ही थी—

वह भरा प्रिय बंधु वहाँ है ?
म स्वर्ग को उसका परिचय
दने का श्रुति ही उत्सुक हू
वणन कर उपकार समुज्ज्वल
प्राणनाय की सुमनुर बाणी
मुनकर सुमना गलगद हाकर
सकुवा कर धीरे म पोली
मैं ही हूँ वह, हूँ प्राणेश्वर।^४

^१ रामनरेश त्रिपाठी—स्वप्न संग ४, पद २१, २२

^२ वटा पद २५

^३ वही संग ४, पद १८, २७

^४ वही संग ५, पद ४१

वसंत का विरह एकान्त वदना होकर भी उसे अकमण्य नहीं बनाता, देश की रक्षा की ओर उमुख करता है। स्वयं सुमना भी परम्परागत नायिकाया की भाँति केवल रोना भीकना नहीं जानती, आत्म-सम्मान की प्रताड़ना पीड़ित हाँकर देश की रक्षा करती है और पति को भी प्रेरणा देती है। ऐसी स्त्रियाँ ही कवि का 'स्वप्न' हैं।

(२) पथिक—ब्रिटिश साम्राज्यम राजा की कूटनीति और अत्याचार तथा प्रजा और राजा के बीच की खाई का संकेत त्रिपाठीजी ने अपने 'पथिक खण्डकाव्य' में किया है। उमका निदान भी असहयोग आंदोलन में दूना है।

दक्षिण ममुद्र के तटपर पथिक अपनी प्रिय पत्नी से बहुत दिन के पश्चात् मिलता है। पत्नी उसको पहचानकर घर वापस लौट चलने की प्रार्थना करती है अपने छोटे बच्चे को अपनी बाहों में मुक्त करके वह उसे टूटन को निकली थी। पत्नी की अनुनय-निय का पथिक पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वह ससार में दुखा में घणा करता है, उसके अनुसार वनश्री ससार से कहीं अधिक सुखद है। निराग स्त्री लौट जाती है। पथिक की सांसारिक मधप में पलायन करके प्रकृति के चित्रित आचल में शरण लेने की प्रवृत्ति में त्रिपाठीजी की नमसामयिक परिस्थितियाँ का प्रभाव लक्षित है।

इस निराशा भावुक को माधु प्रवृत्ति का माग दिखाता है। उमन कहा कि 'पौरुष, साहस, सत्य, योग, श्रद्धा और करुणा आदि गुण ईश्वर में मनुष्य का धरोहर रूप में दिये हैं। इन गुणों का यथामभवा उपयोग करना मनुष्य का धर्म है और इनमें पलायन इश्वर के साथ विश्वासघात। तुम मानव समाज में जाओ और यथानुसार इन गुणों का उपयोग करो। माधु के उपदेश में पथिक की आँखें खुल जाती हैं। वह देश भ्रमण करता है और इस प्रकार अपने देशवासियों के अत्यंत निकट आ जाता है। वह देखता है कि प्रजा बहुत दुखी है और राजा उस पर मनमाना अत्याचार कर रहा है। राजा के अत्याचार का एकमात्र उपचार वह प्रजा को उसमें असहयोग करने में बताना है। राजा क्रुद्ध होकर पथिक को प्राण-दण्ड देता है। उनकी मृत्यु से पहले उमकी पत्नी और पुत्र भी आत्मवलि दे दते हैं। समाज में जय जयकार गूँज उठती है।

पथिक के वलिदान से प्रजा में मगठन हा जाता है और वह विद्रोह करके राजा को दस निकाला दे देती है। प्रजा दसक बाद मुखी हा जाती है और देश में सुख और समृद्धि का राज्य स्थापित होता है। इस तरह वह सच्चा प्रेमी देश का आत्मरक्षक के बल पर अत्याचार के बंधन में मुक्त करता है।

देशभक्ति का भाव में प्रेरित 'पथिक' का लक्ष्य यद्यपि राष्ट्र मगठन है किन्तु उसके मुख्य पात्र पथिक के जीवन के पारिवारिक पक्ष का भी कवि ने पूरा ध्यान रखा है। पथिक की पत्नी की विरह-व्यथा का दिग्दर्शन हम इस काव्य में मिलता है। पथिक के विरह भाव को वायव्य प्रवाह की श्रेणी में रखा जा सकता है जिसके आदेश की पूर्ति उमके परिवार के वलिदान में होती है।

सबसे प्रथम 'पथिक' काव्य में इस बात की ओर ध्यान जाता है कि द्विवदी-युग के

चश्मो से बहते हैं यह किस
विरही के है अश्रु अनवरत
य प्रपात हैं किस विदग्ध का
अनल बुझान में सतत रत
किसकी विषम वियोग व्यथा से
विह्वल है हृदयतया का उर
प्रगतिशील होती सुमना भी
कहाँ हाथ या ही मिलनातुर ॥^१

विरही का यथा सम्पूर्ण विश्व का आद्र बनाती है और वह उसका करुण विरहगान गाता है यह भाव भी नवीन युग की कल्पना है। निपाठी जी ने उस इस प्रकार व्यक्त किया है—

उसकी विरह बंदना अगणित
कठो में हो उठी निनादित
हृदया में ही उठा चतुर्भुज
कण्ठा पारावार तरंगित ॥^२

इन नवीन अनुभूतियाँ के साथ रीतिकालीन परम्परा के अवशेष भी नायिका वपन में मिल जाते हैं।^३ संक्षेप में 'स्वप्न भारत दु काल के लण्डहरावशेषों को नहीं इमारतों में बदलना मान्छाई पता है।

चरम नराश्य की स्थिति पर पहुँचकर वसंत स्वयं से और प्रेम से भी विरक्त हो गया। वह आत्म सुख की खोज करने लगा। यह आत्म सुख एक नवयुवक की प्रेरणा से उसे दस की रक्षा में मिला। वसंत के सहयोग से देव की विजय हुई। राजा ने उसका निजम मुकुट पहनाया। विजय मुकुट पहनने के अवसर पर जब उसने उस युवक की खोज की तो वह उसकी प्रियतमा सुमना ही थी—

वह मेरा प्रिय बंधु कहा है ?
मे स्वदेव को उसका परिचय
देने का अति ही उत्सुक हूँ
उपन कर उपकार समुच्चय
प्राणनाथ की सुमधुर वाणी
सुनकर सुमना गंगाद हाकर
समुच्च कर धीरे से बोली
मैं ही हूँ वह, हूँ प्राणेश्वर।^४

१ रामनरेश त्रिपाठी—स्वप्न, सर्ग ८, पं २१-२२

२ वही पं २५

३ वही सर्ग ४, पं १८, २७

४ वही, सर्ग ५, पं ४१

वसंत का विरह एकान्त वेदना होकर भी उसे अक्रमण्य नहीं बनाता, दंग की रक्षा की आर उन्मुख कराता है। स्वयं सुमना भी परम्परागत नायिकाया की भाँति केवल राना भीवना नही जानती, आत्म-सम्मान की प्रताडना पीडित होकर दंग की रक्षा करती है और पति का भी प्रेरणा देती है। ऐसी स्त्रिया ही कवि का 'स्वप्न' है।

(२) पथिक—ब्रिटिश साम्राज्य में राजा की कूटनाति और अत्याचार तथा प्रजा और राजा के बीच की खाई का सकल त्रिपाठीजी ने अपने 'पथिक खण्डकाव्य' में किया है। उमन निदान भी असहयोग आंदोलन में डूबा है।

दक्षिण समुद्र के तटपर पथिक अपनी प्रिय पत्नी से बहुत दिन के पश्चात् मिलता है। पत्नी उसका पहचानकर घर वापस लौट चलने की प्रायना करती है, अपने छोटे बच्चे को अपनी बाँहा से मुक्त करके वह उस टूटन को निकली थी। पत्नी की अनुनय-विनय का पथिक पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वह समार के दुखाने घृणा करता है, उसके अनुसार बनथी सत्तार में कहा अधिक मुखद है। निराग स्त्री लौट जाती है। पथिक की सांसारिक सचप सं पनायन करके प्रकृति के चित्रित आचल में शरण लेने की प्रवृत्ति में त्रिपाठीजी की समसामयिक परिस्थितिया का प्रभाव लक्षित है।

इस निराग भावुक को माधु प्रवृत्ति का माग दिखाता है। उमन कहा कि 'पौष्य, साहन, सत्य, माय, श्रद्धा और करुणा आदि गुण ईश्वर ने मनुष्य का धराहर रूप में दिये हैं। इन गुणों का यथामभवे उपयोग करना मनुष्य का धर्म है और इनमें पलायन ईश्वर के साथ विद्रवासागत। तुम मानव समाज में जाओ और यथानुसार इन गुणों का उपयोग करो। माधु क उपदेश से पथिक की आँखें खुल जाती हैं। वह दंग भ्रमण करता है और इस प्रकार अपने दंगवामिया के अत्यंत निकट आ जाता है। वह देखना है कि प्रजा बहुत दुखी है और राजा उम पर मनमाना अत्याचार कर रहा है। राजा के अत्याचार का एकमात्र उपचार वह प्रजा को उम असहयोग करने में बताता है। राजा क्रुद्ध होकर पथिक को प्राण-दण्ड देता है। उसकी मृत्यु से पहले उसकी पत्नी और पुत्र भी आत्मधलि दे देते हैं। समार में जय तयकार गज उठती है।

पथिक के बलिदान में प्रजा में सगठन हा जाता है और वह विद्रोह करके राजा को दसा निकाना दे देती है। प्रजा इसके बाद मुखी हा जाती है और दंग में सुख और समृद्धि का राज्य स्थापित होता है। इस तरह वह सच्चा प्रेमी दंग का आत्मगतिक के बल पर अत्याचार को बचन से मुक्त करता है।

देशभक्ति के भाव से प्रेरित 'पथिक' का लक्ष्य यद्यपि राष्ट्र सगठन है किन्तु उसके मुख्य पात्र पथिक के जीवन के पारिवारिक पक्ष का भी कवि ने पूरा ध्यान रखा है। पथिक की पत्नी की विरह-व्यथा का दिग्दर्शन हम इस काव्य में मिलता है। पथिक के विरह भाव का 'मायवग' प्रवास की श्रेणी में रखा जा सकता है जिसके आदेश की पूर्ति उमने परिवार के जलदान में होती है।

सबसे प्रथम 'पथिक' काव्य में इस बात की आर ध्यान जाता है कि द्वितीय-युग के

बंठार नतिक अनुशासन के कारण कवि की सौंदर्य दृष्टि नायिका के स्थूल अंगों से हटकर सूक्ष्म और अतीन्द्रिय बन रही थी। पथिक की स्त्री या सौंदर्य कवि ने इन गणना में व्यक्त किया है—

उसी समय कमनीय एक स्वर्गीय विरहणी सी वामा।

कवि के स्वप्न समान विश्व के विस्मय सी अभिरामा ॥^१

सौंदर्य का यह विस्मय रूप ही आगे चलकर छायावाद में अत्यन्त स्पष्ट हुआ। उसके यह उपमान पूर्ववर्ती युग के लिए अपरिचित थे।

विरहिणी पथिक की पत्नी का प्रिय के दर्शन से जो सुख मिला वह भी अपूर्व है—

अधे को दग, महा रक को विश्व सम्पदा सारी।

जठ दुपहरी में भरचल के तपित पथिक को वारी।

मिलन से जा सुख हाता है आत्म रहस्य यती का।

उससे बढ़ सुख मिला अचानक विरह विदग्ध सती को ॥^२

प्रिय मिलन के सुख की उपमा यती के आत्मरहस्य की प्राप्ति से, अनुपम है। आत्म रहस्य की प्राप्ति में जो चिर आत्म विसर्जन का भाव है वही विरही के पुनः प्रिय मिलन की व्यजना करने में समर्थ हो सकता है। उपमा अत्यन्त सशक्त है।

मिलन का कवि प्रेम की सुपुष्टि और विरह को 'जागत गति' मानता है। यह ठीक भी है। मिलन में प्रेमी आत्मविभोर हो जाते हैं किन्तु विरह में प्रेम के कोमल भाव का सावधान रहकर यथाशक्ति पोषण करते हैं—

मिलन अत है मयूर प्रेम का और विरह जीवन है।

विरह प्रेम की जागत गति है और सुपुष्टि मिलन है ॥^३

'स्वप्न' की तुलना में पथिक में प्रतिवृत्तात्मकता कम है। कथोपकथन की शैली कवि ने अपनाई है। पथिक की स्त्री अपने अतीत के दिनों का स्मरण कराकर उससे घर लौट चलने की प्रार्थना करती है—

कहत थे तुम—कोमलता नीरज की ज्याति रतन की।

मोहकता शशि की, गुलाब की मुरझि गति सज्जन की ॥

रति का रूप, रंग कचन का, लेकर स्वाद मुधा का।

विरचा है विधि न मुन्न तेरा मुख लेकर वसुधा का ॥

मर मुख को चंद्र बतारकर तुम चबोर बनत थे।

नीर भर घन से मरे कच दस मोर बनत थे ॥

१ रामनरेश त्रिपाठी—पथिक, प्रथम संग, पृ ४

२ वही, संग १, पृ ६

३ वही पृ १२

आशा का जीवन वह मुझको सदा दखते रहते ।
मेरी बाता को स्वप्राण की नाँस तुम्हीं धे कहते ॥
देख देख निगि वानर मरी नींद नरी मुन्दरता ।
फूल नहीं ममान थ तुम ह भरे टुल हवा ॥
मैं समझे थी, पृथ्वीतल पर केवल हैं हम दो ही ।
सो तुम हाय ! हो तब एमे निठुर और निर्मोही ॥^१

अपन प्रेम की तरांग की उपमा सागर की लहरा स करके वह कहती है कि मैं तुम्हारे पीछे पागल हूँ किन्तु प्रकृति तुम्हारी ओर ध्यान भी नहीं देती ।—

प्रेम-पयोनि हृदय यह अस्मिर, चारिधि स बढकर है ।
सच कहती हूँ नाय ! तुम्हारे लिए सदा टुस्तर है ॥
तब सेवा क लिए हृदय म है जो मधुर उमगें ।
क्या उसस पढकर है ये सारी जल जय तरगें ॥^२

पथिक के मन पर स्त्री की विनती का कोई प्रभाव नहीं पड़ता तब वह हताग हो जाती है—

रमणी हुई परम मर्माहत मुन विरचिन पति द्वारा ।
बरस पड़ी आखें पावस क घन सी भर जल धारा ॥
कहन ली— विषम पीना सह प्रभु ! तब विरहानल म
आई थी मैं आज गरण लन का भागर तल म ॥
हा निराग सब अग प्राण का रोक राक जब हार ।
आज अभागिनि के नमीव तुम मिले मत्स्य क द्वारे ॥
पहले-पहल पयोधर दकर जिनके कामल मुख म ।
मग्न हुई अति नव्य अनिवचनीय अलौकिक मुख म ॥
उसी गुमन-अग्रह ने गिगु क कमे बाहु बचन को ।
खान निठुरता से घाई थी मैं विरहाकुल वन को ॥
मा माँ कहता हुआ आख म ग्रामू भर वह घना ।
हा ! वह दृश्य एक पल मुझसे जाता नहीं भुलाया ॥^३

पथिक की स्त्री परम्पारित भारतीय नारी है । पथिक अवन सुख के लिए जीवन से पलायन करके उस छोड़ आया था, यह उसका अपमान था । किन्तु आत्मसम्मान के आहत होने से पत्नी को पीडा नहीं हावी, दुपहुँडे पुत्र के माह को छोड़कर भी वह पति का टूटने के लिए निकल पडती है । दूसरी ओर मयिली-गरण गुप्त की 'पयोधरा' है जो

१ रामनरेश त्रिपाठी—पथिक मग १, पद २७-३१

२ वही, पद ३८, ६

३ वही, पद ४१-४२

पति के इस प्रकार चले जाने को अपना धार अपमान मानती है—

सिद्धि हेतु स्वामी गय यह गौरव की बात ।

पर चोरी चोरी गय यही बड़ा व्याघात ॥

आत्म-सम्मान की रक्षा करती हुई वह राहुल का पोषण करती है । गौतम के विरह से उमका हृदय यंत्रित है किन्तु वह प्रणय की भीख नहीं मांगती ।

रामनरेश निपाठी का नायिका परम्परित आश गहिणी है और मधिलीशरण गुप्त की यगोधरा नवयुग की जागति में अपना मूल्य समझने वाली सजग नारी ।

हरिऔध

(१) प्रियप्रवास—हरिऔधजी का प्रियप्रवास खड़ी बोली का प्रथम महाकाव्य कहा जाता है । इसमें कवि ने कृष्ण के मथुरागमन तथा उनके विरह में दुखी राजवासिया और मुग्यत राधा का वणन किया है । कृष्ण के वियोग में विह्वल राजभूमि का वणन अनेक पूर्ववर्ती कवियों ने भी किया है किन्तु उनकी राधा मौन ही रही है, यहाँ उसकी पीड़ा मुखर हो गई है ।

इस अन्तर पर हरिऔधजी ने कथा में एक मौलिक परिवर्तन किया है । कृष्ण के मथुरागमन के समय राधा अकेली नहीं है ललिता भी उसके पास है । प्रिय क विदाग जाने का समाचार सुनकर राधा की जो दशा हुई उसका चित्रण कवि ने अनुभावों द्वारा इस तरह किया है—

विवसिता कलिका हिमपात स ।

तुरत ज्यो बनती अति म्लान है ॥

सुन प्रसंग मुकुन्द प्रवास का ।

मलिन त्यो वपभानुसुता हुई ॥^१

'विवण' अनुभाव के वणन में वियागिनी राधा की यथा काफी मार्मिक प्रतीत होने लगती है किन्तु इसके पश्चात् ही कवि ने प्रलाप का रुदन प्रस्तुत किया है । युग युग की मौन राधा प्रियप्रवास में इतनी मुखर हो गई है कि उसका मम छिछला सा लगने लगता है । उनका रुदन पारसी नाटकों की अभिनेत्री के लम्ब-चौड़ गाना की याद दिलाने लगता है—

कल कुवलय क स नेत्र वाले रसील ।

वररचित फरील पीत कौसेय शोभी ॥

गुणगण मणिमाली मजुभाषी सजीले ।

वह परम छवील साडिले नद जी के ॥

यदि कल मथुरा की प्रात ही जा रहे हैं ।

बिन मुख अवलोके प्राण कस रहेने ॥

१ हरिऔध—प्रियप्रवास अनुभव, पद २६, पृष्ठ ४०

युग सम घटिकायें वार की बीतती थी ।
 सखि दिवस हमारे बीत कसे सकगे ॥
 जन मन कलपाना मैं बुरा जानती हूँ ।
 परदुख अवलोके मैं न होती सुखी हूँ ॥
 कह कर कटु बात जी न भूले जलाया ।
 फिर यह दुखदायी बात मैंने सुनी क्या ?
 अयि सखी ! अवलाके खिन्नता तू कहगी ॥
 प्रिय स्वजन किसी के क्या न जाते कही हैं ।
 पर हृदय न जाने दग्ध क्या हो रहा है ।
 सब जगत हम है गूय हाता दिखाता ॥^१

अच्छा होता यदि हरिऔषधी इतना विवरण न दकर अनुभावा के वणन स ही
 व्यथा की व्यजना कराते । तब अनुभूति अधिक मार्मिक और स्वाभाविक होती । प्रिय
 प्रवास की राधा ललिता से यह भी स्पष्ट कहती है कि वह कृष्ण का हृदय से वरण कर
 चुकी है और विधिवत वरण करने की लालसा भी उनके मन न थी, जो अब पूरी होती
 दिखाई नहीं देती—

हृदय चरण मे ता मैं चढा ही चुकी हूँ ।
 सविधि-वरण की थी कामना और मरी ॥
 पर सफल हम सो है न होती दिखाती ।
 वह कब टलता है भाल मे जो लिखा है ॥^१

कृष्ण के जान से पहले ही अपनी भावी दशा का आभास राधा को होने लगता
 है—

अहह मिसकती मैं क्यों किसे देखती हूँ ।
 मलिन-मुख किसी का क्या मुझे है रुलाता ॥
 जल-जल किसका है छार होता नलेजा ।
 निकल निकल आह क्या किस वेधती है ॥
 सखि, भय यह क्या गह म छा गया है ।
 पल पल जिसस मैं आज यो चौकती हूँ ॥
 कँपकर गह म की ज्योति छाई हुई भी ।
 छन छन अति मली क्या हुई जा रही है ॥^१

प्रवत्स्यपतिका राधा के इस प्रलाप मे केवल दा पद अत्यंत मार्मिक प्रतीत होते हैं—

१ प्रियप्रवास चतुर्थ सर्ग, पृष्ठ ४०-४१

२ वही, पृष्ठ ४१, पद ३५

३ वही, पृष्ठ ४२, पद ३०-३१

सब नभ-तल तारे जो उगे दीखते है ।
 यह कुछ ठिठके स सोच में क्यों पड़े है ।
 अजदुख अचलके क्या हुए है दुखारी ।
 कुछ व्यथित बने से या हम देखते है ।
 हर हर किरणें जा फूटती हैं दिखाती ।
 वह मिय इनके क्या बाध दत हम हैं ॥
 कर वह अथवा या शांति का है उठाते ।
 विपुल व्यथित जावा की क्या मोचन को ॥^१

राधा के हृदय को स्तब्धता का तारो की स्तब्धता से साम्य सुन्दर है । बीच-बीच में विरणा के फूटने में और उ-ह उनका शांति का कर (हाथ) मानन से यह सकेत मिलता है कि भविष्य के विरह में आशा की एवमात्र किरणें जन की सेवा और उनकी विपुल व्यथा के मोचन का प्रयत्न होगा । राधा को ललिता के समीप दिखाकर मन्वी की सात्वना की नवीन योजना भी हरिश्चन्द्रजी ने कराई है । सखी को धय बँधाती हुई ललिता का चित्रण अत्यन्त हृदय-स्पर्शी है—

नाना बात दुख शमन को प्यार स थी सुनाती ।
 धीरे धीरे नयन जब थी पाछती राधिका का ॥
 हा! हा! प्यारी दुश्चित मत हो या कभी थी सुनाती ।
 राती रोता विक्ल ललिता आप होती कभी थी ।
 सूखा जाता कमल मुख था हाठ नीला हुआ था ।
 दोनो आँख विपुल जल में डूबती जा रही था ॥
 शकलें थी विक्ल बरती काँपता था कलेजा ।
 खिना दीना परम मलिना उमना राधिका थी ॥^२

वृष्ण का रव गोकुल का पथ छोड़कर आग बढ गया केवल माग में उडती हुई धूल ही गप रह गई । उदभ्रान्त राधा उसी का सम्भावित करके कहने लगी—

क्यों होता है भ्रमित इतनी घूल क्यों शिथिल तू है ।
 क्या तू भी है विचित्रित हुई श्याम स भिन्न होक ॥
 आ आ, आके लग हृदय से लाचना म समा जा ।
 मरे अगा पर पतित हो बात मेरी बना जा ।
 मैं पाती हूँ सुख रज तुझे आज छूके करो से ।
 तू आती है प्रिय निकट से कलात्त मरी भिटा जा ॥^३

१ नियमनाम, सग ४ श्लोक ४२, ४३ पद ४१, ४२

२ वही चतुर्थ सग श्लोक ४६, पं ५०, ५३

३ वही, सग ५, श्लोक ५७, पद ७१, ७२

प्रिय के निकट से आती हुई धूल भी इतनी स्पृहणीय बन जाती है कि विरही उसी को हृदय से लगा लेना चाहता है। राधा का अपनी मनुष्य देह पर बड़ी ग्लानि है, यदि वह भी धूल होती तो प्रिय के साथ किसी तरह चली जाती। धूल को उलाहना देती हुई वह कहती है—

जो तू जाके विरह रथ में बठ जाती कही भी ।
 किवा तू जो युगल तुरगा के तना में समाती ॥
 ता तू जाती प्रिय स्वजन के साथ ही शान्ति पाती ।
 यो हो-हो के भ्रमित मुझ सी भ्रात कसे दिखाती ॥
 हा ! मैं कसे निज हृदय की वेदना को बताऊँ ।
 भेरे जी को मनुज तन से ग्लानि सी हो रही है ॥
 जो मैं होती तुरग अथवा यान ही या ध्वजा ही ।
 तो मैं जाती कुवर वर के साथ क्या कष्ट पाती ॥^१

राधा की यह विरह दगा उमाद है जहाँ विरही जड़ और चेतन में भेद नहीं कर पाता और जड़ को ही चेतन समझ लेता है। विक्षिप्त-मी राधा एक ओर तो प्रिय के निकट से आने वाली धूल का आर्त्तिगन करती है, दूसरी ओर वह (धूल) प्रिय का छोड़कर चली आई इसलिए उसने कुत्न का अनुभव भी करती है।

इसके पश्चात् पृष्ठ सग में प्रीतिपति का राधा का चित्र कवि ने प्रस्तुत किया है। उनका मन उद्विग्न रहता था और वह दिन रात रोती थी, मन में प्रिय मिलन की अनन्त अभिलाषा थी और वियोग की वदना हृदय को साल रही थी—

रो रो चित्त सहित दिन को राधिका थी बिताती ।
 आला को थी सजल रखती उमना थी दिखाता ॥
 शांभा वाले जलद वपु की हो रही चातकी थी ।
 उत्पन्ना थी परम प्रबला वदना बधिता थी ॥^२

चुपचाप एक दिन घर में खिन्न मन से वह ऐसे ही बठी घामू बहा रही थी कि एक पवन का नाका धाया। स्निग्ध वातावरण से प्रिय के अभाव में मन और भी विकल हो गया—

था राधा को यह पवन की प्यार वाली क्रियाएँ,
 थोड़ी-सी भी न मुखद हुई हो गई वरिणी सी ।
 भीनी भीनी महक मन की शान्ति को खो रही थी,
 पीडा देती व्यथित चित्त को वायु की स्निग्धता थी ॥^३

१ हरिऔरी—पियश्रवाम, पंचम सग, पद ७४ ७५, पृष्ठ ५७

२ वदो पृष्ठ सग, पद २६, पृष्ठ ६३

३ वदो, पद २६, पृष्ठ ६३

प्रथम ती वायु के इस अतिचार से राधा क्रुद्ध हो गई—

तू आती है बहन करती चारि के सीकरा को ।

हा ! पापिण्टे फिर किसलिए ताप देती मुझे है ॥^१

किन्तु दूसरे ही क्षण ध्यान आया कि वह कृष्ण के पास उनका स-देश ल जा सकता है । उन्होंने उस बहन कहकर सम्बोधित किया और कृष्ण के पास अपना स-देश ल जा की प्रार्थना की—

भरे प्यार नव जलद स वज से नन वाले ।

जाके आए न मधुवन से श्री' न भेजा स-देशा ॥

मैं रो रा के प्रिय विरह स बावली हो रही हूँ ।

जाके मेरी सब दुख कथा श्याम को तू सुना दे ॥

तू जाती है सकल थल ही बगवाली बडी है ।

तू है सीधी तरल हृदया ताप उमूलती है ॥

मैं हू जी म बहुत रखती वायु तरा भरोसा ।

जसे हो ए भगिनी बिगडी बात मरी बना दे ॥^२

परहित की भावना प्रियप्रवास की राधा म प्रारम्भ स ही है । पवन स वह कहती है—

जाते जाते अगर पथ म कलात कोई दिखाव ।

तो जाके स निवट उसकी क्लान्तिया को मिटाना ॥

धीरे धीरे परस करके गात उत्ताप खोना ।

मदग धो से श्रमित जन को हृषिता सा बनाना ॥^३

पवन बोलना नहीं जानती इस तथ्य को हरिऔषजी के बुद्धिवादी युग की राधा समझती है । अतः स-देश मान बहने स ही वह स जुष्ट नहीं हाती, पवन उसके (राधा के) नियाकलाप कृष्ण के स मुख वस अभियक्त करे इसकी भी बिधिया वह उस बताती है कही कही यह युक्तियाँ अत्यन्त मार्मिक हो गई हैं—

तरे म है न गुण यह जो तू यथाएँ सुनाए ।

यापारा को प्रखर मति और युक्तिया स चलना ॥

बठे जो हो निज सदन म मध-सी कात्ति वाले ।

तो चित्रा को इस भवन के ध्यान स दख जाना ॥

जा चित्रा म विरह विधुरा का मिले चित्र कोई ।

तो जा जाक निवट उसको भाव से यो हिलाना ॥

प्यारे हान चकित जिसस चिन की ओर दखें ।

आशा है या सुरति उनको हो सकेगी हमारी ॥^४

१ हरिऔषजा—प्रियप्रवास, पृष्ठ सग पद ३१, पृष्ठ ६५

२ बडी प- ३३ म ३६ तक, पृष्ठ ६५ ६५

३-४ बडी, पद ६७-६८, पृष्ठ ७०

यदि उस समय कृष्ण घर में होकर उपवन में हाँतो—
 जो प्यार में जा बगलित करना वणु-सा कीचका को ॥
 छिद्रा में जा बगलित करना वणु-सा कीचका को ॥
 या हावगा मुरति उनका सब गोपागना की ।
 जा है वसी श्रवण रुचि से दीध उत्कण्ठ होती ॥^१
 इसी प्रकार विरह की अर्थु रामाच वपथ, वृसता और ववण्य आदि दसाप्रा
 की अभिव्यक्ति का उपाय भी राधा पवन को बताती है—
 अर्थु—

ला के फूले कमल जल को श्याम के सामन ही ।
 थाड़ा बोड़ा विपुन जल में व्यग्र हाँ हो डुबाना ॥
 या देना ए भगिनी जतला एक अमाज-नवा ।
 आसा का हो विरह बिधुरा वारि में वारता है ॥^१
 रोमाच—

धीरे लाना बहन करके नीप का पुष्प काई ।
 या प्यारे के चपल दग के सामन डाल दना ॥
 ऐसे दना प्रकट खिलानि नित्य आशकिता हो ।
 कस हाँती विरह वसा में नित्य रामाचिता हू ॥^१
 वपथु उद्वग—

बठे नीच जिस बिटप के श्याम हाँवें उसी का ।
 कोइ पना निकट उनके नत्र के ल हिलाना ॥
 या प्यारे का विदित करना चातुरी में दिखाना ।
 मरे चित्ता विजितचित्त का क्लात हाँ काप जाना ॥^१
 वृगता—

मूखी जाली मलिन लतिका जा घरा में पडी हो ।
 तो पाँवा के निकट उमका श्याम के ला गिराना ॥
 यो मीध स प्रकट करना प्राति में बचित्ता हाँ ।
 मरा होना अति मलौन औ मूखत नित्य जाना ॥^१
 ववण्य—

कोई पत्ता नवल तरु का पीत जा हो रहा हाँ ।
 तो प्यार के दग युगल के सामन ला उम हाँ ॥
 धीरे धीरे ममल रखना औ उह या बताना ।
 पीला हाना प्रवल दुन में प्रापिना सा हमारा ॥^१

दिक्रीधना—प्रियप्रवान, पृष्ठ सग पद ७१, १४८ ७०
 वही, पद ७२, ७३ ७४, ७५, ७६

पन्द्रह सग में कवि ने बियागिनी राधा की दशा का विस्तृत वर्णन किया है जिसका संक्षिप्त मून यह है—

राइ आके कुमुम डिग औ भग के साथ बोली ।
बगी द्वारा भ्रमित बनके बात का कोविना स ॥
नेखा प्यारे कमल पग व अक को उमना हो ।
पीछ आई तरणि तनया-तीर उत्कण्ठना हा ॥^१

सम्पूर्ण सग में उमाद की दशा है । अनुभूति यद्यपि कहीं कहीं काफी मार्मिक है जैसे वायल स राधा का यह कहना कि—

यथव पालित हो वाक अक म ।
त्वदीय बच्चे बनत त्वदीय है ॥
तथय माधो यदुवंग स मिले ।
अशोभना, वि न मना मुझ बना ॥^२

तथा—

विरचित बात मुन बदना भरी ।
पिकी हुई तू दुखिता नितात ही ॥
बना रहा है तव बोलना मुझ ।
व्यथामयी दाहमयी, द्विधामयी ॥
अत प्रिये तू मधुरा तुरत जा ।
मुना स्व बेधी स्वर जीवितश की ॥
अभिन्न वे हो जिससे वियोग की ।
कठारता, व्यापकता गभीरता ॥^३

यमुना से—

एव तट पर आके नित्य ही कान्त मेरे ।
पुलकित बन भावो में पग घूमते हैं ॥
एक दिन उनको पा प्रीत जो मे सुनाना ।
बल बल ध्वनि द्वारा सब मेरी व्यथाएँ ॥^४

बिना अत्यधिक विस्तार के कारण मन ऊबने लगता है । बीच-बीच में यहाँ हृदय मार्मिक विरहानुभूतियाँ भी उसमें विस्मृत होने लगती हैं । अधिकांश विरह भावाँ में कोई नयीनता नहीं है, न ही कोई विशेष मार्मिकता है ।

इसके पश्चात् कवि ने पाठस सग में, वसंत ऋतु के मादक वातावरण में, कुज में

१ हरिऔषधी—भियमवान, पत्रशा सग, पं १२७, पृष्ठ २३६

२ बडी, पं ६१, पृष्ठ २३०

३ बडी, पं ६२ सं १००, पृष्ठ २३१

४ बडी, पं १२४, पृष्ठ २३५

एकांत विचरण करती हुई राधा का उद्भव द्वारा कृष्ण का सदेग दिलवाया है। राधा के प्रति अलग म यह सदेग हरिऔधजी की मौलिक कल्पना है, किमी अय पूववर्ती कवि न इस प्रकार की सयोजना नहा की है। कृष्ण ने राधा के लिए सदेग भेजा था—

प्राणघारे परम मरले प्रेम की मूर्ति राधे ।
निमाता न पथक् तुमस या किया क्या मुझे है ॥
प्यारी आगा प्रिय मिलन की नित्य ह दूर हानी ॥
कने ऐसे कठिन-पथ का पान्थ मैं हो रहा हूँ ॥^१

तथा—

हैं प्यागी औ' मधुर मुख औ' भोग की लालमाएँ ।
कान्ते लिप्सा जगत हित की औ'र भी है मनाया ॥
इच्छा आत्मा परम हित की मुक्ति की उत्तमा है ।
वाद्या हानी त्रिगुण उममे आत्म उत्सग की है ॥
जा होना ह निरत तप म मुक्ति की कामना से ।
आत्मार्थी है न कह सकत ह उसे आत्मत्यागी ॥
जी स प्यारा जगत हित औ' लाक सग जिस है ।
प्यारा मच्चा अवनि-तल म आत्मत्यागी बन्नी है ॥^२

'हरिऔध' की राधा-उद्भव से भी अधिक जानी है। यह उन्हे मन्चे प्रणय, रूप-भाह और भक्ति के अनेक प्रकारो पर विद्वत्तापूण उपदेग देती है। प्रणय भाव की यह व्याख्या अत्यन्त सुन्दर है (दखिए— प्रियप्रवास', पाङ्ग मग, पृष्ठ २४८-२६८) किन्तु वह किसा काव्यशास्त्री के मुख से अच्छी लगती, वियोगिनी राधा की व्यथा को उससे आघात पहुँचता है। उसकी बेदना तो केवल तब ही मुखर होती है जब कवि उससे कहलवाता है—

मैं नारी हूँ तरन उर हूँ प्यार म वचिता हूँ ।
जो हाती हूँ विकल विमना व्यस्त वचिन्ध्र क्या है ?^३

वह सेवा माग म पहन ही दीक्षित होने का प्रयत्न कर रही है किन्तु अभी साधक है, मिद नहीं प्रिय की स्मति और विरह बेदना बीच-बीच म आकर उस कचोटती रहती है—

निनिप्ना हूँ अधिकतर मैं नित्यग सयता हूँ ।
ता भी हाती अति व्यथित हूँ श्याम की याद आत ॥
वसी वाद्या जगत हित की आज भी है न होती ।
जसा जी म लमित प्रिय के लाभ की लानसा है ॥^४

१ २ हरिऔधवा—प्रियप्रवास फोन्रा मग, पद ४ ४२ पृष्ठ २४४

३ वही, पद ५०, पृष्ठ २४५

४ वही, पद ५६, पृष्ठ २६३

वह उद्वेग से प्रतिज्ञा करती है कि—

जा इच्छा है परम प्रिय की जो अनुज्ञा हुई है ।
 मैं प्राणा के अछन उसको भूल कभी सकूंगी ॥
 या भी मरे परम व्रत के तुल्य बात यही थी ।
 हा जाऊँगी अविद्य अब मैं दत्तचित्ता उ ही म ॥^१

इस तरह अपनी स्नाभाविक मनोकृत्ति और कृष्ण के संदेश से 'प्रियप्रवास' की राधा के प्रेम का उत्तमयन जाक-सवा में होता है। लोक सेवा की वृत्ति हरिऔधजी के समय की मांग है और राधा के प्रणय में कवि ने उसका मुदर समावण किया है। युग की मांग के अनुसार हरिऔधजी की राधा (प्रणयिनी नायिका) अपनी व्यथा का समाधान लोक सेवा में करती है, व्यस्त जीवन में केवल रोज़ धान से ही काम कहा चलता है, कवि ने इस सत्य के मर्म को समझा है। सक्षम में कहा जा सकता है कि प्रियप्रवास में यद्यपि कहीं-कहीं अनावश्यक विस्तार भाव के प्रस्फुटन में जाधा पहुँचाता है किन्तु फिर भी उसके विरह वणना में मार्मिकता और नवीन उदभावनाओं की कमी नहीं है।

(२) वदेहो वनवास—हरिऔधजी की दूसरी प्रसिद्ध प्रबंध-कृति 'वदेही वनवास' है। वदेही-वनवास की कथा पहले कई बार दुहराई गई, सीता निर्वासन की कथा है। कवि ने कथा को मुख्य रूपरखा परम्परित रूप में स्वीकार करते हुए भी उसमें आधुनिक लोकादरों का समावण करने की सफल चेष्टा की है। आवश्यकतानुसार भौतिक परिवर्तन भी किए हैं।

प्रबंध का प्रारम्भ प्रातःकालीन दृश्य से होता है। उस अत्यंत रम्य दृश्य को देखकर सीता अनायास ही उद्विग्न हो जाती है—

जनकमुता न कहा प्रकृति महिमा है महती
 पर वह कैसे लोक-प्रातनाएँ है सहती ।
 क्या है हृदय विहीन ? तो अखिल हृदय बना क्या
 यदि है सहृदय आखा से आसू न छना क्यों ?^२

रजनी मयक और मरयू सब उह तजहत दिखलाई पडते है। रजनी के भाग्य पर विचार सा करती हुई वह कहती है—

अमित दिव्य तारक चय द्वारा विभु त्रिभुता की ।
 जिसने लिखलाई दिव दिवता की वर भाँकी ॥
 नव विराम जिसक विभवा पर है अवलंबित ।
 वह रजनी इस काल काल द्वारा है कवलित ॥^३

१ हरिऔधजी—प्रियप्रवास पाठशाला संग पृ १२६ पृष्ठ २५८

२ वदेही के दो वनवास, प्रथम संग, पृ २८

३ वदेही, पृ ३२

कल ने मुस्करात हुए फूल भी आज शोहीन हैं—

कल मैंने था जिन फूलों को फूला देखा ।
जिनकी छाँव पर मधुप निकर का भूला देखा ॥
उनमें से कुछ धूल में पड़े हैं दिम्बलात ।
कुछ हैं कुम्हला गए और कुछ हैं कुम्हलाते ॥^१

सीता के इस प्रकार उमन हाने से भविष्य की किसी विपत्ति की आशंका होना लगती है, आगामी विरह की अस्पष्ट ध्वनि वही अपनी छाया में वातावरण को समेटती-सी प्रतीत होती है। अतीत में (राम रावण युद्ध में) कलह का मूल स्वयं को मानकर सीता खिन्न भी हो जाती हैं। राम उनके मन की स्थिति का पहचानकर उन्हें सात्वना करते हुए कहते हैं—

कहा राम ने यहाँ इसलिए मैं हूँ आया ।
मुदिन कर सकूँ तुम्हें प्रियतम कर मन भाया ॥
किन्तु समय न जब है मुझ पर समा दिखाया ।
पड़ी किसलिए हृदय मुकुट में दुख का छाया ॥^२

वह उन्हें समझाते हैं कि सृष्टि की सेवा में रत समीर से यदि कोई दीपक अनायास बुझ जाता है अथवा किसी रागी की काया का कष्ट पहुँचता है तो वह उसकी भलाई के अनुपात में नग्न ही है। समीर और दावाग्नि के सहयोग से यदि कोई तिनका जल जाता है तो इसमें उनका क्या दोष? यह सब तो किसी अदृष्ट शक्ति के हाथ में है, जिसने ऊपर किसी का वग नहीं है। जीवन में दुःख-सुख-पूण अनायास घटित होने वाली घटनाएँ अक्सर घटा करती हैं किन्तु उनके मूल में भी कोई न कोई कल्याण भावना छिपी रहती है—

यह चाहता समीर न था तूण उड जल जाए ।
थी न आग की चाह राम वह उसे बनाए ॥
किन्तु पलक मारत हा गई उमय क्रियाएँ ।
होती है भव में प्रायः एसा घटनाएँ ॥^३

भव के सब परिवर्तन हैं स्वाभाविक हात ।
मगल के ही बीज विद्वत् में व है बोत ।

राम का विश्वास है कि जीवन में घटित इन सब परिवर्तनों के मूल में कल्याण-भावना निहित रहती है। राम के इस वक्तव्य में भविष्य में उनके न चाहने पर भी सीता को जो निर्वासन मिना उसका भवेन मिल जाता है। लाकापवाद' जनसाधारण की

१ वैददी बनवास, प्रथम सर्ग, पद ३९, ४७

२ वहाँ, पद ५३

३ वहाँ, पद ६६

स्वाभाविक प्रवृत्ति संनिसत समीर के समान था किन्तु उसका आशय यह कदापि न था कि उसके कारण सीता को विरह में दग्ध होना पड़े।

राम का यह अटल विश्वास कि लोकमंगल की कामना इन आकस्मिक घटनाओं में निहित रहती है उनको गभवती सीता के निर्वासन का साहस द सका होगा ?

व्यक्ति सामाजिक प्राणी है, समाज के अतिरिक्त वह अकेला जी नहीं सकता, यह आज के व्यक्तिवादी युग का भावदु सत्य है फिर राम के त्रेतायुग की ता वात ही क्या। उस स्थिति में दो बातें हा सकती थी या तो राम समाज को चुनौती दकर सीता का त्याग नहीं करते या जसा उन्होंने किया वसा ही। आज का बुद्धिवादी व्यक्ति राम का पक्ष लेने में असमर्थ है निर्दाप सीता के परित्याग का राम जन्म मनस्वी के लिए क्या अर्थ था ? किन्तु 'हरिऔधजी' द्विवेदी युग की मर्यादा में पल है जहाँ समाज सर्वापरि है अतः उहाँन राम क इस वाय को स्वीकार करके भी 'याय' संगत बनाने का प्रयत्न किया है।

'सीता वनवास' के विषय में अब तक चली आ रही परम्परा में भिन्न परिस्थिति कवि न रखा है। परम्परागत कथा में राम चुपचाप सीता का निर्वासित कर देते हैं और माय में लक्ष्मण ही सारा वत्ता उह समझाते हैं। राम में वहाँ साहस की कमी दिखलाई पड़ती है। उनके आत्माचका को यह वहन का अवसर मिल जाता है कि यदि राम का सीता पर इतना अनय विश्वास था तो कायर की भाँति उन्होंने सीता को वस्तुस्थिति से अनभिन्न क्यों रखा ? इसी लाछन को धोने के लिए लाकापवान के विषय में कवि राम के मुँह से कहलवाता है—

लोकाराधन के बल से लोकापवाद को दल दूँगा ।^१

वह स्वयं सीता को सारी परिस्थिति से परिचित कराते है। सीता भावी वियोग की आशका से एकवारगी सिंहूर उठती है—

प्राणनाथ सब तो सह लूगी क्या जायगा विरह सहा ।^२

किन्तु फिर राम के धय में स्थिरमति हानर सब सहने का साहस ग्रहण करती है—

किन्तु आपक धम का न जो परिपालन कर पाऊगी ।
सहवमिणी नाथ की तो मैं कस भला कहाऊगी ॥
वही करूँगी जो करने की आज्ञा मुझको हागी ।
त्याग करूँगी इष्ट सिद्धि के लिए बना मन का योगी ।
मुख झारना स्वयं की विला दोनो से मुख मोड़ूँगी ।
लोकाराधन या प्रभु आराधन निमित्त सब छोड़ूँगी ॥^३

वन्ही-वनवास की सीता कठिन कल्पना का पालन करने के लिए पूषत

१ वन्ही-वनवास, पृष्ठ सं. ५० ०

२ वन्ही, पृष्ठ २२

सजग है—

यदि क्लकिता हुई कीर्ति ता कस मुझ दिखलाऊंगी ।
जीवनघन पर उत्सर्गित हो जीवन धन्य बनाऊँगी ॥
विरह वदनाघ्रा से जलती दीपक सम दिखलाऊँगी ।
पर आलोकदान कर कितन उर का तिमिर भगाऊँगी ॥
बिना वदन अबलोक आखें आसू सदा बहाएँगी ।
पर मेरे उत्तप्त चित्त को सरस सद्ब बनाएँगी ॥^१

तथा—

आप जिम हित मममें उस हित से ही मेरा नाता है ।

प्रियप्रवास की राधा की भाति वदेही-वनवास की सीता भी परहित की वदी पर
अपनी भावनाघ्रा को योड़ावर कर सकती है—

लगी लालसाएँ सालायिन हो हाकर कल्पाएँगी ।

किन्तु कल्पनातीत लोकहिन अबलोक बलि जाएँगी ॥^२

वदेही वनवास की सीता के निवासन का समाचार अयोध्या में सबको पाता
है । सीता कौशल्या से अपने निर्वासन काल में राम का ध्यान रखन को कहती है ।
उनका इस प्रकार कहना भारतीय समाज में वातावरण के अनुकूल-सा नहीं लगता
परन्तु कौशल्या भी बधू ने कहती है 'हाँ वटी, तू ठीक कहती है ।' उह उनकी समझदारी
पर पूरा विश्वास है ।

अत्यंत धारा सीता का राम, राजकुल और पुरवासी सब माथु विदा करत हैं
भाग में सौमित्र से वातालाप में भी, सीता सवहित-साधन की बनी पर आत्ममुख की
बलि करने के प्रण पर अटल दिखाई पड़ती हैं—

वियाग का काल है अनिश्चित

व्यथा-कथा वदनामयी है ।

बहु गुणाबलो रूप-भाधुरी

रोम राम में रमी हुई है ।

अत रहेंगी वियोगिनी में

नेत्र वारि के मीन बनगे ।

किन्तु दूष्टि रख लाक-लाभ पर

मुकीर्ति मुग्नावली जनेंगे ॥^३

'कभी बुध्दिन्ता चपला फिरेगी' आदि उक्तिया में वह अपने भावी विरह का
विकराल चित्र भी खींचती है—

१ वैदेहा-उन्नवाम पंचम मंग, पद २६ ३०

२ वही, पद ३२

३ वही, सप्तम मंग, पद ६२ ६३

कभी ग्राह आधिमाँ उठेगी
 कभी विकलता घटा धिरेगी ।
 दिखा चमक चोंक व्याप्त उसमे
 कभी कुचिता चपला फिरेगी ।
 परन्तु होगा न वह प्रवर्चित ।
 कदापि ग तव्य पुष्प पय से ॥
 कभी नहीं भ्रात हो गिरेगा ।
 स्वयम आवार दिव्य रय से ॥^१

राम के चरण कमला की आराधिका सीता अपनी मानवी दुबलताओं को स्वीकार करती हुई कहती हैं—

मैं अबला हूँ आत्म सुखा को ।
 प्रबल लालसाए प्रतिदिन आ ॥
 मुझे सताती रहती हैं जो ।
 तू इसमें है विचिन्ता क्या ॥

किन्तु—

विधु सुंदर वर वदन यान कर
 सारा अंतर तिमिर हूँगी ॥^२

हरिऔधजी का विरही के लिए एक जीवन यज्ञ है। उनका कहना है कि प्रेमी प्रिय के प्रेम को विश्वप्रेम में परिणत कर दे तभी सुखी हो सकता है। यह शाश्वत सत्य भी है। किंतु प्रेम का यह उन्नयन स्वाभाविक गति से प्रेमी के अनजान में, स्वयं धीरे धीरे हाता रहता है। वह भावुक विचारक की भाँति पहले से ही प्रिय के प्रेम और विश्व प्रेम में तटस्थ भाव से मनन नहीं किया करता। हरिऔधजी की नायिकाएँ भावुक विरहिणी के स्थान पर मननशीला उपासिकाएँ सी प्रतीत होती हैं। सीता लक्ष्मण से कहती है—

सर्वार्त्तम साधन है उर मे ।
 भव हित पूत भाव का भरना ॥
 स्वाभाविक-सुख निष्साओ को ।
 विश्व प्रेम में परिणत करना ॥^३

राम से निरवधि वियोग प्राप्त सीता के मुख से हम उद्दिग्ध उर के कुछ उद्गार सुनना चाहते हैं। योगी का उपदेश नहीं। वीर से धीर नारी की मन स्थिति भी ऐसी परिस्थिति में डीवाडान हो जाती स्वाभाविक थी परन्तु यहाँ हरिऔध की सीता आवश्यकता से अधिक समझदार दिखाई पड़ती है। सहृदय पाठक उनकी समझारी से

१ वैदसावनवास, सप्तम सर्ग, पद ६६ ६७

२ वक्षो पद ७२

३ वक्षो पद ७३

अपनी भावनाया का सामजस्य बढाने म असमय रह जाता है। सीता की विरह दशा नवम सग म प्रथम बार हम सौमित्र के मुह स नुनते हैं—

किन्तु एव अति-मति परामण की दशा ।
उनकी मुख मुद्रा उनकी मार्मिक व्यथा ।
उनकी गापन भाव भरित दुख-व्यञ्जना ।
उनकी बहु सप्रमन प्रयत्ना की क्या ।
मुझे बनाती रहती है अब भी व्यथित ॥^१

यद्यपि तस्मिन् वषण स जात होता है कि सीता के धीर वचन उनक भरपि हुए वण्ड मे नि मत हुए ह्य किन्तु पहे के वषण से उन तरह की व्यथा की प्रतीति विचिन भी नही होती ।

वाल्मीकि के आश्रम म सीता का नवीन जीवन प्रारम्भ हो जाता है। चन्द्र का ज्योत्स्ना स ममिवत एव रात का अपन कतव्य और धय को कुछ क्षण के लिए वह भूल जाता है। वह चाँदनी म प्रश्न करती है—

तुम ता ताया कास दूर की अरुनी पर जाती हो ।
फिर भी पति म पथक्न होकर पुनकिन बनी दिखाती हो ।

और किसलिए छोडे अन्तर पर रह म उबताती हूँ ।
बिना नवल नीरद तन देखे दग म नीर बहानी हूँ ॥
एमी कौन यूनता मुभम हूँ, जो विरह सताता है ।
मिते वता दा मुक्त क्या नही चन्द्र वपन दित जाता है ॥^२

मह श्मण भर का टाना, रानी का नुनाया सीता पर मे जस एकाएक टूट जाता है और यह 'तिमिरावत्त यूनता के निरसन' की प्रार्थना करन लगती हैं। अथवा अपन अज्ञान क कारण उत्पन्न विरह वदना को भुला दना चाहती है ।

निरपराधिनी सीता राम क हाथा 'यव कल्प भोग रही हैं किन्तु वह उसे केश नही मानती । राम क विषय म वह रहता है—

पर निरपराध का प्रियतम न कभी नही कृपाया ।

उनके हाथा मे किमन क्व कही व्यथ तुम पाया ॥^३

अपनी दशा की यात्रा वह इन प्रकार करती है—

चातक म जिसक दूग है छवि स्वाति नुपा के प्याम ।

प्रतिबूब पड रहे है अथ, जिसम मुख वामर के पास ॥^४

१ वैदही वनवास, नवम सग, पद १५ १६

२ वैदही, दशम सग, पद ४७ से ६५ तक

३ वैदही, एकादश सग, पद ४०

४ वैदही, पद ४०

वर्णन मार्मिक है किन्तु समझ में नहीं आता कि साता की क्या वस्तुतः यहाँ दशा है कि उनके मुख बामर के पास प्रतिबलू पड़ रहा है? तब कम राम के लिए वह कह सकती है कि उहान किसी निरपराध का कभी नहीं सताया।

बाल्मीकि के आश्रम में एक वष बीत जान पर भी सीता विरह वदना को, राम से मिलन का उत्सृष्टा को, कृतव्य से अधिक प्रथम न दे सकी। कृतव्य सतत उनके भावा को दबाता जा रहा है। इतनी कृतव्य निष्ठा सीता 'हृग्ग्रौध' की ही निधि है। कालिदास, भवभूति और दिग्गज का भी अपनी सीता का इतना धीर और कमठ न बना सके थे। यहाँ जब सीता कहती है कि यह विरह सत्यवित है ना पाठन को सशय सा हाने लगता है।

एसा प्रतीत होता है कि कवि का उद्देश्य सहृदय का सीता की विरह व्यथा से परिचित कराना नहीं है, राम और सीता के धर्म और कृतव्य निष्ठा का सद्दर्श देना है जो राम के वनद्वी के प्रति इस कथन से स्पष्ट है—

लाकाराधन राजनीति सबस्व है।
है पराय परमाय पद भी अति गहन ॥
पर मति य कृतव्य औ सद्धम है।
महनगति ता क्या न करे सकट सहन ॥
कुलपति आश्रम पास जनक नत्नी का।
हम दोनों का सदाचिार मम है ॥
वद विहित युव वद समर्थित पूत तम।
भवहित मगन मूलक वाछित कम है ॥^१

कृतव्य के गुरु भार का सम्भालन में भी विरह की मार्मिक व्यजना को अवसर मिल सजता था किन्तु वही वनवास में वह पक्ष त्र्या हुआ सा ही रह गया है।

साता वारह वष तक बाल्मीकि के आश्रम में रहा। उनके पवित्र आचरण का सत्वोति सम्पूर्ण भारत में फल गई और लाकाराधन का माग कुण्ठित हान लगा। तब राम ने अश्वमेध के अवसर पर सीता का पुनग्रहण करने का विचार किया। साता अश्वमेध यन में गई किन्तु पति के पक्षपक्ष करत समय हर्षातिरक में भाव विह्वल हो गई। उसी भाव विह्वलता में उनके प्राण निष्कुर ससार का त्याग करके आकाशगामी हो गए।

वदही वनवास की कथा सीता निवासन की कथा होकर भा विलकुल नवीन है। उसका उद्देश्य विरह के मम का निष्कारन नहीं कृतव्य माग का प्रयोग है।

भयिलशोरण गुप्त

(१) साकेत— साकेत की सजसे महत्वपूर्ण घटना वियागिनी उर्मिला का विरह है। रवोत्नाथ ठाकुर से इंगित पाकर आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने हिंदी के कवियों से उपरि उर्मिला के उद्धार की अपील की थी और उस काल के काव्य महारथियों में

सांस्कृतिक प्रवाह कविता में विरह भावना

मयि तीररुण गुप्त न दस वाय को पूण वग्ग वा वीडा उठावा था ।
वियाग की पीडा वास्तविक वियाग में ही नहीं प्रिय की अभाव कल्पना में नहीं
हती है उनक जिना जीवन कम बीतगा, य्म नाव म विरही का मानस सिंहर उठता
है। 'मिना की विरह वग्गना का अभिव्यक्ति साकंत म प्रापितपतिक्का' ही नहीं

'प्रयत्नपतिक्का के रूप में भी हुई है।
राम का कथा की कृपा में अब राज्याभिषेक के स्थान पर वनवास मिला तब
लक्ष्मण भी स्वच्छा में उनके साथ जाने का प्रस्तुत हो गए। सीता ने तो सोच लिया—
सीता ने नाचा मन म—स्वा उनगा अब वन म।

किन्तु बचारी उमिला कुछ न कह सकी। इस स्थिति में कवि ने उमिला से कुछ
न कहनेवाकर लक्ष्मण के मानस-पट पर उसका कण वियागिनी मूर्ति की मौलिक कल्पना
की है। माताप्रा तीर ज्युठ के समुल लक्ष्मण का नवविवाहिता पत्नी उनसे खुलकर
बातचीत न कर सकती थी अतः उसकी अभिव्यक्ति का इससे मुन्दर काई दूसरा उपाय
न हो सकता था। कत्तज्जनिष्ठ लक्ष्मण नाईक साथ जाने का तत्पर था किन्तु नीली भाली
उमिला के हृदय की व्याधा भी उनसे छिपी न था। अतः मन ही मन कत्तव्य की गुरुता का
उत्तरागतित्व उमका मनमान की चप्टा उहाने की—

उठी न लक्ष्मण की आँखें जकड़ी रही पलक पाखें।
किन्तु कल्पना घटी नहा उदिन उमिला हटी नहीं ॥

खडी हुई हृदयस्थल म—पूछ रहा थी पल-पल म।
मैं क्या कहें? चलू कि रहूँ? हाथ और क्या आज कहूँ?

आ! कितना सक्करण मुख था, आद्र-सरोज अरण मुख था।
लक्ष्मण ने नाचा कि—बहा, क्या कहूँ चला कि रहो ॥

यदि तुम भी प्रस्तुत होगा—ता नकोच साच दागी।
प्रभुवर वाधा पावेंगे छोड मुझ नी जावेंगे ॥

नहीं-नहीं यह बात न हो रहा। रहा ह प्रिय रहा।
यह भा मर लिए सहा और अधिक क्या कहूँ अहो ॥'

लक्ष्मण के उन मनमन्थ से उमिला ने जन मनक लिया। उसकी विवश व्य
अयुष्मा के रूप में फूट पड़ी—

श्री सीता के कथे पर—आनू बरस पडे करकर।
माता से भी लक्ष्मण को जब वन जाने की स्वीकृति मिल गई तो उमिला अपने

पडकन हुए हृदय को समझाने लगी।—

कहा उमिला ने हमन। तू प्रिय पथ का विघ्न न बन।
आज स्वाय है त्याग भरा। है अनुराग विराग भरा ॥

तू विकार से पूर्ण न हो, शोक नार से चूण न हो ।^१
 वह और अधिक न सोच सकी और मूर्च्छित होकर गिर पड़ी ।
 उर्मिला का दूसरा वियोग चित्र पण्डित सन भ राम लक्ष्मण के जान क बाद प्रस्तुत होता है । यहाँ प्रोपितपतिका उर्मिला विरह-वेदना से अत्यन्त कृशकाय हो गई है । उसके वियोग मुख से मन का 'उद्वेग' झलक रहा है—

कुम्हलाई तथा करवाली, या प्रस्त चन्द्र की उजवाली ।
 मुखकान्ति पड़ी पीली पीली आँख अशांत नीली नीली ॥
 क्या हाय ! यही वह कृशकाया या उसकी शेष नूदम छाया ?^२

वियोग का अत्यधिक कष्ट सहकर भी उर्मिला वक्तव्य का प्रमुखता देती हुई गम्भीरता से परिस्थिति को साचती-समझती है । उसके लिए इतना ही बस है—

करना न सोच मरा इससे, व्रत में कुट्ट बिघ्न पड़े जिससे ।
 आने का दिन है दूर सनी पर है मुभवा अवलम्ब यही ॥
 आराध्य युग्म के सने पर, निस्तब्ध निशा के होन पर ।
 तुम याद करोग मुझे कभी, तो बस फिर मैं पा चुकी सभी ॥^३

उर्मिला के विरह का प्रारम्भ अत्यन्त सुन्दर हुआ है । उसमें वह सयत गरिमा है जो उसके चरित्र की निधि बन सकती थी । चित्रकूट में लक्ष्मण से अल्प मिलन के अवसर तब वह बराबर उसमें विद्यमान है ।

मेरे उपवन क हरिण, आज वनचारी
 मैं बाध न लूगी तुम्हें तजा भय भारी ॥^४

किन्तु नवमसग तक पहुँचते पहुँचते न जाने वह गरिमा कहा विलुप्त हो गई । गुप्तजी ने उस अत्यन्त माधारण विरहिणी बना दिया जो पति क वियोग में फूट फूटकर रोती है उमास्तिनी सी रहती है खाना-पीना उस अच्छा नहीं लगता, सब सुखद उपकरण दुख दायी हो गए हैं । इन परिस्थिति संघर्ष विरही के जीवन के विविध रूप उपस्थित हो सके हैं किन्तु व उर्मिला के चरित्र के अनुकूल नहीं लगते । सहृदय पाठक उसके महान त्याग की व्यथा का अत्यन्त सयत दर्शन का इच्छुक था किन्तु वेदना क अजस्र प्रवाह ने उसके महत्त्व का कम कर दिया । इतनी त्यागमयी वा इतना हल्का होकर रोने की क्या आवश्यकता थी ।

कवि को उर्मिला से विरह क लम्ब चौदह वर्षों की अवधि किसी भी निति कटवानी थी और उसने राजगृह की वचिता नववधू की भाँति ही काटी । इस लम्बे विरह वचन में

१ श्री मेधिलाशरथ गुप्त—छानेत, पृष्ठ ७६

२ वही पण्डित सग, पृष्ठ ११५

३ वही पण्डित ११७

४ वही, अष्टम सग, पृष्ठ १६३

विरही के जीवन की अनेक सुन्दर स्थितियों का समावेश हुआ है।

प्रोपितपति का उर्मिला को कतव्य भावना निरकुश नहीं होने देती। मन प्रिय को समीप बुलाना चाहता है कि तु कतय कुछ ही क्षण में भावना पर विजय प्राप्त कर लेता है।

भूल अवधि सुध प्रिय से कहती जगती हुई कभी 'आओ',
किंतु कभी सोती तो उठती वह चौक बालकर 'जाओ'।^१

उर्मिला के इस कथन की व्याख्या विभिन्न विद्वानों ने पथक् पृथक् ढंग से की है।
कन्हैयालाल सहल कहते हैं—

“उर्मिला मध्या नायिका है। जागृतावस्था में भी जब उर्मिला को चौदह वर्षों की अवधि का स्मरण नहीं रहता तो वह लक्ष्मण का सयोग सुख के लिए आमंत्रित करती थी। जब स्वप्न में लक्ष्मण से मिलन होता तो मध्या नायिका की भाँति चौककर 'जाओ' कह उठती थी।”^२

सहलजी का उपयुक्त मतव्य कामशास्त्र के अनुसार 'मध्या नायिका' के भेद में (सोने जागन की अवस्था में) हो सकता है ठीक बठता हो किन्तु वह उर्मिला के प्रसंग में मनोविज्ञान संगत नहीं है। जागते हुए का अर्थ यहाँ जाग्रत अवस्था नहीं है अर्थात् विस्मृतावस्था है। इस प्रसंग में स्वयं कवि का कतव्य अत्यंत माय है—

“मैं तो यहाँ यही कहना चाहता था कि जागते में उर्मिला भले ही अवधि की सुधि भूलकर पीडा के कारण पति को पुकार उठती थी परन्तु स्वप्न में भी वह अवधि से पहले उनका आना नहीं चाहती थी—यदि कभी वे स्वप्न में आ जाते तो 'जाओ' कहकर वह जाग उठती थी।”^३

डा० नगेंद्र इसे अर्धविस्मृतावस्था कहते हैं। इसके विषय में उनका कहना है—

“परन्तु उर्मिला की इस अर्धविस्मृति के पीछे इस युग के मनोविज्ञान की अंतर्धारा है। इसमें रूढ़ि का पालन नहीं, स्वाभाविक स्थिति का चित्रण है। वहाँ आदश और कामना के बीच में संघर्ष है। आदश कहता है 'जाओ' भाव कहता है 'आओ'। इसी द्वन्द्व की अंतर्धारा उसकी अर्ध विस्मृति के मूल में बह रही है।”^४

नगेंद्रजी का उर्मिला विरह विषयक यह विश्लेषण ठीक ही है। यह अर्धविस्मृतावस्था विरही की स्वाभाविक यथार्थ अनुभूति और उम्माद की अवस्था के बीच की कड़ी है। इसे उद्वेग से कुछ आगे की स्टेज (स्थिति) कह सकते हैं। आदश और भावना के संघर्ष से जिस उद्वेग का मन में उदय हुआ वही इस अर्धविस्मृतावस्था के रूप में विरही की अवचेतना में छिपी यथाथ कामना और उसके चेतन को भ्रमभोरत हुए आदश का द्वन्द्व

१ सानेन, नवम सर्ग, पृष्ठ १६५

२ साकत व नवम सर्ग का 'वाच्य वैभव' पृष्ठ ८६,

३ श्री मैथिलीशरण गुप्त—सानेन के नवम सर्ग का 'वाच्य वैभव' पृष्ठ १५७-१५८

४ डा० नगेंद्र—सानेन एक अन्यथन, पृष्ठ ७१

बनकर प्रकट हाता है। इसी से भावावशम उर्मिला कहती है—

अरुण्य से है प्रिय लौट आते,
छिपे छिप आकर दखत सभी,
कभी स्वयं भी कुछ दोख जाते।^१

उमकी विरह-व्यथित स्थिति को लक्ष्मण भी देख सकते तो कितना अच्छा होता। कम से कम उमके प्रणय के मूल्य को तो पहचान ही लत। विरही की यह कामना कि जिसके लिए वह कष्ट भोग रहा है उसे भी पता चल सकता अत्यन्त भोली है।

उसी भाली कामनाम वहते वहते उमे अर्जुनभवं होता है जैसे उसके प्रिय आ गए हैं—

मुभग आ गए, का त आ गए।^२

आरती और अरुण्य सब कुछ अर्पण करन का मन लालायित हो उठता है—

त्वरित आरती ला उतार लू।
पद दगम्बु सं म पखार लू।
चरण भरे दख धूल से,
विरह सिन्धु म प्राप्ति कूल से।
उदित उर्मिला नाग्य धय है,
अब कृती कहाँ कौन अय है ?^३

किन्तु तभी उसे भास हाता है कि लक्ष्मण अकेल लौटे हैं। कतव्य कचोटने लगता है—

प्रभु कहाँ, कहा किन्तु अग्रजा,
वह नहीं फिरे, क्या तुम्ही फिरे।
हम गिरे अर तो गिरे गिरे।

वह लक्ष्मण से प्रश्न करती है—

दयित क्या आत जान के,
घर दिया तुम्ह भेज आप ही,
यह दुआ मुझे और ताप ही।^४

भावना और कतव्य के आराह अवरोहम उर्मिला ऊपती डूबती रहती है। उर्मिलाके विरह का यह रूप अत्यन्त स्तुत्य है। कवि कशनेम वह विरहिणी बाला प्रिय की आरधनाम स्वयं आरती बन गई थी—

१ आ मैविनाशरण गुप्त—साहित्य, नवम संग पृष्ठ १६५

२ वहा, पृष्ठ २४१

३ वहा पृष्ठ २४२

४ वहा, पृष्ठ २४३

मानस मंदिर में सती, पति की प्रतिमा थाप,
जलती-सी उस विरह में, बनी आरती थाप ॥^१

देव के मंदिर में जलती हुई आरती का वह श्रद्धामय रूप उर्मिला के व्यक्तित्व में चना रहता यदि वह माधारण स्वाधमय नारी की भाँति अपने वियोग का कारण सीता को मानकर उन पर व्यग्न न करती। मखि तब उससे कुछ खान पीने की प्रार्थना करती है ता वह खीज से अपनी उदासीनता प्रकट करती हुई कहती है—

बन की भेंट मिली है, एक नई जड़ी मुझे जीजी से,
खान पर सखि, जिसके गुड़ गावर-सा ला स्वयं ही जी से ॥^२

उर्मिला का वह वनतन्त्र चाह वह उमाद में भी हा, उसके चरित्र के अनुकूल नहीं लगता। विवशता में भी अपने विधाग का दोषी सीता को ठहराना हीन-सा प्रतीत होता है। ऐसा था तो पहले ही उसे लक्ष्मण के वन जाने का विरोध करना चाहिए था। न जान क्या साधकर मथिलीशरण गुप्त ने उनके मुँह से यह कहलवाया है।

वसे विधागिनी उर्मिला की दगा बहुत ही कष्ट है। उसको खाना-पहनना अच्छे नहीं लगता किन्तु विरह की लम्बी अवधि का समुद्र पार करन के लिए शरीर को रक्षानितान अनिवाय हा गइ है। सखी से वह कहती है—

पिऊ ला, खाऊँ ला, सखि पहन ल ला, मव करूँ,
जिऊँ मैं जस हो, यह अवधि का अणव तल्ले।
कह जो मानू मो, किस विध बतल धीरज धरू ?
अरी कस भी तो पकड प्रिय के ब पद मरूँ ॥^३

सखी जब मले वस्त्र बदलन को कहती है तब लक्ष्मण के कठिन जीवन का स्मरण करके उस उत्तर देती है कि वस्त्र बितन ही मले हो वल्कल से तो अच्छे हैं—

धूलि धूसर हैं तो क्या, या तो मृष्मान गात्र भी,
वस्त्र में वल्कला से तो हैं मुरम्य, सुधान भी ॥^४

धर के सब व्यक्ति उसकी स्थिति से अत्यंत चिंतित हैं वह इस बात से पूर्ण अभिन है किन्तु विरह की इस उमन पीडा पर उसका कोई बधा नहा है। वह इतनी प्री और गम्भीर नही कि उमका किसा निमाणात्मक क्षेत्र में उन्नयन कर सके—

रोता है और दूनी निरखकर मुझे दीन-सी तीन सामें,
हात हैं देवरश्री नत, हूत बहन छोडती हैं उसामें।
धाती तू ही बतल द इस विजन बिना मैं कहीं आज जाऊँ ?
दीना, हीना, अथीना ठहरकर जहा साति तूँ और पाऊँ ?^५

१ श्री मथिलीशरण गुप्त—साहित्य, नवम सर्ग, पृष्ठ १६५

२ बदा, पृष्ठ १६६

३ ५ बदा, पृष्ठ १६७

मधिलीशरणजी की उर्मिला पूणत भावुक है समझार नहीं। यदि समझार होती तो चौदह साल की लम्बी अवधि को तीनो सासा की सेवा में, उहे धय बदाने में तथा और दूसरे रचनात्मक क्षेत्रों में लगाकर रसमय बना लेती। सहृदय पाठक उसके चरित्र में समय के व्यतीत हात होते कुछ विकास देखन का इच्छुक था किन्तु वह नवाना भावुक ही बनी रही। कहना न होगा कि उर्मिला के विरह वणन में गुप्तजी के समुद्र आज के युग की सजग काय शील विरहिणी के स्थान पर रीतिवालीन परम्परागत विरहिणी-नायिका रही है, जो अपनी स्थिति में विवश, विरग से नाता ताड़कर एकांत वोन में बड़ी रोया करती है। स्वयं गुप्तजी की यशोधरा और हरिऔधजीकी 'राधा' का महान् आदर्श उससे बोसा दूर है।

उर्मिला के विरह में ऋतुवर्णन परम्परागत है किन्तु उसका उद्दीपन रूप स्वीकार करत हुए भी मधिलीशरणजी ने उसमें एक मौलिक परिवर्तन किया है। उन्होंने वर्तमान की तुलना में अतीत के सुखद दिना की स्मृति रखकर वर्तमान की पीडा को तीव्रतर बना लिया है। इस 'स्मृति में विशेषता यह है कि द्विवेदी काल के नातिपरक दृष्टिकोण के कठोर प्रकुश में रहते हुए भी कवि ने दाम्पत्य जीवन की निष्कपट अभिव्यक्ति की है। हमें त से पीडित उर्मिला कहती है—

सी सी करती हुई पादव में पाकर जब तव मुझका,
अपना उपकारी कहते थे मेरे प्रियतम तुमको ॥
कबल ही सबल है अब तो
ले आसन हा आज पुनीत,
आया यह हम त दया कर
दख हम सत्तप्त सभीत ॥^१

सी-सी करती हुई प्रिया का समीप पाकर हमें त को अपना उपकारी कहा मैं सयाग की ध्वनि अनुपम है और उसके अभाव की यथा और भी कटु तथा तीक्ष्ण। वषा ऋतु का मादक वातावरण भी उर्मिला को अचञ्चा नहीं लगता—

कुलिंग किसी पर कडक रह हैं
यासी तोयद तडक रह है।
कुछ मरने के लिए लता के
अरण्य अधर के फडक रह हैं।
मैं कहती हूँ—रह किसी के
हृदय वही जो धडक रह हैं।
अटक अटक कर भटक नटक कर
भाव वही जा भडक रह है।^१

वर्षा में वापती हुई किसी एकाकी लता को देखकर उमिला को एना लाता है—

कुछ कहने के लिए लता को
अम्बु अघर व फडक रहे हैं।

लता से अपने जीवन का यह मामूली अनुभव है। दाना यातना सहकर भी कुछ कह नहीं सकती, अभिव्यक्ति कुम्भित हो गई है। मन के भाव होठों तक फडककर हाँ रह जाते हैं। कुलियाँ और तारों इनकी व्याख्या से अपरिचित हैं और इन पर मनमाना अत्याचार कर रहे हैं।

वसंत में कोयल की कव भी उसे विरह-अभिव्यक्ति सी लाती है। नमीर प्रकृति का सुवसित स्वास नहीं निवास-सा प्रतीत होता है और मुरभि अघर उडानी हुई नहीं धलि पाकवी सी दिखाई देती है।

वह कायल जा कूक रही थी, आज तूव भरती है,
पूव और पश्चिम की लाली रोप वण्टि करती है।
लता है निद्राम समीरण, मुरभि धूल चरती ह
उबल सूखती है जलधारा यह धरती मरती है।^१

गरद में खजना का दन्वकर उन प्रिय व नत्रा का स्मरण हो आता है—

निरख मखी य खजन आए।

फेरे उन मेर रजन न नपन इधर मन भाए।

फला उनक तप का आनप मन में मर नरमाए ॥

धूमे व दम और बहा, य हँस यहा उड छाग,

वरके ध्यान आज इस जन का निदचय व मुस्काए।

फून उठे हैं कमल, अघर न व धूक य मुहाए ॥^२

वह काम में अत्यन्त पंडित हो घबराकर उनसे प्रार्थना करती है—

‘मुझे फून मत मारा

दुख में उसकी महानुभूति अपनी मम-रुखिनी प्रापितपतिकाया न लेकर काक और मक्खी तक पहुँच गई है। प्रापितपतिकाया का अपने यहाँ बुलाकर वह कुछ उनकी मुनना चाहती है और कुछ अपनी कहना क्या कि उस तरह तूल बँट जाना है—

प्रापित-पतिकाए हा तिननी भी सखि उह

निमन्त्रण द आ,

ममदु खिनी मिलें ता दुख बँटे जा, प्रणव

पुरस्मर ने आ ॥^३

१ आ मैथिलीशरण गुप्त—साहित्य, नवम नव १५४ २ १

२ वही, पृष्ठ २१६

३ वही, पृष्ठ २००

कोन क प्रति सहानुभूति रखती हुई वह काकी का सात्वना देती है—

काक गोर मत कर ह तात,
काकि कष्ट म हूँ में भी तो सुन तू मेरी बात,
धीरज धर अबसर यान दे, सह ले यह उत्पात ।
मेरा नुप्रभात वह तरी सुख गुहाग की रात ॥^१

क्याकि उमिला का दृढ़ विश्वास है कि वियाग म दोनो पक्ष विरह की वेदना स व्यथित रहते हैं—

दानो आर प्रेम पलता है ।
सखि पतग भी जलता है हा ! दीपक भी जलता है ।^१

यहां दीपक व पतग क मिस ग्रपन और लक्ष्मण के जीवन की व्याख्या भी वह करनी है । एक के त्याग को तो विद्व म सराहना मिलती है और दूसरा उपणित-सा नृपचाप कष्ट भेदता रहता है—

दीपक के जलन म आली,
फिर भी है जीवन की लाली ।
किंतु पतग भाग्य लिपि वाली किसका बश चलता है ?
दोनो ओर प्रेम पलता है ।^१

मकड़ी के प्रति सहानुभूति प्रकट करती हुई वह उसस अपना साम्य करती है । दोना विवश जाल म फसी हुई है इसका सकत उसन किया है । वस्तुत यह साम्य भ्रामक है क्याकि मकड़ी जाल म स्वय नही फेंसती औरो वो फसाती है ।

सखि न हटा मकड़ी को, आई है वह सहानुभूतिवशा,
जालगता मैं भी तो, हम दोना की यहाँ समान दशा ।^१

उमिला के विरह म मामिक स्थला की कमी नही है किंतु वे यत्र तत्र रिखर पड हैं । उसक भाग्य पर रोना आने लगना है जब वह कहती है—

कूडे स भी आगे पहुँचा अपना अदृश्य गिरत गिरत
दिन बारह वर्षों म घूडे व भी सुने गए हैं फिरत ।^१
कभी अपन मन का समभाती है—

नयनो को रोने दे मन, तू सकीण न बन, प्रिय बडे है,
आँखा म आभल हो, गए नहा वे कही यही पडे हैं ।

विरह क महस्व का स्पष्ट करत हुए कहता है—

१ श्री मैथिलीशरण गुप्त—साहेब, नवम सुग, पृष्ठ ००८

२ १ वही पृष्ठ २०५० ५

पदां, पृष्ठ २२८

१, १५५ २३६

सिद्ध है स्वयं साधना भाग, मुझा क्या धुवा जो न होती ।

मिलन मूत्र सूची से कम क्या अनी विरह के गूल में ।^१
 उसका बहना है कि विरह न उमे बुरे समय की पहचान करा दी है—
 जहाँ विरह ने गार दिया है किया बहा उपकार भी,
 मुष बुध हर ली, किन्तु दिया है काल जान विचार भी ।^२

उर्मिला के विरह में शारीरिक पक्ष की उपेक्षा नहीं है। असह्य बदना में वह अपने यौवन बाल को बचाकर रखना चाहती है—

मरे चपल यौवन बाल ।

अचल अचल में पडा सो, मचलकर मत साल

मन पुजारी और तन इस दुखिनी का थाल

भट प्रिय के हतु उसमें एक तू ही लाल ।^३

जीवन के मध्याह्न में ही उसका प्रिय से वियोग हो गया था, अतः अर्मिलापात्रा को यह कामना अत्यंत स्वाभाविक है। यौवन की उपमा चपल बाल से काफी उपयुक्त है।

नवम सग की उमन व्यथा दशम सग में मानसिक व्याधि-सी बन गई है। न अर्च उर्मिला अपनी-सी दुखिनी प्रापितपतिकात्रा का जुलावर उनसे दुख-मुख बांटना चाहता है, न पशु पक्षियों को अपनी स्नेह-द्रव्य से महानुभूति अर्पित करती है। वह कहीं एकांत कोन में बठी राया करती है केवल सखी भुलक्षणा उसके साथ है। कवि उसकी दशा का व्यञ्जना इस भाँति करता है।

दृग देह, बिना भरी भरी,

धृति सूखी, स्मृति हो हरी-हरी ।

उडनी अलकें जटा बनी,

बनन का प्रिय पाद माजनी ।^४

नरयस्य इतना अधिक हागया है कि सरयू में डूबकर मरने की चेष्टा करती है—

यह नीचे सरयू, इस धरू ।

इमका कल वण में भनू

जल क्या है बस डूब ही मरू ॥^५

१ श्री मैथिलीशरण गुप्त—मासिक नवम सग पृष्ठ २३३

२ वही, पृष्ठ २०४

३ वही पृष्ठ २०७

४ वही, नवम सग, पृष्ठ २०५

५ वही, पृष्ठ ३१७

वह अपनी मुध मुध विलकुल भूल हुए है । सखी मुलक्षणा न पकड़ती ता क्या जान वह डूब ही जाती—

धर या मन, बात यी अरी
मरती हूँ कब मैं मरी मरी ?^१

विस्मृत सी हाकर वह अतीत का स्मृति में डूब जाती है और जड़ सरयू का अपन जन्म, जनक के यहा बालपन न मरण के प्रति प्रथम आरूपण और धनुष यज्ञ प्रसंग आदि की नन्दी गाथा सुनाती है । इसका उच्चारण की गुणकान अन्वस्था कह सकते हैं । वाणी में अभिव्यक्ति हान से वह 'प्रत्याप के अत्यंत समीप आ जाती है किन्तु उसे प्रलाप इस लिए नहा वह सवते क्याकि उसमें अनगलता नहा है भाव की तमयता है । कर्तव्य का द्वन्द्व इस स्थिति में भी उसकी चेतना से लप्त नहीं होता—

सुवधू इस गण्य गेह की,
रुहिता होकर मैं विदह की
प्रिय को घर दह भोग से
करती बचित क्या सुयोग स ?^२

संक्षेप में कह सकते हैं कि उर्मिला के विरह की अनेक कामदशाएँ उद्वेग, उमाद ववण्य और अश्रु आदि परम्परित व्यथा के भार को सम्भालते हुए भी अधिक मनोविज्ञान मयत हैं, क्योंकि उर्मिला के बुद्धिवादी व्यक्तित्व में स्वयं कर्तव्य के उत्तरदायित्व का निभान का प्रण किया था । अन्ततः में जो अतृप्ति उसको साल रही थी, उस पर 'चतन मन कठार अकुश रखन का प्रयत्न करता रहा । ऋतु वर्णन का भी कवि ने वियोगिनी उर्मिला की व्यथा ससिक्त रक्षा के अनुरूप ही व्यजित किया है । अतीत की स्मृति का जगाकर वे भी उसकी बदना का तीव्रतर करती है ।

अतः उर्मिला के विरह के विषय में यह कहा जा सकता है कि उसकी भावराशि विखरी होन पर भी अत्यंत मार्मिक है । विखरी हुई सम्भवतः वह इसलिए है कि गण्डी न उसकी अविस्मृत अथवा का हा यथाय माना है । भावावग और आदश का द्वन्द्व उसे बराबर भङ्गभारता रहा है किन्तु वियाग की उस लम्बी अवधि में समय के साथ वह समभारत प्रोत्सा नही बनती नावुक मुग्धा ही रहती है । नावुक मुग्धा रूप में दुबलता के हात हुए भी वह आत्म से कही च्युत नहीं हुई । बचल एक स्थान पर न जान जीजी का क्या बुरा कह बटा—

वन की भेट मिनी है, एक नइ वह जडी मुक्त जीजी से ।

मविलीकरणजी न उर्मिला की वियाग बदना का स्वाभाविक गति से भाग्य से टकरान दिया है, अपन हाथा उसे राह नही गियाई है । इसी कारण वह (यदि अग्रजी के एव गण्डी में उनक चरित्र का बाँवें ता कटना हागा) बहुत 'ह्यूमन है । ह्यूमन रहते हुए

१ श्री मेघनाथराय गुप्त—सागर, दरभंगा पृष्ठ ३२७

२ वहा पृष्ठ ३६६

उन्नयन की उसने आवश्यकता ही नहीं समझी।

(२) यशोधरा—गुप्तजी की यशोधरा आधुनिक सांस्कृतिक कविता के विरह-भाव की अमूल्य निधि है। भारतीय नारी के सांस्कृतिक गौरवपूर्ण जीवन का प्रतिनिधित्व जितने सुन्दर रूप में यशोधरा करती है, वसा अत्यन्त दुर्लभ है। यशोधरा गौतम की नवयुवा विवाहिता है। समारक करण-वेदनामय रूप से अपभ्रित होकर सिद्धाय एक रात घनायास उसका अकली सोती हुई छाड़कर सिद्धि की खोज में घर से चले गए। अभिमानिनी यशोधरा अपमान से काप गई। प्रिय सिद्धि की कामना के लिए गए थे, इसका उसे दुख न था, दुख था तो इस बात का कि उसको वह बचन में छाड़कर गए, यदि वहकर जात तो क्या वह उह मना कर देती? 'लानि' में उसका मन भर आता है। उसका स्वाभिमान आहत हो उठता है

सखि वे मुझसे कहकर जाते,
 कह, तो क्या मुझका वह अपनी पथ-बाधा ही पात ?
 मुझको बहुत उहनि माना,
 फिर भी क्या पूरा पहचाना ?
 मैंने मुख्य उसी को जाना,
 जा वे मन में लात।
 सखि वे मुझसे कहकर जात।
 स्वयं मुसज्जित करके क्षण में,
 प्रियतम को, प्राणा के पण में,
 हृमी नेज देती है रण में—
 क्षान्त म मे नाते।
 सखि वे मुझसे कहकर जात।^१

यही वसक उसके मन में तब नी रहती है जब वह कहती है कि सास-ससुर जब मुझसे पूछ्य कि तुमसे तो कहकर ही गए हांगे, कहाँ जा रह हैं, तब क्या उत्तर दूँगी। क्या यह कहूँगी कि मुझसे कुछ नहा कहा ?

साम सुसर पूछेंगे

तो क्या उनसे अभी कहूँगी मैं ?

हा ! कविता तुम्हारी

मौन रहूँगी, सहूगी मैं !^२

वियोग की असह्य बदना सहकर भी वह सिद्धाय का दूदन के प्रस्ताव का मना कर देती है। गुदोधन जब कहते हैं—

१ श्री मैथिलीशरण गुप्त—यशोधरा, पृष्ठ २४

२ वश, पृष्ठ २६

तू क्या कहती है वह, पाऊँ मैं जहाँ कहा,
चतुर चरो को भेज खोजू भी उसे नहीं ?^१

तब यशोधरा कहती है—

तात, नहीं

तथा—

खोज करना उ ही के प्रतिकूल है ।

शुद्धोधन जब पूछते हैं—

कसे ?

तब यशोधरा अत्यंत आम्भीर उत्तर देती है—

तात, सोचो, क्या गए व इसी अर्थ हैं,

खाज हम लावें उह क्या व असमय है ?^२

विरह की कमक से वह पीड़ित न हो ऐसी बात नहीं है। अर्थात् जब लौटकर गौतम का सारा बतात बपिलवस्तु म सुनाता है तो वह उमादी सी हो जाती है। कोई शृंगार उसे अच्छा नहीं लगता। विरह के चरम नराश्य म सखी स कहती है—

जाग्रो मरे सिर के बाल ।

अलि कतरी ला मने क्या पाल काले बाल ?^३

किन्तु दूसरे ही क्षण सभल जाती है। वास्तव्य उस जीने का प्रेरणा देता है—

मरी भक्तिन गूदडी म भी है राहुल-सा लाल ।

क्या है अजन अगाराग, जब मिली विभूति विद्याल ?

वस सिन्दूर बिन्दु स मेरा जगा रह यह भाल

वह जलता अगार जला द उनका सब जजाल !^४

यशोधरा के विरह को अवधि अनिश्चित है, गौतम यदि सिद्धि प्राप्त करके लौट भी आएंगे तब भी पति पत्नी सम्बन्ध की तो समाप्ति हो ही गई इस दृष्टि से उसका विरह कष्ट विप्रलम्भ के अंतगत आता है।

सुख के दिना के सब उपकरण यशोधरा के लिए दुष्प्रदायी हो गए ह। वही कुट्ट हैं, वही उनके पालित पक्षी कोकिल, कीर गिखी आदि हैं किन्तु प्रिय क बिना सब अनाथ स लगत हैं—

उनका यह कुज कुटीर वही

भडता उड अगु अवीर जहाँ,

अलि, कोकिल, कीर, गिखी सब है

सुन चातक की रट 'पीव कहाँ' ?

१ श्री मैथिलीशरण गुप्त—यशोधरा, पृष्ठ ३०

२ वहाँ, पृष्ठ ३१

३ वहाँ, पृष्ठ ३४

अब भी सब साज्र नमाज बट्टी
 तब भी सब आज्र अनाथ रहा,
 मखि जा पहुँचें मुघ सग कहा
 यह अघ मुगध समीर बहा।^१

यथाधरा की यह कामना कितना भारी और स्वाभाविक है—

मखि जा पहुँचें मुघ सग कहा
 यह अघ मुगध समीर बहा।

प्रिय का गुण कथन करती हुई वह कहती है—

दख कराल कान-मा जिसका काप उठें सब भय स
 गिर प्रतिद्वन्दी न-दाजुन, नागदत्त जिस ह्य से,
 वह तुरग पालित-कुरग मा नत हो गया विनय न
 क्या न गजता रगभूमि फिर उनकी जय जय जय स ?
 निक्ला बहा कौन उन जसा प्रबल परानमकारी ?^२

विरहा की बदना और महन्गक्ति का अत्यन्त मुदर व्यञ्जना यथाधरा क इन
 शब्दा म हृद है।

जलने का ही स्नेह बना
 उठने का ही वाष्प बना है
 गिरने को ही मेह बना
 जलता स्नेह जलावगा हा
 फान वाष्प फलावगा हा
 मिट्टी मेह गनावगा हा।
 सब महन को दह बना।
 जनन का ही स्नेह बना ॥^३

स्नेह करक मनुष्य का जलना ही पडता है प्रेम में ही विरह का अस्तित्व होता है।
 विरहा की अनपत् अभिलाषाएँ आसू बनकर उमडती रहती हैं और शरीर तिल तिल बरके
 गनता जाता है। मूर ने भी कहा था—

प्रीति करि काहू सुख ना नख्यो।

यथाधरा क विरह बणन में ऋतु-बणन भा अनुपम है। सब ऋतुएँ उसक जीवन
 पर घण्टि हाना जाती हैं। साकेत की उमिला के विरह में भी ऋतु का रगभग वही रूप
 है विन्तु वहाँ आनकारिता के वाक् में भाव पथ देव-सा गया है। यथाधरा की सी सीधो

१ श्री मैथिलीशरण उल—यथाधरा, पृष्ठ ४६

२ वहाँ, २७

३ वहाँ, ४१

भारमिक अनिबन्धित बहा नहीं है। गौतम के जान क बाद विरहिणी यशाधरा की बही दशा हो गई है जो वसन्त की समाप्ति पर ग्रीष्म के आने से प्रकृति की होती है।

वसन्त

सखि वसन्त से वहाँ गये वं,
म उष्मा सी यहा रही।^१

ग्रीष्म

तप भरे मोहन का उड्डव धूल उडाता आया,
हाय ! विभूति रमाने का भा मन योग न पाया।
मूखा कण्ठ पसीना छूटा, मगतण्णा की माया,
भूनसी दृष्टि अंधरा दीखा दूर गई वह छाया।
भरा ताप और तप उनका

जगती है हा ! जठर मही।^१

वर्षाकाल में न जान वहाँ का वाष्प जो पहल प्रकृति में सोया पडा था, उमड आया। ऋतु के उद्घापन से विरहिणी यशाधरा की अश्रुधारा भी उमड आई है। विस्मृति व गभ में डूबता हुई स्मृति पुन सजीव हो गई—

जागी किसकी वाष्प राशि जा मून में साती थी ?
किसकी स्मृति के बीज उग म सृष्टि जिह बोती थी
अरी दृष्टि, एसी ही उनकी दया दृष्टि रोती थी
विश्ववदना का एसी ही चमक उह होती थी।

किसक भरे हृदय की धारा

सतधा होकर आज वही ?^१

ऋतु का यह वणन विरहों को मानवीय भावनाओं के अत्यधिक अनुरूप है। वाष्प के उठन में उच्छवास और मह के गिरन में अश्रु की ध्वनि है। वाष्प के वर्षा के रूप में परिणत ज्ञान के सहज बर्णनिक तथ्य को विरही क जीवन पर कत्रि न कुशलता से घटाया है।

गरद के मिस वह गौतम के गुणा की और तपस्या की ही प्रसासा करती है।

उनकी गा त कालि की ज्यात्सना जगती है पल पल में
गरदातप उनके विकास का सूचक है थल-थल में,
नाच उठी आगा प्रतिपल पर किरणों की भल भल में,
गुला सलिल का हृत्प कमल खिल हुआ व कल-कल में।

१ भा मैथिली शरद गुज—यशाधरा, पृष्ठ ४१

२ वहा पृष्ठ ४१

३ वही, पृष्ठ ४२

पर मेरे मध्याह्न बताने लगे

अग्नी मूर्च्छा बनी वहीं ?^१

हेमन्त और गिरिजि उसको दुख को उद्दीप्त करत हैं—

हमपुत्र हम-तकाल के इस आतप पर बारूँ

प्रियस्पर्श की पुलकावलि में कस आज विसाहूँ ?

किन्तु शिशिर यह ठडी साहें हाय ! कहा तक बारूँ ?

तन मारूँ, मन मारूँ, पर क्या मैं जीवन भी हारूँ ?^२

उसके विरह दुख का अन्वकार ही सम्पूर्ण सृष्टि पर आच्छादित हाता हुआ प्रतीत होता है—

पटा न पत्ते तक उनका त्याग देखकर त्यागे,

मेरा ध्रुवलापन कुहरा बन छाया सबके आगे

उनके तप के अग्निकुण्डल घर घर में हूँ जाग,

मेरे कम्प, हाय ! फिर भी तुम नहीं कही से भाग

पानी जमा परन्तु न मेरे

खट्टे दिन का दूख दही !^३

स्वप्न में यदि प्रिय से साक्षात्कार हाता है तो वह उमत् सी उनसे प्रार्थना करने लगती है—

नाम कहा जाते हा ?

अब भी अन्वकार छाया है ।

रोकने के प्रयत्न में नींद खुल जाती है तो वह विवग सी कह उठती है—

हा ! जग कर क्या पाया,

मैंने स्वप्न भी गँवाया है ।

यशोधरा की अनेक वियोग दगाघ्रा में मरण तक का बड़ा सुन्दर वणन मधिली-शरणजी न किया है । प्रकृति का उद्दीपन रूप रखकर वह कहते हैं—

फूला पर पद रख, बूली पर रख लहरा से रास,

मन्द पवन के स्पन्दन पर चढ़ वा आया मविलास ।

भाग्य न अन्वसर पाया री ।

मरण सुन्दर बन आया री ।

प्रिय के विरह में यशोधरा मरण का मुयाग भी प्राप्त नहीं कर सकती । इसकी विवगना और भी स्वाभाविक और सुन्दर है—

फिर भी गोपा के कपाल में वहाँ आज वह भोग ?

प्रियतम का क्या, यम का भी है दुलभ उम मुयाग ?

१ २ श्री मैथिलीशरण उल—यशोधरा, पृष्ठ ४३

३ वही, पृष्ठ ४०

बनी जननी भी जाया री।
 मरण मुन्दर बन ग्राया री।
 जीवन रूपी तौका यक्षोवरा के लिए दुबह सी प्रतीत हा रही है—
 जाण तरी भूरि भार, देख, अरी, एरी।
 कठिन पथ, दूर पार और यह अघेरी।
 सजनी उलटी बयार,
 बग धरे प्रखर वार,
 पद पल पर विपल वार
 रजनी घन घेरी।
 जीण तरी भूरि भार, देख, अरी, एरी।^१

किन्तु राहुल रूपी रत्न जो मोतम न उस सौपा था, उसको उह लौटाने का भार
 ना ता उनी पर है—

समय हा रहा सपत्न
 अपन वन कौन यत्न ?
 गाठ म अमृत्य रत्न
 विमरी मुख मरी।
 जीण तरी भूरि भार देख अरी एरी।
 भव का यह विभव माय
 जाती भर कि तु हाय।
 ल ल कव लौट नाथ ?
 माप वच बेरी।

जीण तरी भूरि भार देख, अरी एरी।

राहुल के पालन पापण क इस उत्तम्यायित्व न यगोधरा का पीडा का घोर भी
 करण बना दिया है। वह फफक फफक कर रो नहीं सकती। फिर भी अपनी व्यथा नूलकर
 उस रसमय बनाना चाहती है।

कभी प्रिय की स्मृति आती है और राहुल कहाना कहन का हठ करता है तो
 उसक पिता की कहानी सुनाकर उसका मन रहलाती है—

मुन उपवन म बड सवर
 तात भ्रमण करत थ तरे,
 जहा मुरभि मनमानी।

गात थ खग कव कव स्वर म
 सहसा एक हस ऊपर स

गिरा, विद्ध होकर खर पर से
हुई पक्ष की हानी

चाक उ हान उसे उठाया,
नया ज म सा उसने पाया
इतन म आखेटक आया
लक्ष्य सिद्धि का मानी

मागा उसन आहन पक्षी
तेरे तात किन्तु व रभी।
तव उसने जो धा खा मभी—
हठ करने की ठानी।^१

वह राहुल को लोरी गाकर मुलाती है—

सो मेरे अतरधन सो।^२

किन्तु अयमनस्क-सी कभी कभी उसके बहुत रान पर खीज जाती है। उस उद्वेग की स्थिति मान सकते हैं।

चुप रह चुप रह हाय अभागे।
रोता है अब किमके आग ?
तुझे देख पात वह रोता,
मुझे छोड़ जाते क्या सोता ?
अब क्या होगा ? तब कुछ होता
सोकर हम खीकर ही जाग
चुप रह चुप रह ! हाय ! अभागे ॥^३

यह राहुल गौतम के जाते समय रोया होता तो

तभी उसे ध्यान आना है कि वास्तव राहुल का राने में क्या दोष है उसे क्या पता
कब रोना चाहिए कब नहीं ? वस्तुस्थिति से परिचित हाकर फिर से विवश सी राहुल
को सात्वना दन लगती है—

बेटा मैं तो हू राने का,
तेरे सारे मल बाने को।
हय तू है मम कुछ हाने को,
भाग्य आयग फिर नी भाग ॥^४

१ श्री मैथिलीशरण गुप्त—यशोधरा, पृष्ठ ५६ २०

२ वही पृष्ठ ६१

३ ४ वही, पृष्ठ ५६

राहुल जब बालना सीखता है तो माँ, मा कहकर पुकारता है। यशाधरा उससे पिता रहने का कहती है—

मा मेरे अवलम्ब बसा क्या अम्ब अम्ब कहता है ?

पिता, पिता कह बेटा, जिनसे घर सूना रहता है ॥^१

यशाधरा का राहुल से पिता कहने का अप्रहं करना उसकी मनोस्थिति के अत्यंत अनुकूल है।

ऐसे ही राहुल का पिता का दुःख का भाव—

विहग समान यदि अम्ब पख पाता म
एक ही उड़ान में तो ऊंचे चढ़ जाता मैं
मडल बनाकर मैं घूमता गगन में
और देख लेता पिता बठ किस बन में ॥^२

अत्यंत स्वाभाविक है। उसमें दोष निकालना बालमनाविज्ञान का अपरिचय दिखाता है। किन्तु बुद्ध नवीन आलाचका ने राहुल के इस कथन को असंगत ठहराया है।^३

कहना न होगा कि इस प्रकार की दोषावपण से युक्त आलोचना गुप्तजी की 'यशाधरा के सहृदय पाठक के लिए अत्यंत असह्य है। न जान किस कारण इन नवीन आलाचका ने इतनी असम्भव और असंगत आलाचना की है। माता और बालक के व्यवहार से परिचित कोई भी समझदार व्यक्ति उनके मत से सहमत नहीं हो सकता।

वस्तुतः राहुल मा की पीड़ा को बहुत कुछ बाटने का प्रयत्न करता है। यशाधरा की विरह स्थिति की व्यञ्जना राहुल के इन शब्दों में अत्यंत सशक्त है—

गाती तू मेरे लिए रोनी उनके अथ।

हम दोनों के बीच तू पागल सी असमथ ॥

सिद्धांत के विरह में वह इतनी दुःख हा गई है कि राहुल उसके चित्र को पहचान नहीं पाता। इतना कष्ट सहन करके भी यशाधरा पति को एक बार भी बुरा नहीं कहती। गौतमी जर कहती है कि राजकुमार अत्यंत निष्ठुर है हम सबका छोड़कर चले गए तब वह उम भना करती है— अरी तू उन्हें नित्य कम कहती है ? क्या किसी कीट पतंग का दुःख भी नहीं देख सकता।^४

गौतमी— तभी न हम लोगो को इतना मु्य दे गए है।'

यशाधरा— नहा के अपने दुःख का भागी बनाकर हम अपना सच्चा आत्मीय

१ आ मैथिलीशरण गुप्त—यशाधरा पृष्ठ ४६

२ वही, पृष्ठ ४४

३ विद्वत्पत्रिका—यशाधरा का काव्य रूप पृष्ठ ४४

४ मैथिलीशरण गुप्त—यशाधरा पृष्ठ १७७

सिद्ध कर गए हैं और हम सबके मञ्चे सुख की खोज में ही गए हैं।^१

यशोधरा का गौतम के अतिरिक्त अपना स्वतंत्र जीवन दशन या और वह या ससार में रहकर सघर्षों से विजय प्राप्ति। वह स्पष्ट मुक्ति को चुनौती देती है, 'कह मक्ति भला किसलिए तुम्हें मैं पाऊँ।' यही तक गिरिजादत्त गुलजी के शब्दों में 'भावुकता से सिक्त होकर प्रवाहित हुआ हूँ'—। यशोधरा के गौतम के प्रति यह भाव भी इसी दशन का द्योतन करते हैं—

जल में गतदल तुल्य सरसते,
तुम घर रहते हम न तरसते
देखो दा दो भय वरसते
में प्यासी की प्यासी।
आओ ओ बनवासी ॥^१

नदी, वादल, हंस और पवन सबसे विरही प्रिय के पास सदा ले जाने की प्रार्थना करता रहा है। प्रिय की स्मृति में डूबी, एकाकिनी यशोधरा नदी के प्रदीप दान करती हुई प्रिय के पास अपना सदश ले जाने को कहती है। सदेश जितना मक्षिप्त है उतना ही मार्मिक भी—

तुम्हें नदीस मान दे,
नदी प्रदीप दान ले।

तुम्हें और क्या हूँ ? धाडा भी आज बहुत तू मान ले,
तम में विषम माग का इसको तुच्छ सहायक जान ले।
मिलें कही मेरे प्रभु पथ में तू उनका सघान ले,
तुम्हें कठिन क्या है यह यदि तू अपने मन में ठान ले।
मरे लिए तनिक चक्कर खा नव यात्रा की तान ले,
धूम धूमकर भूम भूमकर, यल यल का रथ पान ले।
कह देना इतना ही उनसे जब उनका पहचान ले—
'धाय तुम्हारे सुत की गाथा बठी है बस ध्यान ले।'^१

अंतिम पंक्ति में मातृत्व के उत्तरदायित्व को सम्भाल बठी हुई वियागिनी यशोधरा का सजीव चित्र साकार हो जाता है। 'तुम्हें नदीस मान दे मैं मान वचिता मानिनी यशोधरा की करुण व्यथा मुखरित हुई है, जो अत्यन्त हृदयस्पर्शी है।

यशोधरा जितनी अनुरागमयी है उतनी ही मानिनी भी। गौतम के जाने के बाद ही अपने अपमान की याद करके कहती है—

१ श्री मैथिलीशरण गुप्त—यशोधरा, पृष्ठ ११६

२ वही, पृष्ठ ११८

गए, लौट नीं वे आवेग,
कुछ अप्रब अनुपम लावगे ।
रात प्राण उह पावेंगे,
पर क्या गाते - गात ?
मखि, व मुमसे कहकर जात ॥^१

सचमुच, गीतम में सिद्धि प्राप्त करके लौट आने के समय महाप्रजावती जय जय उह लिबा लाने का कहती है—

बाधा कौन-सी है तुझे आज वहा जान म ?^२

तब वह उत्तर देती है—

बाधा तो यही है, मुझ बाधा नहीं कोई भी ।
विघ्न भी यही है जहाँ जाने स जगन म
कोई मुझे राक नहीं सकता है—वम म,
फिर भी जहाँ मैं, आप इच्छा रहते हुए
जाने नहीं पाती ! यदि पाती तो कभी यहा
बठ रहती मैं ? छान डालती बरित्री को !
मिहनी सी काननो म, योगिनी सी शलो म ।
गफरी-सी जल म, विहगिनी - सी व्याम म ।^३

वह गीतम को लन नहीं जाती किंतु उनक आगमन के लिए उत्कृष्ट है—

फिर भी नाथ न आए ।

नेन गये हाय जो उनको वे भी लौट न पाये ।^४

जब व बिलकुल ही द्वार पर आ जाते है तो मन को समझाती है—

रे मन आज परीक्षा तेरी ।

बिनता करती हूँ मैं तुभम बात न विगडे भरी ।

अब तब जो तरा निग्रह था

वस अभाव के कारण वह था ।

लोभ न था, जब नाच न यह था,

मुन अब स्वागत भरी ।

रे मन आज परीक्षा तेरी ।^५

१ श्री मैत्रिकारण्य गुप्त—वराह, पृष्ठ २५

२ वही पृष्ठ १२५

३ वही, पृष्ठ १२६

४ वही पृष्ठ ३६

५ वही, पृष्ठ १४०

सांस्कृतिक प्रबंध कविता में विरह भावना

उसके मन में कसक यही है—

विदा न लेकर स्वागत से भी वंचित यहाँ किया है,
हृत् अत मे यह अविनय भी तुमने मुझे दिया है।

गौतम स्वयं गापा के पास क्षमा याचना को आते हैं और मानिनी, विरहिणी गोपा के आत्मसम्मान की रक्षा करत हैं—

माना दुबल ही था गौतम क्षिपकर गया निदान,
किन्तु तुझे, परिणाम बला ही हुआ मुझा संधान।
क्षमा करो सिद्धाय शाक्य की निदयता प्रिय जान
मनी करुण पूज आज वह गुद बुद्ध भगवान।^१

अपनी एकमात्र निधि राहुल को वह भिक्षुक बुद्ध को सौंप देती है। असमय में ही मिले हुए बराग्य के लिए वह रोती चिल्लाती नहीं। उसके लिए जीवन का दाम्पत्य सुख स्वप्न हो गया था, उस रूप में गौतम से मिलन भी निरवधि, किन्तु उसकी शिकायत उसने कभी नहीं की। मन में विरह की एक टीस अवश्य थी किन्तु सकुचित स्वायत्त उसे वह कल्पित न करना चाहती थी। अपनी सम्पूर्ण भौतिक अभिलाषाओं को बुद्ध को समर्पित करके जैसे वह निश्चिन्त हो गई। उसका यह त्याग अत्यंत स्तुत्य है—

मेरे दुख में भरा विश्व सुख, क्या न भूँ फिरे मैं हामी।

बुद्ध गरण धम गरण, सप शरण गच्छामि ॥^२

नक्षेप में कहा जा सकता है कि यशोधरा का विरह हिंदी-काव्य की अमूल्य निधि है। यशोधरा में नारी हृदय की कोमलता और जागरूक व्यक्ति के स्वाभिमान ने अदभुत अतद्वन्त प्रस्तुत किया है। इसी से विरह के असह्य दुख का महकर भी उसने वही किसी भी स्थिति में अपने को हलका पटन नहीं दिया है। न वह गौतम को दूढ़न गई, न उनके लौटकर आने पर स्वागत के लिए दौड़ी।

विरह की लम्बी अवधि को राहुल को देखभाल, पालन पोषण से उसने मधुर बना लिया और साथ ही विरही के जीवन की स्वाभाविक स्थितियाँ, उद्वेग, उन्माद, अश्रु, गुणकथन और मरण आदि में भी ऊँची डूबती रही। ऋतु का प्रादक् वातावरण उसके विरह की उद्दीप्ति करके उमे और अधिक लग्न से प्रिय की बाट जोहने के लिए प्रेरित करता रहा।

विरह में सदेश पद्धति का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वियोगिनी यशोधरा ने भी नदी के द्वारा सदेश बहलवाया है किन्तु वहाँ भी गौतम द्वारा आहत उसका स्वाभिमान उस कचोटता रहा। इसी से नदी 'ग मान दे' की नसर्गिक भावना उसकी वेदना को तीव्रतर बना रही है।

१ ना मैथिलशरण गुप्त—यशोधरा पृष्ठ १८३

२ बदा, पृष्ठ १४७

यशोधरा के बियोगिनी जीवन में स्वाभिमान रक्षा के महत्त्व को स्वयं गौतमबुद्ध ने भी अन्त में प्रथम दिया।

(३) जयद्रथ वध—'जयद्रथ वध' में अभिमन्यु के युद्ध प्रयाण के अन्त पर महिलाशरणजी न एक अप्रसूत स्त्रियों की योजना की है। वह है उत्तरा का विलाप। अब तक विदेश जात हुए पति को रोवन के प्रयत्ना का कायम पर्याप्त धन मिलता रहा है किन्तु यहाँ अभिमन्यु विदेश नहीं जा रहा, युद्ध के लिए प्रस्थान कर रहा है। उत्तरा के हृदय में अपशकुन के विचार उठ रहे हैं। इसीलिए वह उठे नहीं जाने देना चाहती।

प्रवत्स्यपति का कीन्ती दशा उत्तरा की है किन्तु वह प्रवत्स्यपति का नहीं है। कर्ण विप्रवम्भ की किस विशिष्ट धेणी में उस रखा जाए, यह समझ में नहीं आता। अभिमन्यु से वह कहती है—

जो वीर पति के कीर्ति पथ में विघ्न बाधा डालती
हाकर सती भी वह कहीं कत्तव्य अपना पालती।
अपशकुन आज परन्तु मुझको हो रहे, सच जानिए
मत जाइए सम्प्रति समर में प्रायना यह मानिए।
जाने न दूगी आज मैं प्रियतम तुम्हें संग्राम में,
उठता बुरी हैं भावनाएँ हाथ। इस हृदय में ॥^१

इस परिस्थिति का विषय हिन्दी विरह काव्य के लिए एकदम नवीन है। प्राधुनिक युग से पहले ऐसा कोई उदाहरण नहा मिला।

अभिमन्यु की मृत्यु के बाद उत्तरा का विलाप कर्ण विरह है, कर्ण रस नहीं। प्रिय की मृत्यु पर शाक से पीड़ित होती हुई भी उत्तरा यह मानने को तत्पर नहीं है कि उसका पति अब जलोत्थय में नहीं है। वह कहीं किसी 'वह्नि पथ' पर भी प्रिय से मिलने को व्याकुल है—

तज दो भल ही तूम मुझ, मैं तज नहीं सकती तुम्ह,
वह थल कहीं पर है जहाँ मैं भज नहीं सकती तुम्ह ?
है विदित मुझको वह्नि पथ जलोत्थय में तुम हो कहीं
हम नारियों की पति दिना गति दूमरी होती नहीं ॥
जा सहचरों का पद मुझे तुमने दया कर था दिया,
वह था तुम्हारा इसलिए प्राणें ? तुमने ले लिया।
पर जा तुम्हारी 'अनुचरी' का पुण्य पद मुझको मिला
है दूर हरना तो उसे, सक्ता नहीं कोई हिला ॥^२

१ आभिमन्युशरण्युत्पन्न—जयद्रथ वध, प्रथम सर्ग पृष्ठ ६

२ वही विलाप सर्ग, पृष्ठ २३

‘कुमारसम्भव’ की रति की भाँति वह भी मुरपुर की अम्सराओ से ईर्ष्या करती है। किन्तु अपने प्रणय पर विश्वास रखती हुई गव का अनुभव करती है—

मुरपुर गए हो नाथ ! क्या तुम अम्सराओ के लिए ?
पर जान पड़ती है मुझे यह बात मन में भ्रम भरी,
मेरे समान न मानते ये तुम किसी का सुन्दरी !
हाँ अम्सराएँ आप तुम पर मर रही होगी वहा,
सभता तुम्हारे रूप की त्रलोक्य में रखी कहा ?
पर प्राप्ति भी उनकी वहा भाँती नहीं होगी तुम्ह ?
क्या याद हम सबकी वहा आती नहीं होगी तुम्ह ?^१

पति की मृत्यु हो गई यह बात उत्तरा मानने को तयार नहीं है। वह भूमिशापी अभिमन्यु की मनुहार करती है—

हे जीवितश उठो, उठो, यह नींद कसी घोर है !
हे क्या तुम्हारे योग्य, यह तो भूमिसेज कठार है !
रख शीश मेरे अक् में जा लेटते थे प्रीति से,
यह लेटना घति भिन्न है, उस लेटने की रीति से ॥^२

उत्तरा का विलाप परम्परागत ‘करण विरह’ है जिसकी पूर्व कवी कालिदास के ‘कुमारसम्भव’ की रति क विलाप में और ‘स्वयंभू रामायण’ की मन्दोदरी के विलाप में मिल सकती है।^३

(४) द्वापर—द्वापर में कृष्ण के जीवन से सम्बंधित व्यक्तियों के आत्मकथन के रूप में, कवि ने, कृष्ण के जीवन की भाँकी प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। आज तक कृष्णकाव्य में कुब्जा एक तिरस्कृत नारी के रूप में ही रही है। वह कस की दासी है, कृष्ण ने उसे अपनाया है और उद्धव प्रसंग में गोपिया उसका उपहास करती हैं। किन्तु मथिलीशरण गुप्त के भावुक हृदय ने उसके हृदय को भी टटोला है, उसके मम का भी पहचानने का प्रयत्न किया है।

‘द्वापर’ की कुब्जा का ‘पूवराग वणन अत्यन्त स्वाभाविक और मनोवार्तिक है। कृष्ण ने प्रथम भेंट के पश्चात् जब कुब्जा का कायावल्प हुआ तब उसके युवक हृदय में कृष्ण से मिलने की अभिलाषा का जन्म हुआ। पहले दासी के व्यवहार के अनुकूल ही वह साचने लगी कि ‘मैं दासी हूँ यदि कृष्ण से मिलने स्वयं चली जाऊँ तो बाधा ही क्या है ?’—

१ श्री मैथिलशरण गुप्त—नयद्वय वध पृष्ठ २४

२ वही, पृष्ठ २१

३ सरस्वती और अरुण रा सम्बन्धी काव्यों के विरह विवेचन में कालिदास और स्वयंभू की विरह भावना

आने की न आप कहता तो
 कुब्जा क्या राधा थी,
 मैं तो चैरी थी, जान मे
 मुझे कौन बाधा थी ?
 किन्तु आज आकुल हूँ वन में
 जसी वह ब्रजरानी,
 दासी ने घर बठ उसको
 मम वेदना जानी ॥^१

फिर सोचती है कि यदि वह राधा की दूती होती तो कितना अच्छा था, कम से कम उनके सदेश के मिस ही कृष्ण से मिलन सम्भव हो जाता।

होती हाय ! आज कुब्जा ही
 यदि राधा की दूती,
 जाकर शरण इसी मिस से तो व
 अरुण चरण तो छूती ॥^१

कुब्जा के अतद्वन्द्व का कवि ने सुन्दर वर्णन किया है। उसके मन में कृष्ण से मिलने की अदम्य अभिलाषा है। किन्तु साथ ही उसे अनुभव होता है कि कायाकल्प के साथ उसका मन कल्प भी हो गया है, दासी के शील का निर्वाह वह नहीं कर पा रही। वह कृष्ण के पास जाना चाहकर भी नहीं जा सकती—

कल्प हुआ यह जिस बाया का,
 इसे कहा ले जाऊँ ?
 श्रावण वही, उसे अर्पण कर
 परित्राण मैं पाऊँ ।
 दे न गया वह यह शरीर ही
 हाय ! शील भी ऐसा,
 करते बनता, नहीं, चाहती
 हूँ मैं करना जसा ॥^१

कृष्ण को गारुडी रूप मानकर वह कुबड़ का सप सभकती है। वह सप उसकी पीठ में कुण्डली मारे बठा था कृष्ण ने ही त्राण कराया, किन्तु अब विरह रूपी बिच्छू से कौन रक्षा करे ?

कूबड न था, कुण्डली पकड़े—
 जबड़े मुझे पडा था,
 तुने कौन मत्र फूका, वह
 उठ हट दूर खडा था।
 किन्तु विरह वरिचक ने आकर
 अब यह मुझका घेरा,
 गुणी गारुडिक, दूर खडा तू
 कौतुक देख न मेरा ॥^१

कुब्जा के आत्म चिन्तन में सप और विच्छू का यह रूपक कुछ वच्चा का खेल-सा लगता है।

मन के अन्तर्द्वार पर विजय प्राप्त करती हुई कुब्जा निश्चय करती है कि यदि कृष्ण उससे मिलने नहीं आये तो भी वह स्वयं चली जाएगी। यही तो है, कृष्ण कहेंगे कि उसका आचरण दासी जसा है तो वह कह देगी, 'हा मैं आपकी दासी ही हूँ—

यही कहेगा न तू—'अधीरे,
 निकली तू चेरी ही।'
 हाँ हाँ, मैं चेरी, मैं चेरी,
 तेरी ही, तेरी ही।^२

रात्रि में उसे नींद भी नहीं आती। मन में कृष्ण को बसाकर वह सन्तुष्ट नहीं है, उसे सशरीर मिलन चाहिए। दिवस रात्रि के पख लगाकर कल्पना में वह आत्मविस्मृत हो जाना चाहती है, कृष्ण से पूण तमय—

अहोरात्र के पख लगाकर
 मुघ-सी उडती हूँ मैं,
 तुमसे मिलने को अपने से
 आप विच्छुडती हूँ मैं।^३

वह उनसे मिलने को अत्यन्त आकुल है—

तेरी व्यथा बिना सुन, मेरी
 कथा न पूरी होगी,
 तू चाह जिसका योगी हो,
 मेरा क्षणिक वियोगी ॥^४

आज के कवि का ध्यान केवल राजा रानी की कहानियों से हटकर साधारण जन

१ श्री मैथिलीशरण गुप्त—दापर, पृष्ठ १५०

२ वही, पृष्ठ १५०

३ वही, पृष्ठ १५२

४ वही, पृष्ठ १५२

की ओर भी गया है। इसी से कृष्णा सी तिरस्कृता दासी का विरह व्यथा गुप्तजी की लेखनी में आकर अमर हो गई। प्रेम और विरह का कोमल तन्तु केवल धनिवा क हृदय का गायन ही नहीं करता मिथना के हृदय में भी धज्जता है। यह आज के कवि ने पहचाना है। हिन्दी में यह केवल आधुनिक युग की विरापता है। भवितकाल में यदि सत्ता व भक्तों में उसका स्थिति कही जाय तो सत कोई साधारण जन नहीं व। मधिलीशरण गुप्त की कृष्णा भक्त नहीं है वह नारी है, शुद्ध नारी ही, जो प्रणय-याचना के लिए तडपती है।

इसके अतिरिक्त वंदावन के वन में एवात घूमती हुई राधा के 'प्रलाप' के रूप में मधिलीशरण गुप्त ने उनकी वदना भी द्वापर में व्यक्त की है। मधिलीशरण गुप्त की राधा (द्वापर में) कोई अति मानवीया नारी नहीं है, न उहाने अपनी व्यथा का उन्नयन दग-सवा अथवा जन सेवा में किया है। यह ऐकान्तिक प्रमिणा है। उसने जीवन में विश्वासघात पाया है, इस तथ्य को वह भली भाँति जानती है फिर भी अपने हृदय से प्रेम का त्याग नहीं कर पाती।

कृष्ण की मधुप वार्त्त को ललवारती हुई राधा कहती है—

मेरे तप्त प्रेम से तेरी
बुक न सकेगी धुधा हरे।
निज पय बरे चला जाता तू
अल मुझे सुधि सुधा हरे ॥^१

कृष्ण के चंचल प्रेम का यह चुनौती प्रथम बार द्वापर की राधा से मिलती है। भवितकाल में तो राधा के लिए यह सांभना ही पाप था। (अर्थात् गोपिया उपालम्भ में कृष्ण का मधुप कहती है) रीतिकाल की राधा भी वम के आतक को न भूल सकी। आधुनिक युग में भी राधा न वइ तरह से अपना मन बहाना चाहा—सेवाप्रत अपना कर (प्रियप्रवास) अथवा स्थितप्रन होकर कृष्ण के बालरूप की भौकी से गोकुलवासिया का मन बहता गहलाकर (कृष्णायन)। किंतु मधिलीशरण गुप्त के द्वापर में राधा, द्वापर युग की सिकुड़ी घिमटी अपना सज्जा और पीडा का मोन से बचाती हुई नारी न रह सकी। यह आधुनिक युग का सजग चाहत नारी बन गई।

उसने स्पष्ट रूप से कृष्ण का चुनौती त्त हुए कहा कि मेरे ओर तुम्हारे प्रेम की वृत्ति में ही भूल रूप से अंतर है। मैं तप्त प्रेम में विश्वास करती हूँ और तुम अनेक के पीछे दौड़ने में। मैं तुम्हारे पीछे फिर भी पागल हूँ इसका कारण यह नहीं है कि तुम बहुत महान् हो बल्कि यह है कि मैं अपना वार्त्त से विवश हूँ। इसीलिए मुख से भी कुछ नहीं कहती हूँ—

कसे तुष्ट करेगी तुमको,
नहीं राधिका बुधा हरे।

पर कुछ भी हो नहीं कहेगी
तरी मुग्धा मुग्धा हरे।^१

ऐकान्तिक एकपत्नीय प्रेमी विश्वासघात पाने पर यह विश्वास नहीं करना चाहता कि उस छला गया है, कल्पना के आदस में ही वह अपने प्रेम को सजोये रखना चाहता है, यही दगा राधा की है—

सब सह लूगी—रो रोकर मैं,
देना मुझे न बोध हर।
इतनी ही विनती है तुमसे,
इतना ही अनुरोध हरे ॥^२

कटु सत्य कहने के लिए वह कृष्ण से क्षमा मागती है साथ ही कहती है कि इस सत्य के लिए उन्हें उस पर शोध नहीं करना चाहिए। हा, यदि वह उन्हें भूल जाय तो अवश्य दण्ड के योग्य हो जाएगी—

क्या नानापमान करती हूँ
कर ना बठना शोध हरे।
भूले तेरा ध्यान राधिका,
तो लना नू शोध हर ॥^३

यह भी मन की विचित्र स्थिति ही है कि आहत प्रेमी आघात पाने पर भी आघात वर्ता की कृपा की आकांक्षा करता है।

मौन राधा मथिलीशरण गुप्त के द्वारा म मुखर हो गई हैं। कवि ने उन्हें प्रतिमानवीय रूप नहीं दिया, उनकी मनास्थिति के विदलेपन का प्रयत्न किया है। अत्यन्त सक्षिप्त होने पर भी यह प्रयत्न अत्यन्त प्रशंसनीय है, स्वाभाविक तथा मार्मिक भी।

(५) जयभारत—मथिलीशरण के 'जयभारत' में विधुर गान्तनु और मत्स्यराज की कथा योजनगथा की प्रणय गाथा वर्णित है। विधुर गान्तनु गंगा के विरह में पीड़ित यमुना के तट पर घूम रहे थे वहाँ उनकी भेंट मत्स्यवती से हुई। भेंट के पश्चात् कवि गान्तनु में अन्तर्द्वेष के पूवराग के विरह की पीड़ा दिखा सकता था किन्तु उसने ऐसा नहीं किया। प्रथम परिचय में ही राजा के कामुक हृदय में विवाह का प्रस्ताव मत्स्य कथा के समुच्चय रख दिया—

बालो नत मुख से ही बोलो, अधिक् नहीं बस हाँ भर दो,
विरह विरस अपने राजा को फिर से हरा भरा कर दो ॥^४

१ श्री मैथेनाशरण गुप्त—द्वार पृष्ठ १२

२ वही, पृष्ठ १३

३ वही, पृष्ठ १३

४ वही, जयभारत, सा योजनगथा, पृष्ठ २३

उनके आकषण के चेष्टा रूप में परिवर्तित होने का संकेत भी कवि न किया है।

अस्तु रात होने का है अब, चला तुम्ह पहुँचा आऊँ ।

असमय ठौर कुठौर अकेली छोड़ स्वयं कमे जाऊँ ?^१

राजा के भेजे हुए अमात्य से जब धीवर ने अपने दोहित्र के राज्याधिकारी होने का प्रस्ताव रखा तो वह अत्यंत क्रोधित होकर लौट गया। धीवर भी अपनी क्या को केवल राजभोगिनी नहीं बनाना चाहता था। उसको 'भार्या' पद प्रिय था और इसीलिए उसका यह हठ था। अमात्य के जाने के पश्चात् वह सोचने लगा—

भूप भोगिनी भिक्षुक की भी भार्या को पा सकी कही ?^२

उधर अमात्य ने धीवर का मनव्य जब राजा को सुनाया तो वह हताश हो गए—

सुनकर मंत्री से सब बात शांतनु ने ली लम्बी सास,

फिर कुरहाते-से बोले वे गड्डी हृदय में मानो गीस ।

राजनीति का घात नहीं, यह है सीधी सामाजिक बात,

मेरा जो हो पाय न मेरी प्रजा हाय ! बाधा-याघात ।

धीवर को अधिकार, करे वह किसी पात्र को कयादान,

राज्य करे देवव्रत मेरा मरू भले में अगति समान ॥^३

कवि ने राजा शांतनु के चरित्र की रक्षा करने का काफी प्रयत्न किया है किन्तु फिर भी वह उनकी दुबलता का उपचार नहीं खोज सका है। मरू भले में अगति समान' में राजा के हृदय की घोर निराशा की सूचना मिलती है। देवव्रत ने धीवर राज से जब राज्य को त्यागने और आज्ञा विवाह न करने की प्रतिज्ञा की तो धीवर राजी हो गया, तब भी शांतनु उस विवाह का विरोध न कर सके। अधिलीक्षण तब भी शांतनु की चारित्रिक दृढता की रक्षा का प्रयत्न करते रहें। योजनग धा के घर आने पर उन्होंने कहा—

शांति गई शांतनु की यद्यपि याजनग धा घर आई

ब रो पड़े—पुत्र बलि देकर मैंने तब पत्नी पाई ॥^४

शांतनु का यह आत्म पश्चाताप हास्यास्पद सा प्रतीत होता है। यदि वह चाहते तो देवव्रत से विवाह का विरोध कर सकते थे किन्तु वसा करने की शक्ति उनमें नहीं थी। उनका कामुक मन योजनग धा के सौंदर्य का दास बन गया था, उसी से वह अत्यन्त सतप्त थे। सत्यवती पर रोमकर भी वह उसके पुत्र को राज्याधिकारी इसलिए नियुक्त नहीं कर सकते थे क्योंकि प्रजा राजकुमार के साथ थी। अतः स्वयं देवव्रत ने ही पिता के

१ श्री मैथिलीशरण गुप्त—जयभारत, पृष्ठ २४

२ वही, पृष्ठ २५

३ वही, पृष्ठ २५

४ वही, पृष्ठ २६

दुःख का कारण जानकर भीष्म प्रतिज्ञा कर ली।

वद शान्तनु के सत्यवती के प्रति पूर्वाकषण के वणन का अवकाश मिलने पर भी मैथिलीशरण उसके वणन का साहस न कर सके। उनके नीतिप्रिय मन को जैसे वह अच्छा नहीं लगा। परम्परागत कथा में पतिव्रतन होना बहुत कठिन या अत शान्तनु के मन सन्ताप के ह्य म कवि ने उसे नीति संगत बनाने का प्रयत्न किया है। उनके पूवराग का न तो विस्तृत वणन है न उसमें कोई विदोषता ही।

(६) शकुंतला—मैथिलीशरण गुप्त न कालिदास के अभिज्ञान शाकुंतलम् का हिन्दी में काव्य रूपांतर किया। शकुंतला का कालिदास की कृति का अनुवाद कहा जाता है किन्तु अनेक स्थला पर गुप्तजी ने कालिदास की कल्पना को भी अधिक परिष्कृत करने का सफल प्रयत्न किया है। यहाँ 'शकुन्तला के विरह का पूण विवरण न देकर उन स्थला की मौलिकता का सन्निभ अन्वयन ही उद्देश्य है।

प्रापितपतिका शकुन्तला के दुवासा श्राप प्रसंग म कवि न नवीन कल्पनाया का समोजन करके उस अधिक मार्मिक बना दिया है। प्रापितपतिका शकुंतला की दशा का वणन कवि इस प्रकार करना है—

भोली सूरत थी रसाद्र उसकी प्रेमाम्बु की वृष्टि म,
हो ली सुन्दर रूप की चरम बी सोमा सभी सृष्टि म।
ये स्वाभाविक भव्य भाव उसके, है क्या की क्या कथा ?
बढी है व्यस्त वसन्त के विरह म हो क्या देवी यथा ॥^१

वनदवी के वसन्त के विरह म श्रीहीन होने की उपमा शकुंतला से करना अत्यन्त सुन्दर है, कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुंतलम्' में यह उपमा नहीं मिलती।

दुवासा श्राप प्रसंग म, शकुन्तला की तमयता के विषय में एक श्लोक दकर कालिदास न दुवासा से उसे श्राप दिलवा दिया है। 'शकुन्तला' म गुप्तजी न यह प्रसा वृद्ध अधिक विस्तृत करके शकुंतला की मनोस्थिति को और भी स्पष्ट करन का प्रयत्न किया है। प्रकृति और मानव के बीच एक सहानुभूतिपूर्ण सौहार्द की अनुभूति विपन्न का श्राप को मार्मिक कर देती है। शकुन्तला से दुवासा के आगमन की घोर ध्यान पत्रिका का पवन उसका ध्यान उम आर आकर्षित करने के अत्यन्त शक्ति

आया जान उन्ह, उस पवन भी नामा शक्ति
खाचा वस्त्र अनक बार उसन, ता मानवता उन्ह !
यो प्यारे पति क समीप वृत्त म कन उन्ह उन्ह ?
तदा निश्चित प्रेम की शक्ति म कन उन्ह उन्ह !^२

१ श्री मैथिलीशरण गुप्त—शकुन्तला, पृ. १६

२ वही, पृ. २१

शकुंतला में ये संयोजनाएँ करके गुप्तजी ने प्रामाणिक किया है कि लक्ष्मण प्रतिष्ठ कविया की रचनाओं के अनुवाद में भी विषय को अधिक मार्मिक बनाने का प्रयत्न करता है, यदि अनुवादक स्वयं का विषय की परिस्थिति में डूबा दे। 'शकुंतला' का विरह वर्णन सश्रित हात हुए भी बहुत सुन्दर है।

(७) विष्णुप्रिया—देवी उर्मिला और यदोघरा की अधुसिक्त विवश पीड़ा की धार दृष्टिपात करने के पश्चात् मधिलीशरण गुप्त की कथाएँ दृष्टि ने बगाल के सुप्रसिद्ध ब्रह्मव भक्त चतयनेव की पत्नी देवी विष्णुप्रिया की एकाकी व्याख्या को मिस्रते पाया और अपनी लखनी से उसे अमर कर दिया।

विष्णुप्रिया कुलीन ब्राह्मण कुल की कन्या थी। विवाह पूर्व भी गौरहरि अर्थात् चतयनेव के प्रति उसके मन में अनन्य धृष्टि थी, उसकी इस भावना को एक सखी के प्रति वार्तालाप में मधिलीशरणजी ने सकेत रूप में व्यक्त किया है। सखी से विष्णुप्रिया कहती है—

हाय सखि तूने यह क्या कर दिया अभी,
कसी एक हक सी उठा दी इस उर में
उठती रहे न यह जन्म भर ऐसी ही^१

चतय से विवाह के पश्चात् विष्णुप्रिया स्वयं को धर्मभाग मानने लगी। वह प्राणपण से सास की सेवा करती और गृहस्थी की दक्षिण किया करती थी। निर्माई (चतयदेव) पितरों को पिण्डदान करने के लिए 'गया गए और वही से ब्रह्मव धर्म में दीक्षित होकर सत्यास लने की आकांक्षा मन में लिए घर को लौटे।

घर लौटने पर उनकी दसा उद्भ्रात विशिष्टों की सी ही हो रही थी। कृष्ण के प्रेम ने उन्हें पागल बना दिया था। माता को अपना मन्त्रय सुनाने के पश्चात् पत्नी की आशा प्राप्त करना भी उन्होंने उचित समझा। विष्णुप्रिया निर्माई के गृहत्याग के इस निष्पत्ति के लिए तनिक भी प्रस्तुत नहीं थी। इस स्थिति पर उसके हृदय में उठते हुए अनक भावों के द्रव्य का वर सुन्दर व्यक्तिकरण हुआ है। प्रिय के भावी विधोय की आशंका से उद्विग्न, भ्रात और स्तंभ विष्णुप्रिया के अनुभावों की अभिव्यक्ति मधिलीशरणजी इस प्रकार करते हैं—

विष्णुप्रिया स्तंभ हुई सुनकर पहले।
भ्रात-सी उहाँ की आरकुछक्षण देखा की।
वाँपी फिर और गिरी परा पर उनके,
निगड लता सी गति रोध कर लिपटी।
रोई वह किन्तु बोल पाइ नहीं कुछ भी,
आँसू वह निकले बचन नहीं निकले।^२

१ भा. मधिलीशरण गुप्त—विष्णुप्रिया पृष्ठ १७

२ वही पृष्ठ ५०

‘उट्टो’ की वनपु और मधु दगाओ की नानिक अनिर्वचना यहाँ हुई है।

विष्णुप्रिया न स्वकीया भाव का बहुत अभिनान है। स्वकीया भाव पर ग करता हुई वह निमाई को मत्तना देती हुई-नी कहती है—

इंद्र इन्द्राणी को ल्यो बना बरानो को
सा रखते हैं, व भसा नही तुमसे।
छत्र सकत हैं दूर दृष्ण भोली राधा का
किन्तु रकिनी को एक बार छत दजें बे
गाठ वह खोल नहीं सकता विधाता नी।
वदी के समन, साप्पी कर सब देवा को,
ग्रहा दिया था यह पापि क्या इसीलिए ?
कौन योग पूण होगा त्याग कर मुझको ?
धम के विरुद्ध ही तुम्हारा यह कम है।^१

किन्तु यह मत्तना क्षणिक, दुबल और विद्रोह मान थी। दूसरे क्षण ही उसका स्वाभाविक दय प्रमुख हा उठा—

किसके गरण जाऊँ भाव मैं प्रभागिन ?
मरे प्राण माग लो, प्रयाण ही न मागो यो।^२

चतय विष्णुप्रिया को अनेक भाति समभाते रह। उस रात वह घर में ठहर ग। विष्णुप्रिया समझी कि वह नहीं जाएंगे किन्तु उसे रात को अकेला सोता छोड़क वह चले गए। निमाई के जाने के पश्चात् जब वह दुस्वप्न देखकर अचानक जागी त उनको न पाकर विलाप करने लगी—

हाय ! मैं छली गई हूँ, छिपकर भागे वे,
जाग कर आप यहाँ मुझको मुला गए

जानती थी, वचक न होंगे, विदा लेंगे वे,
पूजकर उनको विसर्जित करूंगी मैं।^३

विष्णुप्रिया का उपयुक्त वक्तव्य ‘यसोधरा’ के ‘सखि वह मुझसे कहकर जा को फीकी प्रतिव्वनि मात्र सा लगता है। उसमें वह प्रवक्त माफोग नहीं है जो यसोध म था।

वस्तुतः वचना करके जाने का दोष निमाई पर व्यथ ही लगाया गया है। उन्हें जाने की आशा विष्णुप्रिया से मांगी थी और उसकी दुबलता को भी देख लिया था। पाठ

१ श्री मैथिलीशरण गुप्त—विष्णुप्रिया, पृष्ठ ४२

२ वदो, पृष्ठ ४३

३ वदी, पृष्ठ ४७

का भी सहसा यह विश्वास नहीं होता कि विष्णुप्रिया सचमुच निमाई को पूजकर बिसर्जित कर सकती थी।

वह निमाई के वराम्य पर व्यग्य करती है—

अवला के भय से भाग गए,
वे उससे भी निबल निकले,
नारी निकले तो अस्सती है
नर मती कहा कर चल निकले।^१

यशोधरा ने वात्सल्य के अवलम्ब से विरह के दिन काट लिए थे, विष्णुप्रिया को महारा भी प्राप्त न था—

भरी गोल ही होती मरी
तो रीते दिन सह लेती मैं
तिनके का भी कहाँ सहारा
जिसके बल पर वह लेती मैं
कौन यहाँ अब जिससे कुछ
अपन जो की कह लेती मैं
सुत पाती तो पति क्यों खोती
जसे रहती रह लेती मैं।^२

निराशा के किन्हीं क्षणों में वह अपनी परिस्थितियों की तुलना उर्मिला और यशोधरा से स्वयं भी करती है—

अपि उर्मिले, धय रख मन में कट जावेगा काल,
भद्रे ऊँचा हुआ और भी भव में तेरा भाल।
यशोधरा, रख तू सँभानकर राहुल-सा निज लाल,
उसे माँगने को आवगे तेरे बुद्ध विशाल।
पर यह विष्णुप्रिया करे क्या लेकर नूय कपाल ?
कापालिक थोड़े हैं उसके प्राणा के प्रतिपाल।^३

सबकी सहज सहानुभूति के अवलम्ब पर वह विरह के दिन काट रही थी—

सबकी सहज सहानुभूति है,
इतना ही आधार है।
व्यथित हो रहा मेरे कारण
सारा स्त्री ससार है।

१ आ मेधिनोदरख गुप्त—विष्णुप्रिया, पृष्ठ ५७

२ वही, पृष्ठ ५०

३ वही, पृष्ठ ७२

कहता है, 'नारी पर नर का
कितना मत्स्याचार है ।'^१

'स्वप्न' में प्रिय से मिलन की कामना विष्णुप्रिया करती है किन्तु निद्रा के
ग्रनाव में वह भी दुःख हो जाता है। अन्नाग्निनी विष्णुप्रिया नींद को उलाहना
दती है—

हा विदवासपातिनी निद्रा ।
मैं जब नहीं चाहती थी तब घाइ स्वयं सद्भिद्रा ।
अब तू क्या इतना इतराती,
नहीं मनाह पर भी आती
कहाँ स्वप्न भी उनका पाती
मैं दुःखिनी दरिद्रा ।^२

वियोग में 'मरण दशा' की अतिव्यक्ति विष्णुप्रिया की कामना के रूप में इस
तरह व्यक्त हुई है—

स्वामी त्याग गए हैं गेह,
प्रस्तुत हैं मैं, तब दू दह ।

और

क्या मरना भी अपने अधीन ।
जीवन मेरे दपनीय दीन ।
पी रहा विमिर-रुग्ण प्राणवायु,
तनु बाधन से तन रह स्नायु ।
× × ×
जाने क्या अब भी शेष आयु,
जन है तप स भी आज हीन
जीवन मेरे दपनीय दीन ।^३

पद ऋतु बधन भी वह 'पर्वोत्सवा' में मिस करती है। महानुन्दर ऋतु पर
विष्णुप्रिया के दुःख को उद्दीप्त ही करत है—

आया अब ऋतुराज, फूल
फूले हैं वन उपवन में,
मारो कोयल न कूक, प्रेम की
हूक उठी जन-जन में ।

१ आ मैथिलारत्न गुप्त—विष्णुप्रिया, पृष्ठ ५८

२ वही, पृष्ठ ५४

३ वही, पृष्ठ ५१, ६०

दौर मधूक सहकार क्या न,
 अब घापहुची है होली,
 उड़ गया किन्तु वह रंग राग ही
 शेष रहा इस मन में।^१

'विष्णुप्रिया में कुछ स्थल अत्यन्त विचित्र हैं। प्रताप रूद्र राजा के भेज हुए वस्त्राभूषण, चतय, विष्णुप्रिया के पास क्यों भेजते हैं? यह बात समझ में नहीं आती। हाँ इस स्थिति की याजना से अभागिनी विष्णुप्रिया की विदग्ध दशा का व्यंग्य भरा उपहास अवश्य स्पष्ट हो जाता है। उसके अपने शब्दों में—

टूट पड़ेगा मेरा छज्जा।
 बटू क्या उसके ऊपर मैं बनकर वासक सज्जा ?
 भेजा प्रिय ने वस्त्र विलक्षण,
 जिसमें जड़े अग्नि के से कण।
 धारण कर क्या उसे उसी क्षण
 खोऊँ उलटी लज्जा।
 टूट पड़ेगा मेरा छज्जा।^२

'यशाधरा का सा स्वाभिमान विष्णुप्रिया में नहीं है। वह अत्यन्त दीन और नीली है। निर्माई (चतय) समीप ही शान्तिपुर में ठहरे हुए हैं। यह सुनकर वह तत्क्षण ही उनसे मिलने जाने के लिए तत्पर हो जाती है—

हो गई दाची माँ खड़ी जस वह बठी थी
 पीछे चली विष्णुप्रिया नीचे को निहारती।
 किन्तु जब नित्यानन्द से उसने सुना—

'कहाँ कसे मैं,
 रोका है उहाँन माँ, वहाँ को साथ लाने स।'^३
 तो जैसे उस बचारी पर बज्य टूट पड़ा—

'अम्बा ! वहाँ जस उठी बठ गई वसे ही।'^४
 इस स्थल पर 'दाची माँ' का वनतव्य अत्यन्त मशकत है। वहाँ की मर्यादा की रक्षा करती हुई वह अपनी ममता की माँग को भी कुचल देती है—

'लौट जा निर्माई, तब मैं भा नहा जाऊँगी।
 यह नहीं उसकी तो मैं भी बटू, कौन हूँ ?
 अब अधिकार इसे रोकने का क्या उस ?
 देखू मुझ में ही तब क्यों उस वृत्तधन का।'^५

१ श्री मैथिलीशरण गुप्त—विष्णुप्रिया, पृष्ठ ६१

२ व६१, पृष्ठ ७०

३ व६१, पृष्ठ ६१

किन्तु विष्णुप्रिया तब भी कहती है—

‘जो कुछ उन्होंने कहा ठीक ही कहा मा
मरा वहा जाना अब होगा अनुचित ही।’^१

विरह की अनन्त अवधि को विष्णुप्रिया सास की सेवा में बिताती है। वह रानी नहीं थी कि उसके खाने-पीने का प्रबंध घर बड़े हो जाता। मध्यवर्ग के परिवार की जीविका की समस्या का हल करने का प्रयत्न-सा करती हुई विष्णुप्रिया सास से कहती है—

किन्तु या ही बठकर कैसे हम खाएंगी ?
कात कर सूत निज लाज अब रखेंगी।^२

सूत कातकर जीविका चलाना उसके चरित्र के रक्षयिता की गांधीवादी विचार-धारा का अभिलिखित करता है। समस्या का यह समाधान स्वयां आधुनिक-सा प्रतीत होता है।

निमाई के अपने पुर में आने का समाचार सुनकर विष्णुप्रिया का उनसे मिलन न जाने का निणय यशोधरा की फीकी नकल सी लगती है। वसा मान और दन्ता उसमें नहीं है। सखि न जब कहा—

लज्जा दूसरो सरहे, क्या सकाच उनस ?
तब वह कहती है—

उनको हुआ या तो मुझे भी वह क्या न हा ?
छिपकर ही तो सखि, व गव य मुझस।

न मिलने में एक सकोच और भी है—

राहुल की नोट दी थी गौतम को मापा ने
‘मैं उन्हें क्या दूंगी भला ?’ ‘तूने तो
प्रथम ही सब कुछ दे दिया है छाडा नहीं कुछ भी।’^३

एक आर यशोधरा है जो कहती है—

बापा तो यही है मुझे बाधा नहीं कोई भी।

और—

रे मन आज परीक्षा तेरी।

दूसरी आर विष्णुप्रिया है जो—

देव अभी द्वार पर पहुँच न पाये य,
आगे बड़ विष्णुप्रिया परा पड़ी उनके।^४

१ आ मेधिनानस्य मुक्ता—विष्णुप्रिया, पृष्ठ ६१

२ वहाँ, पृष्ठ ६५

३ वहाँ, पृष्ठ १११

४ वहाँ, पृष्ठ ११६

चतय ने अत्यन्त वृशता के कारण उसे पहचाना भी नहीं किन्तु इससे विष्णुप्रिया ने स्वयं को तिरस्कृत अनुभव नहीं किया। कवि के शब्दा में, चतय ने जब उससे पूछा—

बोले—तुम कौन हो ? उठी वह तुरन्त ही
धुन्व फणिनी सी नहीं, आनुल हिलोर सी ।^१

उसकी यह प्रतिक्रिया उसके स्वभावगत दय को ही दिग्दर्शित करती है। चतय उससे ईश्वर भजन में समय-यापन की जब बात कहते हैं तो उसका हृदय की मर्यादा का बाँध टूट पड़ता है। चतय के रहते हुए वह अग्र्य पुरुष कृष्ण का ध्यान कैसे करे—

दते नहीं करने कृष्ण तुम वह भी ।
आ आकर बीच में स्वयं ही बँध जाते हो ।^१

चतय से उनकी खडाऊँ पाकर वह अनय भवत की भाँति ही तप्त हो जाती है। किन्तु दाम्पत्य भाव से युक्त स्वकीया की वसक अभी भी शाय रहती है—

अब यहाँ न होगी भेट,
वहाँ भी होगी, इसका क्या पता
वहाँ वह पुण्य पायेगी यह हता,
व्यवधान सके जो भट ?^१

यशाधरा ने 'सद्यः कारण गच्छामि, बुद्ध कारण गच्छामि' कहकर प्रियसे तदाकार होने का भाव पा लिया था। किन्तु विष्णुप्रिया को लगता रहा कि उसके स्वामी के चरण इतने ऊपर उठ गए हैं जहाँ उसके माथ का पहुँचना असम्भव है। उसने अपनी आशा को अग्र्य जन्म की बात जोहने में तल्लीन कर दिया—

- नहो पहुँचता भरा माथ,
इतने ऊँच उठे तुम्हारे
चरण अचानक नाथ ।
उनका नीच पडना भी क्या
सहँ स्वायक साय ?
रही हमारी आशा अब तो
अन्य जन्म के हाथ ।

चतय जब प्रभु मूर्ति में तल्लीन हो गए तो उसके धय का बाँध टूट गया। वह मृत्यु की कामना करने लगी किन्तु स्वप्न में चतय ने उसे उपदेश दिया—

१ आ मैविलाशरख गुन—विष्णुप्रिया, पृष्ठ ११७

२ वही, पृष्ठ ११७

३ वही, पृष्ठ ११६

४ वही, पृष्ठ ११६

आयु शेष रहत मरण आत्मघात है
स्वूल रूप से ही यदि चाहो तुम मुझको
मरी एक मूर्ति रखना निज गह कक्ष में^१

उनके आदेशानुसार विष्णुप्रिया ने घर में एक मन्दिर बनवाकर प्रिय की मूर्ति उसमें स्थापित की। जीवन पथ पर वह उसीकी सेवा में दिन व्यतीत करती रही। विष्णुप्रिया का विरह निरवधि 'करण' विरह है। वह यशोधरा की सी दण्ड स्वभाव मानिनी नहीं है। उसके क्षणिक मान कक्षणा का पथवसान भी दय में ही होता है। उमिला की भाँति उसका विद्योह भी यौवन के प्रभात में ही हो गया था किन्तु असह्य व्याकुलते हुए भी वह उमादी नहीं हुई न उसने अपना तमाशा बनाया और न अपने भाग्य का दोष किसी और के माथ मटा। अत्यंत सयत, मर्यादित भाव से वह परिवार के प्रति सब कतव्या को पूरा करती रही। यद्यपि चतय को उसने अतम वृष्ण रूप मान लिया था राग का उन्मथन भवित में होता हुआ सा प्रतीत होता है किन्तु कौन जाने हृदय के किसी निभत कान में चतय से मिलन की आशा लिये हुए ही वह जीवन की दूधर घडिया व्यतीत कर रही हो।

जयशंकरप्रसाद

कामायनी—कामायनी में विरह की दा परिस्थितिया मिलती हैं, एक तो मनु और श्रद्धा के युगम जीवन से पूर्व के प्रणय कल्प में और दूसरी, अहभाव से पूर्ण मनु के श्रद्धा से सम्बन्ध विच्छेद के प्रसंग में। प्रथम रूपदशन से उत्पन्न पूर्वराग की स्थिति है किन्तु मनु और श्रद्धा का यह पूर्वप्रणय हिन्दी काव्य के लिए एकदम नई चीज है। प्रसाद ने रुढि का पालन नहीं किया है। पूर्वराग के प्रसंगा में पहले गुण श्रवण अथवा रूप दशन से प्रमी पक्ष नायक अथवा नायिका अनायास प्रेम पान की ओर आकर्षित हो जाते हैं और उमक लिए अभिलाषा करन लाते हैं। उनकी वह अभिलाषा प्रारम्भ में रूप लाभ से अधिक कुट्ट नहीं कही जा सकती। यहाँ परिस्थिति भिन्न है।

मनु और श्रद्धा के पूर्वराग का प्रारम्भ उनमें से किसी एक के रूप-वर्णन से नहीं बल्कि श्रद्धा के कौतूहलमय प्रश्न से हुआ है। उस एकांत प्रश्ने में चिंतित से बठ हुए मनु में श्रद्धा प्रश्न करती है—

कौन तुम ? ससति जलनिधि तीर

तरंगा से फेंकी मणि एक

कर रह निजन का चुपचाप

प्रभा की धारा से अभिषेक ?

१. 'ना मैथिनाशरय गुण—विष्णुप्रिया, पृष्ठ १३६

मधुर विश्वात और एकांत
जगत का मुलभा हुआ रहस्य
एक करणामय सुंदर मौन
और चंचल मन का आलस्य ।^१

उस महाप्रलय के भीषण विप्लव में भाग्य से जीवित श्रद्धा ने जब अपने ही जैसे एक और व्यक्ति का भी पाया हागा तो उसके उल्लास की सीमा क्या होगी इसकी कल्पना ही की जा सकती है। वह व्यक्ति भी अप्रूप दीप्तिमान था अतः श्रद्धा सहज ही उसकी ओर आकर्षित हो गई। उसकी यह उक्ति कितनी सहज और निर्याज है—

और चंचल मनका आलस्य
भरा मन तुम्हें देखकर थलसाने लगा है।

यहाँ प्रश्न में भाव का सकोच नहीं है हृदय की सरल अभिव्यक्ति है। इसी सरल प्रश्न से मनु, लुटे से, प्रश्नकर्ता को विक्तव्य विमूढ से देखते ही रह गए।

एक नटका सा लगा सह्य
निरखत लग लुटे से, कौन—
गा रहा यह सुंदर सगात ?

कुतूहल रह न सका फिर मौन।^१

वह सी-दय जिस मनु देख रहा था, अनुपम था। श्रद्धा के सी-दय वणन में विनोयता यह है कि वह ऐन्द्रिय न होकर भावमय है—

हृदय की अनुकृति बाह्य उदार
एक लम्बी काया उमुक्त,
मधुपवन शीडित ज्या शिगु साल
सुगोभित हा सौरभ सयुक्त ।^१

हृदय की उदारता और सरलता व शिगु का सा भोलापन जो श्रद्धा के स्वभाव की विभूति थी वह सब उसके इस रूप वणन में प्राप्त है।

उसके स्थूल भ्रम-वणन में भी अभूतपूर्व उपमानों की संयोजना से एक नवीन चमत्कार प्राप्त गया है जिससे हम उसे अपने चमकधुओं से न देखकर भाव चक्षुषों से देखने लगते हैं—

नील परिधान बीच मुकुमार
रुस रहा मृत्त अधस्तुला भ्रम,
खिला हा ज्या त्रिजली का फून
मधुवन बीच गुलाबी रंग ।^१

१ श्री जयशंकरप्रसाद—कामावना, श्रद्धा संग, पृष्ठ ४५

२ वही, पृष्ठ ४५

३ वही पृष्ठ ४६

रूप का वह चित्र कवि के भाव प्रवाह में पुनः अतीन्द्रिय हो जाता है—

कुमुद वानन अचल म, मद
 पवन प्रेरित सीरभ साकार
 रचित परमाणु पराग शरीर
 खड़ा हो ले मधु का आधार ।
 और पड़ती हा उस पर शुभ्र
 नवल मधु राका मन की साध
 हँसी का मद विह्वल प्रतिबिम्ब
 मधुरिमा खेला सदश अवाध ।^१

प्रथम परिचय में वासना की अभिलाषा इन दाना में से किसी में भी उदभूत नहीं होती । उनमें केवल अपना एक साथी मिलने की सुखद अनुभूति है जिससे उनके जीवन के एकाकीपन को तोड़ दिया । मनु श्रद्धा से पूछते हैं—

कौन हो तुम बसत के दूत
 विरस पतभङ्ग म अति सुकुमार ।
 घन तिमिर में चपला की रेख
 तपन में शीतल मद वयार ।
 नखत की आशा किरण समान
 हृदय के कोमल कवि की काँत—
 कल्पना की लघु लहरी दिव्य
 कर रही मानस हलचल शांत ।^२

कामायनी का पुराण अमृतपूव है । प्रणय भाव की हृदय पर धीरे धीरे विजय का इतना सुन्दर व स्वाभाविक दिग्दर्शन इसमें पूव उपलब्ध नहीं होता । मनु और श्रद्धा का प्रेम Love at first sight प्रथम दृशन में उत्पन्न 'अभिलाषा' नहीं है, सानिध्य से धीरे धीरे उत्पन्न हुई ममता है जो एक विशिष्ट सीमा पर पहुँचकर कोई बंधन, कोई बाधा स्वीकार नहीं करती दूसरे पक्ष का सब कुछ अपना बना लेना चाहती है और अपना सब कुछ उसका अर्पित कर देना । उन दोनों के उस भाव की अभिव्यक्ति प्रसाद ने अत्यंत सुन्दर ढंग से की है—

चल पड़े कब से हृदय का पथिक से अथान्त,
 यहाँ मिलन के लिए, जो भटकते थे भ्रान्त ।
 एक गृहपति, दूसरा या अतिथि विगत विकार
 प्रश्न या यदि एक, तो उत्तर द्वितीय उदार ॥

× × ×

१ भी नयराकरप्रसाद—कामायनी, अज्ञा सुग, पृष्ठ ४८

२ वही, पृष्ठ ५०

नदी तट के क्षितिज में नव जलद, सायकाल,
 खलता दो त्रिजलिया से मधुरिमा का जाल ।
 लड रह अद्विरेत युगल ध चैतना के पाश
 एक सकता था न कोई दूसरे को फास ॥
 था समपण में ग्रहण का एक सुनिहित भाव,
 थी प्रगति पर अडा रहता था सतत अटकाव ॥
 चल रहा था विजन पथ पर मधुर जीवन खेत,
 दो अपरिचित से नियति अब चाहती थी मेल ॥
 नित्य परिचित हो रहे तब भी रहा कुछ शेष,
 गूढ अंतर का छिपा रहता रहस्य विशेष ।
 दूर जस सघन वन-मय अंतर का आलोक,
 सतत होता जा रहा हा नयन की गति राक ॥^१

गूढ अंतर में छिप उस रहस्य का जब मनु क मन में काम और रति न स्पष्ट कर
 दिया तब वह बाधा स्वयं ही हट गई । मनु कम के माग में प्रवृत्त हुए और अडा को
 आत्मसमपण करना पडा ।

मनु के अडा के प्रति कामनायुक्त युग्मभाव की अभिव्यक्ति प्रसाद ने उनके
 अत्यंत सुंदर भाषण में इस भांति प्रस्तुत की है—

वासना की मधुर आया । स्वास्थ्यबल विश्राम ।
 हृदय की सौंदर्य प्रतिमा । कौन तुम छवि धाम ।
 कामना की किरण का जिसमें मिला हो अंज,
 कौन हा तुम इसी भूले हृदय की चिर खोज ।
 कुंद मन्दिर सी हसी ज्यो खुली सुपमा बाँट,
 क्या न वसे ही खुला यह हृदय रुद कपाट ॥^१

पुरुष के इतने समीप स्वयं का पाकर अडा ने प्रथम बार 'अभिलाष' से उत्पन्न
 नारी मुलभ लज्जा का अनुभव किया जा त्रमस विवर्गता में परिणत होकर समपण में
 तदाकार हा गई ।

मनु ने जब कहा—

'मैं तुम्हारा हो रहा हूँ यही मुद्वेद विचार,
 चैतना का परिधि बनता घूम चक्काकार ।
 मधु बरमती बिधु किरण हैं कौपती सुकुमार,
 पवन में है पुलक मधुर, चल रहा मधुभार ।

^१ श्री अण्ण - रूपमा - आमायना, कामना संग, शृङ्खला २२

सांस्कृतिक प्रबंध कविता में विरह भावना

तुम समीप, अघोर इतने आज क्या हैं प्राण,
छक रहा है किस मुरमि में तप्त होकर प्राण ।^१
तब श्रद्धा—

भुंक चली नग्रीड वह मुकुमारता के भार,
लगे गई पाकर पुरुष का नममय उपचार ।
घोर वह नारीत्व का जा मूल मधु अनुभाव,
आज जस हस रहा भीतर बढ़ाता चाव ।
मुर प्रीडा मिश्र चिन्ता साथ ने उल्लास,
हृदय का आनन्द कूजन लगा करने रास ॥^२
आनन्द, लज्जा और चिन्ता से उत्पन्न अलङ्कार की योजना करके प्रसाद ने श्रद्धा
के पूवराग को बहुत स्वाभाविक बना लिया है । 'अनिलापा' मधु के प्रति समर्पण कर
को प्रेरित करती है और लज्जा समझाती है—

इनना न चमत्कृत हावान ।
अपने मन का उपकार करो,
मैं एक पकड़ हूँ जो नहीं
ठहरो कुछ साच विचार करो ।^३
तब श्रद्धा अपने मन की दुबलता को स्वीकार करके उसकी अनिलापा और
विवशता का लज्जा के सम्मुख रखती है—

मैं आज समझ तो पाइ हूँ
मैं दुबलता में नारी हूँ,
अवयव की सुन्दर कोमलता
लकर मैं सबसे हारी हूँ ।

पर मन भी क्या इतना ढीला
अपने ही होता जाता है ।

× × ×
सबस्व समर्पण करने की
निश्वास महातरु छाया में
चुपचाप पड़ी रहने की क्यों
ममता जगता है माया में ?
× × ×

१ श्री जयराकरप्रसाद—कानायनी, वास्ना संग, पृष्ठ २६
२ वही, पृष्ठ ६४
३ वही, लज्जा संग, पृष्ठ १०४

मैं अभी तालन का करती
 उपचार स्वयंतुल जाती हूँ,
 भुन लता फँसाकर नर तरु में
 मूल सी भ्रोकें खाती हूँ।

अतद्वद को 'विश्वास' से जीतकर श्रद्धा मनु को आत्म-समर्पण कर देती है।

पूरराग के प्रसंग में श्रद्धा का यह अतद्वद हिंदी काव्य के लिए अनुपम निधि है। कवि ने स्थूल को बहुत पीछे छोड़ दिया है और मन के ससार में प्रवेस करने का प्रयत्न किया है, उस प्रयत्न में वह सफल भी हुआ है। कामायनी से पहले, नारी में आकर्षण के प्रभाव के फलस्वरूप 'लज्जा' केवल अनुभाव मात्र बनकर आती थी। उसकी यह मनोवैज्ञानिक व्याख्या इससे पूर्व प्राप्त नहीं होती।

सक्षय में बहना जा सकता है कि कामायनी में श्रद्धा और मनु का पूरराग प्रसंग हिंदी काव्य में अद्वितीय और अनुपमेय वस्तु है। पूर्व प्रणय का क्रमिक विकास और उसके प्रभाव से उत्पन्न अतसक्षय की भाँकी का दिग्दर्शन अत्यंत दुर्लभ है। प्रसाद के समान प्रतिभाशील अतमन के वक्ता के हाथों में उसे जो निखार मिला है उसके कारण आधुनिक विरह काव्य का 'पूरराग' आधुनिक से पहले के हिन्दी संस्कृत साहित्य के पूरराग वर्णना को धीरे-धीरे कर देता है। यहाँ पूरराग केवल मिलन की 'अभिलाषा' न रहकर प्रेम की दृढ़ नींव बन गया है, वह नींव जो एक क्षण में नहीं खोदी जा सकती, उसके लिए समय की अवधि अपेक्षित है।

श्रद्धा में हृदय का समर्पण था और मनु में वासना, जो शरीर के उपभोग के लिए विवश थी। उपभोग भी जब उसके लिए अप्राप्त न रहा, तब वह कुछ और नवान की चाहना करने लगी—

उठती अतस्तल से सदब
 दुललित लालसा जा कि कान्त,
 वह हृद्रचाप सी भिलभिल हो
 दब जाती अपन आप शांत ।^१

उधर मातृत्व का भार सम्भालती हुई श्रद्धा प्रणय शीलाओं की चंचलता से दूर, गम्भीर होती जा रही थी। उसका वह अनायास परिवर्तन मनु को अच्युत न लगता था। प्रणय लीलाओं के चाञ्चल्य का अभाव उह बहुत खटकता था, उस उहाने स्वयं प्रणय का अभाव ही मान लिया। श्रद्धा के व्यवहार को देखकर मनु सोचने लगे—

श्रद्धा का प्रणय और उसकी
 आरम्भिक सीधी अभिव्यक्ति,
 जिसमें व्याकुल आलिङ्गन का
 अस्तित्व न तो है कुशल सूचित

१ भा अयशोकरमनार—कामायनी, ६५५ पं, १३६

सांस्कृतिक प्रबंध कविता में विरह भावना

भावनामयी वह स्फूर्ति नहीं
नव नव स्मित रेखा में विलीन
अनुरोध न तो उल्लास नहीं

कुमुमोदगम-सा कुछ भी नवीन ।
अपने मन में अनुभूत होती हुई इस कमी का जब उन्होंने श्रद्धा के समुच्च व्यक्त
किया तब मातृत्व के उल्लास से पूरा श्रद्धा ने उन्हें भविष्य के नवाग तुक की सूचना दी
और उसके प्रति अपने ममत्व को प्रगट किया । मनु श्रद्धा पर एकाधिकार शासन चाहते
थे वह इर्ष्या से जलने लग और धात कात और तडपती हुई श्रद्धा को छोड़कर चल
गए ।

मनु की उदासीनता से उत्पन्न इस विषम परिस्थिति को हम करुण विप्रलम्भ के
अतगत मानते हैं क्योंकि एक तो उदासीनता के कारण वियागनिरवधि हो गया है, दूसरे
स्वप्न सग से पहले श्रद्धा को यह भी नहीं पता कि मनु कहाँ है जीवित भी हैं अथवा
नहीं । 'स्वप्न' में मनु की विपत्ति की सूचना मिल जान पर भी श्रद्धा के पास ऐसा कोई
प्रमाणपत्र नहीं था कि इस जीवन में प्रिय से पुनर्मिलन सम्भव हो सकेगा ।

मनु श्रद्धा से कबल इतना कहकर चले गए थे—

तुम अपने सुख से सुखी रहो

मुझको दुख पाने दो स्वप्न,

'मन की परवशता महा दुख
में यही जपूंगा महामंत्र ।'

श्रद्धा अपने मन की दो बात भी उनसे न कर सकी । वह लौट आने की
अभ्यथना ही करती रह गई—

रुक जा मुन ले ओ निर्मोही ।

वह कहती रही अधीर धात ।

मनु के चले जान के पश्चात् विरहिणी श्रद्धा का करुण वेदनामय चित्र स्वप्न सग
में मिलता है । कामायनी के विरह वणन में कवि ने शास्त्रीय परम्परागत वियोग दशाओं
को प्रथम नहीं दिया है न ही उनका विस्तृत वणन किया है । एक मार्मिक करुण स्थिति
का केवल एक चित्र प्रस्तुत किया है । कामायनी की श्रद्धा के विरह की केवल एक
सध्या कवि हमारे समुच्च रचिता है, उसी से कुमार के जन्म और उतने बड़े होने तक की
वृत्तियाँ हैं ।
एकांकिनी श्रद्धा हिमालय के उस एकांत प्रदेश में बस कर पड़ी थी । वह विरह

वदना सहते-सहते अत्यंत कृपागत हो गई थी—

कामायनी कुसुम वसुधा पर पड़ी, न वह भकरद रहा
एक चित्र उस रेखाओं का, अब उसमें है रंग कहीं ।
वह प्रभात का हीन कला रागि किरण कहा चाँदनी रही,
वह सध्या थी, रवि रागि तारा ये सब कोई नहीं जहाँ ।^१
उसकी मानसिक स्थिति का दिग्दर्शन कवि इन शब्दों में करता है—
एक मौन वेदना विजन की, भिन्नी की झनकार नहीं,
जगती की अस्पष्ट उपेक्षा एक कसक साकार रही,
हरित कुज की छाया भर थी वसुधा आलिंगन करती,
वह छाटी सी विरह नगी थी जिसका है अब पार नहीं ।^२

विरह नदी के पार जान में असमर्थ श्रद्धा अपने प्रेम पर अनंत विश्वास रखती हुई मनु के वही लोट आने की प्रतीक्षा कर रही थी क्योंकि 'अपने सान से सपना को ता वह पहले ही अर्पित कर चुकी थी तथा 'विश्वास रजत नग पगतल में', 'पीयूष स्रोत सी बहने की प्रतिभा भी उसने कर ली थी ।

उस सध्या में, किरणें भी नदी की गोद में विधाम लेने के लिए जा रही थी किन्तु विरहिणी का, प्रिय की स्मृति वहा भी चन लेने नहीं देती—

नील गगन में उड़ती उड़ती विह्वल बालिका सी किरने,
स्वप्न लाल को चला थकी सी नदी सेज पर जा गिरने,
किन्तु विरहिणी के जीवन में एक घड़ी विधाम नहीं
बिजली सी स्मृति चमक उठी तब, लग जभी तम घन घिरने ।^३

मनु के साथ बीत हुए वे कुछ दिन अब वियोग के दुख की अनंत अवधि बन गए थे । थड़ा पास में बहती हुई मत्स्यकिनी नदी में प्रश्न करने लगी—

जीवन में मुख अधिक या कि दुख, मत्स्यकिनी कुछ बोलोगी ?

नभ में नखत अधिक सागर में या बुद्बुद है गिन दोगी ?^४

आहूँ के उच्छ्वास में, मिलन से पहल ही जीवन का अंत हो जाय, यह भय भी उस है । चरम नराश्य में अनन्त वियोग वदना सहकर भी मनु ने मिलन की उत्कट अभिलाषा बरामबर हृदय में बनी हुई है । 'तब जब तक न मिल तब तक दीपशिखा को प्रतीक्षा में जलते ही रहना चाहिए । उसके जीवन की चरम परिणति दोनों के एकाकार होने में है । एकाकार होने के पश्चात् कुछ भी हो जाय तो कोई भय नहीं—

१ श्री जयशंकरप्रसाद—कामायनी, स्वप्न सप्त पृष्ठ १७५

२ वही पृष्ठ १७५

३ वही पृष्ठ १७५

दब श्वास से ग्राह न निक्ले सजल हूँ मैं मान रहा ।
 कितना ल्ह जलाकर जलता एसा है लघु दीप कहा ?
 बुझ न जाय वह सान्नि किरन सी दीपगिखा दस कुटिया की
 गलन समीप नहीं ता अच्छा सुखी अकेले जल रहा ।'

विरही के लिए जीवन की बीती घड़िया कष्टपूर्ण होकर भी मधुर हाती हैं। वह उह भुलाना नहीं चाहता। धड़ा कहती है—

'अरे मधुर हैं कष्टपूर्ण भी जीवन की बीती घड़िया

प्रकृति के सब सुखद उपकरण विरह में धड़ा के लिए दुखदायी हो गए। कोकिल की कूक और पराग की मदाधता मेवसी हलचल उसे दिखाई नहीं पडती अपने हृदय को यह समझाती है—

आज सुनू केवल चुप होकर, कोकिल चाह जो कह ले,
 पर न पराग की बसी है चहल-पहल जो थी पहले,
 इन पतझड की मूनी डाली और प्रतीभा की सध्या
 कामायनी ! तू हृदय फडा कर धीरे धीरे सब सहने ।'

स्मृति में डूबी, दुखी धड़ा के एकमात्र सम्बल कुमार ने जब 'मा कहकर उसे पुकारा तब उसकी भावधारा विभ्रुखल हुई—

मा फिर एक किलक दूरागत गूज उठी कुटिया मूनी,
 मा उठ दौडी भरे हृदय में लेकर उत्कठा दूनी ।'

वात्सल्य का योग विरह की पीडा को और भी आद व मधुर बना रहा है। लुटरी खुली धलक वाले 'मानव' को हृदय से लगाती हुई धड़ा उसे उपालम्भ देती है—

कहा रहा नटखट ! तू फिरता अब तक भेरा भाग्य बना ।
 अरे पिता के प्रतिनिधि, तूने भी तो मुख दुख दिया घना,
 चचल तू, बनचर मृग बनकर भरता है चौकडी कही
 मैं डरती तू हठ न जाये करती कसे तुझे मना !

पिता के प्रतिनिधि में पिता के प्रति जो उपालम्भ है, वह अद्भुत है। तीन शब्दों में एक लम्बी कथा की सयाजना प्रसाद ने कर दी है, वह अतात की कथा, जो धड़ा के हृदय को साल रही थी।

स्मृति और वात्सल्य के सहारे विरह के अनंत दिवस बस ही बीतते जा रहे थे। वह सध्या भी उसी तरह बीत जाती यदि रात्रि में मनु का इडा पर अत्याचार और प्रजा का मनु के प्रति विद्रोह, धड़ा को 'स्वप्न' में नहीं दिखाई देता। मनु विपत्ति में है यह जानकर वह विश्वासमयी प्रिय को ढूढने निकल पडी। अनेक कष्ट सहकर गारस्यत

१ श्री जयशंकरप्रसाद—कामायनी, स्वप्न सग, पृष्ठ १७६

२ वही, पृष्ठ १७७

३ वही, पृष्ठ १७६

नगर पहुँची और मनु का विपत्ति से राण किया।

इडा और कुमार को राज्यकाम सौंपकर ये दोनों कलाश पर तपस्या के लिए चल गए। अंत में 'चिरमिलन' की इसी स्थिति में हम मनु और श्रद्धा को देखते हैं।

कामायनी के दार्शनिक पक्ष के अतिरिक्त मनु और श्रद्धा के जीवन का यह मानवीय पक्ष भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। पुरुष के स्वाभाविक ग्रह को नारी की समपण शक्ति व उदारता जीत सकती है यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है। इसी तथ्य का निरूपण प्रसाद ने सफलतापूर्वक कामायनी में किया है। विरह वणन बहुत सक्षिप्त होने पर भी अपूर्व मार्मिक है, विरही की सहनशक्ति और मिलन की कामना के सहारे उसमें जीवन की चाहना, दोनों भावों की सुंदर अभिव्यक्ति प्रसाद ने यहाँ की है—

'गलभ समीप नहीं तो अचञ्छा सुखी अकेले जले यहाँ।'

तथा—

'कामायनी तू हृदय कड़ा कर धीरे धीरे सब सह ले।'

निराला

तुलसीदास—'तुलसीदास में निराला ने तुलसीदास और उनकी पत्नी रत्नावली की जीवन गाथा मुखरित की है। जिस तरह वह महाकवि और चिंतक पत्नी के उलाहने की चाँट से, जीवन से विरक्त होकर श्वरा-मुख हो गया, यही इस ग्रंथ का वष्य विषय है।

निराला के तुलसीदास अत्यंत सस्कृत रुचि सम्पन्न मानव हैं। कवि ने उनका चित्रण परम्परागत कामुक तुलसीदास के रूप में नहीं किया है। पत्नी को छोड़कर जान से पहले वह मित्रा के साथ पञ्चवटी भ्रमण के लिए गए थे। वहीं उन पुण्यस्थलों की स्मृति से भारत का प्राचीन बभ्रु और रामराज्य का स्वप्न उनके सम्मुख सजग हो गया—

साचा कवि ने, मानस तरंग
यह भारत सस्कृति पर सभग
फली जो, लेती सग-सग जन-गण को,
इस अनिलवाह के पार प्रखर
विरणा का वह ज्यातिमय धर,
रविकुल-जीवन-बुम्बनकर मानस धन जो।
है वहीं मुक्ति का सत्य रूप
यह रूप-रूप भव अथ रूप,
वह रत्न, यहाँ जो हुआ भूप, निश्चय रे।
चाहिए उस और भी और,

फिर साधारण को कहीं ठौर ?
जीवन के जग के यही ठौर हैं जय के ।
करना होगा यह तिमिर पार—
देखना सत्य का मिहिर द्वार—
बहना जीवन के प्रखर ज्वार में निचय
लडना विरोध से दृढ़ समर
रह सत्य माँ पर स्थिर निभर
जाना भिन भी देह, निज घर निःसंशय ?^१

वह महान चिन्तक कल्पना में स्वयं को जनहित के लिए जीवन के बंधनों से मुक्त कर ही रहा था कि तभी रत्नावली और उसका प्यार चेतना को अभिभूत करने लगा—

उस क्षण, उस छाया के ऊपर,
नभ-सुप्त की भी तारिका सुधर,
आपड़ी, दृष्टि में जीवन पर मुदरतम
प्रेयसी, प्राणसगिनी नाम
गुंभ रत्नावली मरोज दाम
वामा, इस पथ पर हुई वाम सरितोपम।^२

पंचवटी में तुलसी को वतमान से भेता में ले जाने वाली यह अनुभूति जीवन की गति में चेतन से लुप्त होकर अचेतन में स्थायी हो गई।

प्रवासी प्रिय तुलसीदास पत्नी की स्मृति में कुछ क्षण के लिए विश्व का भूल गए। एक काल्पनिक चुम्बन की अनुभूति में जीवन का सम्पूर्ण दृष्ट, सारा वलेश बिलीन हो गया—

जिस तरह गंध से बंधा फूल,
फलता दूर तक भी, सपूल
अप्रतिम प्रिया से, त्था दुकूल प्रतिमा में
में बधा एक गुंभि आलिंगन,
आकृति में निराकार, चुम्बन,
मुक्त भा मुक्त यों आजीवन लधिमा में।^३

तुलसीदास अपनी पत्नी पर अत्यन्त आसक्त थे, लौटने पर जब वह घर में नहीं मिली तो सम्पूर्ण घर मूना-मूना लगन लगा। मिलन की स्थिति में जो माँगन उल्लास से परिपूर्ण रहता था, वही आज वियोग में दुखी था, पर क नत्र भी किसी अपरिचित

१ निराला—दुर्गादास, पद ३३ ३५

२ वही, पद ३७

३ वही, पद ५४

अपराध से झुके हुए थे, वह घर नहीं था तुलसी के अपने हृदय का छायाचित्र बन गया था। वियोगी तुलसी को पत्नी के विरह में घर कितना बुरा लगने लगता है इसका बहुत सुन्दर वर्णन निराला ने किया है। विरह विह्वल प्रेमी की मन स्थिति का अत्यन्त सुन्दर दिग्दर्शन यहाँ हुआ है—

दखा वह नही प्रिया, जीवन,
नत-नयन भवन, विपण्ण आगन,
आवरण गून्थ वे बिना वरण मधुरा के
अपहृत श्री, सुख स्नेह का सच,
नि सुरभि, हत हमत पय ।
नतिक नीरस निष्प्रीति छद्म ज्यो पाते
यह नही आज गह, छाया उर
गीति से प्रिया की मुखर मधुर
गति-नृत्य तालशिजित नूपुर चरणारूण
व्यजित नयनो का भाव सधन
भर रजित जा करता क्षण क्षण,
कहता काइ मन से उमन, मुन र मुन ।
यह आज हो गई दूर तान
इसलिए मधुर वह और गान,
मुनने को व्याकुल हुए प्राण प्रियतम के ।^१

कोई वस्तु जब हमसे दूर हो जाती है तब मन उसको पाने का और भा अधिक उद्दिग्ध और विकल होने लगता है अलभ है इष्ट अत अनमोल' की भावना यहाँ भी है—

यह आज हा गई दूर तान
इसलिए मधुर वह और गान ।

यहाँ कवि ने नायक के पक्ष में प्रथम 'विरह की योजना का है। प्रकृति का रूप उद्दीपन है। तुलसी जब पत्नी का लौटा लाने के लिए चल पडते हैं तब माग म—

भग म पित्र कुहरित डाल डाल,
हैं हरित विटप सब मुमन माल,
हिलती लतिकारें ताल-ताल पर सस्मित,
पडता उन पर ज्योति - प्रपात,
है चमक रहे सब बनक गात,
बहती मधु धीर समीर पात, आलिंगित ॥^१

^१ निराला—मुन्नीयास पर ७१ ७३

परम सुपमा का भी शुचि सार,
 विलासा का या वर शृंगार।
 भरत का भुवत वहा सुविशाल,
 सभी ऋतुघा मे सुखद रसाल।
 बिराजित था वर गगन विहार,
 धरा का एक उच्छ्वसित प्यार ॥^१

× × ×
 उसी में एक दिवस सविलास
 निशागम पर भरकर उल्लास।
 किय ऋतुत वीणा क तार,
 भरत ने छेडा राग मलार ॥
 रत्न उत्सचित मच का मोर,
 बना जीवित सा भावविभार।
 भरत क चरणा पर चुपचाप,
 हुमा योद्धावर अपने आप ॥^१

उसी क्षण माण्डवी भी वहा आ पहुची—

वदी स्वर की लहरी इस तौर
 उठे रस के बादल सब ठौर।
 उसी क्षण क्षणदा सी अभिराम
 माण्डवी पहुँची वहाँ ललाम।
 प्रिया के आत ही तत्काल,
 बगियाँ सी - सी बजी रसाल।
 हजारों दीप हुए अनुकूल,
 कराडा महक उठे गुचि फूल ॥
 भरत खिल उठे बढ़ उठे हाथ,
 वहा लो जीवित वीणा साथ।
 मिले फिर स रति और अनग,
 सज फिर घन विद्युत के सग ॥^१

माण्डवी भी वम आमाँद प्रिय नहीं है—

तनिक रुक गई माण्डवी आप,
 दम आताप कहूँ कि प्रताप ?

सांस्कृतिक प्रवचन कविता में विरह भावना

अधर पर एक मधुर मुस्कान,
लाल सी लहरा गई अज्ञान ॥^१
भरत अपनी प्रियतमा की छवि को निहारते ही रह गए—

कौन कहता है तुम हो एक,
एक होकर भी बनी अनक।
तुम्हारी ही छवि का विस्तार,
विश्व में देखूंगा साकार ॥^२

वह प्रियतमा भी अपने प्रिय से स्नह के आत्मान प्रदान में किसी भाँति पून नहीं है—

और मैं तुम्हें हृदय में थाप
बनूंगी अर्घ्य अरती आप।
विश्व की सारी काँति समेट,
करूंगी एक तुम्हारी भेट।
पुरुष मन में छवि का विस्तार,
नारी मन में सकोच अपार।
पुरुष का हाँ अन्त पर चाव,
नारी का एक बात पर भाव ॥^३

भरत ने अपनी सफाई दते हुए कहा—

मनुज की मधुप वृत्ति पर चोट
लगाई खूब व्यग की शोट।
किन्तु क्या प्रिय नहीं यह तान,
तुम्हें ही इन प्राणा की तान ॥^४

माण्डवी ने गविता का-सा व्यग्य करके पति को चिंतात हुए कहा—

तान में हूँ जीवित वीन,
अर्थात् उपमाएँ मधुर नवीन।
न गन्ने में हो या अनुराग,
सतें दिखलाया करत त्याग ॥^५

वेचारी माण्डवी का क्या पता था कि सत का त्याग उसे वस्तुतः दर्शना पड़ेगा।

धामोद प्रमोद पूण उस मुग्ध वातालाप के बीच माण्डवी के यह शब्द सुनकर सतें दिख

^१ श्लो० बलदेवमहादेव निर.—मानस सन प्रथम सर्ग, पद १५

^२ वहाँ पद ४३

^३ वहाँ पद ४४-४५

^४ वहाँ, पद ४६

^५ वहाँ, पद ४७

लाया करते त्याग भरत जैसे चौक गए। उन्होंने माण्डवी का मुह सा बद करते हुए कहा—
 ऐसे गब्द मुह से न निकालो, कभी कभी अनजान में कहीं गई बात भी भाग्य की लकीर बन जाती है—

इष्ट हो सती को तप त्याग,
 चाहिए मुझे एक अनुराग।
 गन्त की माया बुरी बसाय,
 सुखी जीवन सुख से निभ जाये ॥^१

बात वहीं समाप्त हो गई। वह नवदम्पति मामा युवाजित के यहाँ हिमालय की श्री शोभा देखन के लिए चला गया।

परन्तु अनजान में कहीं गई उस बात को भाग्य की लकीर बनना था और वह बनो भी। निस्पृह भरत के लिए कर्कियों का राजा दशरथ से राज्य मागना मूखता थी। महात्मा तनसादाम के शासन में वहीं रघुकुल की लहलहाती आशालता के कुल्हाड़ी सिद्ध हुईं। राजा दशरथ ने प्राण त्याग दिया। राम तो वन का गए ही, सीता और लक्ष्मण को भी माना उस राम विहीन अयोध्या में घणा हो गई और स्वच्छा से राजसी जीवन का त्याग करके उनके साथ चल गए।

अयोध्या में हो रहे इन परिवर्तना से अनभिन्न भरत, मामा युवाजित के द्वारा धीरे धीरे अयोध्या का राज्य ग्रहण करने का उक्साय जा रहे थे। किन्तु पितृवत्सल, भ्रातृवत्सल भरत पर इस कूटनीति का कुछ भी प्रभाव न पड़ रहा था। एक बार युवाजित के मथरा सम्मेलन में भरत का माया ठनक गया। (मथरा को युवाजित ने अयोध्या में इसलिए छोड़ रखा था कि वह कर्कियों का भरत के लिए राज्य मांगने का प्रेरित करे)। भरत पड़यंत्र में साक्त क महला को बचाने के लिए जल्दी ही वहाँ पहुँचने की बिह्वल हा उठे। परन्तु वहाँ पहुँचने पर स्तब्ध रह गए। स्वयं डा० मिथ के शब्दों में 'उ होने देखा कि तीर तरवार से छूट चुका था।

भरत ने निश्चय कर लिया कि वह राज्य ग्रहण नहीं करेगा। पिता का अन्तिम सस्कार करने के पश्चात् उन्होंने राम से अपनी माता के अपराध की क्षमा याचना करने और अयोध्या लौट चलने की प्रार्थना करने की टानी। उनका विश्वास था कि राम उनके अपराह का टालग नहीं। राम का यह अनन्य भक्त अपने प्रभु को मनाने के लिए वन में पहुँचा किन्तु वह अपनी प्रतिभा पर दबध हताग भरत राम की पाटुकाए लेकर अयोध्या लौटे। चरण पादुकाओं को सिंहासन पर रखकर उन्होंने हान राज्य-नाम प्रारम्भ कर दिया और स्वयं जीवन से विरक्त होकर नदी घाट में रहने लगे।

माण्डवा के धर्म की परीक्षा का अवसर आ गया था। उसके स्थान पर कोई दूसरी स्त्री हानी तो अवश्य भरत के इस त्याग में सहयोग देने से हिचकती। जब पिता

न स्वयं अपने हाथ से राज्य का उत्तराधिकारी भरत को बनाया तो क्या वह उसे ग्रहण नहीं करते ? यह मानवी सुलभ प्रश्न माण्डवी के सम्मुख उपस्थित होना अस्वाभाविक न था। किन्तु माण्डवी भरत की योग्य पत्नी थी उसमें मानवता चरम उत्कृष्ट को पहुँच चुकी थी। उम मनस्विनी की गम्भीरता की याह पाना अत्यन्त दुर्लभ वस्तु है जिसने सहनशीलता से प्रत्येक परिस्थिति के साथ सघर्ष किया। चौदह वर्ष तक यौवन के प्रभात में ही पति के साथ वानप्रस्थाश्रम ग्रहण कर लिया। माण्डवी का चरित्र हमारे साहित्य की अद्वितीय निधि है। उसकी सौम्यमूर्ति के रोम रोम में सहृदय व्यथा का अनुभव करता है परन्तु वह वदना मौन ही मुखर नहीं, गम्भीर है छिद्रही नहीं।

भरत त्यागी बनकर नदी घाट में तपस्या कर रहे थे आत्मग्लानि उनके शरीर, मन और आत्मा को नष्ट कर दे रही थी। राजकाय में व्यस्त रहकर वह स्वयं को भूल जाना चाहते थे। इधर माण्डवी प्रत्यक्ष रूप में पति के स्नेह से वंचित न हान पर भी उसकी तत्कालीन उदासीनता से पीड़ित थी। दाम्पत्य-व्यवहार की अभिव्यक्ति का अवकाश ही न रहा था। हास विलासमयी माण्डवी भाग्य से लड़कर हारी हुई भी उस पर कसे विजय प्राप्त कर रहा थी। देखिए—

भारत की यह नारी ।

कल थी वधु आज माता सी दिव्य देवियाँ हारी ॥

भोजन लेकर चली माण्डवी जहाँ भरत व्रतधारी ।

जीवन रत्न बन्दमूल फल, बस, सामग्री सारी ॥

आई उतर तपस्था भू पर नारी बन मुकुमारी ।

पर मुकुमारी अग्नि शिवा थी जन-जग-भाव-कारी ॥^१

वह मुकुमारी साकार तपस्या बन गई थी। इसमें एक आर माण्डवी के भरत के प्रति अगाध प्रेम का दूसरी ओर उमकी सत्य सहनशीलता का दिग्दर्शन कवि करता है। भरत के साथ माण्डवी ने भी राजसिद्धि वशभूषा को त्याग दिया था—

तन पर दो खादी के टुकड़े, चार चूड़ियाँ प्यारी ।

एक छत्र शासक की यह थी आधी देह दुलारी ॥^२

माण्डवी की वदना काव्यशास्त्र निर्धारित विरह की किसी भी श्रेणी के अन्तर्गत नहीं आ सकती किन्तु फिर भी वह विरह का ही रूप है। विरह वस्तुतः वहा होता है जहाँ किसी कारण से चाहे वह कारण मानसिक हो चाहे परिस्थिति द्वारा आरोपित प्रेमी-युग्म का शरीर अथवा भावना से विभाजित हो जाता है और य दोना उस परिस्थिति से सघर्ष करत हुए, मिलन की घड़ा की ओर निहारत हुए, प्रेमभाव का पोषण करते हैं। यहा भरत की उदासीनता और आत्मग्लानि, इन दोना की भरत और माण्डवी की प्रामाणिक्य

१ दा० नन्दबहादुर मिश्र—सारन सन, सन १४४—अ

२ वहा

के लिए दृढ़ अवरोध बन गई थी—

दोना एक परतु बीच थी असिधारा वह भारी ।

चौदह वर्षों तक न भावना जिसने अय निहारी ॥^१

राम के वनगमन से अयोध्या के महला और राजपरिवार की दशा बिलकुल उलट पलट गई थी। एक ओर प्रार्थितपतिका उमिला की यह दशा थी—

देह महल में रुद्ध हुई थी पर न निरुद्ध विरह निभर था ।

भरी दमो ने जल धाराए शब्द शब्द करुणा कातर था ॥^२

किन्तु दूसरी ओर माण्डवी थी जिस—

किन्तु माण्डवी का ता आहो का भरना भी वजित तर था ।

सम्मुख है राकेश चकारी पर न उधर निज नयन उठाय ।

विकसी प्रभा प्रभाकर की है, पर न कमलिनी मोद मनाय ॥

या वसत आखा के आगे, पर कीलित ही पिक का स्वर था ।

अहह ! माण्डवी को तो आहो का भरना भी वजित तर था ॥

जो है दूर उसी की आशा रख कर मन समभाया जाय ।

समझ सराहें मैं उस मन की, पास रहे पर पास न आये ॥

सलिल विरह की बात न जिसमें, स्वतः प्यास उठना दुभर था ।

अहह ! माण्डवी को तो आहो का भरना भी वजित तर था ॥^३

‘साकेत सप्तक संग १४ में ४—अ, आ इ इन तीन पदा में ही कवि ने एक बड़ी गायी समाविष्ट कर दी है। माण्डवी के अनुपम विरह का चित्र नगों के सम्मुख साकार हो जाता है। कर्तव्यनिष्ठा माण्डवी माताओं का मन बहलाती थी, उमिला की देखभाल करती थी और स्वयं पति की सेवा करके सबका दुख भार हलका करने में रत थी।

माताओं के दुलार उमिला वियोग भार

और स्वतः की सेवा हरन को व्यत्रासकल ॥^४

उस कठिन समयित जीवन में उल्लास का क्षण केवल तब आता था जब वह भारत के समीप नन्दीग्राम को जाती थी। आराध्य के मन्दिर की आराधिका माण्डवी के लिए—

अवध नदिगाँव माग पग पग था तीव्र विमल ।

हरने का व्यथा ॥

कवि गुरु रवीन्द्रनाथ जी की अनुभूति और महावीरप्रसाद जी द्विवेदी के आग्रह से गुप्तजी ने व्यक्ति उमिला की वियोग वेदना को पहचाना था किन्तु उससे भी करुण

१ १० बन्दवप्रसाद मिश्र—सावन सत्र, संग, १४ ४—अ

२ वहा, संग १४ ४—अ

३ वही संग १४ ४—आ

४ वही, संग १४ ४—इ

सांस्कृतिक प्रवचन कविता में विरह भावना

कठिन विरह से पीड़ित माण्डवी उपक्षित रह गई थी। साकेत मत्त के रचयिता न उस व्यथा का परिचय कराकर सहृदय जगत का बड़ा उपकार किया है।

द्वारकाप्रसाद मिश्र

कृष्णायन—कृष्णायन का नाम संस्पष्ट है कि कवि ने इसमें कृष्ण के जीवकी गाथा वर्णित की है। राधा के पक्ष में कृष्णायन में पूवराग का अभाव है। कृष्ण के साथ उनकी हसी, ठिठोली का चित्रण ही कवि ने किया है।
कृष्णायन' के कृष्ण का प्रारम्भ से ही अतिमानवीय रूप में चित्रण किया गया है। सूर तथा अयम भक्त कवियों के कृष्ण भी अतिमानवीय थे किन्तु राधा के साथ रास रचात समय उनका यह रूप अशोभन सा रहता था। मिश्र जी के कृष्ण रासलीला करते करते राधा को एक कुज में न जानते हैं कि वह कसादि राशनों का वध करना है अतः राधा को आदेश देते हैं कि जब तक वह अमुरो का हनन करें तब तक यह (राधा) ब्रज में रहकर उनके प्रेमभाव का पापण कर—

जब लागि मैं कुछ कास उखारहु,
खोजि-खोजि अमुरन सहारहु,
तुम ब्रज बसहु करहु रखवारा,
सीवहु प्रेम विटप दुगवारी।
उत मैं करहुँ गूल निमूला,
फूलहि प्रम-वण इत फूला।
घमादिक फन लागहि चारो,
तहहि प्रिया जग कृपा तुम्हारी ॥'

कृष्ण के मयूरा जान पर इसीलिए कृष्णायन' की राधा को विरह का सामना नहीं करना पड़ा। साथ ही कवि ने कृष्ण पर लग हुए विद्वानासपात के दोष का प्रज्ञान भी कर दिया। फिर भी सनातन नारी को पृथ्वी पर अवतार लेकर पृथ्वी का बनना पड़ा। राधा कृष्ण के विरतन रहस्य को जानत हुए भी उनके मयूरा गमन के अन्तर पर स्वयं को न सँभाल सकी। और—

पर मुपलक सुत तुरग मुख फरेउ धनस्याम,
स्यदन तन तेहि क्षण गिरी कोउ विरहिणी राम ॥'

राधा की व्यथा का यह चित्रण परम्परागत है। कृष्णकाव्य में राधा की व्यथा सदा मौन रही है यहाँ भी वही ही है। कृष्ण के जान व समय सम्पूर्ण ब्रज विरत रह्यो था किन्तु राधा रोती नहीं पद्याँ खाकर उनका रयक सम्मुख गिर पड़ती है। कृष्ण भी निरपराध

श्री शारदाभवादि मिश्र—कृष्णायन अन्तराल काव्य, पद १६१, पृष्ठ १००
वही पद १८८, पृष्ठ ११६

नहीं जा पाते, वह अनायास ही राधा को गोद में उठा लेते हैं कतव्यवश जाना आवश्यक था अतः अपनी धाती को यशोला की गोद में सौंपकर रथ आग बढ़ा देते हैं। उनकी व्यथा का चित्रण कवि ने इन शब्दों में किया है—

स्वागत ब्रज ब्रजराज अवीरा,
होत विमुख, वरस दृग नीरा ॥^१

मथुरा में समय समय पर कृष्ण को राजवामियों की सुधि आती रहती है। जरासंध के आक्रमण के समय जब उह मथुरा छोड़नी पड़ी तब वह उद्धव के हाथ अपना कुशल समाचार गोकुल का भेजना न भूल—

गयऊँ न कवहु सुधिहु नहि ली ही,
लहि मं प्रीति व्यथा बहु दी ही।
बसिही दूरि द्वारका जायी,
तजिहैं तनु ब्रजजन विनसायी।
उद्धव मुहुर्दाहि श्याम बोलवा,
जाहू अरहि ब्रज बचन सुनावा।
जानि सुमति सत्र कहेउ ब्रजेगू
चलेउ सचिव ले प्रेम सत्गू ॥^२

‘कृष्णायन’ की गोपिकाएँ कृष्ण को प्रियतम के रूप में स्मरण नहीं करती, जाति के संरक्षक के रूप में याद करती हैं।

जस पुरजन तस हम सब ब्रजजन
श्याम भूप, हम दोउ प्रजाजन।
जन रजन वर राजन धमा,
प्रजा पपीडन धोर अघर्मा ॥^३

अतः उनके विषय में तो विरह व्यथा का अवकाश ही नहीं रहता।

कवि का विश्वास है कि कृष्ण के गोकुल से जाने के पश्चात् भी यमुना के तट पर राधा और श्याम रूप का मिलन होता था। गोकुल में आने के दूसरे दिन प्रातः काल जब उद्धव यमुना पर स्नान करने गए तो उह वहाँ बशी स्वर सुनाई दिया। सम्पूर्ण वातावरण उल्लासमय हो गया चन्द्रमा की ज्योत्स्ना विखसित हो गई वन के प्रसून खिलने लग घोर त्रिविध मनीर बहने लगा। तभी उद्धव ने दखा कि मोर मुकुट पीताम्बरधारी कृष्ण मगन ही बग़ा बजा रह हैं और एक नारी उनकी चरण बंदना कर रही है।

मोरमुकुट, पट पीत धत, वनमाला अभिराम,
बादत यगी धरि अघर, रोटि काम छवि श्याम।

१ भा. १२३ काव्यसंग्रह—कृष्णायन, मथुरा काण्ड, पं १, पृष्ठ ११६

२ भा. १२३ काव्यसंग्रह—कृष्णायन, मथुरा काण्ड, पं १, पृष्ठ ११६

३ भा. १२३ काव्यसंग्रह—कृष्णायन, मथुरा काण्ड, पं १, पृष्ठ ११६

सांस्कृतिक प्रवाह कविता में विरह भावना

पदतल लखि बहुरि कोउ वामा,
 धरि मुमनाजलि करति प्रणामा ।
 लाचन चकित विलोकत शोभा,
 भक्ति प्रवाह हृदय मन लाभ ।
 भयउ अदृश्य दश्य पल माही,
 नहि हरि कतहुँ वाम बहूँ नाही ॥^१

नद के घर जब उद्वव लौटकर आए तो उसी युवती का यशांग के समीप दखकर चकित रह गए । यशोदा ने उनका परिचय युवती से यह कहकर कराया कि 'यश्याम की सखि हैं ।'

राधा का विरह वणन यहाँ भी कवि ने नहीं किया कवल कृष्ण के प्रति उनका आकर्षण की अभिव्यक्ति लज्जा अनुभाव द्वारा कराई है—

श्याम सखी राधा यहै, कहउ महरि मुमुकाय
 डरत मधुपुरहु जाहि हरि, मुरली लति चौराय ॥
 गवनी राधा सुनत लजानी,
 यगुमति प्रीति पुनीत बखानी ॥^२

मथुरा में पुन आगमन पर उद्वव ने यमुना के वशी तट की बात जब कृष्ण का बताई तब उन्होंने राधा से अपना एकत्व सिद्ध किया ।

एकहि में अरु राधिका द्वत भाव भव भाति,
 ब्रजजन समुक्ति रहस्य यह, लटिहैं पुनि मुख शान्ति ॥^३

गीता काण्ड में मूलप्रहण के अवसर पर पुन कृष्ण की ब्रजवासिनी से भट होती है । राधा भी वहाँ उपस्थित है किन्तु वह मूर की विरहिणी राधा नहीं है पूणकाम स्थितप्रज्ञा राधा है । उन्होंने सचमुच ही कृष्ण से एकत्व की स्थिति प्राप्त कर ली है और इसीलिए वह प्रसन्न है । स्विमणी के गणना में राधा और कृष्ण का वियोग ही कभी नहीं हुआ—

इन कीह निज वग यदुरायी,
 चहहि जहाँ जत्र लहि बोलायी ।
 प्रविगत श्रुतिपुट राधा नामा
 होत विमन सहसा घनश्यामा ।
 पावत जब तव हम हरि दशन,
 बसत सतत इन सा मनमाहन ।^४

^१ श्री आरकाप्रसाद मिश्र—कृष्णावन, मथुरा काण्ड पृष्ठ १००, पृष्ठ २०५
^२ वही पद १०२ तथा १०३ का प्रथम पंक्ति, पृष्ठ २०६
^३ वही पद १०४, पृष्ठ २०७
^४ वही, गाँदा काण्ड, पद ६४, पृष्ठ ५ ५

यहाँ भी मूर की सी विरह व्यथित राधा कही दृष्टिगोचर नहीं होती। वह यथाशा मूलकर पूण रूप से कृष्णमय हो गई है। लागे के कहने से वह कृष्ण की बाललीला को रगमच पर उपस्थित करती है।

राधा के कृष्ण में अनंत विश्वास और राजा कृष्ण के अपनी बाल-सगिनी को मासारिक रूप में अपनी बनी हिचक की कवि ने बड़ी चतुराई से गीता काण्ड के एक पद में मकेत रूप में व्यक्त किया है। कृष्ण राधा के प्रति विश्वासघात के लिए स्वयं को भरसना दत्त है—

लखत हरिहु सोचत मन माही,
में ठरवाय प्रिया सम नाहा ॥^१

कृष्णायन की राधाकृष्ण प्रणय गाथा में आयन से ज्ञात होता है कि कवि ने उसमें अनेक मौलिक अनुभूतिमा का समावेश कराया है। कृष्ण के अतिमानवीय रूप को मानकर एक ओर तो मथुरामन से पहले ही रासलीला के समय भावी वियोग के लिए राधा की सात्वना दिलाइ दूसरी ओर यमुना तट पर उनके नित्य मिलन की कल्पना की। इसके फलस्वरूप एक तो कृष्ण के ऊपर से विश्वासघात के दोष के प्रकलन का प्रयत्न किया दूसरी ओर राधा के एकांतिक प्रेम की प्रतिष्ठा की रक्षा की।

कृष्ण में पूर्य बुद्धि होन के कारण यद्यपि कवि ने उनके दाप प्रकालन का भरसना प्रयत्न किया है किन्तु फिर भी उनका बुद्धिवादी मस्तिष्क राधा पर किये गये आघात को न भूल सका और राधा की अपूर्व व्यक्तता को देखकर कृष्ण को मन ही मन परचाताप करना पड़ा।^२

राधा की वियोग व्यथा मीन हान हुए भी मामिक है। वह कृष्ण के वियोग में इस लिए नहीं तड़पती (कि कवि के मन्ना में यमुना तट पर उनका नित्य मिलन होता है)। यदि ऐसा था तो जात समय मूर्च्छित हान की क्या आवश्यकता थी? वस्तुतः उसने अपनी व्यथा का प्रकामिया का मन वहनान के लिए मन में ही छिपा लिया है क्योंकि वह जानती है कि उसकी साधारण बग की नारी का राजा कृष्ण स्वीकार न करेगा।

राधा के विरह के अतिरिक्त 'कृष्णायन में उजयनी की राजकुमारी मित्रविदा के पूरणा का मुत्तर वणन है। कृष्ण, यमुना की वहिन के मित्रविदा की माँ के साथ उजयनी आए थे वही राजकुमारी ने उन्हें प्रथम बार दिया—

नगउ मित्रविदु हरिहि रम नयन असहाय
सबनी उर धरि मूनि मनु पितु बिय कछुस लजाय ।^३

बसल उज्जा अनुभाव में राजकुमारी के मन के आसपक की सूचना बड़े सुष्ठु

^१ श्री गणेशप्रसाद मिश्र—पञ्चायन गाथा काण्ड, पद ६६ पृष्ठ १२६

^२ वही

रूप से दी गई है, यहाँ कवि उस आकषण के फल रूप उत्पन्न विरह का विवरण नहीं देता। उसके पश्चात् ही राजकुमारी मित्रविदा पाँडे दिन के लिए अपनी सखी रुक्मिणी के यहाँ चली जाती है।

मित्रविन्दा की स्थिति अथ प्रवचन से व्यथित नायिकाओं से कुछ भिन्न है। माता पिता, परिवार से उसे ताडना नहीं मिलती, स्वयं उसकी माँ यह चाहती है कि उसका विवाह कृष्ण से हो जाय। रानी पति से कहती है—

मधुपुर जम में हरिहि निहारा, उपजेउ सहसा हृदय विचारा।
श्याम मित्रविदा छवि-खानी विरचे विधि सयोग मन ठानी ॥

दोहा—शिव गिरिजा, विभुसि-धुजा, ममथ रति अनुरूप,
वाचनमणिहु सयोग सम, यह सम्बन्ध अनूप ॥^१

मित्रविदा के पिता आधुनिक युग के सजग पिता की भाँति ही सजग हैं। पुत्री के मन की बात जान बिना वह अपने आप कुछ नहीं करना चाहते। वह रानी से स्पष्ट कह देते हैं कि मित्रविदा से पूछे बिना कृष्ण से विवाह का प्रस्ताव नहीं करेंगे—

प जान विनु तनया नावा,
उचित न करव हरिहि प्रस्तावा।^१

बद्ध पिता को पुत्री के लिए वर सौजते समय पुत्रा की सम्मति भी अवश्य लेनी पड़ती है—

औरहु भय इक मम मन माही,
करहि विरोध सुवन वहुँ नाही।^१

कथा के विवाह से सम्बन्धित इन कठिनाइयों का बड़ा स्वामाविक वणन 'कृष्णायन' के कवि ने किया है। आधुनिक युग से पहले युवक-युवती का परस्पर आकषण घर और परिवार से असम्पक्त हाँकर चलता था, उसकी बात अधिक से अधिक सखियों तक सीमित रहती थी किन्तु कृष्णायन में स्वयं मित्रविदा की माता उससे उसका मन का हाल पूछन जाती है।

मित्रविदा का कृष्ण के प्रति आकषण रुक्मिणी के यहाँ जाने से और भी तीव्रतर हो गया। रुक्मिणी स्वयं कृष्ण पर आसक्त थी। जब उन्हें पता चला कि कृष्ण सदीपनी गुरु के साथ उज्जयिनी भायें हुए हैं तो मित्रविदा के विदा के दिन उन्होंने अपना प्रेम-सन्देश उसके हाथ कहलवाया—

मम प्रयाण दिन नवनन वारं
भायो गिरा विदभ कुमारी-

श्री दारकापनाद मित्र—कृष्णायन, नटुरा काण्ड, पद १०१, श्लोक.
बदा, पद १०६

फिरहि त्यागि गुरुकुल जब नाथा
कहउ मुनय मोरि सब गाथा ॥^१

नारदस कृष्ण का गुणश्रवण सुनकर मित्रविंदा उन पर पूण घासकत हो गई।
रुक्मिणी का भी जब अपने जसा हाल देखा तो वह धमसकट में पड गई। उज्जयिनी लोट
कर आई तो उसका यह हाल था—

लखी स्वजन सखिजन मुकुमारी,
अयमनस्क मलीन दुखारी।
मनहुँ अदृष्टपूर्व कोउ वामा,
दग्ध हृदय, उद्वेग प्रवामा।
क्षीण शरीर यष्टि शुच भारा,
श्रीधम शुष्क जनु सुरसरि धारा।
वदन-सराग विवण विशेषा
श्रीहत प्रात मनहु राकेशा।

अतगूढ विपाद - घन, छावित हृदयाकाश,
भयी नष्ट सहसा मनहुँ प्रणाविक अभिघाप ॥

कृशता, विवण और उद्वेग दशाशा का अत्यंत स्वाभाविक व सक्षिप्त वणन
हुआ है। अतिगयोक्ति वही नहीं है। आगे 'अधु' और 'मूर्च्छा' का भी सुन्दर वणन है।
रानी जब मित्रविंदा के समीप उसका हाल पूछने गई तब—

पूछेउ वृत्त लत मन पाहा,
वहउ कुँवरि दग सखिल प्रवाहा।
वत् छिन किसलय अनुहारी
मूर्च्छित मातु अक मुकुमारी ॥^२

नारी सुलभ लज्जा और सकोच मित्रविंदा के स्वभाव की विभूति है। अपनी
व्यथा का वह स्वयं में समेट रहती है। माँ जब धीरे धीरे उसके मन को स्नेह से कुरदती
है तब अपने मन की बात वह उनसे कहती है—

भुदु बननि जननी समुभावा,
अम अम लज्जावरण हटावा,
वही मित्रविंदा सब गाया।
जहि विधि भवन लखे यदुनाथा।
जित मनसिज हरि छवि अभिरामा
वसी अमित जेहि विधि हृदामा।

१ श्री हरशास्त्रमाद मिश्र—कृष्णायन, पद १३७, पृष्ठ १६८

२ श्री हरशास्त्रमाद मिश्र—कृष्णायन, पद १३७, पृष्ठ १६८

मिलिहैं कन्हों माहि बनवारी,
गइउं विरभ साध उर धारी।^१
रक्तिमणी भी कृष्ण पर आसक्त है और दिन रात उनका गुणकथन करती है,
उह पक्षिया के द्वारा सद्देश भिजवाती है इसका संकेत मित्रविदा करती है—

दाहा—निरखी सखि उव प्राण प्रिय, रक्तिमणी छवि-गुण धाम,
नारद मुख मुनि हरि मुयस, जपति दिवसनिगि नाम ।

अपित हरि-पद तन मन प्राण,
पूजति हरिहि, धरति हरि घ्याना ।
मुनि जन कारा अमुरारी
तीधराज तहि कहति कुमारी ।
परसउ हरि ब्रज निज पत् रेणू,
गुनति गार धनि सवति धनू।^२

तथा

दोहा—लखि गवनत खग वारि धर, पवनह उत्तर धोर,
प्रेपति प्रेम सदा सखि, हरि अनुरक्ति विभार।^३

प्रकृति क विभिन्न उपकरणों परी, वादल और पवन क हाथ अपनी व्यापक
का सद्देश प्रिय क पास भिजवान की पद्धति बहुत पुरानी है। कालिदास, जायसी और
हरिऔध सवन ही ऐसे सद्देश विरहिया द्वारा कहलवाय हैं। मिश्रजी ने किसी एक के द्वारा
सद्देश का विस्तृत विवरण न देकर सबका संकेत मात्र कर लिया है।
मित्रविन्दा अपन और सखि के दाना क दुख स दुखी है। वह दानों के एक ही
व्यक्ति पर इस तरह आसक्त हान को भाग्य की विषमता समझती है, माँ स कहती
है—

दोहा—प्रिय सखि-दुख मैं दु खिता सकी न कहि मुख 'माहि ।
नयउ भाग्य निणय विषम अटल एक पल माहि ॥'

परम्परागत रूप स कृष्ण को सोलह सहस्र रानियों का स्वामी समझा जाता है,
साथ ही कवि की उनक प्रति पूज्य बुद्धि भी है। अतः रक्तिमणी की व्यापक मित्रविदा
व्यपित है, उस इर्ष्या नहीं होती। उसक मन की यह प्रतिप्रिया प्रेम को स्वाभाविक गति
क प्रतिबल है। सम्भवतः वह सामन्ती नारी की पुरुष क प्रति स्वाभाविक दासता की
सूचना देती है, जहाँ पुरुष क अनेक पत्नीत्व को नारी प्राकृतिक मानती है माता न नी
पुत्री का यही समझाया—

^१ श्री आरकावमाद मिश्र—टिप्पणयन पद १०५, पृष्ठ १६७
^२ वही, पद १२५, पृष्ठ १६७
^३ वही, पद १२६, पृष्ठ १६८
^४ वही पद १२७, पृष्ठ १६६

दाहा—तुमहु सखी मम नजि गुणन, सकत पाय यदुनाथ
गशि एकहि निशि नलिनि दाउ, करत समान सनाथ।^१

सक्षप म कहा जा सकता है कि 'वृष्णायन' में मित्रविदा के पूवराग का रूप परम्परागत होने पर भी उसमें अनुभूति की कमी नहीं है। रविमणी और मित्रविदा को सखा रूप में प्रस्तुत करके और मानव राजकुमारी को रविमणी क महा रहने के लिए भजकर कवि ने उसके मानसिक अतन्द्र की मौलिक अनुभूति का समावेश किया है। उसके परम्परागत विरह में रोना भीखना नहीं है, सतुलित हृदय की वेदनापूर्ण अभिव्यक्ति है।

उज्जयिनी क राजा और रानी जब विवाह का प्रस्ताव कृष्ण के सामुख रखते हैं तो वह यह कहकर उस समय के लिए बात टाल देते हैं कि बड़े भाई से पहले वह विवाह नहीं करेगी।^१ बाद में द्वारका बाण्ड में कृष्ण उज्जयिनी नरग की मत्यु के पश्चात् मित्रविदा को 'स्वयंवर' में स हूरण कर लाते हैं।

रविमणी क पूवराग का बणन कवि ने मित्रविदा के गणों में कराया है

परसेउ हरि वञ्च निज पद रेणू
गुनति गापवनि भवति धेनू।
नीरद काति जानि बनमाली,
ऋतुपति पावस मानती आली।
विलसत मुनि हरि तनु पीताम्बर
पहिरति पीत त्यागि नीलाम्बर।
जानि हरिह गुजा अनुरागी,
मुक्ताहार दिए सखि त्यागी।
हरि गिर चद्रक मुनि मुकुमारी,
पाते गिति उडाय गुन सारी।
जानि धरो मधुराधर श्यामा,
वादति वण बीन तजि बामा।

लखि मवनत रग पारिधर पवनहु उत्तर और,
प्रपति प्रम सदा सखि हरि अनुरक्ति विभार।^१

गुणकथन भ्रम और उ मात् की विरह श्लाघा का नक्षिप्त विवरण यहाँ मिलता है।

जराभय क छ माचार में पाठित कृष्ण मधुरा छाडकर द्वारका चल जाते हैं और वही मधुरा की नई राजधानी की स्थापना करते हैं। एक दिन कृष्ण उदब के साथ

^१ श्री शारदाप्रकाश नि. १—कृष्णायन पद १३०. पृष्ठ १६६

उपवन में भ्रमण कर रहे थे। वहाँ उन्होंने एक ब्राह्मण का आत देखा। यह ब्राह्मण रुक्मिणी का सन्देश लाया था—

नाथ ! विदम दंग मम वामू,
नप भीष्मक यग-गीय निवामू
रुक्मि भूप-सुत दारण जनु फणि,
मुता भुवन भामिनी मणि रुक्मिणी !^१

नेहा—कुमुद नेह, पूर्णेंदु मुख, कर पद उपा विलास,
वणि श्रेणि अलि मधु अथर, गरद् चन्द्रिका हास।

सारठा—नाथ विमल यग गान सुनि नारद मुख पितु भवन,
घरति दिवस निशि ध्यान, अपित तन-मन प्रभु चरण।

ब्राह्मण ने यह भी बताया कि रुक्मि जरासंध का मित्र है। अतः कृष्ण से रुक्मिणी के विवाह के पक्ष में नहीं है परंतु—

रुक्मिणिः भीषण प्रण ठाना
वरहूँ हरिर्हि नतु त्यागहृ प्राणा।^२

वलराम और कृष्ण ने आपस में परामर्श किया कि रुक्मिणी के उद्धार के वहाने वह मयुरा छाड़कर भाग आने के अपयश का भी प्रक्षालन कर सकेंगे। अतः केवल रुक्मिणी के प्रेम के लिए ही नहीं प्रत्युत राजनीति से प्रेरित होकर भी कृष्ण ने विदम को आर प्रयाग किया। कृष्ण जब वहाँ पहुँचता तब गुपाल से रुक्मिणी के विवाह के सब साज उपस्थिति थे। वही पावती के मंदिर के पास कृष्ण का उससे मिलन होता है। कृष्ण की उपस्थिति में आगतपति का रुक्मिणी के उल्लास की अभिव्यक्ति कवि इन शब्दों में करता है—

लखत नपति शत नयनन जानी,
हरि अनुरक्त कुमारि लजानी।
उत्तरीय निज विकल मभारी,
भाल अलन कर वाम निवारी।^३

कृष्ण के आन से पूर्व रुक्मिणी की उद्विग्नता का वर्णन कवि कर सकता था, परंतु उसने नहीं किया।

‘कृष्णायन रु विरह नात्र सम्बन्धीन प्रयाग के अध्ययन से एसा प्रतीत होता है कि उसके परम्परागत रूप को ही कवि ने लिया है। कृष्ण के प्रति उसकी अत्यंत पूज्य बुद्धि है। वह उनके जीवन की कोई महत्त्वपूर्ण घटना नहीं ध्याना चाहता। आ एक आर ता राजकाय में उलझे हुए कृष्ण के पास विरह-श्रया के लिए अवकाश ही नहीं है

१ आ शरदामुद्र - मित्र—कृष्णायन, शरदा काय पद ७, पृष्ठ २३७

२ वहाँ, पद २, पृष्ठ २३७

३ वहाँ, पद २२, पृष्ठ ४५

दूसरी ओर उनसे सम्बन्धित मित्रविदा, राधा और रविमणी के हृदय की गहराई के विवरण तक भी कवि ने पहुँचना नहीं चाहा है फलतः अनुभूति के यत्र-तत्र सकेत मिलने पर भी अधिकांश विरह-वर्णन इतिवत्तात्मक है। अनुभूति का सकेत जहाँ है वहाँ भाविक है।

हरदयालुसिंह

रावण महाकाव्य—'रावण महाकाव्य' दत्तकुल के सुप्रसिद्ध महान राजा रावण के जीवन चरित्र का लकर लिखा गया है। आर्यों की दृष्टि अपने आदम चरित्रा के प्रति सकुचित थी अतः उन्होंने विपक्षियों के जीवन में ही दय को नहीं देखा। किन्तु आज के कवि ने निष्पक्ष होकर उनके जीवन में भी प्रवेश किया है और पता लगाया है कि वह केवल मनुष्य मासाहारी बर वर जीव ही नहीं थे, उनके जीवन में भी मानव जस सुख-दुख, ह्य विपाद, प्रेम व पीडा का स्रोत बहा करता था।

'रावण महाकाव्य' में मघनाद का मुलाचना के प्रति विरह वर्णित है। पातालपुरी में मुलाचना की भट मघनाद से हुई थी। वहाँ सरावर में नरक में मुलाचना के पर को पकड़ लिया और मघनाद ने उस बचाया था। वही इन दोनों का गधव विवाह हुआ। मुलाचना को पातालपुरी में छोड़कर मघनाद जब लका को लौटा तो विरह मत्त रहने लगा। रावण ने राजबध को बुलाकर मघनाद की नाडी दिवादि चतुर सुखण ने ममक लिया कि राजकुमार का मदन का रोग लगा है। समुद्र क तट पर अत्यन्त ऐश्वर्यवाली एक महल बनवा दिया गया और राजकुमार वही रहने लगा।

रावण-काव्य में मघनाद का विरह परम्परागत सस्कृत नाटका की पद्धति का है। चित्रलेखन उमाद प्रलाप आदि स्थितियाँ उ ही क अनुकूल है। विरह में प्रिया का चित्र लेखन करते हुए मघनाद का उमाद व अशु दशाओं का वर्णन अत्यन्त स्वाभाविक है—

रग ओ तूलिका ल कर मैं,
पटिया प रहै कपो चित्र उनावत।
शक्ति क तिय को मनुहारि,
बडे खन ली रहै अक लगावत।
बोल नहीं तव भामिनी जानिफ,
वाक्य रहै परि पावै मनावत।
आंसिन म अनुवा उमडे
तेहि राजकुमार निहारि न पावत।^१

१ भा दरम्याःसिंह—रावण महाकाव्य, भातवाँ सग, पद २, पृष्ठ १०५

सांस्कृतिक प्रबंध कविता में विरह भावना

कवि उनकी कृशता का वगन करत हुए कहता है—

नील-सरोज सौ कोमल गात,

गयो घननाद को या कुम्हिलाई ।

जाडेन का रतियानि से जस

तुपार सौ पक्ज जात सुखाई ॥^१

मघनाद के मन का उद्वेग देखिए—

डारि दिया पट नूपण को हूँ,

कहूँ सरचाप को दी-हो बिहाइ ।

बाल सखा लखि ताकि, दसा

लिवो अंगुरी दतित माँहि दवाइ ॥^१

एक रात्रि चंद्रमा के उदित होने पर मघनाद के मन में विचार आया कि यह अवश्य ही पातालपुरी जाएगा। अतः चंद्रमा के हाथ उमन सदेग कहलान का निश्चय किया। चंद्रमा से राजकुमार ने विनती की—

वाम विलोचन हौ ही विराट के,

सौ सिव सीस प वास तुम्हारो ।

है गति मन् दिवाकर की जहाँ

रावरो हात तहाँ उजियारो ॥

लोकनि की उपकारी बडो गुनि

आपुरी को यहि जोग विचारो ॥

मा प दया करि प्रान प्रिय

पहूचाय हौ दीज मन्स हमारो ॥^१

विरह में प्राकृतिक उपकरणों का दूत बनाकर भोजन की पद्धति बहुत पुरानी है। कालिदास के मधुदूत के पदों में मूर और नन्ददासन भ्रमर को दूत बनाया। सत्यनारायण के विरह का भवगीत भी उसी श्रेणी का हुआ। हरिऔधजी की राधा न पवन को कृष्ण के पास दूत बनाकर भेजा। आधुनिक काल में अनुपदामा के सिद्धाय में मराल दूत बना और हरदयालुमिह के दस्यवग में हंस। चंद्रदूत भी उसी पद्धति का है।

विरही मघनाद का चंद्रमा को दूत बनाकर भोजन समय बराबर यह ध्यान रहता है कि उसकी किरणें राह में विरहिया को दुख देंगी—

प विप बीधी मरीची लख,

गति हाय वियागिनी की कहा त्व है ।

^१ श्री हरदयालुमिह—रघुप नरकान्ध, मातृवा मग, पद ३, श्लोक १०५

^२ वही, पद २५

ओदनीस्याम निसा तिय की,
घबराय के भागत से फटि जहै ॥^१

कालिदास के यक्ष की भाँति मेघनाद भी चंद्रमा से भारत की सुधमा देखकर आग
बाने का प्राग्रह करता है—

नाहर की रव घोर सुने,
जुप रावर स्वदन के मग भाग ।
राकेहुते केहु भाति रुके नहि,
हातल मे थो महाभय पाग ॥
पीट प दे अपकी कर सौं
पुचवारियो हील सभारि के वाग ।
दडक कानन मजुल दश्य
निहारव कौ जहित अनुराग ॥^२

उसमें अपने रूप का गव है। 'यक्षा की' क'याए कलाश पर मेरी भक्ति के भाव
स गिरिजा के गल म हार पहनाती हागी और अनुकूल वरदान पाकर स्वयं को धय सम-
भती हासी ।

जच्छ तिया तहा हम सरोज के,
मासनि का गुहै ल्यावती ह्व है ।
ओ मरी भक्ति के भावन सौं,
गिरिजा के गरे पहनावती ह्व है ॥
सल मुता पद पकज पुजि
असड सुहाग की पावती ह्व है ।
या विधि मां सिगरी युवती,
निज जीवन धय बनावती ह्व है ॥^३

वह मुलाबना के लिए सदा कहता है—

रासत अपन प्राननि की
हिय लासन सौं अभिलापनि वारी ।
घारेहि मासनि को अब और
वित्ताय द मांग भरी मुकुमारी ॥
लव में लहै तुम्हें बुलवाय,
मुन सब हाल जब महतारी ।

^१ श्री हरप्रसादमिश्र—रावण महावाच्य, सातवीं मंग, पृ २१

खोय के दुःख के द्योमनि की,
फिरि है फिरि सौ बह भाग्य हमारी ॥^१

मघनाद सुलोचना से कवल एव बार मिला और उसके रूप पर आसवन हो गया। मघव विवाह तथा मिलन के प्रथम चिह्न चुम्बन परिरम्भण आदि भी हुए किन्तु मघनाद अधिक दिन उसके समीप नहीं रहा, लका को लौट आया। लका में वह अपने मन की बात किसी से नहीं कहता। अतः 'प्रवास हात हुए भी रावण महाकाव्य में मघनाद का विरह रूप दर्शन से उत्पन्न पूवराग का अधिक निरट हो गया है और वह पूवराग है अथवा प्रवाम इस विषय में सन्देह-सा होने लगता है।

रावण महाकाव्य में दूसरा विरह प्रसंग रावण की स्त्री धर्ममालिनी का है। रावण को मृत्यु के पश्चात् धर्ममालिनी का विरह शृंगार का आगापूण विप्रलम्भ न होकर निराशा सखित शोक स्थायी भाव का 'करण' है। किन्तु रावण की स्मृति वह भूलती नहीं, वात्सल्य का पोषण करके प्रतिशोध की जड़ें दृन्तर बनाती है। विभीषण से बदला लेने के लिए वह परिमदन को ललकारती है।

रावण के वियोग में दिन बिताती हुई धर्ममालिनी को दलिये—

बहुत रही इक दचिर कहानी।
सुत नमननि निदिया नियरानी ॥
मयनन्दिनी की आखि न लागी।
साचत ही सियरी निति जागी ॥
पति-सुन-गुन सुमिरन बहु भाँती।
रोवति बाव रही सब राती ॥
या विधि सौ अमुवा दृग दारो।
भीजि गयो पट अचल सारो ॥^१

धर्ममालिनी अत्यन्त आत्माभिमानिनी है। उसकी विरह व्यथा अत्यन्त भासिक है। मृतक पति को लोटाया नहीं जा सकता किन्तु मातृभूमि जो पश्यनकारिया न छीन ली, पति का वह गौरव तो लोटाया जा सकता है। धर्ममालिनी उसी आगा के सहारे जी रही थी। परिमदन ने जब राने का कारण उसमें पूछा तब उसने बताया—

तुव पितु हुतो लक गद स्वामी।
रह्यो सुरेश जानु अनुगामी ॥

ताको एक विभीषण भाई।
उपग्या बस मनल दुखदाइ ॥

१ भा इन्द्रवज्रसिंह—रावण महाकाव्य, मातृवा सर्ग, पद ४५

२ बहा, ३ सातहवा सर्ग, पद १८

रघुवसिन सग प्रीति दढाइ ।

निज भाइन डारघो मरवाई ॥^१

माता की प्रेरणा से ही अरिमदन लका को अत्याचारी विभीषण के शासन से मुक्त करता है, कुत्ता से उसकी सधि हो जाती है ।

धर्ममालिनी का वियोग वात्सल्य के सहारे आशा प्रेरित बनता है ।

रामानन्द तिवारी शास्त्री

पावती—कुमार कार्तिकेय के जन्म तथा मदन के दग्ध होने की कथा को लेकर पावती का य लिखा गया है । देव शनव युद्ध में तारकामुर जन दवो को अत्यन्त प्राप्त पहुँचाने लगा तब ब्रह्मा ने उह सम्भाषा कि शिव और पावती के संयोग से उत्पन्न पुत्र ही अमुरा का सहार कर सकता है ।

पावती हिमालय की पुत्री थी । उन दिना योगीश्वर शिव कलास पर घोर तपस्या में मग्न थे । उनकी तपस्या का यशगान सुनकर अनेक व्यक्ति उनके दशनाथ आते थे । एक दिन हिमालय नी अपनी कथा के साथ आए और उ हाने शिव से प्रायना की—

पुण्य दशन तं शिववर आपके अभिराम,

हुए आज कृताथ हम चिर पूण-काम प्रनाम

आपक दुलभ दरश का एव ही फल नाथ ।

याच्य दान और सेवा नित मुत्ता के साथ ।^२

यागेश्वर शिव भी अथ योगियो की भाति प्रकृति से दूर रहकर प्रकृति के बचना का नष्ट करन का प्रयास कर रहे थे । प्रकृति के प्रतिरूप नारी का उहोंने अपने तपस्या के लिए वाधा रूप स्वीकार किया—

भूप से बोन सदागिव नप प्रकृति से दूर,

ध्यान तप से वर प्रकृति के बचना को चूर

आत्म स्थिति की सिद्धि का कुच्छ कर रहा अम्यास

है न समुचित प्रकृति को देना यही अवकाश ।^३

परम मुकुमार उचित इसको न यह आयास

उचित योगी का न रखना प्रकृति को निज पास

योग्य इसने आपने समनीय कचन धाम,

उचित आत्म नियाग में मुभको प्रकृति उपराम ।

१ श्री हरन्यासुनिह—रामण महाकाम्य, सोलहवाँ सग पद १५

२ श्री रामानन्द तिवारी शास्त्री—दा ती, लामरस मन, पृष्ठ ८०

३ वही पृष्ठ ८०

सांस्कृतिक प्रवचन कविता में विरह भावना

२५

प्रायना इससे हमारी यही पवतराज !
 हो गए कृत-कृत्य इसके दरस से हम आज,
 छोड़ इस तवगिनी को आप अपना गह,
 नित्य दग्न का पधारें नपति निस्सदेह !
 पावती अत्यन्त विदुषी और शास्त्रज्ञाता थी, तपस्या में प्रकृति का और फलतः
 नारी का यह तिरस्कार उन्हें अच्छा नहीं लगा। प्रायना के रूपमें शिव के तक को चुनौती-
 सी देते हुए उन्होंने कहा—

पर कुतूहल मान मरा धमा करना घाय !
 है न क्या योगीश्वरो को भी प्रकृति अनिवाय ?
 देव नृप नृप में प्रवाहित है प्रकृति के सात,
 विद्वत् में सबत्र स्वामिन् ! प्रकृति घात प्रोत ।
 आपका यह श्रवण-दशन, वचन का व्यवहार,
 नाथ ! मुकुमारी प्रकृति का ही रुचिकर व्यापार
 आपक में तप, नियम, व्रत धारणा थीं ध्यान
 है प्रकृति के माग से ही आत्म अनुसंधान ।^१

अतः तिवारीश्री की 'पावती' नारद के वचन सुनकर परम्परागत पावती की
 भाँति ध्यानावस्थित शिव के समुख तपस्या करना प्रारम्भ नहीं करती प्रत्युन् उनके
 समीप रहने की स्वीकृति स्वयं अपनी याग्यता के आधार पर प्राप्त करती है। शिव पावती
 के तक से निरन्तर हो जात हैं और अपनी परिचर्या के लिए उनका समीप रहना स्वीकार
 कर लेत हैं। तब पिता की आना लेकर वह सेवा रूप धोर तप का प्रारम्भ कर देती है।
 इस प्रकार सेवा व्रत में दीक्षित पावती का चित्र कवि ने ऐसा खींचा है—

भाल का शशि हरण करता तीव्र तप का स्वद
 ध्यान गान देवता का दूर करता छेद,
 नियम विधि त्रय काल का हरता मुडुवह भार
 घय बनता हृदय का व्रत पूण शीलाचार ।^२

शिव धोर पावती को अपनी अपनी तपस्या में निरन्तर सलग्न देखकर देवता
 उद्विग्न हो उठे। इन्द्र ने अपने मित्र मदन को उनकी तपस्या भग्न करने के लिए भेजा।
 एक दिन शिव जब पावती की पूजा का हार ग्रहण कर रहे थे तब—
 श्रवसर जान उसी क्षण करके लक्ष्य शम्भु के तनु को
 धर सम्मोहन बाण काम ने खींचा कुमुमित धनु को ।

१ श्री रामानन्द तिवारी शास्त्री—भावना, तीक्ष्ण स्रग, पृष्ठ २०
 २ वही पृष्ठ २१
 ३ वही, पृष्ठ २४

चंद्रोदय आरम्भ काल में आचंचल सागर से,
होकर अल्प अधीर प्रभावित किंचित अविदित स्मर से
उत्सुक लाचन खोल तरी से बचल छवि सागर में
हुए प्रवाहित ईश एक पल अदभुत रूप प्रसर में।^१

नाम से आदाहित शिव के हृदयगत भाव जब नेत्रों में छलक उठे तो वह पावती
से भी छिपे न रह सके और उन्होंने एक अभूतपूर्व भाव का अनुभव किया—

पुलकित एक अपूर्व भाव से सट्टसा गल कुमारी,
कर सकुचित चारु अगा को लज्जा से सुकुमारी
मद वायु से साचीकृत-सी देहलता कम्पित सा,
शीड़ा से विभ्रात नयन से खड़ी रहो विस्मित सी।^२

प्रेम भाव से उत्पन्न लज्जा वेपथु शीड़ा और विस्मय के अनुभावों का वर्णन
कवि ने अत्यंत स्वाभाविकता से किया है। पूवराग की तुल्यानुराग पीड़ा की अनुभूति
इसी स्थल से शिव और पावती में प्रतिष्ठित होती है, यद्यपि शिव ने उसे अपने मन की
दुबलता माना और मदन का भस्म करके भी वे इस पाप का क्षमन करने के हेतु धीरे
तपस्या को अग्रव्र चलें गए।

शिव क चलें जाने के पश्चात् निराश पावती घर को तौट आई। इस 'पूवराग'
की पीड़ा में केवल काम वेदना नहीं थी प्रत्युत कुसुमसायक की विवश पत्नी के लिए
समवेदना भी थी। शिव उनके रूप सौंदर्य से प्रभावित होकर भी उसका तिरस्कार करके
चलें गए थे, उस विरहित की कचोट से पावती अत्यंत दुःखी हो गई—

स्मरण कर शिव का क्षणिक वह रागमय दक्षपात,
किन्तु चक्षु तृतीय से वह मदन का तनु धात,
औ उपक्षा-पूण तप के हेतु दूर प्रयाण
कर रहा था सतत आकुल पावती के प्राण।
स्मरण कर रति का वरुणतम स्नहपूण विलाप,
हो रहा था पावती के चित्त को सताप
देवताओं का स्मरण कर वदन दीन मलीन,
पावती रहती निरंतर मोद चित्ता लीन।
और अपने रूप रति की विफलता कर ध्यान,
नित्य करती रूप का निरन्तर सहित बहुमान,
नारियों के रूप का फल प्रम-पूण सुहाग।
भरण से यहकर दयित का त्याग-पूण विराग,

१ श्री रामानन्द विश्वशीलाशास्त्री—पावना, पांचवां मंग, पृष्ठ १२३

२ बही, पृष्ठ १२३

जागते सान सग ही वह वरण इतिहास,
पावती के चित्त को रखता प्रतीव उगस।'
पावती की विरह-वदना अत्यन्त समयित है उसका उपचार करने के लिए
सखियों को उगीर उबटन की आवश्यकता नहीं पड़ी चल्न मगमलपन की भी नहीं।
उहोन न हृदय की ज्वलन का वणन किया, न गले की माला कुम्हलाई और न ही
सखिया को गीले वस्त्र ले लकर निकट जाना पडा—

किन्तु पवतराज की कथा तरुण अभिजात
शांति और गम्भीरता से ही सदा प्रवदात
पूछनी सखियाँ कभी थी यदि हृदय की बात,
स्नेह से धीरज वधाती थी कभी यदि मान,
धय औ आशा सहित कर मधुर वार्तालाप
न य तप प्रसंग से थी छिपाती निज ताप।'

पूवराम की पीडा का यह दिग्गन अनूतपूव है। प्राधुनिक युग से पहले पावती
जसी समयिता नायिकाएँ तुलसी की सीता और मूर की राधा थी। सीता का तो पुष्प
वाटिका में राम के दशन के पदचान विरहानुभूति का अधिक अवकाश न था क्योंकि दूसरे
गिन ही स्वयंवर था। राधा ने नेत्रों के पराय हो जाने पर बहुतरे हाथ पाव पटक, सगी-
साथी, घर-परिवार से छोड दिए और यहाँ तिवारीजी की पावती हैं जा सखिया के पूछन
पर, मा के सात्वना तन पर हृदय की बात बडी कुशलता से छिपा लेती हैं।
नारद ने जब हिमाचल से कहा कि गिव तप से ही माय हैं तप पावती ने तपस्या
करने को मन में ठान ली—

माँ न तप को छोड मुक्तो माग कोई और,
विश्व ने तप साधना का है सग सिरमौर,
निखरती तप से हृदय की निभत मात भक्ति
प्राप्त होती सिद्धि की निर्वाध धारण गक्ति।'

कवि ने पावती की तपस्या का विस्तृत वणन किया है। उस मुकुमार वय में
प्रनत रूत और गुणा से समन्वित पावती को तपस्या करते देव अप्सराएँ चकित रह
जाती थी—

अप्सरारों पावती का देख तप और शील,
मन्त्रणा आश्चय से करतीं मुडूर सलील
अमर यौवन का अनगल भी' अखण्ड विलास,
भ्रान्ति है क्या? सत्य केवल तप नियम उपवास।'*

* श्री रामानन्द तिवारी शास्त्री—पावती, दृष्टा सग पृष्ठ १२१
बरी, पृष्ठ १२१
बरी, पृष्ठ १२४

चन्द्रोदय आरम्भ काल में आचंचल सागर से,
होकर अल्प अवीर प्रभावित किञ्चित् अविदित स्मर से
उत्सुक लोचन खोल तरी से चंचल छवि सागर में
हुए प्रवाहित ईश एक पल अदभुत रूप प्रसर में।

काम से आदालित शिव के हृदयगत भाव जब नेत्रों में छलक उठे तो वह पावती
से भी छिपे न रह सके और उहोने एक अभूतपूर्व भाव का अनुभव किया—

पुलकित एक अपूर्व भाव से सहसा शल कुमारी,
कर सकुचित चारु अंगों का लज्जा से सुकुमारी
मन्द वायु से साञ्चीकृत सी देहलता कम्पित सी,
रीड़ा से विभ्रात नयन से खड़ी रही विस्मित सी।

प्रेम भाव से उत्पन्न लज्जा वेपथु ब्रीडा और विस्मय के अनुभावों का वणन
कवि ने अत्यन्त स्वाभाविकता से किया है। पूवराग की तुल्यानुराग पीडा की अनुभूति
इसी स्थल से शिव और पावती में प्रतिष्ठित हाती है, यद्यपि शिव ने उसे अपने मन की
दुबलता माना और मदन को भस्म करके भी वे इस पाप का शमन करने के हेतु घोर
तपस्या का अयत्न चले गए।

शिव के चले जाने के पश्चात् निराश पावती घर को नौट आई। इस 'पूवराग'
की पीड़ा में केवल काम वेदना नहीं थी प्रत्युत कुसुमसायक की विवश पत्नी के लिए
समवेदना भी थी। शिव उनके रूप सौन्दर्य से प्रभावित होकर भी उसका तिरस्कार करने
चले गए थे उस विरक्ति की कचोट से पावती अत्यन्त दुःखी हो गई—

स्मरण कर शिव का क्षणिक वह रागभय दकपात,
कि तु चक्षु तृतीय से वह मदन का तनु घात,
औ उपेक्षा-पूण तप के हेतु दूर प्रयाण
कर रहा था सतत आकुल पावती के प्राण।
स्मरण कर रति का कर्णतम स्नेहपूण विलाप,
हो रहा था पावती के चित्त को सन्ताप
देवताओं के स्मरण कर वदन दीन मलीन,
निरन्तर मोन चिंता-लीन।
पर तपस्या से प्रसूत की विफलता पर ध्यान,
हैं तो स्वयं को का नि दा सहित बहुमान,
पश्चात् कि वह का फल प्रेम-पूण सुहाग।

जागत सान सग ही वह करुण इतिहास,
पावती क चित्त को रखता प्रतीव उदात्त।
पावती की विरह-वन्दना अत्यन्त समयिन है उनका उपचार करने क लिए
सखियों का संगीर, उवटन की प्रावश्यकता नहा पनी चन्दन मामदनेपन का नी नही।
उन्होंने न हृदय की ज्वलन का वणन किया, न गले की माला कुम्हलाई घोर न ही
सखिया को गीले वस्त्र ले लेकर निकट जाना पडा—

विन्तु पवतराज की कया तरुण अभिजात
गानि और गम्भीरता से थी सदा प्रवदात
पूछनी सखिया कभा थीं यदि हृदय की बात,
स्नेह न धारज बघाता थी कभी यदि मात
षय घो' आशा सहित कर मयुर वार्तालाप
नन्य तप प्रसंग से थी छिपाती निज ताप।^१

पूरराम की पीना का यह स्थान अनूतपूव है। आधुनिक युग से पहले पावता
जसी समयिता नायिकाएँ तलसी की साता और मूर की राधा थीं। सीता का तो पुष्प
वाटिका म राम क दण्ड क परधान विरहानुभूति का अधिक प्रवकाश न था क्योंकि दूसर
नि ही स्वयवर था। राधा न नेत्रो क पराय हा जाने पर बहुतरे हाय-भाव पटके संगी-
साथी, घर-परिवार सब छोड लिए और यहाँ निवारराजी की पावती हैं जो सखिया के पूछन
पर, माँ क सान्त्वना न पर हृदय की बात बडी कुशलता से छिपा लती हैं।
नारद ने जब हिमाचन से कहा कि पिव तप से ही मान्य हैं तप पावती ने तपस्या
करन की मन म ठान ली—

माँ न तप को छोड मुझको कोई और
विरह न तप सानना का है। वह अल्प-... नी है और सबदनशाला।
निबरती तप से हृदय को। माता और सखिया क समुग व्यवन नही

प्राप्त होती सिद्धि की विवाक युग क प्रदान से अस्थिर हो जाती हैं।
कवि न पावती की तपस्या का विस्तार पर कवि न देख हैं किन्तु उनम वह रमा
प्रनत रूप और गुणा से समन्वित पावती व है छिन्न भिन कर दिया। यदि इन दाना क
जानी थी—
। पावती' का विरहवचन अधिक मार्मिक हा

प्रमत्तार्थ पावती का क्षेनुभूति मिलती है तो पृष्टा तक लुप्त हुइ रहती
मन्त्रणा आश्चर्य से कर नहीं बन पाती।
अनर यौवन का अगल अ
भ्रान्ति है क्या? सत्य केवल

१ श्री एनानन्द निवार रास्ता—पावन, छटा १६५
वही, पृष्ठ १११
वही, पृष्ठ १२५

वर्षा ऋतु के आगमन पर बड़े-बड़े ऋषि मुनि भी उटज का निर्माण करने को बाध्य होत थे किन्तु ध्यानावस्थित पावती को कोई सुधि न थी—

मिद्ध ऋषि, मुनि पर्व से ही कर उटज निर्माण,
विवश रक्षित बास करते, त्याग चरण प्रयाण,
वर अनावत शिला तल पर शल बाभा वास,
कर रही तप स व्यतीत अपूर्व चातुमास।^१

एक स्थल पर ध्यानावस्थित पावती का कवि ने अत्यंत सुन्दर चित्र खींचा है। 'शरद राका म एकांत शिला पर तपस्या करती हुई पावती गरुण वस्त्रों में ऐसी प्रतीत होती थी जस राका की पलकों में उषा का स्वप्न जगा हो।'^२ चाँदनी रात्रि के धूमिल उजियाले में गेरु वस्त्रों से आवृत पावती की यह उपमा अनुपम है।

जा पावती आँधी पानी से भी विचलित न होती थी, वह रात्रि के निजम में सरिता के दोनों कूलों पर स्थित चक्रवाक गुग्गुलु के वरुण ऋद्धन से व्यथित हो उठती थी। विरहानुभूति ने इस सूक्ष्म तथ्य की पकड़ कवि ने अत्यंत सफलता से की है कि घायल की गति घायल जाने और न जाने कोय'—

चक्रवाक मियुन विभोगी सरित कूल समान,
परस्पर दाना पथक ओ उभय आकुल प्राण,
वरुण ऋद्धन से विनीरव निगा म ध्रुव शांत,
भग करते पावती का ध्यान ओ एकांत।^३

ध्यान के इस प्रकार भंग होने के पश्चात् मन की क्या दशा होती थी इसका तनिक संकेत भी कवि कर देता तो अनुभूति अत्यंत मार्मिक हो जाती किन्तु तपस्या के

होने दिया। इस आग ही पावती मात्र जाप करती दिखाई पड़न

कर रहा था सतत इन शिव उनकी परीक्षा लेने आते हैं और जब स्मरण कर रति का क उनका चिर दास घोषित कर देते हैं। पावती हो रहा था पावती शिव के लिए तपस्या कर रही है, बटु रूप शिव

रतामउकेप स्मरण ५
निरत वयवती तुम गिरि कुमारी,
रति व वहाँ हूर पहिपूलचारी,
तो स्वयं की रूप का त हो यरो बल्याण भपना
जात कि यह वा त मधुर जीवन पूण सपना।^४
दधि

तो पावती अत्यंत क्रुद्ध हो जाती है—

सुन बटु के कटु वचन कोप से हुए अधर आकम्पित,
औ उमा की भ्रू लतिक्राए सहसा हुई विकुचित
कर तिरछे अनाग म किंचित लोहित युगल नयन को,
हुई तापसी पवत क्या बटु से विवदा वचन को ।^१

× × ×

यद्यपि हा श्रुति शास्त्र परायण द्विज । तुन पूण विपश्चित,
परमेश्वर का रूप तत्त्वत नही जानत निश्चित
इसीलिए हर का नि दा युत तत्पर हुए वचन म,
मद सदा ईर्ष्या करते हैं महाचरित से मन म ।

× × ×

अथवा 'यय विवाद मुने हैं तुमने उनम जसे
दोष अनत सभी वे उनम चाहे हा भी वसे,
एक भाव से हुआ उही मे मस्वित मानस मेरा,
शिव म ही बन गया सनातन मेरा प्राण वसेरा ।^१

बटु फिर अधिक तब के लिए जब मुख खोलने लगता है तो अत्यंत क्रुद्ध पावती
वहाँ से चलने को स्वयं तत्पर हा जाती है—

'अथवा मैं ही चलू यहाँ से' कह चल दी गिरि वाता ।

उसी समय उहोने बटु में शिव के वास्तविक रूप के दर्शन किये और महेश ने
प्रसन्न हो उह पत्नी रूप में स्वीकार कर लिया ।

'पावती' का यम पावती के इस पूर्वराग के विषय में कहा जा सकता है कि
कवि ने परम्परित कथा में भी विरहानुभूति की नवीन पद्धति खोजन की चेष्टा की है ।
विरहानुभूत पावती अत्यन्त सयत और गम्भीर हैं । वह अत्यंत विदुषी है और सबदमशीला
भी । एक ओर वह अपने मन की 'यया' को माता और सखिया के समुल्ल व्यक्त नहीं
करती दूसरी ओर रति की पीडा और चत्रवाक युग्म के तदन से अस्थिर हा जाती है ।
पावती के हृदय के भावुक स्थल स्थान स्थान पर कवि ने देखे हैं किन्तु उनमें वह रमा
नहीं, तपस्या के महत्व की आधी न उह छिन भिन कर दिया । यदि इन दोनों के
उचित अनुपात का ध्यान रखा जाता तो 'पावती' का विरहवर्णन अधिक मार्मिक हा
सकता था । अब वही एक पद में वह विरहानुभूति मिलती है तो पृष्ठा तक लुप्त हुई रहती
है । फलत वह अनुभूति उतनी प्रभावास्पद नहीं बन पाती ।

१ श्री रामानंद त्रिवाणी शास्त्री—पावता, सप्तमोऽङ्क, पृष्ठ १६५

२ वही, पृष्ठ १६५

गुरुभक्तसिंह

नूरजहाँ—गुरुभक्तसिंह की 'नूरजहाँ' में विरह का सबसे मार्मिक दिग्दर्शन अनारकली की वियोग वेदना में मिलता है। अनारकली सलीम की प्रेयसी थी किंतु स्वयं अकबर उसे अपन अंत पुर की रानी बनाना चाहता था। इसी से एक बार उसे सलीम के साथ प्रणय त्रीडाएँ करत देखकर अकबर नोत्रिन हो गया और उसको प्राणदण्ड की आज्ञा दी। जिस दिन अनारकली को प्राणदण्ड मिलने वाला था उसके पहले दिन उसकी मानसिक स्थिति बयां था इसका सुन्दर वर्णन कवि ने किया है।

अनारकली को जीवन की आशा न थी, 'मरण मिलन के माग में विकराल रूप से खड़ा था फिर भी वह प्रिय के दर्शन को आतुर थी—

उस मरं मत्यु समय में जब लोहे से हूँ जकड़ी।

जल्लादों न नगी कर तलवार जब हो पकड़ी ॥

घाणित पीने को प्यासी करवालो की छाया में।

यह अमर जाव हसता हो इस मिट्टी की काया में ॥

जब जनता मूक खड़ी हो चिंतित सां दाए बाए।

तब क्षणभर का करुणामय वह जीवन बन आ जाएँ ॥^१

वह उस दर्शन को अंतिम चिरमिलन का प्रतिरूप मानती है। जब उसका स्वतंत्र पार्थिव अस्तित्व विलय हो जायगा और सत्ता में ही वह एकाकार हो जायगी—

जब नहीं कामना काई मुख शक्ति भंग करती हो।

जब सागर से मित्रों को सरि अंतिम पग धरती हो ॥^२

मत्यु के उन क्षणों को वह सरिता के समुद्र में मिलने के अंतिम पग के समान मानती है। उस क्षण की यह उन्मा परिस्थिति की अभिव्यजना में जसी समय हुई है वसी अन्यत्र दुर्लभ है।

अनारकली की विरह वेदना में आत्म चिंतन की मार्मिकता इन्हीं पंक्तियों में स्पष्ट हो जाती है।

प्रवत्स्यपतिका' के प्रवास' के अभाव की अज्ञात' के समाप्त हो यह मरण की आज्ञा की वियोग वेदना है और अरण विरह का ही रूप है। 'नूरजहाँ' के प्रबंध प्रवाह की एकमूर्तता में निष्पात होत हुए भी अनारकली का विरह प्रसंग स्वयं में बहुत सुन्दर है। अकबर अनारकली को प्राणदण्ड नहीं दता निर्वासित करता है। आश्चर्य के हेतु बन में गए सलीम से अटकता हुई अनारकली की भेट होती है और उनके अक में विय साकर वह प्राण त्याग करती है। इसी का चिर मिलन का प्रतीक मानती हुई कहती है—

'नहीं कामना है विलास की प्रणय मिला दर्शन पाया'^३

१ भी गुरुभक्तसिंह—नूरजहाँ चौथा राग, पृष्ठ २६

२ वही, पृष्ठ २६

‘नूरजहाँ’ में महर और सलीम के विरह में कोई विशिष्ट विशेषता नहीं अतः उसका विवरण और विवेचन यहाँ नहीं किया गया।

विरह अथवा विरहाभास

काव्यशास्त्रियों ने रति भाव के ‘नायक-नायिका अथवा भाव विषयत्व’ और गुरुजन गतत्व’ में शृंगाराभास माना है।^१ शृंगार नहीं। साथ ही उन्होंने कहा कि अनौचित्य की कसौटी वही है जहाँ सद्दय वसा अनुभव करे। ‘नायकनायिका अथवा भाव विषयत्व’ का विवेचन निबंध के प्रथम अध्याय में करते हुए हमने सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि वहाँ भी रति का उज्ज्वल रूप है आभास नहीं क्योंकि प्रतिदान के अभाव में एकनिष्ठता की उत्कण्ठता और तीव्रतर हो जाती है।

‘पंचवटी’ की शूण्यता की लक्ष्मण के प्रति प्रणय-याचना भी शृंगाराभास न रह जाती यदि तत्काल ही लक्ष्मण को छोड़कर वह राम के सम्मुख स्वयं को पत्नी रूप में स्वीकृत करने का प्रस्ताव न रखती। उसके इस कृत्य से उसका व्यभिचारी रूप उभर उठता है और प्रेम के उज्ज्वल भाव की तमयता को आघात पहुँचता है।

पंचवटी के प्रणय याचना काण्ड में गुप्तजी ने प्रारम्भ में शूण्यता की विवश स्थिति का अत्यन्त मार्मिक चित्र उपस्थित किया है। लक्ष्मण से प्रेम का प्रतिदान न पाकर शूण्यता कहती है—

तुम कह सकते हो कि चंद्र का
 कौन दाप जो ठगा चकोर
 किन्तु कलाघर ने डाला था
 विरण जाल क्या उसकी ओर ?
 दोषित दिखाता यदि न दीप तो
 जलता कस कूद पतंग,
 बाध मुग्ध करवे ही फिर क्या
 व्याध पकड़ता नहीं कुरंग ?

लेकर इतना रूप ग्रहो तुम दीख पडे क्योकि मुझे छनी ?^२

युवा बनिष्ठ पुरुष को देखकर लुभा जाना असुर कथायात्रा का स्वभाव कहा गया है। गुप्तजी की ‘हिडिम्बा’ भी ऐसी ही भीम पर लुभा गई थी किन्तु वहाँ अनौचित्य न था क्योंकि वह प्रेम अतः तक स्थिर रहा। प्रेम के प्रतिदान के अभाव में भी यदि शूण्यता का भाव लक्ष्मण तक स्थिर रहता तब चाहे प्रतिहिंसा की भावना से सीताहरण और राम-रावण युद्ध होता या ता भी वह विरह के उज्ज्वल व प्रतिष्ठित पद की एक निम्नतर चोटि को प्राप्त होता। क्योंकि प्रतिदान के अभाव की प्रतिक्रिया मनोविज्ञान में मनो-

१ शास्त्र का शास्त्राव विवेचन (प्रथम अध्याय)

२ पंचवटी, पृष्ठ ३६

वभी परपीडन (sadism) को मनोवृत्ति म देखी गई है।^१ तूणखी कुछ क्षणा वाद ही जब राम से प्रणय की भीख मागन लगती है तो उसकी लक्ष्मण क प्रति याचना के शब्द हास्यास्पद लगन लगते है। व विरह की मधुरवेदना क परिचायक न बनकर मायाविना का वाक्चातुरी बन जात है उह हम 'विरहाभास' कहने।

'गुरुजनगतत्व' की विपरीत स्थिति सोहनलाल द्विवेदी के 'कुणाल' म मिलती है। वद्ध अशाक की तरणापत्नी तिय्यरक्षिता जब अपने वात्सल्य के पाव पुत्र 'कुणाल' पर आकृष्ट हाती है तो परिस्थिति अत्यंत विपम हो जाती है। समाजशास्त्र की दृष्टि से तिय्यरक्षिता का कुणाल के प्रति प्रेम भाव धोर पाप है उसम प्रेम और विरह जसा कोमल वस्तु के त्रिए स्थान ही कहा है^२ किंतु विमाता और सपत्नी के पुत्र के कृत्रिम उपागनो का यदि लोप कर दिया जाय ता अनौचित्य वहाँ रह जाता है। तिय्यरक्षिता युवा की सुन्दर थी, उसके मन म यौवन का उल्लास भी था। सम्राट के सुख वभव के लिए इसका विवाह उनसे कर दिया गया था किंतु उसकी उमर अप्तत थी, भूखी थी। वह किसी को अपना सब-कुछ अर्पण करना चाहती थी। अशोक के ऐश्वर्यमय राज्य की वह एकान्त अविष्ठात्री थी किंतु वह हृदय का शानन चाहती थी, जहा कोई उसके हृदय पर शासन करे और वह भी उसकी एकमात्र अधिकारिणी बन जाय।

कुणाल को जब उसने रगमच पर कामदेव का अभिनय करते देखा तो सुप्त भावनाए घनायास विकल हो उठी—

वातायन औ सुन्दर गवाक्ष,
ये दख रहे मादक कटाक्ष,
हो रहे राग रजित युगाक्ष,
ये विकल किसी के बने प्राण!
हो गए रूप पर नयन लुब्ध,
उत्कठा से उर सिंधु क्षुब्ध,
उत्सुकता स यौवन विक्षुब्ध
था पडा लक्ष्य पर वाम बाण ॥^३

कुणाल का रगमच पर अभिनय तो समाप्त हा गया किंतु तिय्यरक्षिता के मन म नवान अभिनय का आरम्भ हुआ—

अभिनय उधर समाप्त इधर
आरम्भ और ही अभिनय।
तिय्यरक्षिता के मानस म
हृमा प्रेम अरणादय।

१ दगिण, विरह भावना का मनोवैज्ञानिक विवेचन (प्रथम अध्याय)

२ श्री सोहनलाल द्विवेदी—कुणाल पृष्ठ १६

तिक प्रबन्ध कविता में विरह भावना

लगे कामना के पक्षीदल
करन मधुमय बलरव ।
लगी वासना की कलिकाएँ
बिखराने मधु बभब ॥^१

तिप्परक्षिता के मन में यह अनुभव पहला था । अब तक वह सम्राट् की वासना की दास थी, यत्र की भाँति उसको अपना कर्तव्य पूरा करना पड़ता था । किन्तु आज वह, अपने हृदय की वासना कामना का पात्र खोजन को विवकल हो उठी थी । और कोई युग होता तो कवि उसे कुलटा, कलकिनी और न जाने कितने विशेषणों से विभूषित करता किन्तु आज के कवि ने नतिकता के बंधन को तोड़कर मन के रहस्य को जानने की चेष्टा की है । इसीलिए सोहनलाल द्विवेदी तिप्परक्षिता के हृदय को इतने निकट से देख पाय हैं—

मन का हस उडा मानस से
चुगने मुक्ता उज्ज्वल
उच्च नभोमण्डल में उडकर
पाने जीवन सबल ॥^२

जीवन का सबल खोजने की कामना कितनी निरीह और पवित्र है किन्तु बचारी तिप्परक्षिता पर कुणाल की विमाता होने का अभिशाप था । इसीलिए जीवन में एक नवीन स्वप्न के उद्गम होने पर भी वह भयभीत थी—

तिप्परक्षिता लगी भूलने
के हिंदोल
स्वप्नो के
कव चायेगा मिलन प्रात
उमडेंगी सुख हिल्लोल

उन्नत कुच कुभो को लेकर
फिर भी युग युग की प्यासी सी
आमरण चरण वृद्धित हाने
वाली प्रेयसि सी दासी-सी
नीरव थी नूपुर की रनभुन
नीरव ही था किकिण का ख
नय था, कोई सुन ले न कही
इन चंचल चरणों का बभब ॥^३

अभिप्राप्त व्यक्ति के लिए सुख की कामना करना मूल्यता है, इस रहस्य को

१ था सोहनलाल द्विवेदी—कुणाल, पृष्ठ ३१

२ वहा, पृष्ठ ३२

३ वहा, पृष्ठ ३६

प्रभागिनी तिप्यरक्षिता न समझ सकी। इसीलिए कुणाल के समीप प्रणय की भागने चली गई—

आइ कुणाल के पाश्व
तिप्यरक्षिता सज सालह शृंगार।
रति चली मुग्ध करने जस,
रूठे अनग को, ले उमार ॥^१

वह उससे कहने लगी—

कुछ समझा कुछ दखा तुमने
है जग जीवन में भार कौन ?
अलि क्या कहता है सरसिज से,
सरसिज खिल उठता त्याग मौन ?
बोलो कोकिल क्या कहती है ?
मधुश्रुतु में आभ्र पल्लवित से
क्या कहती बहती सरिताएँ
मिलती हैं सिंधु उच्छ्वसित से
समझे कुणाल क्यों मलयज में
कलिका का केसर उडता है ?
अनजान पाथक पावस श्रुतु में
सहसा निज गह को मुडता है।

तिप्यरक्षिता न समाज की नीतिभंग का धार अपराध किया था, भला समाज का मुनि उस कस सहन करता, अपराध की याद तिलाते हुए उसने उसे क्षाप दिया और रक्षानाप के लिए ईश्वर की पूजा आराधन का पुण्यभाग भी दिखा दिया। कुणाल समाज में समाज के बंधन बोल उठ—

क्या कहती हो यह माता तुम
यह मेरे लिए पहली है,
क्या हुआ तुम्हें है आज कौन-
सो मूभी यह रगरेली है ?^२

विधवा तिप्यरक्षिता ने जब स्पष्ट कहा—

मैं तो अपने घर तरतम का
सौरभ बराग घर चरणों में
उत्तरिण बन रही मुझ को,
उत्तर धाता किन बरणा में।

^१ श्री महाभारत विरह—पृष्ठांक, पृष्ठ २८

^२ श्री श्री १५४ ११ १०

तब—

मर्महत से थे अब कुणाल
 अद्भानत प्रणत बने अस्थिर ।
 'आर्यो तुम हो जननी मेरी,
 सोचो तो, क्या कहती हो फिर ।
 कसे यह साहस हुआ तुम्हें,
 माता अब राजभवन जाओ ।
 कुछ पूजा भजन करो जिससे
 हलचल में परम शान्ति पाओ ॥

पौराणिक गाथाओं में अभिराज से यक्ष और गणध राक्षस हो जाते थे और अपने मूलगत स्वभाव को भूलकर अपनी दुदशा के कारण क्षापकर्त्ता के लहू के प्यास ही जान थे। यही दशा अभिशप्त तिष्यरक्षिता की हुई। एक क्षण के लिए वह स्तब्ध रह गई—

पीकर आँसू के घूट, रक्त के घूट
 गरल के घूट, शांत,
 निर्जीव शिला की मूर्ति-सदृश
 वह खड़ी रही नीरव अशान्त
 आँखा में था घन अघवार
 पदतल बिखरे थे अग्निसड ।
 वह चलती थी अगारो पर,
 लेकर के जलत प्राण पिंड ॥^१

उस क्षण में जब पुराना व्यक्तित्व जलकर क्षार हो गया और नया राक्षसी बर्तन का व्यक्तित्व उभरने लगा। कुणाल के लिए अनंत ममता को हृदय में मँजाकर भी वह प्रतिहिंसा से भ्रमक उठी—

ममता कहती है, मान मान
 निमम ही इतना हठ न ठान',
 पर धाव कह रहा पुन भूल
 अपन पथ पर फिर रख न 'गूल' ।
 वह रही लाज मर जनधिकूल
 प्रशालन कर या पकमूल,
 मैं साच न पाती थका पान,
 इस दुख से कस मिले प्राण ?

मैं निभरिणी पत्थर हूँगी
अपने हाथों से विप हूँगी

मैं इस छल का बदला लूंगी
प्रतिहिंसा बनकर धधकूंगी।^१

प्रतिहिंसा की अग्नि में अपनी अल्पत अभिलाषाओं को जलाकर उसने जो लिख बनाई, उसी को छल से कुणाल की आखा में भोंक दिया जिससे फिर वह उसे ग्राह्य न कर सके। मानवी दानवी बन गई।

समाज के अनौचित्य के कारण तिष्यरक्षिता की विरह वेदना को विरहाभास कहने से मन नहीं मानता। वस्तुतः आभास बड़ा होता है जहाँ वास्तविक प्रस्तुत नहीं होती किन्तु यहाँ पग-पग पर तिष्यरक्षिता की बदनाम हृदय को बरबस मीडती चलती है। प्रतिहिंसा से उसने कुणाल जैसे महान व्यक्ति को अर्थात् कर दिया, यह दूसरी बात है किन्तु वह प्रतिहिंसा भी तो उसकी विरह की पीड़ा का ही प्रतिरूप थी। कुत्सित ध्वसात्मक प्रतिरूप, जहाँ प्रेम का कुण्ठित होने पर विरही प्रेमपान को पीड़ा देने में सुख का अनुभव करता है। यह परिवर्तन उसके मन की मनावज्ञानिक प्रतिनिधायी जिसे मनोवक्ता 'परपोइन' की स्थिति (Sadism) कहते हैं। यह समाज का अभिसाप था जिस पर न तिष्यरक्षिता का बसा था, न ही कुणाल का बसा। समाज के कृत्रिम व धन का तिष्यरक्षिता के मन की यह दुबल चुनौती थी।

स्थूल दृष्टि से दक्षन से सोहनलाल द्विवेदी की 'उवशी' की स्थिति भी 'तिष्यरक्षिता' के सदृश प्रतीत होती है। परन्तु वास्तव में वे दा विभिन्न परिस्थितियाँ हैं।

उवशी इन्द्र की प्रियतमा थी। अजुन के रूप नावण्य पर मुग्ध होकर उसने उनसे प्रणय याचना की और अस्वीकृति पान पर उह नपुंसक होने का शाप दिया। अजुन ने भी इन्द्र की प्रियतमा का नातसे उसे माँ कहकर पुकारा था।

विमाता की पुत्र के प्रति प्रणय याचना को भी कुणाल और तिष्यरक्षिता से सबध से हमने विरहाभास न मानकर विरह भाव ही माना है, क्योंकि तम्रण तिष्यरक्षिता को वस्तुतः जीवन में कभी प्रेम का मधुर अनुभव न हुआ था। वह उसमें वचित कर दी गई थी। समाज ने उसकी भावनाओं पर अनुशासन का घोर अनुशासक लगा दिया था जिससे वह मचल न सक। उसकी पीड़ा वास्तविक विरह की पीड़ा थी।

इधर उवशी अप्सरा हैं, चिर तरुण। वह सामान्या नायिका है और प्रत्येक सुन्दर युवक पर लुभा जाना उसका स्वभाव है। सामान्या नायिका के प्रेम को वाध्यशास्त्रियों ने शृंगारभाग माना है क्योंकि वहाँ रूप और धन का लाभ प्रधान भाव रहता है हृदय का समर्पण नहीं। उवशी को धन का अभाव नहीं था, न ही उसकी आवश्यकता के लिए

कृतिक प्रवच कविता म विरह भावना

ह अजुन के समीप गई थी। वह रूप की लोभी थी।

जहाँ तिप्परक्षिता कुणाल से 'जीवन का सबल' पाने गई थी, वहाँ उवशी पाय के प्रण को डिगान के लिए अपना उवशी नाम सायक करने को।

चली उवशी,
 नाम सायक बनान को
 धीर गम्भीर पाय प्रण के डिगान को,
 रगने को सौ दय के रग म
 विलास के डग म
 सुख से सरोजिनी,
 सोने को, साती जसे
 नीरव निशीय म
 नयन बन्द

मौन स्पद

अजुन के सग म।^१

प्रकृति और उद्देश के अनुरूप परिस्थिति म दोना का आचरण भी भिन है। तिप्परक्षिता के 'मन का हस मानस से उज्ज्वल मोती चुनने के लिए गया था, 'आमरण चरण लुठित होनवाली दासी' जसी तिप्परक्षिता की दशा थी। वह 'अनजान पथिक के पावस श्रुतु म अनायास घर की ओर मुडने के भाव' का अनुभव करना चाहती थी समाज से अभिसप्त 'नीरव थी नूपुर की लभभुन।

यहाँ रूपगविता उवशी, अजुन से कुछ लेने नहीं आई थी, वह अपने अपूर्व रूप और यौवन का दान करके उह कृतकृत्य करना चाहती थी। वह रूप और यौवन जिमकी अभिलाषा देवता करते हैं और उह नहीं मिलता। जहाँ तिप्परक्षिता म आत्मा की भूख थी, वहाँ उवशा म रूप की तपित और शरीर की भूख है। तिप्परक्षिता की व्यथा नारी के प्रभाव का शाश्वत-व्यथा की कथा है और उवशी की वासना, विलास की एक करवट मात्र—

किन्तु,
 आज देने में आई हूँ—
 देती जो किसी को नहीं
 अनुपम अमूल्य निधि
 उत्सुक, उत्कण्ठित, उद्सीव, उमन विधि,
 देव, असुर, नाग, किन्नर, गंधव, सप,
 चाहते जिस हैं
 और चबल प्रचल पसार

१ था मोहननाथ द्विदश—उवशा (वामवदशा), पृष्ठ १२

भिक्षा सी मागते है, भिक्षुक हो बार बार
निराधार

पुण्यशील ! तपोनिधे !

तप के प्रसाद सा, नियम अपवात् सा

अपने इस अर्निद्य अनवद्य

रूप ना हृदय ना यौवन का दान,

प्राण इसे स्वीकृत करो

श्रेष्ठतम दान यह ।

आज सीमांत म भरो नवसिद्धर ।'

उवशी की प्रज्वलित वासना अतन्ति का क्षणिक उदगार था । अत वह विरहा
भास है, विरह नहीं ।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्याय क अनेक प्रबंधका या की विरह भावना के अध्ययन के परचात यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि विरह इनके रचयिताग्रा क लिए आहत ग्रह का विवश रुदन मात्र न था वरन लाकादर्शा की रक्षा करते हुए उ ह प्रेरणा प्रदान करनेवाला माग प्रदक्षक स्तम्भ था । दगभक्ति और समाज के प्रति क्तव्य इन दो उत्तरदायित्वा को लगभग सब काव्या क विरही प्राणपण से निभाने की चेष्टा करते रहे है । स्वप्न' और 'पथिक' की नायिकाग्रा सुमना और पथिक की पत्नी से लेकर प्रिय प्रवास' की राधा, 'बदही बनवास की सीता तथा मथिलीशरण गुप्त की उमिला, यशोधरा, राधा, उत्तर, दानुन्तला और विष्णुप्रिया एव जयभारत क वृद्ध शातनुसब इसी क्तव्य कम म दीक्षित दिखाई पडते है । सब अपनी व्यक्तिगत पीडा को समष्टि क सुख के लिए बलिदान कर सकते हैं अथवा करने को व्याकुल एव तत्पर प्रतीत होते है । प्रसाद की श्रद्धा और मथिलीशरण गुप्त की यशोधरा दोनों अपनी विरहावधि क एकमात्र अवलम्ब पुत्रा को नोबकल्याण के लिए प्रस्तुत कर देती हैं । साकेत सत की माण्डवी प्रिय के समीप रह कर भी विरह-व्यथा भेवती है और 'रावण महाकाव्य की धयमालिनी अनंत व्यथा सहती हुई पुत्र को दानु से प्रतिगोचर बन के लिए उत्तेजित करती है । प्रिया का विरह निरासा क मुलसीमास क समुख भारत की विराट संस्कृति के रहस्य का उदघटित करता हुआ उह' रामचरित मानस जम महान ग्रंथ की रचना के लिए प्रेरित करता है । लोकाग्रा की प्रतिष्ठा प्रत्यक्ष अथवा गौण रूप म सासृतिक प्रबंध कविता म है अथव्य

सांस्कृतिक प्रबंध कविता में विरह भावना

किन्तु उससे विरह की मार्मिक अभिव्यजना को अधिकांश क्षति नहीं पहुँची है। यह एक सुयोग है कि कतय और भावना इनके विरहोंके हृदय को उद्दलित और मथित करती हुई भी एक-दूसरे पर हावी नहीं हुई है और उनका स्वस्थ उत्पन्न ही कवि बन सका है। कतव्य और भावना के उद्देलन और दृढ़ म अग्र्य व्यक्तिगत विघ्नपताएँ भी प्राप्त होती हैं। कहा अनुपात से भावना विरहो को अधिक प्रभावित करती हुई प्रतीत होती है और कही कतव्य। 'स्वप्न' की नायिका सुमन आत्मगौरव और प्रतिष्ठा में प्रेरित होकर देश की श्रास युद्ध करन जा सकती है और हरिग्रोध की सोता और राधा कतव्य पर भावना का समभदारो स उल्लग भी कर सकती है। दूसरी श्रास माकन की उर्मिला है जा कतव्य से विवश-सी होकर भावना के उन्माद में विरह के दीघ चोदह वयो की अवधि काटती है। माण्डवी भाव और कतव्य में सामञ्जस्य स्थापित करती हुई निस्वार्थ सेवा को लक्ष्य बना लती है।

सिद्धि के मुमुक्षु प्रिय के द्वारा त्यागी गई नायिकाश्रा म यगारो और विष्णु-प्रान करती हुई भी यथासम्भव आत्माभिमान की रक्षा करती है और दूसरी दीना सा पति क समुख विधिधाती है।

कथा प्रसगाक प्रवाह में सांस्कृतिक प्रबंध काव्या में कुछ और नवीन चरित्रा और उनकी विरहानुभूतिया का मनोव्यानिक और मार्मिक चित्रण भी हुआ है जस कृष्णायन में राजकुमारी मित्रविन्दा, द्वापर में बुब्बा और गुरु भवतसिंह की नूरजहा में अनारकला है। इन पात्रा की विरहानुभूति में मार्मिक अतद्वृद्ध के समावेश न उह अत्यन्त ममस्पर्सी बना दिया है। हिमालय की पुत्री पावती की पीडा और चारित्रिक दम्ता स यद्यपि ससृष्ट का पाठक अनभिन्न न था किन्तु रामानन्द तिवारी न उस हिन्दी पाठका के लिए मुनम बना दिया।

सांस्कृतिक प्रबंध काव्या की विरहाभिव्यक्ति में परम्परागत परिपाटिय का उचित समावेश भी यत्र तत्र उपलब्ध है। इनमें सदेस पद्धति, कामदशाएँ और ऋतुवर्णन— बारहमासा प्रमुख हैं। प्राचीन सदस-पद्धति के अनुरूप नदीतूति, पवनतूति और चन्द्रतूत के वर्णन त्रमश यद्योशरा, प्रियप्रवास और रावण महाकाव्य में प्राप्त होत हैं। 'सदस-पद्धति' में पाय की मानसिक स्थिति के अनुकूल चित्रण का प्रयत्न है उनका दिग्दर्शन कालिदास के मघतूत की भाँति ही मानवीय भावनाश्रा के अत्यधिक निकट है। 'प्रिय-प्रवास' की पवनतूति के वर्णन में यत्न और युक्ति से विरहो की मानसिक स्थिति का प्रपण का आग्रह भी है। ऋतुवर्णन और बारहमासा के सम्बन्ध में भी यही कहा जा सकता है कि उनमें कवियों ने पात्रा क मन स्थिति का पूण सामञ्जस्य प्रतिष्ठित रखन का प्रयत्न किया है। काम-दशाश्रा का चित्रण परम्परागत होत हुए भी अधिक मनाविधान संगत है। घाघुनिक युग में मनोव्यानिका न जिन मनोरहस्या का उद्घाटन किया है चेतन और मघचतन के रहस्या का स्पष्ट किया है, उसका प्रभाव हिन्दी के कवि पर भी स्पष्ट

है। 'माकत की उमिना की काम दशाग्रा में चेतन और अधचेतन के द्वन्द्व से यह स्पष्ट है कि अधचेतन मन का चेतन के विरुद्ध कसा घोर सघप चला करता है। कसे वह विरही के मानस को भकभोरता है।

सक्षेप में कहा जा सकता है कि सांस्कृतिक प्रवृत्त कविता में विरह की परम्परागत परिपाटी की रक्षा के साथ युगानुकूल चेतना और लोकादर्शों से समद्ध विरह भावना का सफ़न चित्रण हुआ है।

तृतीय अध्याय

ध्यायावादी काव्य में विरह-भावना

२०वीं शताब्दी के प्रथम दस वर्षों के समाप्त होते होते भारत में अंग्रेजी शिक्षा और सभ्यता का पर्याप्त प्रचार हो चुका था। विश्वविद्यालयों में विदेशी ढंग का सहशिक्षण का प्रचार से व्यक्तिगत स्वातंत्र्य के नवीन विचार इस युग के युवक हृदय में घर कर रहे थे। प्रेम और सौन्दर्य के विषय में भी इस युग का भावुक युवक रोमानी स्वप्न बना रहा था। किन्तु सामाजिक परिस्थितियाँ इस प्रकार के विचारों और अनुभूतियों के अनुकूल नहीं थी। मध्ययुग की जबर सामंती रूढ़ियाँ दृढ़ता से अपने अधिकार की रक्षा में सलग्न थीं। द्वितीय युग की कठोर नतिकता के वातावरण में साहित्य में व्यक्तिक प्रेम और विरह की स्पष्ट अनुभूतियाँ कहीं अभिव्यक्त होने का विचार भी अचिन्त्य था।

निदान भावुक नवयुवक कवियों का अंतर्मुखी हो जाना स्वाभाविक ही था। प्रकृति का अधिकाधिक ससर्ग, प्राप्त करके उठे हुए उसके जीवन को निकट से देखा और मानव-जीवन के काय-व्यापारों तथा प्रकृति के जीवन में अद्भुत साम्य के रहस्य की उपलब्धि थी। इस रहस्य की प्राप्ति से मन के भावा की अभिव्यक्ति का नवीन माग दिशा प्राप्त हो गई। प्रकृति के प्रतीकों के द्वारा मन की सुख दुःखात्मक अनुभूतियों को अभिव्यक्ति का स्पष्ट अवकाश मिलने लगा। अर्थात् प्रकृति के विभिन्न उपकरणों को आलम्बन रूप में चेतना सन्निविष्ट प्राणी का भाँति अनुभूत करके उनके प्रेम और विरह के मिस इहानि अपने हृदयगत भावों को व्यक्त किया। इसके अतिरिक्त प्रकृति की अनन्त सुन्दरी नारी के रूप में कल्पना करके भी यह स्वयं उसके भोक्ता बने, उसके प्रति अनक कोमल भावा और बदनामी का अभिव्यक्त किया।

विरहानुभूति का तीसरा रूप रहस्यवादी विरहानुभूति के रूप में प्रकट हुआ। प्रकृति के साहचर्य से उस अनन्त सौन्दर्य की निर्माणवादी अलौकिक मत्ता की ओर भी भावुक का ध्यान गया। उसके प्रति निरन्तर आश्चर्य का अनुभव करते-करते वह उसकी प्राप्ति के लिए विकृत हो उठा और उसकी विरह-वेदना में तड़पा भी। मट्टि में व्याप्त मत्ता के प्रति यह व्यक्तिक भाव कुछ धार्मिक युग की मौलिक विशेषता नहीं है। मट्टि के प्रारम्भ से ही प्रकृति और उसके निर्माता के प्रति जिज्ञासाएँ और अनुभूतियाँ मानव मन को अभिभूत करती रही हैं। धार्मिक युग की रहस्यानुभूतियों की विशेषता यह है

कि इनकी अनुभूति करने वाला भावुक समाज और जीवन के दैनिक कार्यों से असम्पृक्त उस अलौकिक सत्ता का एकान्त आराधक नहीं है, जीवन की विविधताओं में उलझा हुआ साधारण प्राणी है। अतः रहस्यवाद (अपारिध सत्ता और जीव के व्यक्तिगत प्रणय) के ग्रन्थ को समझकर उसकी पूर्व-पृष्ठभूमि के आधार में इन युग के भावुक की रहस्यवादी विरहानुभूतियाँ का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। प्रस्तुत अध्याय में सर्वप्रथम रहस्यवाद के ग्रन्थ और उसके विविध सस्थानों का विवेचन करने का प्रयत्न किया गया है, तत्पश्चात् प्रमुख छायावाद कवियों के काव्य में प्राप्त विविध विरहानुभूतियों का अध्ययन का प्रयत्न है।

प्रसाद के काव्य में रहस्यवादी विरहानुभूति और लौकिक विरहानुभूति की दो समानांतर पृथक धाराएँ उपलब्ध हैं अतः उनका विवेचन पृथक पृथक किया गया है। ग्रन्थ छायावादी कवियाँ, महादेवी, पत और निराला में इनका स्पष्ट विभाजन सम्भव नहीं है अतः उसके परस्पर प्रभाव को विरहानुभूति के अध्ययन के सम्बन्ध से यहाँ लक्षित किया गया है।

रहस्य भावना का उद्गम और उसकी भारतीय परम्परा तथा आधुनिक रहस्यवाद

सृष्टि के प्रत्येक कायकलाप को अनुशासित तथा सुष्ठु रूप में गतिशील देखकर उसके नियन्त्रिता को जानने की अभिलाषा, मनुष्य में आदिवाकाल से रही है।^१ वैदिक ऋषियों ने उसके रूपनिर्माण का भरसक प्रयत्न किया किन्तु हताश 'नति-नति' करके रह गए। उसका रूप स्थिर करने में स्वयं को असमर्थ मानकर उन्होंने उस अरूप ही रहने दिया किन्तु जानने की प्रक्रिया में कई नवीन रहस्यों का उदघाटन हुआ। प्राचीन ग्रन्थों में दल में बट गए। उनमें से एक दल तर्क और युक्ति से ब्रह्म के रूप निधारण का प्रयत्न करता रहा और दूसरे ने उसके रूप निर्माण में तर्क व बुद्धि की पराजय का घापित किया।^२ इसी दूसरे दल के मनीषियों ने यह अनुभव किया कि मन केवल उसको जानने की जिज्ञासा से सन्तुष्ट नहीं है, अधिकाधिक उस आर आकर्षित होता जा रहा है। कभी कभी ऐसे स्थल भी अनुभूति में आते हैं जब व्यक्ति उसके आलिंगन में निबद्ध, सम्पूर्ण विश्व को कुछ समय के लिए ऐसे भूल जाता है जस कोई पुरुष अपनी प्रिया के आलिंगन में स्वयं को और

१ वनेषु पति प्रेषित मन केन प्राण प्रथम प्रेत युक्त ।

कनविना वाचमिमा वदन्ति चक्षुः श्रोत्रं क उ ददो युनक्ति ॥

—वेनोपनिषद्, प्रथम भाग, प्रथम श्लोक

२ नावमाना प्रवचनेन लभ्यो न मथया न बहुना श्रुतव ।

—मुण्डकोपनिषद्

नेषा तद्वेग्य मतिरपनेषा ।

वस्व का भूल जाता है।^१ रहस्यभावना के उदगम के विषय म यह उक्ति ठीक ही है।

परमात्मा का अनिर्वच्य रूप सब कुछ हात हुए नी हमारे उपयोग का नहीं है। जो 'रूप रेख गुन जाति जुगुति विन' है वह हमारे आश्रय का विषय नहीं हो सकता। वहाँ तो 'निरालम्ब मन चकृत धाव ही हाता है। सग्रह मनुष्य की प्रकृति है और सुन्दर के प्रति आकर्षण उसका सहज प्रवृत्ति। इस विषय म आवाल बृद्ध सभी की मानसिक स्थिति समान है। माना की सहज मानसिक प्रवृत्ति श्रेष्ठ को अपना बनान म मुख और सताप का अनुभव करती है। सग्रह की यह स्वयंभू मनावृत्ति जिसे एकत्र करना चाहती है उसम आकर्षक गुणा की प्रतिष्ठा करती है। इसीलिए अल्प म रूप, अपना म नाम, अरेव म रेख अणुण म गुण और अजाति म जानि की कल्पना उत्पन्न हा जाती है और इसीलिए 'रूप रेख गुन जाति जुगुति विन' वह 'रूप रेख गुन जाति जुगुति मह बनकर हमार सग्रह का विषय बन जाता है।

परमात्मा की यह भावना समातन नावना है। वदा म इसीलिए उने हिरण्य गभ, अग्नि अथवा पुरोहित कहकर रूप दिया गया है और यदि यह सत्य है कि वद समात का प्राचीनतम साहित्य है तो यह भी वाध्य है कि वद न ही सबसे पहल उस अल्प मरूप कल्पना की। उपनिषद् अनेक रूपो मे यही नाम करते आए हैं। अग्नि विद्या मधु विद्या, सामापासना, प्राणापासना इत्यादि सबम उस अतीन्द्रिय को ई द्रव ग्राह्य बनान की चेष्टा प्रतीत हाता है। इस प्रकार उसकी निराकारता को सङ्गित विन विना हा उमम माकारता स्थापित करने की चेष्टा रहस्य भावना का मूल है।

१ तथा प्रियया स्त्रिया सपरिष्वक्तो न वाचो किञ्चन वेद नात्तरन् (बहदारयक)। उपनिषदसु च विचारो भावयते स प्रस त्व स्त्रिया म शोड।

—प्रसाद क (रहस्यभा) लिप्य से, (वाच्य और कला तथा अन्य लिप्य)।

+

+

+

From the ordinary process of dreaming sleep a transition is made to deep sleep when the soul advances more closely to the world to come, and from the mere consciousness of individual things, such as the concept of being a King or a God, becomes conscious of itself as the universe, in which case however, there is no longer any possibility of contrast between subject and object, and ordinary consciousness is superseded by the union for the time being with Prajna Atman the intelligent self the absolute. In this condition as a man in the embrace of his Darling wife does not have any consciousness of out or inner. The spirit in this condition is without desire it is unaffected by good, unaffected by evil the father ceases to be father, the mother the mother the world the world the Gods the Gods

आर्या के इन दाना सम्प्रदाया को दुःखवादी और आनन्दवादी कहा जाय तो अनुपयुक्त न होगा। दुःखवादी आर्यों को जीवन के कष्ट और क्षणभंगुरता का अनुभव हात हुए भा कही सहारा न था सब कुछ 'नूय था अत दुःख था और आनन्दवादियों के सम्पूर्ण कष्ट और क्लेश भी रहस्यमय प्रिय के 'याज सं मुखमय हा जात थे। दुःखवादी विवक की धारा का नसर्गिक विकास विरक्ति मूलक बौद्धधर्म में हुआ, और आनन्दवादी, यम यमों का मा यम बनाकर अधिकाधिक सुख की प्राप्ति के आराधक रह। स्वयं भगवान तवागत भी अपने यम के प्रचार के हेतु सिद्धि की प्राप्ति करानेवाले मंत्रों की अवहेलना न कर सके यद्यपि उहान उसे त्याज्य माना। भगवान बुद्ध के महानिर्वाण के पश्चात् आनन्द के प्रति यही आकषण उनके अनुयायियों में महायान के अस्तित्व का कारण बना।

महायान का नमिक विज्ञान मन्त्रयान से वज्रयान में हुआ जहा बौद्धधर्म के त्रिरत्न बुद्ध, धर्म और सघ के स्थान पर कामिनी, काम और सुरा बन गए। प्राचीन बौद्ध रहस्यमय अनुभूति— जायया सम्परिष्कृतो न बाह्य वेद न आतरम् का कुतिसत रूप (यागिनी आराधना) के रूप में व्यभिचार बना। किन्तु फिर सुन्दर का युग आया, सिद्धों की यागिनी भौतिक-बौद्ध सखा में रहने वाली भिक्षुणी न होकर सवागमों की त्रिपुर सुन्दरी का प्रतिरूप थी।^१ कि तु सो 'हम की स्थिति में वह माता न रहकर प्रिया बन गई, बौद्ध ऋषि की भार्या के समान 'धरिणी। आत्म रूपी पुरुष का प्रवृत्ति के रहस्य रूपी भार्या के प्रति यह प्रणय अदभुत था।

१ ऊचा पावत तर्हि बसः सखरी बानी ।
मारुगि विन्द परहिण सखरी गिवन गुहरी ॥
माया ॥
उनः सखरो पागल शखरो माकर गुला गुशउर ।
तोदारि पिय धारिणः गामे रुहज सुदरा ॥
शवरपा ।

—हरवत्त बौद्ध—अपभ्रंश साहित्य १९४ २८१, २८२

At time of recitation I remember the mother
Lustrous as the scarlet hibiscus
Her body pasted with saffron and sandal
Her hair kissed by musk
The Mother with smiling eyes
With red garlands ornaments and raiment,
Who holds the arrow bow noose and goad
The charmer of countless men

—A Avelon's Translation of Tripur Sundar Stotra from Tantras
Their Philosophy & Occult Secrets—D N Bose & Hiralal
Halder

छायावादी काव्य में विरह भावना

दुःखवादी भाव भी केवल अरूप की जिनासा से सतुष्ट न रह सके। उहाँन उसमें ऐसे सर्वाधिकतमान पुरुष की कल्पना की जो विरह के अन्तिम मत्त्व का प्रतिरूप हों। दूसरी ओर वह भी आनन्द की मूक नर्तिका लालसा को न त्याग सके और अपने आदेश पुरुष को उसके ललित रूप का समावेश भी उहाँन किया। ऐसी पूर्णावतार कृष्ण का था। माधुय भक्ति का उदगम यही है। किन्तु कृष्ण का रूप मन-कम-वचन से गोचर होत हुआ था उनसे पर था, अतः गोपिया का रूप मन-कम-वचन से गोचर था भक्ति में माधुय का सुख प्राचीन ज्ञान-दवादी भावना का प्रतिरूप बनकर शाश्वत सुख बन गया।

सिद्धा की विगुह रहस्यात्मक सुखद अनुभूति पर जब दुःखवादी भावों की साधना का कठोर नियंत्रण और अवरोध उपस्थित हुआ तो वह भी कष्टसाध्य प्रियतम की साधना को दुःख मान बैठे। इन्द्रिया और मन पर कठोर समयन और नियंत्रण रखकर 'उसको' प्राप्त करने के प्रयत्न हीन लगे। कबीर तथा परवर्ती सन्तों की साधना में सिद्धों की विरह के दुःख का अदभूत सम्मिश्रण हुआ। प्रियतम से रगनरी खेलत हुए भी कबीर उनके विरह में तड़पत हैं।

वैदिक आनन्दमयी रहस्यानुभूति में दुःख का समावेश नर्तिका और स्वाभाविक इतिहास बन गया क्योंकि कष्टपूर्ण सांसारिक जीवन में अपाधिक्य में मिलन की अनुभूति कुछ क्षणों के लिए होती है शाश्वत नहीं बन पाती। अतः उसमें विरह का हाता स्वाभाविक है, साधक मिलन के मुखद क्षणों का अधिकारिक बड़ा सकता है और तब अन्त में है कि साधना से वह उस मुखद क्षणों का अधिकारिक बड़ा सकता है और तब अन्त में विरह का स्थिति ही न रहती। विरमिलन ही रहस्यवादी के प्रेम की अन्तिम स्थिति है।

भारतीय रहस्य परम्परा को मध्ययुग में फारस के सूफिया की साधना से बल प्राप्त हुआ और यह द्विगुणित रूप से समपन्न हुआ। सूफिया की रहस्य साधना और भारतीय रहस्य साधना में तात्त्विक भेद नहीं है, यह कहना नुष्टपूर्ण है कि सूफिया का अपाधिक्य ब्रह्म प्रियतमाया और भारतीयों का प्रियतम पुरुष (जसा कि उपयुक्त भारतीय रहस्य साधना के विवचन में स्पष्ट भी है)। मध्ययुग में सन्तों की साधना भारतीय साधना के विवचन से भी अभिव्यक्त नहीं हुई उनकी व्यक्तिगत साधना को भारतीय रहस्य परम्परा का ही अभिक्रमिक विकास मानना चाहिए। कबीर का पोषण मुसलमान परिवार में होने के कारण मयाग से उसमें, भारतीय तरीकत मारीफत आदि सूफिया साधना के पारिभाषिक शब्द आ गए हैं। किन्तु उनके रहस्य का दुःखवादी अर्थ अनुभूति रूप में भारतीय ही है। सम्भव है कबीर न दाना में कोई तात्त्विक भेद न पान के कारण ही उनका समन्वय कर दिया हो। रहस्यवाद सम्प्रदाय का प्रारम्भिक युग में अन्तमुक्तता में पुरुष और प्रकृति, मनु और जातु सम्बन्ध जिनासाओं के फलस्वरूप अन्तितल भाषा था।

आधुनिक रहस्यवाद

आधुनिक युग में प्रथम महायुद्ध के पश्चात् जब बाह्य अभिव्यक्ति के माग कुण्ठित हुए और भावना अतमुखी हाकर प्रकृति के अधिक समीप आई तब पुन पुरुष और जगत सम्बन्धी जिज्ञासाओं ने भावुक के मन को आच्छादित कर लिया। मानव व जगत के जीवन का एकात्म कवि न बुद्धि के सूक्ष्म धरातल पर अनुभव किया और हृदय की भाव भूमि पर उसने जीवन की अस्पष्टता की रहस्यमयी अनुभूति की। तब उसके नियन्ता के विषय में फिर से जिज्ञासाएँ उठने लगी और भावुक 'उसके' मिलन तथा विरह की लहरों में हिचकाले लने लगा।

आधुनिक युग चेतना के विसर्जन का युग नहीं है न ही आज का रहस्यवादी दैनिक जीवन से असम्पन्न एकान्त साधक है। अत सामाजिकता की नतिकता में आज का रहस्यवादी की अनुभूति बाधित हो गई है। उसे प्रतीकों का आश्रय लेना पड़ा है। जीवन की बाह्य अभिव्यक्ति में अन्तरोप होने में क्या कवि अतमुखी हुआ है अत अपने गढ़ रूप में उसकी रहस्यानुभूति बद्धि के ऋषिया और सिद्धों की रहस्यात्मक अनुभूति के समीप होते हुए भी बही नहीं है। उनका भौतिक अनुभूति का सूत्र उ नयन ही अधिक माना जा सकता है।

यहाँ यह स्पष्ट कर देना भी आवश्यक है कि आलोचकों ने, प्राय छायावादी कवियों की सब मिलन विरह अनुभूतियों का रहस्यवादी अनुभूति मान लिया है, यह विचार ठीक नहीं है। छायावादी काव्य में रहस्यात्मक अनुभूति का अभाव न होने पर भी ऐसे विरह-काव्य की कमी नहीं है जो व्यक्तिगत पीड़ा को प्रकृति के प्रतीकों के आश्रय में व्यक्त करता है। अत उसकी अनुभूति सूक्ष्म अथवा वायवी सी दिखाई पड़ने लगती है। ऐसी वायवी अनुभूति को छायात्मक (सूक्ष्म व अती द्रवीय) विरहानुभूति कहना वा समुचित होगा किन्तु आध्यात्मिक अथवा रहस्यात्मक अनुभूति कहना ठीक नहीं।

पश्चिम की सौन्दर्यरूपता और रूपविधान को स्वीकार करते हुए भी आधुनिक रहस्यवादियों ने अपनी भावना और चिन्तन के श्रेष्ठ भारतीय भाव भागीरथी से ग्रहण किए हैं। प्रनाद पर वद उपनिषद, गव दान तथा बौद्ध दान, निराशा पर रामकृष्ण परमहंस और विवेकानन्द तथा पन्न और महादेवी पर प्रमद वदात और वष्णव त मया वस्था का प्रभाव पड़ा है।

रहस्य भावना के विविध स्थान

जिज्ञासा— रहस्य भावना का प्रथम स्थान जिज्ञासा है। सृष्टि के विराट विस्तार का नियमित रूप में नियंत्रित करने वाले अनासिक्त में प्रति जब भावुक का मन आस्थायान होता है तो मन की प्रथम प्रक्रिया हाती है जिज्ञासा। जिज्ञासा कुतूहल से उसके आन्वेषणापारा का दग्धता रह जाता है मन विस्मय में विमूढ़ सा रहता है। यही जिज्ञासा

यावादी काव्य म विरह भावना

दिक ऋषि के 'कस्म देवाय हविषा विधेम' के रूप म प्रकट हुई थी और कवीरादि मध्य-युग के सन्ता की वाणी म होती हुई आज के रहस्यवादिया की भावना म पनिब्यक्त हुई।

कहो भया अवर कासू लाग, कोई जाणगा जाननहार समागा ॥
अवरि दीस केता तारा, कौन चतुर ऐसा चितरन हारा ॥^१

—कबीर

तडित की मुस्कान सा वह कौन है ॥

—महादेवी

परिचय—उस 'अचिंत्य' का अधिकाधिक परिचय प्राप्त करते-करते रहस्यवादी जान लेता है कि उसकी स्थिति होने पर भी उसे शब्दोभनही बाधाजा सकता इसीसे जिनासु पुकार उठता है 'नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया बहुना ध्रुतेन —मुण्डकापनिपद् १'^१ कबीर कहते हैं वह यूगे का गुड है, तुलसी भी तमय होकर कह उठत है—'गिरा अनयन नयन विनु बानी' और प्रसाद—'कसे हो क्या हो इसका तो भार विचारन सह सकता'—(कामायनी)। यह परिचय की स्थिति है जिसम उस सौंदर्य सत्ता के महत्त्व से अभिभूत शंकर भी रहस्यवादी विमूढ-सा हो जाता है, फिर भी वह उसके हृदय म एक अभूतपूर्व कसक को भरने लगता है।

कौन तुम मरे हृदय म ?

कौन मरी कसक म नित मधुरता भरता अलक्षित ?^२

—महादेवी

परिचय म विस्मय की स्थिति के पदचात् ऐसी स्थिति आती है जब रहस्यवादी स्रष्टि के प्रत्यक कण के सौंदर्य को उस विराट के रूप मे एकात्म्य दखने लगता है और उसके अनन्त सौन्दर्य से उल्लसित हा उठता है। ओपनिपदिक कहता है—ईशावास्य इदं खवम्—ईशापनिपद्।

लाली, मरे लाल की जित देखो तित लाल,
लाली देखन में गई मैं भी हो गई लाल ॥^३

—कबीर

तेरी आभा का कण नभ म दत्ता अगणित दीपदान।
दिन को कनक राशि पढ़नाता, विषु का चाँदी का परिधान ॥^४

—महादेवी

१ श्री स्थानसु-प्रदान—कबीर ग्रन्थावली, पद १४१

२ बान्यक्या और अन्य निबन्ध, पृष्ठ ५३

३ सुधा महादेवी—याना, पृष्ठ १३५

४ श्री स्थानसु-प्रदान—कबीर ग्रन्थावली

५ सुधा महादेवी—याना, पृष्ठ ११५

वह अनन्त रूप राशि अनिवचनीय है इसे सभी रहस्यवादी एक कण्ठ से स्वीकार करते हैं।

वास्तविक रूपदर्शन का प्रयत्न और मिलन

प्रिय का आभा के बिखरे हुए सौन्दर्य कणों को एक स्थान, एक व्यक्तित्व में समन्वित देखने की अभिलाषा लगभग सभी रहस्यवादियों में मिलती है। मिस्र की देवी आन्सिस या आयदा (जा सत्यकी प्रतीक है) को देखने की चाहना पश्चिम के रहस्यवादी कवि अभिव्यक्त करते हैं। यहाँ श्रोतृनिपदिक ऋषि कहता है—

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।

तत्र पूषणपावणु सत्यधर्माय दृष्टय ॥^१

—ईशोपनिषद्

और प्रसाद—

सब कहते हैं खोलो-खोलो छवि देखूंगा जीवन धन की ॥^१

किन्तु जहाँ 'ईशावास्य का जिगामु उस रूप को देखकर निश्चय करता है—

योऽसावसौ पुरुष सोऽहमस्मि ॥^१

—ईशोपनिषद्

यहाँ प्रसाद का रहस्यवादी अपने अस्तित्व को पृथक् रखकर भी उससे चिर-प्रेम की कामना करता है—

तुम हो कौन और मैं क्या हूँ

इसमें है क्या धरा सुनो।

मानस जलधि रहे चिर चुम्बित

मर क्षितिज उदार बनो ॥

सायुज्य मुक्ति के मुमुक्षु और रहस्यवादी में वही अन्तर है जो ईशावास्य के ऋषि और प्रसाद में, दोनों रहस्य की खोज में तल्लीन रहते हैं किन्तु एक का उसके व्यक्तित्व में विलय हो जाता है और दूसरा विलग रहकर उससे नित्य प्रेम करना चाहता है।

विरह

मिलन के क्षण रहस्यवादी जीवन में अत्यन्त लघु हात है। अधिकांश वास्तव की भूमि में वह, अपने अपारिध्व प्रिय की स्मृति की कचाट से अश्रु बहाया करता है। लौकिक प्रेम में विरही की जा दगाए जाती हैं लगभग वही सब रहस्यवादी भी अपने जीवन में अनुभव करता है। मिलन के क्षणों के अनन्क अनुभव स्मृति रूप में रहस्यवादी की कविता में मिलते हैं।

१ ईशोपनिषद्, श्लोक १५

२ श्री नवरात्रप्रसाद—कामायनी

३ ईशोपनिषद्, श्लोक १६

छायावादी काव्य में विरह भावना

रहस्यवादी का विरह काव्यशास्त्री विरह की श्रेणियों में नहीं बाधा जा सकता किन्तु पूवराग, प्रवास, मान और करुण, सबकी स्थितियाँ 'यूनाधिक' रूप में सबत्र उसमें मिल जाती हैं। अर्थात् प्रिय से कभी प्रत्यक्ष भौतिक मिलन जसा मिलन सम्भव नहीं है। अतः करुण विप्रलम्भ की अथक प्रतीक्षा भी उसमें प्राप्त हो जाती है।

(रहस्यवादी विरहानुभूति प्रसाद)

'भावुनिक रहस्यवाद' का विवेचन करते समय पहले कहा जा चुका है कि छायावाद की सब विरहानुभूतियों को रहस्यात्मक अभिव्यक्ति नहीं कहा जा सकता। उनमें कुछ ऐसी व्यक्तिगत अनुभूतियाँ हैं जो प्रकृति के प्रतीका का आश्रय लेकर व्यक्त मतभेद है। कुछ उसको शुद्ध लौकिक विरह-काव्य मानते हैं और अन्य रहस्यवादी भावनाओं से समन्वित विरहानुभूति मानते हैं। प्रसाद के आश्रय के सम्बन्ध में विद्वानों में 'कुलजी ने अपने इतिहास में प्रसाद-सम्बन्धी आलोचना में लिखा है—

"आमू तो वास्तव में है शृंगारी विप्रलम्भ के जिनमें अतीत मुख की स्मृति, रहकर भलक मारती है। पर वही कभी व उस अनात प्रियतम के लिए बहते जानते हैं।"

नन्ददुलारे वाजपयी और विनयमोहन शर्मा प्रभृति विद्वानों ने आमू को लौकिक विरह-काव्य मानते हैं। वाजपयी का कहना है—

"आमू को अद्यात्म और छायावाद का नाम देकर उसे जटिल बना देने के पहले उसका उसके प्रकृत रूप में देखना चाहिए। विरह का इनका बड़ा मार्मिक वर्णन करने वाले कवि को किसी वाद की छाया में लेने की जरूरत नहीं—उसकी उच्चता स्वयंसिद्ध है पर वहन से क्या लाभ कि यह वियोग किसी परोक्ष सत्ता के प्रति है, जब प्रत्यक्ष जीवन का यह वियोग अधिक मार्मिक और अधिक सत्य है।"

विनयमोहन शर्मा जी का मतव्य है—

'या, प्रायः मनुष्य के हृदय में—चाहे उसका जीवन किसी भी नतिक घरातल पर स्थित हो—एक क्षण कभी-कभी अवश्य आता है, जब वह अतृप्त हो किन्ती अदृष्टता के प्रति आसक्ति-सी अनुभव करता है। ऐसे व्यक्ति यदि कलाकार या कवि हों, अपनी इस अनुभूति को व्यक्त कर देते हैं, पर चूँकि उनकी अनुभूति क्षणिक होती है इसलिए उनकी अभिव्यक्ति भी अस्थायी और धुंधली होती है। प्रसाद में एसी अनुभूति की वही-कभी लहर उठती दीख पड़ती है—पर जब उस अनुभूति की केवल कामना भर उनके मन में होती है तब हमें उस कामना को रहस्य भावना नहीं समझ लेना चाहिए।'

१ श्री रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ २१६
 २ श्री नन्ददुलारे वाजपयी—जयराकर प्रसाद, पृष्ठ ४२
 ३ श्री विनयमोहन शर्मा—कवि प्रसाद आश्रय तथा अर्थ २

कवि का काव्य में अधिकधिक सारगर्भित अथ देखना ही सहृदय का लक्ष्य होता है। 'आमू' की विरहाभिव्यक्ति की रससिद्धता गुद्ध मार्मिक विरहानुभूतियों के रूप में तो विवादास्पद ही नहीं सकती किन्तु यदि उसमें अधिक गम्भीर अथ प्राप्त हो सके तो उनकी आर दष्टिपात करना भी अनुचित नहीं होता।

जसा कि 'गुलजी ने कहा है, आमू का अधिकांश भाग लौकिक विप्रलम्भ है किन्तु यत्र-तत्र उसमें रहस्यात्मक अनुभूति भी मिल जाती है। यत्र तत्र भी क्या, आमू के द्वितीय मस्करण की विरहानुभूति का अध्ययन यदि किया जाय तो अर्थ के प्रथम बीस पंक्तियों में अभिव्यक्त हुई अनुभूति गुद्ध रहस्यात्मक विरहानुभूति और बाकी लौकिक विरह भावना दिखाए पड़ती है जिसका उत्थान उपसंहार रूप में प्रसाद लोकमंगल में करना चाहते हैं। इस रूप में प्रसाद के 'आमू' में निश्चित रूप से विरह की दो कोटियाँ मिलती हैं जिनमें प्रथम बीस पंक्तियों में अभिव्यक्त हुई अनुभूति रहस्यात्मक अध्यात्मिक अनुभूति है। 'आमू' की अनुभूति का अर्थ रहस्यात्मकता से लौकिकता की ओर क्यों गया? यह एक दूसरा प्रश्न है। वस्तुतः तो लोकमंगल की कल्पना की परिपक्वता के बाद ही रहस्यात्मकता आनी चाहिए थी। भावना के विकास में व्यतिरिक्त अवश्य दिखाई पड़ता है किन्तु उसका यह अर्थ नहीं कि उसमें आध्यात्मिक अनुभूति है ही नहीं। अस्तु।

आमू के द्वितीय मस्करण के प्रथम बीस पंक्तियों में आये हुए पदों को निश्चित रूप से रहस्यवादी विरहकाव्य में अंतर्गत रखा जा सकता है।

एकांत भावुक की अंतर्मुखी साधना में अपार्थिव नियन्ता के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न होती है 'आमू' की प्रथम पंक्तियों में ही यह भाव व्यक्त हुआ है—

इस करुणा कलित हृदय में
अब विवर्ण रागिनी बजती
क्यों हाहाकार स्वरा में
वदना असीम गरजती ?^१

करुणा कलित हृदय और वदना, यह दाना रहस्यवाद के लिए आवश्यक तत्त्व हैं। करुणाकलित हृदय में भावना और ममवदना की विशेषताएँ होती हैं, जो मानव को उसके स्वयं के मनुचित समारस आगे बढ़ाने और देखने की दिव्य दृष्टि भी देती है। विरह की हलचल 'हाहाकार' में उसके नियन्ता के प्रति वदना का जन्म होता है (वदना का अर्थ जानने की अभिलाषा माना जा सकता है।)

अव्यक्त के प्रति जिज्ञासा जागृत हो जाने के बाद रहस्यवादी को सम्पूर्ण विश्व अभावमय दिखाई पड़ने लगता है और प्रिय का भाव से वह उस रिक्त स्थान को भरना चाहता है—

घाती है गूँथ क्षितिज से
क्या लौट प्रतिध्वनि मरी

^१ आ १५५-१५६—आमू, पृष्ठ ७

छायावादी काव्य में विरह भावना

टकराती बिलखाती सी
पगली सी देती फेरी।^१
व्यक्त और अव्यक्त के मध्य चेतना रूपी तरंगिणी आन्दोलित हो उठती है।
व्यक्त (संसार) के कारण उत्पन्न विस्मृति के अकारण में अव्यक्त (अपारिचित प्रिय) की
मति नक्षत्रालोक की भाँति छिटकी हुई दिखाई देती है। कवि को ऐसा प्रतीत होना है
से वे सब उसकी पीढा रूपी अग्नि की छिटकी हुई चिनगारियाँ हो।

चेतना तरंगिणी मेरी
लेती है मदुल हिलोने।
बस गई एक बस्ती है
स्मृतियाँ की इसी हृदय में
नभ्रन लोक फला है
जैसे इस नील निलय में।
ये सब स्फुलिंग हैं मेरी
इन ज्वालामयी जलन के
कुछ शेष चिह्न केवल
मेरे उस महा मिलन के ॥^२

श्रीमू की निम्नलिखित पवित्रया को किमी भाँति भी लौकिक विरह के अतगत
नहा रखा जा सकता—

बाढ़बज्वाला साती धी
इस प्रणय सिंधु के तल में
प्यासी मछली सी आँखें
धी विकल रूप के जल में
बुलबुले सिंधु के फूट
नक्षत्र भाविका टूटा
नभ्र मुक्त कुन्तला धरणी
दिखलाई देती तूटी।^३

रहस्यवादी की विरह-दशा का यह वर्णन अग्न गुब्बे रूप में कवीरादि मता की
उपलब्धियाँ या काव्य रूपका की कोटि का ही है। जन में मछली के प्यास रह जान का
अप्यया क्या तात्पर्य हो सकता है? अव्यक्त का व्यक्त रूप विरह ही रूप का जन है,

^१ श्री अयराकरप्रसाद—आसू, पृष्ठ ८

^२ बहा, पृष्ठ ६

^३ बहा, पृष्ठ १०

और सायक की आग्व मछली के सदृश। पहले यह मछली रूपी आँखें रूप के जल में रहकर भी व्याकुल थी अब रूप का जल छिन छिन हो गया है। विश्व का सौन्दर्य, रहस्यवादी विरही को आकृष्ट नहीं कर पा रहा, सब कुछ लुटा सा शून्य-सा दिखाई देता है। प्रणय मिथु के तल में साईं हुई वास्तविक वदना की बाढव-ज्वाला जाग उठती है।

‘आमू’ के इस अंग की रहस्यवादिता को उमकीय पकितया और भी स्पष्ट कर देती हैं—

इस विकल वदना को ल
किसन सुख को ललकारा
वह एक अबोध अकिंचन
वसुध चतय हमारा ॥^१

यहाँ अबोध वसुध और चतय शब्द ध्यान देने योग्य हैं। रूप जल का मांह टूटने से पहले चतय वसुध पडा था उसकी वास्तविक स्थिति का ज्ञान नहीं था। अब बाढवज्वाला से विरह वदना का अनुभव करते हुए भी वह किसी चिर सुख की कामना करने लगा है।

इससे आगे की पकितया भी कवि की विरह यथा के अपायिब के प्रति होने का संकेत करती है—

अभिलाषाओ की करवट
फिर सुप्त व्यथा का जगना
सुख का सपना हो जाना
भीगी पलजा का लगना।

अभिलाषाओ की करवट शब्द में पकितया के अतमुखी होकर उनके अपायिब के प्रति उन्नयन का भाव है।

पीटा की अवस्थिति के बाद ‘मिलन’ के क्षणा का अनुभव भी प्रायः सभी रहस्यवादी करते हैं। उसकी अभिव्यक्ति के लिए लौकिक मिलन के प्रतीको का आश्रय भी लिया ही जाता है क्योंकि और काइ माध्यम रहस्यवादी विरही को उपलब्ध नहीं है। प्रसाद ने भी लौकिक मिलन सबतो से ही उस मिलन को अभिव्यक्त किया है—

इस हृदय कमल का घिरना
अलि अलको की उलभन में
आमू मरल का गिरना
मिलना निश्वास पवन में ॥^२

१ श्री जयशंकरप्रसाद—आमू, पृष्ठ ११

२ वहाँ पृष्ठ ११

३ वहाँ पृष्ठ १२

रहस्यवादी के जीवन में मिलन के वे क्षण अत्यन्त लघु होते हैं ठोस घरती पर पाव रमते ही वह पुन पीडा से तडपने लगता है। श्यामा और चातक की करुण पुकार में उस अपना ज्यथा का ही आद्र स्वर सुनाई पड़ता है। किन्तु अन्वय प्रकृतियाँ जो जिह्व उष अश्रु पीडा का अनुभव नहीं हुआ उसकी बात सुनने का अवकाश नहीं होता—

मादक थी मोहमयी थी
मन बहाने की पीडा
अव हृदय हिला देती है
वह मधुर प्रेम की पीडा।^१

चातक की चकित पुकारें
श्यामा ध्वनि सरन रम्योली
मेरी करुणाद्र क्या की
टुकड़ी आँसू से गीली।
वसुध जो अपने मुख से
जिनकी हैं मुप्त व्यथाएँ
अवकाश भला है जिनको
सुनने को करुण कथाएँ।^२

आमू के पृष्ठ सख्या १३ से पृष्ठ सख्या २० तक म प्रसादनमित्रन की अनुभूतियाँ का और अपनी विवशता का विविध वर्णन किया है। साधक का अपायिक प्रिय से मिलन वश ही होगा है जस लहरों का हिमकर से—

गौरव या नीचे आए
प्रियतम मिलने को मरे
मैं झटला उठा अकिंचन
दखे ज्या स्वप्न सवर।^३
× × ×
परिचय राका जलनिधि का
जसे हाता हिमकर से
ऊपर से किरणें आतीं
मिलती हैं गले लहर से।^४

^१ श्रीजयशंकरप्रसाद—माँसू, पृष्ठ १० १३

^२ वही, पृष्ठ १ १३

^३ वही, पृष्ठ १७

^४ वही, पृष्ठ १८

मीरा के 'हरी मैं तो दरद दीवानी मेरो दरद न जान कोय' की भाँति प्रसाद भी कहते हैं—

रो रोकर सिसक सिसक कर
कहता मैं करण कहानी
तुम सुमन नोचते सुनते
करते जानी अनजानी।^१

'ग्राम्' के दम प्रथम अशम रहस्यवादी की विरह यथा क सब सस्थान हैं—
जिनासा, गून्य, पीडा, मिलन और फिर चिर पीडा। उसको लौकिक विरह काव्य नहीं
कहा जा सकता।

पृष्ठ सख्या २० से आगे के सब पदांम लौकिक विरह भावना की अभिव्यक्ति है
जो पीडा की अतिशयता म अतींद्रिय हा गई है और उसका उ नयन कवि ने लोक मंगल
म करना चाहा है। इसका विस्तृत अध्ययन हम यहाँ न करके आगे दूसरे अश, 'प्रसाद के
काव्य म लौकिक विरह भावना म करण।

'ग्राम्' क इस प्रथम अश के अतिरिक्त रहस्यात्मक विरहानुभूति प्रसाद के काव्य
म अत्यंत विरल है। 'करना' की एक कविता 'खोलो द्वार', 'लहर' की दा एक कवि
ताम्रा और 'कामायनी' क आशा सग म यत्र तत्र उसके दर्शन होते हैं।

कामायनी के आशा सग म सृष्टि के आदिपुरण 'मनु' क मिस प्रसाद का भावुक
जिगामु पुकार उठता है—

विश्वदब, सविता या पूषा
सोम मरुत चबल पवमान
वरुण आदि सब घूम रहे हैं
किमके गासन म अम्लान ?
किसका था भू भग प्रलय सा
जिसम य सब विबल रहे,
अरे प्रकृति के शक्ति चिह्न ये
फिर भी कितन निबल रह !
× × ×
महानील इस परम व्योम म
अंतरिक्ष म ज्योतिर्मनि,
ग्रह, नक्षत्र और विद्युत्क्षण
किसका करत से स्थान।

१ श्री जयशङ्करनाथ—ग्राम् पृष्ठ १५

२ कवि, कामायनी, आशा सग, पृष्ठ २५, २६

छिप जात है और निकलते
 आकषण में खिंचे हुए
 तृण वीरुध सहलह हो रह
 किसके रस में मिंचे हुए
 सिर नीचा कर किमकी सत्ता
 सब करते स्वीकार यहाँ,
 सत्ता मौन ही प्रवचन करत
 जिसका, वह अस्तित्व कहाँ ?^१

सृष्टि के नियन्ता का रूप निमाण करने में स्वयं को अनमय पाकर, कवि उस विषय में अपनी पराजय स्वीकार करता है किन्तु फिर भी वह जानता है कि 'वह विराट' अनन्त रमणीय है।

हे अनन्त रमणीय ! कौन तुम ?
 यह मैं कैसे कह सकता ।
 कम हो ? क्या ही इसका ता
 भार विचार न सह सकता ॥^१

वदाति या की भाँति प्रसाद भी मानत है कि ब्रह्म स्वयं अपनी माया के अधकार में धावपिष्ट होकर छिपा हुआ है। सूफी साधकों ने भी अलौकिक प्रिय की अलक क अधकार के पीछे उसके सुन्दर रूप का अस्तित्व माना है। जीवन अधवा विश्व उनके लिए माया की अधकारभयी रजनी है। प्रसाद का रहस्यवादी 'स्वयं अपनी अलक। म छिप उन रूप को' दसन के लिए उत्सुक हो उठा है—

निज अलको क अधकार में तुम कैसे छिप आओगे ?
 इतना सजग कुतुहल ! ठहरो यह न कभी बन पाओगे ।

भावुक जिनामु जितना उस रूप के निकट जाना चाहता है उतना ही वह दूर हटता जाता है, केवल उसके सौन्दर्य के वण यत्र तत्र प्रकृति में बिखर पड़े हुए रह जाते हैं—

आहँ चूम लू जिन चरणों को चाँप चाप कर उह नहाँ—
 दुख दो इतना अरे अरुणिमा ऊपा सो वह उधर बहाँ ।
 वसुधा चरण चिह्न सो बनकर यही पड़ी रह जावगी ।
 प्राची रजकुकुम ल चाह्र अपना भाल सजावगी ॥^१

वह पहले केवल उस सौन्दर्य के दसन करना चाहता है यद्यपि उस अनन्त सौन्दर्य की चकाचौंध में पहले इसकी आँखें बंद हो जाएँगी किन्तु फिर भी वह उस पहचान लेगा।

१ श्री जगन्नाथप्रसाद—कामायनी, आशा सग, पृष्ठ २६

२ वही, पृष्ठ २६

३ वही लहर पृष्ठ १०

और तब उसमें अपनी चिरपिपासा की तृप्ति को पाकर उसे अपने आलिंगन में जकड़ने का व्याकुल हो उठगा।

दख न लू इतनी ही तो है इच्छा ? लो सिर झुका हुआ।
कामल किरन उगलियो स लँक दोगे यह दग खुला हुआ ॥
फिर कह दाग पहचाना ता मैं न कौन बताओ तो !
किंतु उही अंधरा से पहले उनकी हसी दवाया ता ॥
सिहर भर निज शिथिल मदुल अचल को अंधरो स पकड़ो।
बला धीत चली है अचल बाहु लता से आ जकड़ो ॥^१

लहर की उपयुक्त कविता में प्रसाद का शाश्वत प्रिय, मूर्धिया की मुग्धा नायिका—जायसी की 'पद्मावती' का प्रतिरूप सा बन जाता है।

'करना प्रसाद की प्राथमिक रचनाओं में से है किन्तु उसकी अटपटी कविताओं के मध्य में भी उनका रहस्यवादी हृदय कभी-कभी लौकिक कष्ट की आच से तपकर शाश्वत प्रिय के द्वार पर विश्राम पाने के लिए आतुर हो उठा है। 'खोली द्वार' नामक कविता में हम 'प्रसाद का वही आत्मविश्वास पाते हैं जो कबीर का है। अंतर कबल इतना है कि कबीर ने अपनी व्यक्तित्व रूपा 'चदरिया' को प्रारम्भ से यत्न से ओढ़ा और 'प्रसाद ने आँगुओं से धोकर उसको निमल बना दिया है—

धूल लगी है, पद काँटा से बिधा हुआ, है दुख अपार।
किसी तरह से भूला भटका आ पहुँचा हूँ तेरे द्वार।
डरो न इतना, धूलि धूसरित हागा नही तुम्हारा द्वार।
धो डाल है इनको प्रियवर, इन आँखा से आँसू डार ॥^२

इन व्यक्तिक रहस्यात्मक अनुभूतियों के अतिरिक्त समष्टिगत रहस्यानुभूति के संकेत भी प्रसाद के काव्य में मिलते हैं। समष्टिगत रहस्यानुभूति के मूल में भी लोक कल्याण की भावना ही है। प्रसाद का रहस्यवादी अपने साथ विश्व को भी उस अपूर्व अनुभूति में तमय देसना चाहता है। कबीर जैसे 'जहाँ चढ़ि हँसा केलि कर की कल्पना करते थे वही प्रसाद—

स्नहालिंगन की लतिकामा की झुरमुट छा जाने दा,
जीवन धन ! इस जल जगत को बँदावन बन जान दो ॥^३

वह विश्व के प्रत्येक प्राणी का द्रव की भावना से रहित स्नेह के आलिंगन में धावड़ देसना चाहत हैं।

प्रसाद और कबीर में वही अंतर है जो साधक और सिद्ध में है। एक विश्वास के युग में ताल टाँककर यह कह सकता था कि मैंने ऐसा अनुभव किया है और दूसरा

१ श्री जयशंकर प्रसाद—लहर पृष्ठ १०

२ वही कविता खोली द्वार, पृष्ठ २१

३ वही, लहर पृष्ठ २०

सुद्धि का युग में, अपनी क्षणिक रहस्यात्मक अनुभूतियों को स्थायी बनाने को निरन्तर तत्पर है।

प्रसाद लौकिक विरहानुभूति

प्रसाद के काव्य में व्यक्तिगत प्रेम और विरह का एक स्पष्ट धारा 'भरना' से प्रारम्भ होकर लहर तक आई है। प्रारम्भ में अपनी अनुभूति में वह 'गुद मसल थी किन्तु धीरे धीरे उसका मानसाकरण होना गया मूकम और अतीन्द्रिय हाँसे-हाँसे वह छायात्मक बन गई, कवि की व्यक्तिगत व्यथा न कहकर प्रकृति के कण कण की व्यथा का आभास दान लगी।

कवि का 'जीवन सोता' 'भरना' में गान्त गति से 'गिरि सकट' के बीच में से बह रहा था तभी किसी ने जाह्नवी के समान उसका आदर करके, प्रेम का दीप उसे भेंट किया—

गिरि सकट में जीवन सोता मन मारे
चुप बहता था
कजकल नाद नहीं था उसमें मन की बात
न कहता था।

इसे जाह्नवी-सा आदर दे किसने भेंट चढाया है।
अचल से सस्नेह बचाकर छोटा दीप जलाया है।^१

कवि के युवक मन में यौवन मुलभ अनिलापाएँ, लालासाएँ हैं। अपने प्रथम मिनत का अनुभूति को उसने निर्व्याज व्यक्त किया है—

निभूत था—पर हम दाना था
बनियाँ रह न सकीं फिर दान्त।

कहा जब व्याकुल हो उनमें—
मिनेगा कब ऐसा एकान्त ?^२

हाथ में हाथ लिया मैंने
हुए वे सहसा गिथिल नितान्त

मलय ताडित किसलय कोमल
हित उठी उंगली, दसा, भ्रान्त।^३

जब प्रिय से उस विश्वासघात मिला तो सहसा विश्वास न हुआ। हताश-सा वह उससे अनुनय करने लगा—

त्रोप से, विपाद से, दया पूर्व प्रीति ही से,
किसी भी बहाने से तो माद किया कीजिए।^४

^१ आ. ब. ग. प्रसाद—भरना, (सचना), पृष्ठ २७

^२ वही पृष्ठ ७१, ७२,

^३ वही, पृष्ठ ४३

यहाँ प्रसाद, गालिब के अत्यंत निकट आ गए हैं। यह अनुभूति बहुत कुछ 'और कुछ नहीं तो मदावत ही सही' जसी ही है। ऐसे ही एक और स्थान पर भी उनका भाव जस गालिब के भावा की प्रतिध्वनि से लगते हैं—

औरो के प्रति प्रेम तुम्हारा इसका मुझको दुख नहीं।
जिसके तुम हो एक सहारा, वही न भूला जाए कहीं ॥^१

—प्रसाद

कता कीजिए न ताल्लुक हमसे
गर को तुम्हने मुहब्बत ही सही।

—गालिब

परन्तु यह स्थिति बहुत अधिक समय तक नहीं रही। प्रसाद का प्रेमी भावुक किसी के सामने प्रेम के लिए अधिक धिधियाना नहीं चाहता—वह उपक्षा में ही सुख की खोज करने लगता है—

किसी पर मरना यही तो सुख है।
'उपेक्षा करना' मुझे भी सुख है
यही प्रायना हमारी।
जलन छाती की बड़ी सहता हूँ
मिलो मत मुझसे यही कहता हूँ,
बड़ी हो दया तुम्हारी।^१

'भरना' में प्रेम की यह अनुभूति और उसमें निराशा की व्यथा सीधे तथा सरल रूप में अभिव्यक्त हुई है। कवि ने प्रकृति क प्रतीको का आश्रय लेकर उसे सूक्ष्म प्रतीन्द्रिय रूप देने की चेष्टा नहीं की है। 'मामू' में प्रतीका का आश्रय लेकर वह प्रतीन्द्रिय बनती हुई-सी प्रतीत होती है—

परिरम्भ कुम्भ की मदिरा
निश्वास मलय के भोके
मुख-चंद्र चाँदनी जल से
में उठता था मुह धोके।
थक जाती थी सुख रजनी
मुखचंद्र हृदय में होता
थम सीकर सदृश नखत से
घम्बर पट भीगा होता ॥
सायेगी कभी न वसी
फिर मिलन कुज में मरे

१ भी उपेक्षाकरप्रसाद—भरना, पृष्ठ ८४
२ वही पृष्ठ ८६

चाँदनी गिथिल अलसाई
 सुख के सपना से मरे ।
 लहरा में प्यास भरी है
 हैं भँवर पात्र नी ताली
 मानस का सब रस पीकर
 लुटका गी तुमने प्याली ॥^१
 प्रिय से मिलन और वियोग की व्यजना एक पद में बड़ी मुन्तरता से हुई है—

मादकता से आय तुम
 सना से चल गए थ
 हम व्याकुल पड़े विलखत
 थ उनरे हुए नश से।^२

प्रिय के आगमन की मदिरा के मादक प्रभाव और चल जान की होगी मान
 से तुलना बड़ी सजीव है।

प्रिय द्वारा दिये गए आश्वासन पर बड़े व्यग्र गूढ़ व्यक्तिकरण में अत्यंत
 मार्मिक हा उठा है—

इतना सुख जो न समाता
 अतरिक्ष में तल थल में
 उनकी मुट्ठी में बनी
 या आश्वासन के छन में।^३

सम्पूर्ण सृष्टि उस अपने सुख-दुख का प्रतिरूप-सी लाती है। प्रकृति का प्रत्येक
 रूप उसकी व्यापक से आत्र हो उठा है—

क्या छलक रहा दुख मरा
 क्या की मडु पलका में
 हाँ! उलक रहा सुख मरा
 सगा की घन अलका में।

अनन्त दुख और वेदना सहकर भी कवि निराशा के गत में नहीं गिरा है। उसने
 सुख दुख के मध्य जीवन की स्वस्यता के दर्शन किए हैं।—
 मानव जीवन वेदी पर
 परिणय हो विरह मिलन का

१ श्री जयशंकरप्रसाद—साधू पृष्ठ १७
 २ वही पृष्ठ १३
 ३ वही, पृष्ठ १६
 ४ वही पृष्ठ १७

यहाँ प्रसाद, गालिब के अत्यंत निकट आ गए हैं। यह अनुभूति बहुत कुछ 'और कुछ नहीं तो अदावत ही सही' जसी ही है। ऐसे ही एक और स्थान पर भी उनके भाव जैसे गालिब के भावों की प्रतिध्वनि से उगते हैं—

औरो के प्रति प्रेम तुम्हारा, इसका मुझको दुख नहीं।
जिसके तुम हो एक सहारा, वही न भूला जाए कहीं ॥'

—प्रसाद

कता कीजिए न ताल्लुक हमसे
गर वो तुझसे मुहब्बत ही सही।

—गालिब

परन्तु यह स्थिति बहुत अधिक समय तक नहीं रही। प्रसाद का प्रेमी भावुक किसी के सामने प्रेम के लिए अधिक पिघियाना नहीं चाहता—वह उपेक्षा में ही सुख की खोज करने लगता है—

किसी पर मरजा यही तो दुख है।
'उपेक्षा करना' मुझे भी सुख है

यही प्रार्थना हमारी।

जलन छाती की बड़ी सहता हूँ
मिनो मत मुभस यही कहता हूँ,
बड़ी हो दया तुम्हारी।'

'भरना' में प्रेम की यह अनुभूति और उसमें निराशा की व्यथा सीधे तया सरल रूप में अभिव्यक्त हुई है। कवि ने प्रकृति के प्रतीको का आश्रय लेकर उसे सूक्ष्म प्रतीन्द्रिय रूप देने की चेष्टा नहीं की है। 'भाँसू' में प्रतीको का आश्रय लेकर वह प्रतीन्द्रिय बनती है—

सित	परिरम्भ कुम्भ की मदिरा
वह	निश्वास मलय के भोके
विरहो की विवग स्थिति	मुखचंद्र चाँदनी जल से
भाता है—	में उठता था मुह धोके।
सुख	थक जाती थी सुख रजनी
जब	मुखचंद्र हृदय में होता
चुप	श्रम सीकर सदा नसत से
यह	अम्बर पट भीगा होता ॥
कठिन विरह व्यथा सदा	सोपगी कभी न बसी
है। भाँसू और स्मित के स	फिर मिलन कुज में भेरे

चाहनी शिथिल भ्रतसाद
 मुख के सपनों से भर ।
 लहरों में प्यास नहीं है
 है भवर पात्र भी गाली
 मानस का सर रस पीकर
 लम्बा दी तुमने प्याली ॥^१
 प्रिय से मिलन और वियोग की व्यंजना एक पद में बनी सुन्दरता से हुई है—

भाङ्कता में भाव तुम
 सना स चल गए थ
 हम यातुन पढ़ विलखते
 थ, उनरे हुए नउ स।^२

प्रिय के आगमन की मदिरा के मादक प्रभाव और चन जाने की, 'होग म धान'
 से तुलना उठी सजीव है।
 प्रिय द्वारा दिये गए 'आस्वासन' पर कटु व्यंग्य गुद्ध ब्यक्तिरूप में प्रयत्न
 मार्मिक हो उठा है—

इतना मुख जो न समाठा
 अतरिण्य में जल यल-म
 उनकी मुट्ठी में व का ठारा।^३

सम्पूर्ण सृष्टि उन अपने मुख-दुल्ल का प्रतिस्नान मुख, स्वप्न के समान विर अस्थायी होता
 क्या उसकी व्यथा से आद्र हो उठा है—
 वो छत्र रहा दुल्ल
 ज्या की मडु पलर्का स्वप्न देखकर जाग गया ?
 हाँ ! जलक रहा मुख क्या कर जो भाग गया ।
 स-पा की धन धनक मतवाली सुंदर छाया म ।
 भ्रान्त दुल्ल और वन्ना सहकर भी कवि निर्दु निज सुहाग मधुमाया म
 मुख दुल्ल के मध्य जीवन की स्वस्थता के दर्शन किए थके पथिक की पया की ।^४
 मानव जीवन की, ध्यम से मिलन और विरह की मार्मिक
 परिणय हा विरह मिलने

१ श्री बयजक (प्रसाद) — भा. २, पृष्ठ २७
 २ वही पृष्ठ २३
 ३ वही, पृष्ठ ४६
 ४ वही पृष्ठ ४०

मूर्ति का सफल चित्रण किया है—

वे कुछ दिन कितने सुंदर थे ?
जब सावन धन सावन बरसते—
इन आखा की छाया भर थे ।
× × ×
सुरधनु रजित नव जलधर से—
भरे क्षितिज व्यापी अम्बर से,
मिल चूमते जब सरिता के
हरित बूल युग मधुर अघर थे ।^१

सुरधनु के रंग से रजित बादला से युक्त अम्बर में प्रेमी मन के विविध भावों की व्यंजना हुई है। सरिता के ठरे भरे दो किनारों से नायिका के उल्लसित अघरों की मा भी अनुपम है।

विरह की 'स्मृति दशा की उपमा प्रसाद ने 'चपला' से दी है। चपला में अनुभूति चकार्चोच करने वाला दीप्ति का व तडपन का भाव है

चित्र खींचती थी जब चपला,
नील मघ पट पर वह विरला
मरी जीवन स्मृति के जिसमें—
खिल उठत व रूप मधुर थे ।^१

प्रेम के क्षेत्र में मिली निराशा ने प्रसाद के प्रेमी को अकमण्य नहीं बनाया है। मू में 'लोक मंगल की जो कामना कवि न की थी, वह लहर' में फलीभूत हुई—सौ गीत होती है—

निधरक तूत ठुकराया तब
मरी टूटी मधु प्याली को,
उमके मूष अघर मांगते
तरे चरणा की लाली को ।
जीवन रस के बचे हुए मन,
खिलरे अम्बर में ध्रामू बन,
वही दे रहा था सावन धन—
धनुषा की इत हरियाली को ।^१

'मल्लिक धी गहराई से वह निरंतर यह याचना करता रहा है—

तरा विपाद द्रव तरल तरन
मूर्च्छित न रहे ज्यो पिये गरल

^१ धी जयराकरप्रसाद—लहर, पृष्ठ २७

झायावादी काव्य में विरह भावना

मुख-लहर उठा री सरल-सरल
 लघु लघु सुन्दर-सुन्दर अविरल,
 —तू हंस जीवन की सुधराई।^१
 इतना सब होने पर भी व्यथा को वह भुला नहीं सका है। प्रकृति का भादक
 उसके मन में प्रभाव की वेदना भर देता है। यहाँ अभिव्यक्ति में प्रकृति का रूप धु
 उद्दीपन है—

प्यारे भरे श्यामल अम्बर में जब कोयल की कूक मधीर,
 नत्य शिथिल विद्युत्ती पड़ती है वहन कर रहा उस समीर
 तब तू क्यों अपनी आँखा में जल भरकर उदास होता,
 और चाहता इतना सूना—कोई भी न पास होता ?^२
 प्रसाद के काव्य में लौकिक विरह का मूल स्वर विश्वासघात से उत्पन्न पीडा है।
 अतः उसे विश्वासघात से उत्पन्न अनिश्चित अवधि का सम्बन्ध विच्छेद अथवा कर्षण
 विरह कहना चाहिए—

वचिन्त रे ! यह किस अतीत की विकल कल्पना का परिणाम,
 किसी नयन की नील निशा में क्या कर चुका क्षणिक विश्राम ?^३
 लौकिक विरह की यह धारा उनकी रहस्यवादी रचनाओं से बिल्कुल असम्बन्धित
 अपना मलग अस्तित्व रखती है।

महादेवी की विरहानुभूति

जिस तरह मीरा के जोगिया विषयक पदों को पढ़कर, उनका उपात्म्य और
 निवेदन गिरिधर नागर के लिए है यह मानने में सन्देह हान लगता है उसी भाँति
 मानस कुञ्ज उजाड़कर परदेग बसाने वाले महादेवी के प्रियतम की मलौकिकता भी उनके
 उन पदों में सदिग्ध हो जाती है—

बिखरत स्वप्नों की तस्वीर
 अधूरा प्राणा का सन्देश
 हृदय की लेकर प्यासी साथ
 बसाया भव है कौन विदेश ?
 रो रहा है चरणा के पास
 चाह जिनकी थी उनका प्यार !^४

१ श्री अण्णकरप्रसाद—लहर, पृष्ठ ४३
 २ वही, पृष्ठ ४४
 ३ वही, पृष्ठ ४४
 ४ श्री महादेवी बना—माना, पृष्ठ ३६

तथा—

हुई साने की प्रतिमा धार
साधनाएँ बठी है मौन
हमारा मानस-कुंज उजाड
द गया नीरव रोदन कौन ?

‘नीहार की एक अथ कविता में अतीत का मधुर और वतमान का करुण अश्रुमय चित्र बवयित्री ने प्रस्तुत किया है। उसमें वह प्रिय द्वारा की गई अवहेलना की बात कहती है। यदि महादेवी की कविता में उनकी विरहातुभूति को केवल निराकार अपायिब ‘ब्रह्म’ के लिए मान लिया जाय तो ‘ब्रह्म’ रूपी प्रिय की अवहेलना का क्या अर्थ निकलेगा ?

जला जिसम आशा के दीप
तुम्हारी करती थी मनुहार
हुआ वह उच्छवासो का नीड
रुदन का सूना स्वप्नागार
हृदय पर अकित कर मुकुमार
तुम्हारी अवहेला की चोट
विद्याती हूँ पथ में करणेश
छलवती आँखें हँसते मोठ !^१

इस सम्पूर्ण सृष्टि में केवल वही अकेली विरह से पीड़ित नहीं है, कण-कण में वह व्याप्त है—

न रहता भौरा का आह्वान
नहीं रहता फूला का राज्य
कोकिला होती अतर्धान
चला जाता प्यारा ऋतुराज
असम्भव है चिर सम्मलन
न भूलो क्षणभंगुर जीवन !^२

सबकी पीडा जैसे उनकी प्रमिवा को प्रिय का वियोग सहने की शक्ति दे रही है :
विरह वेदना उनके स्वरूप को उज्ज्वलतर बना दगी, ऐसा उनका विश्वास है—

सखे यह है माया का देश
क्षणिक है मरा तेरा सग
यहाँ मिलता बाँटो में बंधु
सजीला सा फूनी का रग,

१ सुशो महादेवी वमा—यामा, पृष्ठ ४०

२ वही, पृष्ठ ४२

तुम्ह करना विच्छेद सहन
न भूला है प्यारे जीवन ।^१

ऐसा लगता है कि पार्थिव निराशा को महादेवी ने अपार्थिव अमूल प्रियतम के चरणों में 'योद्धावर किया है। लौकिक कुठा स उत्पन्न हुआ अपार्थिव के प्रति उन्मुखी भाव ही उनकी रहस्यवादी कविता का मूल स्रोत प्रतीत होता है। स्वयं उनके अपने शब्दों में—

मैं नी नर भीने जीवन म
इच्छाम्रा के ददन अपार,
जला वेदनाम्री के दीपक
भाई उस मंदिर के द्वार ।
क्या दता मरा सूनापन
उन चरणा का उपहार ?
बसुध - सी मैं घर भाई
उन पर अपने जीवन की हार ।^२

परन्तु 'जीवन की हार' भी अपार्थिव के प्रति उन्नयनित और समर्पित होकर देदीप्यमान हो उठी है—

मधुमात हा विहेंस रहे म
जो नदन कानन के फूल,
हीरक बनकर चमक गईं
उनके अचल म मरी भूल ।^३

'नीहार' में ही शुद्ध रहस्यवादी कविताएँ प्राप्त हैं। सांसारिक भव्य इच्छाम्रा का चूषण करके साधिका न व्यक्तित्व का प्याला बनाया है और उसे पीढा से मसिक्त करके उसमें जीवन का स्पन्दन फूका है। 'गूँय' के तट पर उस अपार्थिव गायक का अलौकिक गायन मुनाई दिया, तमी से उसका मन उद्वलित हा उठा है और स्व स समर्पित उनका व्यक्तित्व विनष्ट हो गया है—

इन हीरक के तारा को
कर चूर बनाया प्याला,
पीढा का सार मिला कर
प्रणा का भासव डाला,
मत्तयानिल के श्लोकों म
अपना उपहार लपटे

१ सुशो महादेवी बना—याना, पृष्ठ ५३

२ वही, पृष्ठ ५६

३ वही पृष्ठ ५६

में मूने तट पर आई
बिखरे उद्गार समेटे ।^१

तभी—

गायक वह गान तुम्हारा
मा मँडराया पलको म ।

महादेवी की प्रेमी साधिका क 'प्राण' उस झकार से 'बेसुध' हो गए थे किन्तु वह सुख स्थायी न था । उनको (प्राणो को) विरह की पीडा प्रदान करके वे रातों जाने कहाँ अतहित हो गई हैं—

हो गई वहा अतहित
सपने लेकर वे रातों
जिनका पथ आलोकित कर
बुझने जाती हैं आख ।^२

जिस तरह 'नीहार' के धुधलेपन के गलते-गलते दिवस की 'रश्मि' स्पष्ट हो जाती है, उसी तरह रश्मि तब आते-आते महादेवी के सामने उनका विरहपथ स्पष्ट हो गया है । यहा तक आकर मन की अव्यवस्थित स्थिति का धुँधलापन नष्ट हो गया है और अलौकिक प्रिय के प्रणय से उत्पन्न अनेक मिलन विरह के क्षणा का अनुभव होने से मन की चिरप्यास जाग उठी है—

धुल धुल जाता यह हिम दुराव
गा-गा उठते चिर भूक भाव
अलि सिहर सिहर उठता गरीर ।^३

जीवन के 'नून्य और निराशा के कारण जो विरक्ति उनके मन में घर करने लगी थी, वह प्रकृति का अधिकाधिक सम्पर्क प्राप्त करके उसके निर्माता के प्रति जिज्ञासापयी हो उठी है—

कनक से दिन मोती-सी रात
सुनहली साँझ गुलाबी प्रात
मिटाता रगता बारम्बार
कौन जग का यह चित्राधार ?
रजत प्याले में निद्रा ढाल
चाँट देती जो रजनी बाल,

१ युना महादेवी बना—यामा, पृष्ठ २२ २३

उसे कतिया में ग्रामू धोल
बुकाना पढता किसका माल ?^१

× ×

किन उपकरणा का दीपक
किसका जलता है तल
किसकी बति, कौन करता
इसका ज्वाला से मल ?^२

प्रकृति के कोमल मधु तथा विकराल दोनों रूपों में उन्हें प्रिय के अस्तित्व का पता मिलता है

प्रकृति के कोमल रूप में

अवनि अम्बर की स्पहनी सीप में
तरल मांती सा जलधि जब कापता
तरते धन मृदुल हिम के पुज से
ज्योत्स्ना के रजत पारावार में
सुरभि बन जो थपकिया देता मुझे
नीद के उच्छ्वास सा वह कौन है ?^३

विकराल रूप में

दूय नभ पर उमड़ जब दुख नार सी
नग तम में, सपन छा जाती घटा
बिखर जाती जुगनुआ की पीति भी
जब सुनहले प्रांगुया के हार सी,
तब चमक जो लोचना का मूदता
तड़ित की मुस्कान में वह कौन है ?^४

प्रकृति, नवयित्री में केवल अलौकिक के प्रति जिज्ञासा भाव का ही जागृत नहीं करती, वह उसे सज्जन और विनाग के गम्भीर रहस्यों पर चिन्तन करने को भी बाध्य करती है। 'प्रातः कं मुखद मनारम वातावरण में सपना का विनाग क्या हो जाता है ? सध्याकाल में रवि का पथ लीप पातकर मुखरा बनानेवाली तथा उसके माग प्रदर्शन के लिए पहला दीप जलानेवाला सध्या के सौभाग्य को तम का नकारा छिन निन्न क्या कर देता है ?' महादेवी के मन में प्रश्न उठता है—क्या यही जीवन की गति है ? किन्तु मन

१ सुश्री महादेवी बना—धाना पृष्ठ ७१

२ वही पृष्ठ ७२

३ वही, पृष्ठ ७६

४ वही, पृष्ठ ७६

फिर समाधान करता है कि सुख और दुःख के समन्वय का नाम ही जीवन है—

कलि पर भलि का पहला गान
धिरकताजव बन महु मुस्वनि,
विफल सपनों के हार पिघल
दुलकत क्यों रहते प्रतिफल ?
गुलाला से रवि का पथ लीप
जला पश्चिम में पहला दीप,
बिहँसती सध्या भरी सुहाग
दगा से भरता स्वर्ण पराग,

उसे तम की बढ एक भकोर
उडा कर ले जाती विस धोर ?
अथक सुपमा का सजन विनाश
यही क्या जग का श्वासोच्छ्वास ?

× × ×

आदि में छिप जाता अवनतान
अत में वनता नव्य विधान
सूत्र ही है क्या यह ससार
गुये जिसमें सुख दुःख जयहार ?^१

जीवन वीणा पर राग विराग, आसू और स्मृति की लय भर जाने वाले व्यक्तित्व
को अपना बना लेने की साथ 'रश्मि' में बड़ी प्रबल है—

मरे दाशव के मधु में धुल,
मरे यौवन के मद में दुल
मेरे धाम् स्मित में हिलमिल
मरे क्यों न कहाते ?^२

रहस्यवादी विरही की मनोस्थिति का विश्लेषण महादेवी ने बड़े मार्मिक ढंग से
इस तरह किया है—

धूलि के वण में नभ सी चाह
विडु में दुग का जलधि अघाह,
एक स्पन्दन में स्वप्न अघार
एक पल असफलता का भार।^३

प्रिय की निरंतर प्रतीक्षा के असीम सुख में ही महादेवी की प्रेमिका विलय हो

१ छानी महादेवी यमा—यमा, पृष्ठ ७२

२ वहा, पृष्ठ ७३

३ वहा, पृष्ठ ७०

जाना चाहती है। रामनरेश त्रिपाठी के 'विरह प्रेम की जागत गति है' शब्द महादेवी के व्यक्तित्व में साकार हान लगते हैं। स्वयं का वह विरह पथिक का वीमा पग बताती हैं जो मञ्जिल पर पहुँचने से पहले ही थककर गिर पड़ता है—

तुम अगर् प्रतीक्षा हो मैं
पग विरह पथिक का वीमा
आते आते मिट जाऊँ
पाऊँ न पथ की सीमा।^१

विरह से ससिक्त, व्यथा का भार उठाये हुए अपन अश्रु आद्र जीवन का विलेपण उनका प्रेमिका रूप ने इस तरह किया है—

प्रिय इस नयना का अश्रु नीर
दुख से आविल सुख से पविल
बुद्बुद् से स्वप्ना से फनिल
बहता है युग युग से अधीर।^१

विरह के कष्ट में उनका व्यक्तित्व उज्ज्वल कमल सा प्रस्फुटित हुआ है
इसमें उपजा यह नीरज सित
बोमल बोमल लज्जित भीलित
सौरभ स लेकर मधुर पीर।^१

यह विश्व के आकषणा से प्रपुल्ल नहीं होता, केवल प्रिय की करुणा से जीवित है—

इसकी न जगाती मधुप नीर।
× × ×
तरे करुणा कण से विलसित,
हो तेरी चितवन से विकसित
छू तेरी श्वासो का समीर।^१

कहीं प्रिय से अनुग्रह की याचना करते करते उनके विरही का स्वाभिमान जाग उठता है और तब अपनी अनंत 'प्रदान शक्ति' पर गव करत हुए अपने 'पपीह मन' को समझाती हैं—

जिसकी अनुराग सा दान दिया
उससे कण माँग लजाता नहीं
अपनापन भूल समाधि गया,
यह पी का विहाग भुलाता नहीं

१ सुधा महादेवी वना—यामा, पृष्ठ ७६

२ वही, पृष्ठ १२५

३ वही, पृष्ठ १२६

नभ देख पयोधर श्याम घिरा
 मिट क्या उसमें मिल जाता नहीं
 वह कौन सा पी है पपीहा तरा
 जिस बाध हृदय में सुलाता नहीं ।¹

पतंग मीन और चकोर का आदेश उनके सम्मुख है—
 कभी देख पतंग को जा दुख से
 निज, दीपशिखा को हलाता नहीं,
 मिल ले उस मीन से जो जल को,
 निठुराई विलाप में गाता नहीं
 कुछ सीख चकोर से जो चुगता
 अगर, किसी को सुनाता नहीं ।²

अनंत विरह वेदना भेलत हुए रहस्यवादी विरही के जीवन में कभी कभी मिलन के क्षण भी आते हैं उस समय उसका अपने हृदय पर बश नहीं रहता, प्रिय उस पर एकाधिकार कर लेता है और तब उसकी सारी निधिया वह प्रिय, भिक्षुक विश्व के लिए सुटा देता है—

वह उर में बन आता पाहुन,
 कहता मन से अब न कृपण बन
 मानस की निधिया लेता गिन
 दग द्वारा को खोल विश्व भिक्षुक पर हंस
 बरसा आता ।³

प्रिय के आगमन का साम्य उन्होंने ग्रीष्म से तप्त 'मानस' के लिए 'बादन' के सदृश्य किया है। यह उपमा उस भाव की अभिव्यक्ति के लिए अत्यंत सशक्त है
 रजत रश्मियों की छाया में धूमिल घन सा वह आता,
 इस निदाघ से मानस में वर्षणा का स्रोत बहा जाता ।⁴

मिलन की अनुभूति कुछ क्षणा के लिए विरही को हृष्य विह्वलता बनाती है
 किन्तु जब वह समय बीत जाता है तो उसकी स्मृति उसे कचोटती हुई, वेदना को तीव्रतम कर देती है—

अबि अब सपने की बात—
 हो गया वह मधु का प्रात ।
 मिलन इतु बुनता जीवन पर,
 विस्मृति के तारों से चादर

छायावादी काय म विरह भावना

विपुल कल्पनाओं का मयर-
बहता सुरभित वात ।

अब नीरव मानस प्रति गुजन
कुमुमित मडु भावों का स्पदन
विरह-वेदना आई है बन—

तम तुपार की रात ।^१

महादेवी और मीरा की प्रणयानुभूतियों में प्रायः साम्य स्थापित किया जा सकता है और महादेवी को अपने प्रियतम के चरणों की ज्योति का आभास ता मिल है, किन्तु प्रत्यक्षता में आने का साहस उनमें (उनके प्रियतम में) नहीं है। उसकी प्रकृति के विषय में कोई उससे पूछ भी नहीं सकता क्योंकि वह स्वयं कहती है—

मधो म विद्युत सी छवि
उनकी बनकर मिट जाती,
आँसों की चित्रपटों में,

जिसमें मैं आक न पाऊँ।^२

सम्भवतः दोनों की परिस्थितियाँ ही इसका कारण हों। मीरा का युग विश्वास का युग था, कृष्ण आदर्श पुरुष में मीरा उन्हें सब कुछ अर्पित कर सकी। आज परिस्थिति बदल गई है। छायावादी के व्यस्त जीवन में अथवा ससारियों की भाँति रहती हुई महादेवी की विरहानुभूति को रहस्यवादिता को ही सन्नेह की दृष्टि से देखा जाता है वह ब्रह्म की आराधिका होकर, उसके किसी विशिष्ट रूप पर अपना सब कुछ अर्पित कर चुकी है, इस बात पर कौन विश्वास करता ?

अर्पायिव के प्रति उमुखी भाव में, महादेवी केवल रहस्यवादी नहीं हैं। वदानी तत्त्वता की भाँति उन्होंने जस 'ब्रह्मम् ब्रह्मोऽस्मि' की स्थिति भी प्राप्त कर ली है—

जाती नवजीवन बरसा
जो करुण घटा कण-कण में,
निस्पद पड़ी सोती बड़
अब मन के लघु बघन में
मरा अपार वभव ही
मुझसे है आज अपरिचित
हो गया उन्धि जीवन का
सिक्तता कण में निर्वासित !^३

१ सुखी महादेवी कर्मा—यामा, पृष्ठ ६२
२ बरी, पृष्ठ १०६
३ बरी, पृष्ठ ८६

विम्बप्रतिविम्ब भाव और अश्रु अशी भाव दोनों उनकी कविता में प्राप्त हैं
 मैं तुमसे हूँ एक, एक है
 जैसे रश्मि प्रकाश,
 मैं तुमसे हूँ भिन्न, भिन्न ज्यो
 घन से तड़ित विलास
 मुझे बाँधने आत हो लघु
 सीमा में चुपचाप
 कर पायागे भिन्न कभी क्या
 ज्वाला से उताप ।^१

तथा—

उमिया में भूलता राकेश का आभास,
 दूर होकर क्या नहीं है इन्दुके ही पास ?^२

‘नीरजा’ में वह प्रिय से एकात्म-सा स्थापित करती हुई प्रतीत होती हैं। प्रेयसी और प्रियतम का अभिनय उन्हें अच्छा नहीं लगता क्योंकि वह उससे भिन्न नहीं है—

चित्रित तू मैं हूँ रेखा भ्रम,
 मधुर राग तू मैं स्वर सगम,
 तू असौम में सीमा का भ्रम,
 काया छाया में रहस्यमय।
 प्रेयसी प्रियतम का अभिनय क्या !^३

यही एक नवीन उलझन खड़ी हो गई है। अमृत अपाधिक में महादेवी स्वयं को विलीन कर देना चाहती थी किन्तु अपने अहं के प्रति सजग व्यक्तित्व के कारण वह ऐसा न कर सकी। पुरुष के सजग व्यक्तित्व जैसे ही उन्होंने भी अहं ब्रह्मोऽस्मि' की स्थिति का ता अनुभव किया किन्तु उनकी नारी की शादवत प्यास इससे बुझी नहीं। अहं से प्रेरित अभिमान तथा समर्पण के बीच वह झँवाडोल होती रही हैं। स्वयं उनके अपने शब्दों में उनकी अव्यवस्थित मन स्थिति का परिचय मिलता है—

चाहा था तुझमें मिटना भर,
 दे डाला बतना मिट मिट कर,
 यह अभिसाप दिया है या वर,
 पहली विरह तथा हूँ या मैं
 चिर विरह वहानी।
 बताता जाये अभिमानी ।^४

१ सुधी महादेवी बर्मा—यामा—पृष्ठ २०४

२ वही, पृष्ठ ६१

३ वही पृष्ठ १४३

एको-हम के इस ग्रह को भुलाकर वह समपण क पथ का अपनाना चाहती है
 तू जल जल जितना हाता धम
 वह समीप आता छलनामय
 मधुर मिलन म मिट जाना तू
 उसकी उज्ज्वल स्मित म घुनमिल ।
 मदिर मदिर मरे दीपक जल
 प्रियतम का पथ आलाकित कर ।^१

अविष्य म प्रिय से जा विर मिलन होगा, उसका मधुर स्वप्न भी उनकी पलका म है। जब वह प्रिय आएगा, तब दिशाए उरमुक हा उठगी, प्रतीक्षा क पला म भी कवयित्री उसकी पदचाप का अनुभव कर सकती है

‘आता कौन नीड तज पूटगा बिहगा का रोर,
 दिग्गधुम्रो के घन घूघट के चचन होग छोर’^२
 पुलक स हाग सजल कपाल ।
 हठीन हौल हौन बोन ।

प्रिय मरा निगाध-नीरवता म आता चुपचाप
 मरे निमिया स ना नीरव है उसकी पदचाप,
 सुभग । यह पल घडिना अनमाल ।
 हठील हौन हौल बोल ।
 मुखर पिक हौले हौले बोल ।^३

उपहार रूप म प्रिय का वह अपना निश्वासा स विधा-गुथा हृदयहार हां अपना कर सकती है क्योंकि तारे और कनिमा ता उमी प्रिय क सौंदर्य का प्रतिभासित रूप है—

जा न हृदय अपना विधवाजें
 निश्वासा के तार बनाजें,
 तो कह किसका हार बनाजें,
 तारा ने वह दष्टि, बली न
 उनकी हसा चुरा ला ।^४

प्रकृति के सौन्दर्य क विषय म महादेवी, सूफी कवि जानसी क भावा स कितना साम्य रखती हैं ! पचावती क सौन्दर्य की परछाईं मानसरोवर पर पड़ी तब जायसा कहत हैं—

१ सुधा महादेवी कवि—याना, पृष्ठ १४३

२ बही, पृष्ठ १४७

३ बही, पृष्ठ १४७

४ बही, पृष्ठ १६

नयन जो दखा बँवल भा निमल नीर सरीर ।

हसत जो देखा हस भा दसन जोति नग हीर ॥^१

यहा तारा ने, अलौकिक प्रिय की दृष्टि और कलियों ने, उसकी हँसी को चुरा लिया है ।

हृदय पर मस्तिष्क प्रमुख होकर जब कभी सांश्रम की चेतना जगाना चाहता है तब कवयित्री भुलावे के दपण में 'द्वत की चेतना के मोह को छोड़ना नहीं चाहती—

तेरी सुधि बिन क्षण क्षण सूना ।

कम्पित कम्पित,

पुलकित पुलकित

परछाड़ मरी से चित्रित,

रहन दो रज का मजु मुकुर

इस बिन शृंगार सदन सूना

तेरी सुधि बिन क्षण क्षण सूना !^२

चितन क क्षणा में कभी वह रज का दपण टूट जाता है ताँ उनका हृदय घात प्र-दन करन लगता है—

किस पर रीभू किमस रूठू,

भरलू किस छवि से अतरतम !

टूट गया वह दपण निमम !^३

अद्वत के अकेलपन से उनका मन ऊरने लगता है । वह शृंगार करके प्रिय से अभिसार की इच्छुक हैं मधुर भ्रम को तोड़ना नहीं चाहती ओ विभावरी !

चादनी का अगराग,

माग म सजा पराग,

रश्मि तार बाध मदुल

चिकुर भार री !

ओ विभावरी !

अनिल घूम देग

लाया प्रिय का सदश,

मातिया के मुमन-काप

चार बार री !

आ विभावरी !^४

^१ जायसा—वर्माचल, मानसरोवरक राण्ड

^२ सुधा महा का बर्मा—याना पृष्ठ १६६

^३ वहा, पृष्ठ १६८

^४ वहा, पृष्ठ १६६

अरुण प्रिय पर मन को टिका रखने तथा उसका रूप निमाण करने में स्वयं को
 असमय पाकर, वह जगत के प्रत्येक कण में उसे दखने लाता है और अपनी करुण व्यथा
 उस पर 'याद्धार करने को तत्पर हो जाती है। ब्रह्म का रूप निर्माण करने में असमय,
 या 'त वदिक ऋषि न भी 'नति नति करक' अतः म कहा था — सब खलु इदं ब्रह्म और
 वही उसका अंतिम समाधान भी था। महादेवी भी कहती है—

मर मव सब मैं प्रिय तुम
 किससे व्यापार करूँगी मैं ?

आमू का मोल न लूगी मैं ?
 निजल हा जान दा चाल,
 मधु स रीत सुमना के दल
 करुणा बिन जगती का अचल
 मधुर व्यथा बिन जीवन क पत
 मर दा मैं अतय जल
 रहने ला विच नरुी मैं।

आमू का मोल न लूगी मैं !

तात्पर्य यह है कि विश्व को प्रिय का व्यक्त रूप मानकर उसी के प्रति अपनी
 भावनाओं और हृदय की करुणा अर्पित करने का वह विकल हो उठी है। जीवन की अव्य-
 वस्था और परिस्थितियों की अराजकता में विश्व के प्रति यह आत्म समर्पण और लोक-
 कल्याण की भावना आज के कवि की आत्म प्रतिष्ठा के मूल आधार रहे हैं। 'नीहार' और
 'रश्मि' से ही इसका लघु आभास महादेवी की प्रेमिका को रहा है—

तरा आभा का कण नन को
 दना अगणित दीपकान
 दिन को बनक रागि पहनाता
 विष्णु का चाँदी का परिधान,
 करुणा का लघु त्रिदु युग स,
 भरता छत्रकाता नव पत
 समा न पाता जग के छोटे,
 प्याल में उसका जीवन । ३

× × ×

लघु प्राणा के कान में
 खोई अन्तम पीडा दखो,

आओ ह निस्सीम ! आज
इस रजकण की महिमा देखो !^१

—रश्मि

नीरजा' में जना कि पहले कहा है, यह भाव अत्यन्त स्पष्ट हो गया है—

मरे दृग में अक्षय जल
रहने दो विद्व भल्लेंगी मैं।^२

—नीरजा

'साध्यगीत' व 'दीपशिखा' की अन्त साधना उसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए चिर आकुल रही है। एक ओर 'साध्यगीत' और 'दीपशिखा' में उनकी प्रियतमा आत्मा, चिरतन प्रिय के लिए अत्यन्त विकल है—

जाने किस जीवन की सुबि ले
लहराती आती मधु-ब्यार !

रजित कर दे यह गिबिल चरण ले नव अशोक के अरुण राग,
मेरे मण्डन को आज मधुर ला रजनीग धाका पराग
यूथी की भीलित कलिया स
अलि द मरी कवरी सवार !^३

—साध्यगीत

× × ×

जो न प्रिय पहचान पाती !

दोडती बयो प्रति क्षिरा म प्यास विद्युत सी तरल वन,
बयो अचतन रोम पाते चिर व्यथामय सजन जीवन ?
किस लिए हर साँस तम म
सजल दीपक राग गाती ?^४

दूसरी ओर वह स्वयं 'यूथ' में प्रिय की प्रतिमा बनकर विश्व के दृगजल का अर्घ्य स्वीकार करना चाहती है—

यूथ मन्दिर में बनूगी आज मैं प्रतिमा तुम्हारी !

अचना हो शूल भोल
क्षार दगजल अर्घ्य होले,
आज बरणास्नात उजला
दुख हा मरा पुजारी !^५

१ सुनी महादेवा वर्मा—यामा, पृष्ठ ११४

२ बदा पृष्ठ १७२

३ बदा पृष्ठ २११

४ बदा दीपशिखा पृष्ठ ६४

५ बदा यामा २१२

छायावादी काव्य में विरह भावना

विश्व के मधुर व घन में वह मुक्ति का अनुभव करना चाहती है। प्रत्येक क्षण उसमें व्यक्त होती हुई प्रिय की रूप-कल्पना में मधुर हो गया है—

आज वर दो मुक्ति आब

वचनों की कामना ल ।

विरह का युग आज दीखा,

मिलन के लघु पल सरीखा,

दुख-मुख में कौन तीखा

मैं न जानी औ न सीखा

मधुर मुझको हो गए सब मधुर प्रिय की भावना ल ।'

'दीपशिखा' में साधना के दीप का भी यही चिर लक्ष्य रहा है। स्वयं वह ब्राल स्फुलिंग है। प्रतीक्षा की रात्रि में अपनी लघु भालान प्रभा में विश्व के प्राणा को सरसता हुआ वह प्रिय के चिर आलोक में मिल जाना चाहता है—

पथ न भूले, एक पग भी,

घर न छोए लघु विहग भी,

स्निग्ध लौ की तूलिका में

आज सबकी छाँह उज्ज्वल ।'

उनके मोती से भरे हुए नयन दीपशिखा में—

धार हुए, दुख में मधु नरन

तपे, प्यास का आतप हरने,

इनसे धुलकर धूल भरे सपने उजले निखरे ।'

सट्टि से एकात्म का अनुभव करती हुई वह, ग्रह स एकाकार होने की इच्छुक है छायापथ में भ्रम विखर जावेँ इनके जब

फूनों में खिल रूप निरख आवेँ इनके जब

वरदो तब यह बाँध सकें सीमा में तुमको

मिलन विरह क निमित्त-गुधी साँसा का सज लें

यह सपने मुकुमार तुम्हारी स्मित स उजल ।'

विरह-वचना' न जो दो मुख्य रूप उनकी कविता में प्राप्त किये हैं, उनक विषय

में 'यामा' की भूमिका में उहान स्वयं कहा है

"मुझे दुख क दोनो ही रूप प्रिय हैं। एक वह जो मनुष्य क सवेदनशील

संसार के एक अविच्छिन्न वचन में बाँध देता है और दूसरा वह जो काल और

१ मुझा महारोवा बना—यामा, पृष्ठ २२१

२ वहाँ दीपशिखा, पृष्ठ ६८

३ वहाँ, पृष्ठ ८५

४ वहाँ, पृष्ठ ४८

वधन में पड़े हुए अमीम चेतन का रुदन है।

λ

×

×

“व्यक्तिगत सुख विश्ववत्ना में घुलकर जीवन को सावकता प्रदान करता है और व्यक्तिगत दुख विश्व के सुख में घुलकर जीवन को अमरत्व”

प्रत्येक हृदय में व्यक्तिगत आशा निराशा रहती है। ‘रहस्यवाद’ के मधुर लोक की आर व्यक्त को प्रेरित करने का प्रथम भी जीवन के अभाव को ही है। विश्व में, अभाव की पीड़ा ही व्यक्ति को इतना सवदनशील बनाती है कि वह ‘विराट’ को पहचान सके अथवा उसकी पग-चिह्न सुन सके। महादेवी के काव्य में लौकिक विरह की अभिव्यक्ति का मूल्य भी हम उतना ही मानते हैं। यद्यपि स्वयं महादेवी ने व्यक्तिगत पादा और अभाव का अपने शब्दा में विरोध किया है किंतु उनकी कविता उसके प्रभाव से अछूती नहीं है।

इतना अवश्य है कि उनकी व्यक्तिगत अथवा सामाजिक निराशा ने कुण्ड का धोर पकड़कर रहना नहीं सीखा, स्वस्व साधना के माग की ओर प्रगमन किया है। गूँघ निरावार साकार के प्रति प्रणय की घाटिया तय करके ‘उसके विराट रूप ‘विश्व’ का उहाने पहचाना है। उनका विरह कोन में बठकर राने वाली अकम्प्यता का अग्रदूत बनकर सानार उज्ज्वल कमशीलता का मदेशवाहक बन गया है। सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक और आर्थिक अराजकता के युग में साधना का दीपक सजोरर बठी हुई महादेवी प्रभाती की प्रतीक्षा कर रही हैं। न जाने कमशीलता के आलाक का मदेश लाने वाला प्रभाती का वह युग कब आएगा ?

कभी है दिग्भ्रात रात की मूर्च्छा गहरी,
आज तुजारी बने, ज्योति का यह लघु प्रहरी,
जब तक लौटे दिन की हलचल
तब तक यह जागेगा प्रतिपल,
रेखाओं—। म भर आभा जल
इत सँदिभ का इस प्रभाती तक चलने दो।”

सुमित्रानन्दन पत के काव्य

२ में विरहानुभूति

सुमित्रानन्दन पत की विभिन्न रचनाओं को प्रथम से यह पहल इस महान् कवि ने बीणा, इन्धक उद्गार प्रकट किए हैं। बीणा में कवि ने प्रकट

विरहानुभूति का परिचय प्राप्त करने के लिए उनकी अना हागा। पतजी की प्रथम कृति ‘बीणा’ है। यही सबसे अक्षात्नि के चरणा के समीप बठकर अस्फुट नीले स्वरा में

त का अत्यंत निकट साहचय प्राप्त किया है। वह एक

छोटी बालिका है, प्रकृति का प्रत्येक काम-व्यापार उसके मन को एक अस्फुट जिज्ञासा से भर देता है—

इस पीपल के तरु के नीचे
 किसे खाजत हा खदान ।
 जहाँ मलिनता बिचर रही है
 जहा गूयना का है खोत ।^१

पत के मात विधुर हृदय ने प्रकृति अथवा उसकी नियन्ता शक्ति में माता का सम्बन्ध जाड़ा है, उसी से अपने सब प्रश्नों के समाधान का आग्रह भी वह करता है। 'रहस्यवाद' में अपाधिब में मातृ-बुद्धि की यह कल्पना तांत्रिका की विभूति है। त्रिपुर सुन्दरी रूपी माँ से मृष्टि की उत्पत्ति और उसकी सुखद छाया तथा प्रकृति द्वारा उत्पन्न व्यवधान का वणन भी पत ने किया है। उन व्यवधान का तोड़ने का आग्रह भी है।^२ (मातापुत्र सम्बन्ध में युक्त रहस्यवाद का विवेचन यहाँ अप्रासंगिक है यतः उसका विवेचन नहीं किया गया।)

इसमें स्वतन्त्र, प्रकृति के कण कण में व्याप्त अपाधिब प्रिय के आर्तिगत को साध भी पत के किरोर हृदय में है—

जिसकी सुन्दर छवि ऊप है,
 नव बसन्त जिसका शृंगार
 तारे हार किरीट मूय शशि,
 मयकेग, स्नहाशु तुफार,
 मलियानिल मुखवास, जलधि मत्त
 सीला सहरोँ का सञ्चार
 उस स्वरूप को तू भी अपना
 मूडु बाँहों में लिपटा ले
 रना धोंग में प्रम पराग।^३

यह प्रिय उनको शण-क्षण आकर्षित करता रहता है और बचिंत भी। इसीसे आधार प्राप्त किम हुए 'आहत अह' से पीठित उनकी प्रेमिका उसका उनाहता देती है—

मिल तुम राजापति में आज
 पहल मरे दूगजल का हार,
 बना हूँ मैं चकोर इस बार,
 यहाता हूँ अकिरल जलधार,

१ श्री सुमिनान दलपत—बाया-अन्धि, कविता २३

२ वही, कविता १३ १४

३ वही, कविता १२

'वीणा' में 'विराट' के प्रति निवेदन, स्व की सीमा में बंधे 'आत्म' का परमात्मा के प्रति 'आत्म मुक्ति' का निवेदन है जिसकी प्रेरणा कवि ने अग्रयण और मनन से प्राप्त की है। उह व्यक्ति की सीमा से सम्बद्ध, प्रेमी का प्रिय के प्रति विरह निवेदन नहीं कहा जा सकता। बसा कुछ सम्म य हो भी कस सकता है? किसी से, मन की भाव प्रिय का अनुभव करने का दावा भी तो उसने नहीं भरा है। सरिता के विषय में कही गई पंक्ति की यह उक्ति स्वयं उनके विषय में भी अक्षरशः चरिताथ सी प्रतीत होती है

एक प्रिय भी नहीं पनी है

उसके तरल मृदुल उर में।^१

'वीणा' के उपरांत ही 'प्रिय' की रचना हुई है। सम्भवतः कवि क उर में 'प्रिय' पढ़ने का यह अनुपम योग उपस्थिति हुआ था। 'प्रिय' 'स्मृतिकाव्य' है। इसे पतंजी के व्यक्तिगत अनुभव पर आधारित कहा जाता है। 'प्रिय' के रचना के विषय में यह मत व्यक्त है कि सत्य है, यह नहीं कहा जा सकता कि तु कवि ने इसमें लौकिक विरह की पीडा का भाव ही व्यक्त किया है।

डा० नयेन्द्र ने 'प्रिय' की रचना के विषय में लिखा है—

“ 'प्रिय' कवि की प्रारम्भिक कृतियों में से है जब तारुण्य का बाल रवि उसके प्राणा को पुलकित कर रहा था, उसी समय उस मधुबंला में भाग्य ने उसके हृदय में एक प्रिय डाल दी जिसे वह कदाचित् भ्रम तक नहीं खाल सका है। बहुता से सुना कि 'प्रिय' पतंजी के अपने अनुभव पर आधारित है उसमें उन्होंने अपनी प्रणय कहानी लिखी है। वास्तव में इस लेख का लेखक कवि के आंतरिक जीवन के इतने निवृत्त नहीं है कि इस विषय में कुछ निश्चयपूर्वक कह सके—और न किसी के व्यक्तिगत जीवन की चर्चा स्लाघ्य ही है। हाँ इतना अवश्य प्रतीत होता है कि उनकी उच्छ्वास, आनंद और प्रिय य तीन कविताएँ किसी विशेष प्रेरणा भाव से लिखी हुई हैं और इनमें आत्म जीवन सम्बंधों में कुछ स्पष्ट अवश्य हैं।^१

कुछ भी हो 'प्रिय' लौकिक प्रणय का काव्य है जो 'स्मृति' रूप में लिखा गया है। इस 'स्मृति काव्य' में प्रथम बार कवि का हृदय निर्व्याज भाव से अपने मन के भाव का किसी के हृदय में उड़ेलने की मंचल उठा है। आधुनिक युग में आकर प्रथम बार हिन्दी का कवि प्रिना निसा राजा रानी अथवा वृष्ण राधा की आड लिए अपने मन की बात कह सका है। न तो उसने नीति का बंधन स्वीकार किया है (यद्यपि उसने विरोध में आश्रय अत्यंत दबी हुई आवाज में है) और न स्वयं की समूह की प्रियता कहकर धातू बहाए हैं। रक्त मांस से युक्त व्यक्ति के लिए व्यक्ति की निर्व्याज विरहानुभूति प्रिय में प्रथम बार मिलती है, इन दृष्टि से उसका विरोध महत्त्व है।

'प्रिय' के प्रारम्भ में कवि कल्पना को 'सुधि' में भग्न होने का आह्वान देता है।

^१ आधुनिक हिन्दी काव्य—वीणा, कविता २०

अतः उसको स्मृति-भाव्य कहना ही सचिकर होगा। कथा, आत्मकथा के रूप में चलती है। विरही नायक 'स्मृति' के क्षणों में उस समय की याद करना है जब उसकी अपनी प्रियतमा से भट हूँ थी।

एक बार नायक की 'तरणी' किसी सरोवर में डूब गई थी। जब उसकी आँख खुली तब उसने देखा—

गीस रत्न मरा मुकामल जाँघ पर
शशि कला सी एक बाला व्यग्र हो
दखती थी म्लान मुख मरा अचर,
सदय, नीर, अधीर चिन्तित दष्टि से।^१

प्रथम दृष्टिपात में उत्पन्न हुए प्रियतमा के भावा का विश्लेषण भी कवि ने अत्यंत कुशलता और सरलता से किया है—

इंदु पर, उस इन्दु मुख पर साध ही
मे पड़े मेरे नयन जो उदय ने,
ताज से रक्तिम हुए थे,—पूव का
पूर्व था, पर वह द्वितीय अपूर्व था।^२

उस प्रथम-दृष्टि में ही प्रेम का सम्बन्ध दृढ़ हो गया था—

एक पल मरें प्रिया के दग पतक
थ उठे ऊपर, सहज नीच गिरे,
अपत्तता ने इस विकपित पुतक से
दृढ़ किया मानो प्रणय सम्बन्ध था।

अतः कवि की इस नायिका का ग्रन्थि-वचन उस मिलन के पश्चात् किसी और व्यक्ति से हो गया किन्तु फिर भी स्मृति में उसने उसके लिए स्वकीया भाव का बोधक सम्बोधन 'प्रिया' रखा है। प्रेयसी नहीं। सम्भवतः इसलिए कि मानसिक ग्रन्थि-वचन जितना सार्वत्रिक और सत्य है उतना सामाजिक ग्रन्थि-वचन नहीं।

प्रेमानुभूति से मन के पराए हो जाने के भाव को भी पल में अत्यंत मर्मस्पर्शी दृग्गण अभिव्यक्त किया है। "प्रेम के कटि से रिध कर मन रूपी सुमन स्व के तरु स विच्छिन्न हो जाता है।" पल का नायक अपनी प्रियतमा से अनुभव करता है—

प्रम कण्टक से अज्ञानक विद्ध हो
जो सुमन तरु स विलग है हो चुका,
निज दया स द्रवित उर में स्थान दे
क्या न सरस विकास दोगी तुम उठे ?^३

१ श्री सुभिवान दन पत्र—ग्रन्थ पृष्ठ ६८

२ वही, पृष्ठ ६६

३ वही, पृष्ठ १०१

उत्तर में 'नाथ' शब्द के ताबीज में प्रियतमा के सम्पूर्ण भाव उसे सूत्र रूप में बंधे मिल गए थे

'नाथ' ? कह, अतिशय मधुरता से दब
सरस स्वर में, सुमुखि थी सकुचा गई,
उस अनूठे मून ही में हृदय के
भाव सारे भर दिए ताबीज से।^१

इसके पश्चात् स्वाभाविक रूप से सखियों का हास परिहास कवि ने कराया है
मद चतकर रुक, अचानक अघखुले
चपल-पलका से हृदय प्राणेश का
गुदगुदाया हा नहीं जिसने कभी
तरुणता का गव क्या उसने किया ?
हास सरिता में सरोजा से खिले
गाल के गहरे गढा को, मनुष्य से
चुम्बनों से हो नहीं जिसने भरा,
उस खिली चपाकली ने क्या किया ?^२

सखिया के इस परिहास के विषय में नगेन्द्रजी ने कहा है, "इसमें हँसी नहीं एक
मधुर गुदगुदी है जो हृदय में रति की भावनाएँ जागृत करती है। इस प्रेम-परिहास में एक
मादकता है, एक लशा है जो प्रेम रसिकों को पागल बना देता है।"^३

डा० नगेन्द्र के इस अध्ययन के साथ यदि यह कहा जाय कि उस परिहास में
सखिया के आत्म कथन के रूप में, विरह भाव की मार्मिक हृदयस्पर्शी व्यंजना भी हुई है
तो उसका उचित मूल्यांकन हो सकेगा

पूणता स्मृति हीन है सत्प्रेम की
भूक वाणी एक अनुभव है सही
विश्व भी मिलता नहीं सो दय का
धाव भी पर हाय मिटता है नहीं ।
मह नहीं, जल वीचियों में शयिकता
अलि इहोने विलकता दखी न हो,
गशि करों से कौमुदी को छीन कर
कुमुदिनी का भार भी यह हैं चुके ।
बिन्दु जिस मोती मनाहर भूति का
एक दिन देखा इहोने ये उस

१ श्री सुमित्रानन्दन पन्त—ग्रन्थि, पृष्ठ १०३

२ वही, पृष्ठ ११०-११८

३ श्री सुमित्रानन्दन पन्त, पृष्ठ १०२

खोजते हैं नित्य तब से अधूरे,
 हास से, उच्छ्वास से, अपनत्व से ।
 × × ×
 विरहिणी की कल्पना कर एक दिन
 एक पीले पात में अपनी दशा
 विविध यत्नो में मुलाकर, मैं उस
 बार बार लगा चुकी हूँ हृदय से ।^१

तत्परवान नायक की अपनी कथा है कि किस प्रकार मातृ-पितृ-प्रेम से विधुर
 उसके हृदय में किसी का प्यार पाने की चाह थी । यह प्यार उसे मिला भी, बालिका के
 स्नेह के रूप में किन्तु वह भी उसका अपना न हो सका, प्रियतमा का किसी अन्य के साथ
 प्रिय बंधन हो गया—

‘अभी पल्लवित हुआ था स्नेह’
 किन्तु—

प्रातः-सा जो दृश्य जीवन का नया
 था खुला पहले सुनहले सपने में
 सान्द्र के मूर्च्छित प्रभा के पत्र पर
 करुणा-उपसहार, हाँ उतका मिला !
 × × ×
 हाथ भरे सामने ही प्रणय का
 प्रिय बंधन हो गया वह नव कुसुम
 मधुप सा मेरा हृदय लेकर किसी—
 अन्य मानस का विनूषण हो गया ।^२

प्रियतमा का अपना ब्रतान की चाह में पहले अदभुत उतावली थी—

अह, मुरा का बुलबुला जीवन धवल
 चित्रिका के अक्षर पर अटका हुआ
 हृदय की किस मूर्च्छता के धोर तक
 जलद सा है मट्टन न जाता उडा !^३

उतनी ही बचित विधुर मन की निराशा भी थी । अपनी एकांत विरह-पीडा
 में तड़पता हुआ वह सुखी व्यक्तित्वा के नाग्य की सराहना करने लगा, उसकी अपनी
 स्थिति अत्यन्त विवश थी—

‘गवतिनी ! जाग्रा मिलो तुम सिंधु से
 घनिल ! घातिगन करा तुम गगन का,

१ श्री सुनिधान-दल-धन—अन्वि, पृष्ठ १११-११२, ११५

२ वही पृष्ठ १२०, १२४

३ वही, पृष्ठ १००

चंद्रिके ! चूमा तरंग के अधर,
उडगणा ! गाग्रा, पवन वीणा बजा ।
पर हृदय ! सच भौंति तू कपाल है,
उठ, किसी निजन विपिन म बठकर
अधुआ की बाढ म अपनी बिकी
भग्न भावी को डुवा दे आल सी !^१

आधुनिक युग की विपम परिस्थितियों ने व्यक्ति के मानसिक जीवन का भी अस्त-व्यस्त कर दिया है। युवक युवती के सम्पर्क की परिस्थितियों को कुछ सोमा तक उ मुक्त करके भी उसने उन्हें स्वच्छन्द रूप में जीवन-साथी के चयन का अवकाश नहीं दिया है। युवक में पाश्चात्य विचारों के परिचय से स्वच्छन्द प्रेम के भाव तो जाग रहे हैं किन्तु उनकी स्वस्थ परिणति का माग अवरुद्ध है। युवती के अभिभावक अब भी पर्याप्त सतक हैं। इसी विपमता से चोट खाया हुआ पत का युवक हृदय समाज की रीति नीति के प्रति 'ग्रिथ' में काफी कटु हो गया है

दख रीता है चकीर इधर, वहा
तरसता है तपित चातक वारि को,
वह, मधुपविध कर तडपता है, यही
नियम है ससार का, रो हृदय, रो !
शिथिल दक्षन ! नान जूम्भा के अलस !
वद्ध अनुभय की सिकाड ! वधा मुझे
सात्वना मत दा, विरस उपदेस के
उपल मत मारो, न बहलाओ हृदय !^२

भोल भाल प्रेम की, वदना के हाथा म पडकर घोर स्थिति ही क्या हो सकती
की ?

घोर भोल प्रेम क्या तुम हो वने
वेदना के विचल हाथो स ? जहाँ
भूमते गज से विचरते हो वही
भाह, है उमाद है, उताप है !^३

ग्रिथ का विरह सम्बंध विच्छेद का निराशा से उत्पन्न करुण विरह है। जहाँ इस जीवन में प्रिय के मिलन की कोई आशा न होन पर भी उसक वियोग में उताप है, उसनी चाह है। यही मन का उताप पल्लव की कुछ कविताओं में 'उच्छवास' और प्रागू बनकर फूट पडा है।

१ श्री मुनिशान्तिन पत्र—ग्रिथ, पृष्ठ १०५

२ वहा पृष्ठ १२७

३ वहा पृष्ठ १२८

ध्यायावादी काव्य में विरह भावना

‘पल्लव’ में कवि व युवक हृदय के उद्गार संचित हैं। स्वयं उसके अप-
म—

हृदय के प्रणय कुज में लीन
मूक कोकिल का मादन गान,
वहाँ जब तन मन-वचन हीन
मधुरता से अपनी अनजान
खिल उठी रोमा सी तत्काल
पल्लवों की यह पुलकित डाल।

कवि हृदय में ‘उत्ताप’ जस अब जन्मीभूत होन लगा था। यदि वह उच्छ-
ग्रथवा श्रानू बनकर निकल जाता तो मताप की मात्रा सम्भवत कुछ कम हो जा-
भवभूति के राम ने कहा है—

तथापि उच्छवासो म भवति ननु लाभोहि रदित।

पत का कवि, हृदय के उच्छवास में जीवन पर आच्छादित होकर बरसने में
प्राग्रह करत है जिससे उसका सताप दूर हो जाय—

सिसकत अस्थिर मानस से
वाल वादल सा उठकर आज
सरन, अस्पृष्ट उच्छवास।
अपन छाया के पक्षों में
(नीरव घाप भर शखों में)
भरे श्रानू गूध, फल गम्भीर मेघ-सा,
आच्छादित कर ल सारा आवास।

गरज, गगन के गान। गरज गम्भीर-स्वरा में
भर अपना सदश उरो में, श्रौ अघरा में
बरस घरा में, बरस सरित गिरि सर, नागर में
हर भरा सन्ताप पाप जा का क्षणभर में।^१

‘उच्छवास’ के वातन के घोप के विषय में (नीरव घाप) कहना
प्रभिव्यक्त है। घाप करता हुआ वादल जस तडप उठता है वस ही
देन वाली उच्छवास की टीस अत्यन्त मूक और नीरव है।

‘उच्छवास’ की वालिका के विषय में कवि कहता है—
सरलपन ही था उसका मन^२

१ श्री सुमित्रानन्दन पत्र—पल्लव, पृष्ठ १

२ वही, पृष्ठ २

३ वही, पृष्ठ ४

इसी सरलपने पर वह मुग्ध हो गया था—

उसके उस सरलपन स
मैंने था हृदय सजाया
नित मधुर मधुर गीता से
उसका उर था उकसाया ।^१

किन्तु अब वह बात किसी पुराने अतीत की स्मृति मात्र बनकर रह गई है। यहाँ कवि विरही को उस विवश स्थिति का चित्रण करता है जब वह वेदना को ही जीवन का शाश्वत सत्य मान लेता है और समझौता करके उसमें भी प्रसन्न रहने की चेष्टा करता है। उसकी हँसी वेदनासिक्त रहती है और जीवन का प्रत्यक श्वास उच्छ्वास बन जाता है—

अश्रुभा म रहता है हास,
हास म अश्रु कणा का भास
श्वास म छिपा हुआ उच्छ्वास
और उच्छ्वासा ही म श्वास ।^२

अश्रु और उच्छ्वास दशाभा का इतना मार्मिक वपन अत्यन्त दुर्लभ है। पहले का विरही आह भर सकता था, रो सकता था किन्तु आज के विरही को अश्रु बहाने का अवकाश नहीं है, उसे परिस्थिति से समझौता करना है, इसीलिए—

‘अश्रुओ म रहता है हास’

मिलन के समय के सब सुखदायक उपकरण विरही के लिए दुःखदायी हो जाते हैं। एक ओर प्रिय का ध्यान उसके हृदय को कचोटता रहता है, दूसरी ओर प्रकृति का सौंदर्य उसकी अभाव की पीड़ा को अधिकाधिक तीव्रतर बनाता जाता है। प्रकृति का रूप यहाँ उद्दीपन ही है—

धूमता है स-मुख वह रूप
सुदशन हुए सुदशन चक्र !
ढाल-सा रखवाला शशि आज
हो गया है हा! अंसि सा वक्र ॥^३

‘उच्छ्वास के यह बादल जब घाँसू की सरि बनकर फूट पड़ते हैं तब कवि का विरही मानस बराह उठता है—

हाम किसक उर म
उताहै अपन उर का भार ।

१ श्री सुमित्रानन्दन पन्—वल्गव, पृष्ठ ८

२ वही, पृष्ठ ८

३ वही, पृष्ठ १२

किते भव हूँ उपहार
गूय यह अशुकणो के हार ॥^१

जिसके हृदय मे प्रेमी 'अपने हृदय का भार उतार सके', उसके अभाव मे कसमसाहट होने लगती है हृदय के धाव खुल पडते हैं। हृदय के धावा की उपमा कवि ने नवीन कोमल, अरुण कोपलो से दी है यह सादर्य अत्यन्त मार्मिक और सशक्त है—

अरुण कलियो स कोमल धाव
कभी खुल पडने हैं असहाय ।^२

अशु सिक्त जीवन की उपमा कवि ने पावस ऋतु^३ से का है। अतीत की अनेक रगीन स्मृतियाँ नेत्रो के सम्मुख मघा के सदृश छा जाती हैं और हृदय के सुप्त मृदु भाव विहगो की भाँति गूजने लगते हैं। पावस^४ के साग रूपक मे अशु दशा का सुन्दर चित्रण हुआ है—

मेरा पावस ऋतु-सा जीवन,
मानस-सा उमडा अपार-मन,
गहरे, धुँधल धुले, साँवल
मेघा स मर भरे नयन ।
कभी उर मे अगणित मधु भाव
कूजते हैं विहगो स हाथ ।^५

प्रकृति मे व्याप्त मादकता का उल्लास कवि की आकुलता को अधिक बढा देता है उसकी एकांत विवशता मन मारकर रह जाती है—

दखता हूँ जब उपवन
पियाली मे फूला के
प्रिय । भर भर अपना यौवन
पिलाता है मधुकर की,
नबोडा बाल लहर
अचानक उनकूलो के
प्रसूना के दिग एकवर
सरकती है सत्वर,
अबली धावुलता-सी प्राण
वही तब करती मधु-घाघात,
सिहर उठता कृमि-गान
ठहर जाते हैं पग अन्तत ।^६

१ श्री सु मशानन्दन पत्र—पल्लव (आशु), पृष्ठ १३

२ वही, पृष्ठ १३

३ वही, पृष्ठ १३

४ वही, पृष्ठ १५

उसकी आत्म रति का ग्रह, मन को समझाने की चेष्टा करने लगता है
 बड़ो म दुबलता है धाप
 नहीं चल सकते गिरिवर राह,
 न रुक सकता है सौरभवाह ।
 तरल हो उठता जन्वि अथाह,
 सूर का दुख देता है दाह ।^१

किन्तु अब पत म समाज के प्रति 'ग्रिथ' का कटु विद्रोह नहीं रहा है
 बद्ध अनुभव की सिकोड । वधा मुझे
 सात्वना मत दा, विरस उपदेश के
 उपल मत मारो

उसने समझ लिया है कि समाज के कठोर बंधन को तोड़ना व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं है। व्यक्ति के भावों पर कठोर अनुशासन रखने वाले समाज के ठक्दारों के समक्ष सिर झुकाता हुआ सा वह कहता है—

कभी ता अब तक पावन प्रेम
 नहीं कहलाया पापाचार,
 हुई मुझको ही मदिरा आज
 हाय ! क्या गगाजल की भार ।
 हृदय ! रो अपने दुख का भार ।
 हृदय ! रो उनकी है अधिकार ।^२

हृदय के तराशय ने पत के जीवन में कुण्ठा को व्याप्त नहीं होने दिया, यदि कुण्ठा घर कर लेती तो सम्भवत यह कवि भी वञ्चन और परवर्ती मुख दुःख के गायकों की भाँति 'क्षत शीश होकर सिर धुनता ही रह जाता। किसी स्वस्थ मांग की ओर प्रगमन करने की प्रेरणा प्राप्त न कर सकता। किन्तु उसने क्षीघ्र ही 'बाले के बाल जाल' से मुक्त होने का प्रयत्न किया—

छोड़ द्रुमो की मदु छाया,
 तोड़ प्रकृति से भी माया,
 बाले तेरे बाल जाल म बसे उलझा दूँ लोचन
 भूल सभी से इस जग को ।
 उपा-सस्मित किसलय-दल
 मुधा रश्मि से उतरा जल
 ना, भधरामत ही के मद म कसे बहला दूँ जीवन
 भूल सभी से इस जग को ।^३

१ श्री सुमित्रानन्दन पंत—पन्नाव (भाग १), पृष्ठ १५

२ श्री, पृष्ठ १८

३ श्री, पन्नाव (मोड), पृष्ठ ३७

प्रकृति से पुनः नाता जोड़ने के पश्चात् प्रथम बार उनकी कटु मधुर परिस्थितियाँ म कवि को एक ऐसी सत्ता का इति और 'मौन निमंत्रण' मिलता है, जो उसके सुख-दुख का सहचर है। 'मौन निमंत्रण' को हम रहस्यवाद' म अपारिचित प्रिय के प्रति जिज्ञासा की शुद्ध व्यक्तिगत अनुभूति मानते हैं—

स्तब्ध ज्योत्स्ना म जब सत्तार
चकित रहता गिगुसा नादान
बिंब के पलकों पर सुकुमार
बिचरते हैं जब स्वप्न अज्ञान,
न जाने, नक्षत्रा ने कौन
निमंत्रण देता मुझका मौन ।

तुमुल-तम म जब एकाकार
अंधता एक साथ सत्तार
भार भीगुर-कुल की ननकार
कपा देती तत्रा के तार
न जाने खचाता स कौन।
मुझपय दिखनाता तव मौन ।

अहं सुख दुख के सहचर मौन ।
नहीं कह सकती तुम ही कौन ।'
उससे वह याचना करता है—

बना मधुर मेरा जीवन ।
नव-नव मुमना से चुनचुनकर
धूलि, मुरभि, मधुरस हिमकण
मेरे उर की मधु कलिका म
भर दे कर दे विकसित मन ।'

परिवर्तन ने उसके नाव सत्तार म प्राति मचा दी। हृत्प समुद्र के घालोत्तन-
मयन से समदृष्टि का अनुपम रत्न उसके हाथ लगा—

बिना दुख के सब सुख निस्तार,
बिना धामू क जावन भार,
दीन दुबल है र सत्तार
इसी से दया क्षमा और प्यार

१ श्री सुमित्रानन्दन पन्—पल्लव (मौन निमंत्रण) पृष्ठ २,
२ वही, (याचना) पृष्ठ ६३

आज का दुःख कल का आह्लाद,
 और कल का सुख आज विपाद,
 समस्या स्वप्न गूढ सप्ता
 पूर्ति जिसकी उस पार।^१

उसने तपस्या को जीवन का ध्येय बना लिया 'गुजन' म प्रारम्भ म ही 'मन का
 उमन गुजन म वह मन से विश्व वेदना म तपन का आग्रह करने लगा—

तप रे मधुर मधुर मन ।

विश्व वेदना में तप प्रतिपल
 जग जीवन की ज्वाला म गल
 बन अकल्प, उज्ज्वल औ कोमल,

तप रे विधुर विधुर मन ।^२

लोक वेदना की प्रचण्ड अग्नि म तपकर अकल्प बना हुआ व्यक्ति ही जीवन के
 आदर्श रूप का निर्माण कर सकता है। मन की विशाल आदरता ही जीवन म एकत्व की
 स्थापना करन म सफल हाती है—

अपने मजल स्वर्ण स पावन
 रच जीवन की मूर्ति पूणतम,
 स्थापित कर जग म अपनापन
 दल रे दल आतुर मन ।

'परिवर्तन' कवि के मानसिक जग के परिवर्तन का द्योतक है। 'पल्लव' क मुन्दरम
 का कवि 'गुजन' म गिवम् की आर अर्पने का प्रयास करने लगा है। किन्तु ऐसा प्रतीत
 हाता है कि 'गुजन' की प्रारम्भिक कविताओं म उपलब्ध शिवम् के प्रति आग्रह कवि के
 मानसिक जगत की क्षणिक विरक्ति क कारण हुआ है वसे अब भी वह मुन्दरम् का
 उपासक ही है। 'गुजन' म प्राप्त प्रेम-गीत इसके प्रमाण हैं।

'गुजन' के प्रेम-गीता म अतीत की भूल की विरह व्यथा नहीं है, भविष्य की
 आशा अभिलाषा है। ऐसे गता है जैसे कवि 'पुरातन' को छोड़कर नवीन म जीवन-
 प्रेरणा प्राप्त करने का आलापित है। 'भावी पत्नी क प्रति' कविता म 'पूवराग' का नवीन
 रूप मिलता है। पत के कवि की यह अभिलाषा किसी भी व्यक्ति विगप क लिए नहीं
 है—अत वह परम्परित काव्य शास्त्रीय पूवराग के अनुरूप नहीं, किन्तु फिर भी वह
 किन्मा नी युवक की अपनी भावी विगारी पत्नी के लिए अभिलाषा है अत पूवराग की-नी
 स्थिति है—

भूलती उर म आज विचारि
 तुम्हारी मधुर मूर्ति छविमान

^१ श्री मुनिशान तन पत्र—पल्लव, पृष्ठ १०८

^२ ११ गुजन, पृष्ठ ११

लाज में लिपटी उपा समान
 प्रिय प्राणों की प्राण !
 × × ×
 अरे वह प्रथम मिलन अज्ञात !
 विकम्पित मधु उर, पुलकित गीत
 सशक्ति ज्योत्स्ना सी चुपचाप,
 जडित पद, इतमित पलक-दृग-पात
 पास जरा आ न सकोगी प्राण !^१

'भावों सगिनी' की अभिलाषा में कवि के एकाकी जीवन का प्रत्यक्ष उपकरण किस उत्सुकता से उसकी वाट जाहता है यह भाव एक कविता में अत्यन्त सुन्दर ढंग से व्यक्त हुआ है—

कब से त्रिलोकती तुमको
 ऊपा आ वातायन से ?
 सध्या उदास फिर जाती
 सूने गह के आँगन से

तुम आश्रमी आशा में
 अपलक हैं निगि क उडगण
 आश्रमी, अभिलाषा से
 चंचल, चिरनव, जीवन क्षण ।^२

'गुजन' में ही रूपतारा नामक नायिका को हृदय की नभतारा बनाने की इच्छा कवि ने व्यक्त की है। यह कविता भी पूवराग की अभिलाषा के अतगत ही आणगी—

रूप तारा तुम पूण प्रकाम,
 भगेशिणी ! साथक - नाम ।

हृदय नभ तारा बन छवि घाम
 प्रिय अब साथक करो स्वनाम ।
 प्रथम यौवन मरा मधुमान
 मुग्ध उर मधुकर, तुम मधु प्राण ।
 गयन लोचन, मुधि स्वप्न विलास
 मधुर तद्रा प्रिय ध्यान,

१ श्री मुनिब्रानन्दन पन्त—गुजन, पृष्ठ ४१, ४३

२ २१, पृष्ठ ४३

सूय जीवन निरस्य आकाश
इ इमुख इडु समान^१

किंतु पत के काव्य का प्रेमी कभी भी तप्त नहीं हो सका है। उसके अपने पन्दा में—

ना पीने तारो-सी ही
मरी कितनी ही बातें
कुम्हला चुपचाप गई हैं
भैं कसे इह भुलाऊ ?^२

'ग्रथि की किशोर अवस्था की निराशा 'गुजन की निराशा से एकरूप सी हो गई है। बार बार आघात करती हुई इस निराशा का कारण सम्भवतः यह है कि कवि जीवन के सरोवर में गहरे डूबने से डरता है। किनारे बठकर ही जीवन की सुदरतम निधि, वह जीवन के सरोवर से प्राप्त करना चाहता है। इसी आशा में वह बठा है— क्या जाने कब तक बठा रहगा ?

सुनता हूँ इस निस्तल जल में
रहती मछली मोती वाली
पर मुझे डूबन का भय है
भाती तट की जल माली
आएगी मरे पुलिनो पर
वह माती की मछली सुन्दर
मैं सहारा के तट पर बठा
देलागा उसकी छवि जो भर !^३

सभ्या के एवाकी तारे के समान ही एकाकी यह कवि उसमें अपनी भावनाओं का एकरूप देलता है। जीवन को भोगने की प्रबल इच्छा आकाशा उसके मन में भी है। परन्तु क्या वह उसको मिला है? एकाकीपन की निराशा के अधकार और उसके भार से वह दगा जा रहा है—

अविरत द्रच्छा ही मैं नतन करते अबाध रवि गणि, उडगन,
रे उडु क्या जलत प्राण विजल ! क्या नीरव नीर नयन सजल !
जीवन निरस्य र व्यय विफल !
एकाकीपन का अधकार, दुस्सह है इसका मूक भार,
इसके विपाद का रेन पार !

१ भी सुभमानन्दन पत— गुजन,

२ वही, पृष्ठ ६८

३ वही, पृष्ठ ७१

४ वही, पृष्ठ ७२

वादी काव्य में विरह भावना

किन्तु बुद्धि से उसने अपने एकाकीपन को लडित करने का प्रयास किया है। एक तारे का रूप अनक तारो में प्रतिभासित हो रहा है वैसे ही क्या उसका आत्म प्रत्य प्राणिया में प्रतिबिम्बित नहीं है? तब वह अकेला कहा है?

जगमग जगमा नभ का भागन
लद गया कुद बलिया से धन,
वह आत्म और यह जा दशन।^१

जगत में जीवन की इसी एकमूर्तता को स्थापित करता हुआ यह कवि मानववादी हो गया है। 'युगात्' में समाज की जाणावरोप रूढ़िया का उसने विरोध किया है क्योंकि उनके कारण जीवन की गति रुद्ध है, हृदया में कूठा है। जीवन के फल को वह उसके मौमल रूप में भांगने का आग्रह करता है। (युगात् कविता १०) उसका विश्वास है—

मेरा स्वर होगा जग का स्वर
मेरे विचार जग के विचार
मेरे मानस का स्वर्ग लोक
उत्तरेगा भू पर नई बार।^२

'आत्मरति' में पूरा यह कवि सृष्टि के व्याप्त सौन्दर्य रहस्य में अपनी छाया देखता है। छाया अस्पश्य है, पकड़ क बाहर है अतः उसकी सत्ता को सत्य न मानकर अपनी सत्ता को सत्य बताता है—युगात् की छाया शीघ्र कविता है—

खोलो मुख स घूबट खोलो
ह विर अवगुठनमयि, बोलो
क्या तुम केवल विर अवगुठन,
प्रयवा नीतर जीवन कम्पन?

मैं हार गया तह छील छीन
आखी स प्रिय छवि लील लील,
मैं हूँ या तुम? यह क्या छन।
या हम दोनों, दाना के बल?

तुम कुहकिनी, जग की मोह निशा,
मैं रहूँ सत्य, तुम रहा मूषा।^३

अपने मानव क प्रति अत्यन्त सचेत होकर वह बुद्ध मानववादी हो गया है

१ श्री मुनिप्रानन्दन पत्र—गु जन १३—२६

२ वडा, युगात्, कविता १६

३ वडा, कविता १६

प्राचीन रूढ़ियाँ जो मानव के विकास में बाधक हैं, उनका उसने बराबर खंडन किया है। वह जीवित मानव का पुजारी है। उसी मानव के जीवन को कंकाल शेष देखकर कवि का हृदय व्यथा से रो उठा है। आदश वह जाने वाले प्रेम और उसके स्मारकों से कवि का कोई माह नहीं है, जबकि प्रेम की जीवित मूर्ति मानव मतप्राय हो रही हो। युगान्त' की 'ताज' क्षीयक कविता में जीवन का यह व्यंग्य अत्यंत कटु हो गया है—

मानव ऐसी भी विरहित क्या जीवन के प्रति ?
 आत्मा का अपमान, प्रेत और छाया से रति ॥
 प्रेम अचना यही, करें हम मरण को वरण ?
 स्थापित कर कंकाल भरें जीवन का प्राण ?
 शव को दें हम रूप, रंग आदर मानव का ?
 मानव को हम कुत्सित चित्र बना दें शव का ?^१

प्रेम के क्षेत्र में भारतीय परम्परा ने शरीर की भूख को कभी विशिष्ट पद प्रदान नहीं किया है, यद्यपि भाव के चरम विकास के लिए मन और शरीर दोनों के मिलन को आवश्यक माना है। यह एक विरोधाभास है। 'काम मनुष्य की नसगिक प्रवृत्ति है, उसको उसके प्रकृत रूप में स्वीकार न करने के कारण हमारे जीवन में कुछ व्याप्त है। पतंजी ने ग्राम्या और युगांत में उसकी खुली स्वीकृति का आह्वान किया है—

क्या तपा क्षुधा और स्वप्न जागरण सा सुंदर
 है नहीं काम भी नसगिक जीवन द्योतक ?
 बत जाता अमत न वह गरल छू प्रम अधर
 उज्ज्वल करता न प्रणय सुवर्ण, तन का पावक ?^२

पत के प्रेमी हृदय की बराबर यह समस्या रही है—

धिक रे मनुष्य तुम स्वच्छ स्वस्थ, निश्चल चुबन ।
 अक्षित कर सकते नहीं प्रिया के अपरा पर ?^३

पुरुष और नारी के परस्पर आकषण में यही शाश्वत प्यास है जिसकी तृप्ति रूढ़ियाँ ने रुद्ध कर रखी है, यही पत विरह की पीड़ा का अस्तित्व मानते हैं।

नारी मातृत्व का भार वहन करती है। हमारे समाज में वह पुरुष से निराधार मातृत्व का वहन नहीं कर सकती इसी कारण वह अपने प्रेमी के प्रति अनंत स्नेह रखती हुई भी विवाह-प्रार्थि के बिना उसे आत्म समर्पण नहीं कर सकती। नारी की यह समस्या उन्होंने स्वर्ण विरण में उठाई है—

बेंधकर हृदय मुक्त होत है
 बेंधकर देह यातना सहती

१ भा. ग्रामिणानन्दन पत—युगान्त, पृष्ठ ४५

२ यही ग्राम्या, पृष्ठ ८६

३ यही, पृष्ठ ८६

नारी के प्रणय में ममता
बहती रहती बहती रहती ।
नारी का तन माँ का तन है
जाति बद्धि के लिए विनिर्मित
पुरष प्रणय अधिकार प्रणय है
सुख विलास के हित उत्कण्ठित ?

हृदय तुम्ह देती हूँ प्रियतम
देह नहीं दे सकती,^१

‘स्वयं धूलि’ में समाज में पतिता कही जाने वाली स्त्री को हृदय से लगाता हुआ
उसका पुरुष, प्रिया का सात्वना देता है—

मन से होते मनुज कलकित
रज की देह सदा से क्लुपित
प्रेम पतित पावन है तुमका
रहने दूंगा मैं न कलकित ।^१

सामाजिक अधविश्वासा को वह मनुष्यता के स्वर से तोड़ना चाहता है—

आज हम मानव मन को करना आत्मा के अभिमुख
मनुष्यत्व में मज्जित करने जीवन के सुख दुःख ।
पिथला देगी लौह मुष्टि का आत्मा की कोमलता
जन बल से रे कही बड़ी है मनुष्यत्व की क्षमता ।^२

उनकी ‘मनुष्यता का स्वर समाज में प्रतिष्ठित सदाचार और नीति का विरोधी
है । ‘उत्तरा में उहाने स्पष्ट कहा है—

तुम खोला जीवन बघन
जन मन बघन ।
जीय नीति अब रक्त चूसती जन का
सदाचार शोषक मन के निघन का
स्वार्थी पगु पहन
सुख नव मानवपन का
तुम छेड़ो अब अंतर रण
मन ही प्राणण ।^३

१ श्री मुमियानन्दन पन्ना—स्वयं किरण, कविता अक्षुण्णता, पृष्ठ ३८

२ वहाँ, स्वयं धूलि, पृष्ठ २

३ वहाँ, पृष्ठ १३

४ वहाँ उच्छ्रा पृष्ठ ३७

१९५७ में प्रकाशित 'वाणी' में भी पत ने मानसिक सपथ' से पीड़ित मानव से, स्वयं अपना हृदय पहचानने का आग्रह किया है। उसी के द्वारा भू पर स्वर्ग का साक्षात्कार, वह कर सकंगा—

मानव के बाहर भीतर चल रहा आज रण,
मन की सीमाओं से पीड़ित गत मूल्याकन।
आओ, हे, यह नव्यलोक यह पूण जागरण
लौ स्वर्णिम मानुष्य, स्वयं जो अपना दपण

× × ×

धरा स्वर्ग पर प्राप्त करा ह नवजीवन वर^१

मनुष्य का ऐसा सुन्दर स्वर्ग पृथ्वी पर अवतरित देखने का पत का कवि निरतर इच्छुर है। क्या जान उसका वह स्वप्न क्या सत्य बनगा ?

पत के विरह काव्य और उसकी उन्नयित दिशा के उपयुक्त विवेचन से स्पष्ट है कि उनमें विरह की पीडा का उन्नयन, शुद्ध बुद्ध निश्चल मानवता के स्वप्न के लिए हुआ है, जहाँ अपट और कुण्डा सामाजिक नीति और सदाचार प्रेम की निश्चल अभिव्यक्ति में वाचक नहीं होगी।

'वाणी' में 'आत्मिका' नामक स्वयं अपने जीवन के सस्मरणा और जीवन-दशन विषयक कविता में उहाँ इस उन्नयन की ओर इंगित भी किया है—

लाछन कल्प के काँटों में
खिला प्रेम का फूल धरा पर
उसको छूना माह द्रोह के
भू कदम में गिरना दुस्तर

हो न सका चरिताथ प्रेम का
धरा स्वर्ग नारी उर में स्थित,
हृदय नहीं विकसित शोभा,
देह भाव से मन अवगुठित
गुजित उर की कल्प प्रतिध्वनि
मधुर 'प्रिय' में, ध्वनिनय गुम्फित,
प्रणय सरोवर में नव यौवन
प्रथम हुआ जय पावक मज्जित।
हृदय पुष्प रस का प्रेमी मन,
हृदय उसे न मिला जन भू पर

^१ श्री गुमिचानन्दन पन्त—वाणी, पृष्ठ १०६

बिना हृदय के दह प्राण मन
 दारुण वन पगु वानन दुस्कर ।
 दको अभी तब कहा मम ने,
 मोड लिया मने निमम मन
 मानव भावी क स्वप्नोहित
 किया मगध कवि हृदय समपण ।^१

निराशा के काव्य में विरहानुभूति

छायावादी काव्य के उदभव की परिस्थितियाँ पर दृष्टिपात करते समय हमने देखा था कि उस समय पश्चात्य सभ्यता को रगड़ से भारतीय जीवन में वच्छलता आने लगी थी। न तो भारतीय भावुक रूढ़ियों को घिसे घिसाय माग पर चलने का प्रस्तुत था न वह उतना साहस बटार पाया था कि उनका विरोध कर सक।

एक और युवक-युवती के मन में स्वच्छन्द प्रेम के स्वप्न थे दूसरी ओर उन पर बठार नतिकता का अक्रुश था। ऐसी स्थिति में कुण्डल का जीवन में व्याप्त होना स्वाभाविक ही था। ऐहिक प्रेम का भावुक न अपायिक के प्रति उत्तमनित करने का प्रयत्न किया किन्तु समय के सजग बुद्धिवादी मानव ने अमृत की कल्पना पर उत अधिक देर टिकने नहीं दिया। इसीलिए सब छत्रु इन् ब्रह्म की मनारम अनुभूति में दस माल क कवि के प्रेम की चरम परिणति हुई। हमने देखा है कि प्रसाद महादेवी और पत के रहस्यवाद और लोककल्याण की भावना का यही रहस्य है।

निराशा में, जग जीवन में व्याप्त कुण्डल न रहस्यवाद का रूप बहूत ही कम लिया है। उनकी रहस्य भावना अनामिका में यन्त्र-मिलती है और गीतिका तक काफी प्रस्तुति भी हुई है किन्तु अधिकांशतः तानिका में प्रभावित होने के कारण बहुधा ता मातृभाव से पूर्ण है या अद्वैतवादी विचारा की वाहिका। प्रेम के क्षेत्र में तृप्ति के अभाव की पीड़ा अथवा विरहानुभूति या ता प्रकृति के प्रतीक रूपा से व्यक्त हुई है या भीषे लौकिक प्रियतम अथवा प्रयत्नी के प्रति। अतः निराशा के काव्य में विरहानुभूति क तीन स्पष्ट विषय अता अलग मिल सकते हैं। पार्थिव स्थूल विषय के प्रति व्यक्त होने वाली निव्याज विरहभावना, प्रकृति के प्रतीक रूपा में व्यक्त हुई मानव की विरहानुभूति और रहस्यवादी विरहभावना।

पार्थिव विरहभावना

निराशा का प्रथम काव्य संग्रह 'अनामिका' है। 'अनामिका' की प्रथम कविता 'प्रेमसी' है। प्रयत्नी में एक शिथिल नवयुवता का पदे लिखे युवक से प्रथम मिलन, मिलन के पश्चात् कुल, मान, नील और पान का ध्यान करके प्रियतम को छाड़कर चले जाना

१ श्री मुनिशान्दन १-१-वाल्मीकि, पृष्ठ १४८ १४९

और फिर उसके व्यंग से प्रताडित होकर उसे सदा के लिए अपना लेने की कथा है।

प्रेयसी और प्रियतम का मिलन प्रथम रूप दशन से उत्पन्न पुराण है—

मिले तुम एकाएक
दख मैं रुक गई—
चल पद हुए अचल,
आप ही अपल दष्टि,
फला समष्टि में खिच स्तब्ध मन हुआ।
दिए नहीं प्राण जो इच्छा से दूसर को,
इच्छा से प्राण वे दूसरे के हो गए।^१

यह अनायास दृष्टिमिलन छायावादी युग की स्वच्छन्द जीवन-यापन करने की विकट इच्छा के फलस्वरूप कहा जा सकता है। किन्तु दृष्टिपात की पवित्रता असीम है। प्रसंग के पुरुष पात्र का आत्म प्रियसी में अपना ही नारी रूप देख रहा था स्थूल प्रेम को कवि ने अत्यन्त कुशलता से अध्यात्म के सूक्ष्म स्तर तक पहुँचा दिया है—

देखते निमपहीन नयनो स तुम मुझे
रखने को चिरकाल बंधकर दष्टि से
अपना ही नारी रूप, अपनाते के लिए,
मध्य में स्वयं मुख पाने के अर्थ, प्रिय
पीने की अमृत अंगो स भरता हुआ।
कसी निरलस दृष्टि ॥^२

स्थूल को सूक्ष्म रूप में प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति छायावादी कवियों की विशेषता है।

कुल और मान की ग्रन्थि सदा से नारी जीवन पर अनुशासन करती रही है। निराला के समय में अर्थात् आधुनिक समय में भी वह समस्या उतनी ही ज्वलत है। निदान उनकी 'प्रेयसी का, प्रियतम को हृदय समर्पित करके भी विरह की ज्वाला में जलना पडा—

देकर न दिया ध्यान मैंने उस गीत पर
कुल-मान-ग्रन्थि में बंधकर चली गई,
जीते सरकार वे बद्ध ससार के—
उनरी ही मैं हुई।

बीता कुछ काल,

१ निराला—कानानिका, पृष्ठ ३

२ वही पृष्ठ ५

देह ज्वाल बढने लगी,
नन्दन निकुञ्ज की रति का ज्यो मिला मरु
उतरकर पवत से निभरी भूमि पर
पकिल हुई, सलिल दह कलुषित हुआ ।^१

किन्तु अपनी कविता के प्रारम्भिक युग से ही निराला रुद्रियो के विद्राही हैं ।
इसीलिए उनकी प्रेमसी ने जब एक बार मन में समाप्त लिया कि—

दानो हम भिन्न-वण
भिन्न जाति भिन्न रूप
भिन्न धम भाव, पर
केवल अपनाव से प्राणो से एक रे ।
किन्तु दिन रात का
जल और पथ्वी का
भिन सौंदर्य से बदन स्वर्गीय है ॥^२

तो वह जाति कुल के सब बंधन तोड़कर प्रिय से साथ अमिट बंधन में बंध गई—
पहचाना मैंने हाथ बढकर तुमन गया ।
चल दो मैं मुझ साव ।^३

रुद्रियो के इस विरोध का उनकी नायिका को गव है—
गर्वित, गरीयसी अपने में आज मैं ।

रुद्रिया का विरोध करत हुए निर्बाध-स्वच्छ^४ मिलन उस युग के कवि की कल्पना का आदर्श था । पूवराग की मिलन में चिरपरिणति का यह आदर्श, इसके पहले साहित्य में ऐसा प्राप्त नहीं होता ।

'प्रलाप कविता में निराग प्रेमीयुवक की प्रलाप विरह दशा का वर्णन है । कवि ने अपने भाव को वीणावादिनी वाणी के प्रति निभाने का प्रयत्न किया है किन्तु भाव अस्पष्ट-सा रह गया है । वीणावादिनी सरस्वती की मात कल्पना के स्थान पर प्रेमसी कल्पना के साथ सहृदय पाठक का तात्पर्य नहीं बढ पाता । सचमुच वह ऋषि वा 'प्रलाप ही लगती है वह स्थिति जहाँ भावुक को उचित अनुचित वा विवक नहीं रहता ।

अनामिका^५ की रखा नामक कविता में, स्मृति^६ रूप में कवि ने अपनी प्रिया के प्रथम मिलन का वर्णन किया है । यह मिलन कितना उच्च और अतीन्द्रिय था, देखत ही बनता है—

केन्द्र दो था मिल
एक ही तत्व के,

१ निराला—अनामिका, पृष्ठ ६

२ बहा, पृष्ठ ८

३ बहा पृष्ठ ६

सृष्टि के कारण वे,
कविता के काम बीज ॥^१

संसार का जड़ और फलत स्त्री-पुरुष के लौकिक सम्बन्ध को जड़ कहने वाले को कवि ने अच्छी चुनौती दी है—

अस्तु वह प्यार ?—
सत्र चेतन जो देखता
स्पर्श में अनुभव रामाच
हृष रूप में परिचय,
विनोद, सुख गंध में,
रस में मज्जानन्द,
शब्दों में अलंकार,
साक्षात् उसी ने था हृदय यह
जड़ा में चेतन गति कथन मिलता कहां ?^२

परिमल की जागृति में 'सुप्ति थी' नामक कविता में प्रणय की मान मनुहार का वाद का मिलन चित्र कवि ने प्रस्तुत किया है। प्रणय रात्रि के अंत में विद्योग की पीडा का दृश्य उद्धाने इन पंक्तियों में अत्यंत सुलभ कर दिया है—

राज में सुहाग का—
मान से प्रगल्भ प्रिय प्रणय निवेदन का
मद हास मधु वह
सजा जागरण-जग
धककर वह चेतना भी राजमयी
अरुण किरणों में समा गई।
जागत प्रभात में क्या शान्ति थी !
जागृति में सुप्ति थी
जागरण बलात्ति थी !^३

प्रणय मान की मान मनुहार में प्रणय रात्रि व्यतीत करने वाले प्रेमी युग्म की पीडा का हम प्रणय मान की व्यथा के अन्तर्गत ही मानते हैं क्योंकि अंतर्गत का कारण वही था।

जागा फिर एव 'बार्' नामक कविता में, विरह विदग्धा-वधु का स्वतंत्र चित्र अपनी मूक व्यथा में अत्यंत मार्मिक है।

पिय रव पपीह प्रिय बाल रहे,
सज पर विरह विदग्धा वधु

१ निराशा—भनामिका, पृष्ठ ७३

२ वहा पृष्ठ ७५

३ वही, परिमल पृष्ठ १६४ १६५

याद कर बीती बातें, रातें मन मिलन की
मूढ़ रही पलकें चारुं,
नयन जल ढल गए
लघुतर कर व्यथा भार—^१

‘प्रवास’ विरह की पीड़ा अपने सब अंगो उपागा सहित यहाँ रस दगा क प्रकय को प्राप्त कर रही है। पिय र्व उद्दीपन है और स्मृति सचारी भाव। ‘मूढ़ रही पलकें चारुं’ में विरह की निद्राविहीन राता को नायिका थपकी देकर मुलान का प्रयत्न कर रहा है, उसे आश्रय की गति या प्रवृत्ति मानना चाहिए। ‘नयन जल ढल गए’ में आश्रय का सात्त्विक अनुभाव व्यथा की ममस्पर्शी बना रहा है।

‘राम की गक्ति-पूजा’ में सीता से प्रथम मिलन तथा धनुभग के प्रसंग को स्मृति रूप में रखकर कवि ने राम का रावण-जय की नई प्रेरणा-गक्ति लिखवाई है। इस प्रसंग में निराला की यह उद्भावना एकदम नवीन है—

कल लडने को हो रहा विक्कन वह बार बार,
असमथ मानता मन उचत ही हार हार।
एसे क्षण अथकार धन में जम विद्युत
जागी पश्वी-तनया-कुमारिका छवि अच्युत
दलत हुए निष्पलक, भाद आया उपवन
विदह का—प्रथम स्नेह का लता-राल मिलन
नयना का नयनो से गोपन प्रिय सम्भाषण,—^२

यहाँ भी स्मृति सचारी से सयुक्त हो प्रवास’, विप्रलम्भ का रस दशा तक पहुँच रहा है। उसके सात्त्विक और कायिक अनुभावो का वणन निराला ने इस तरह किया है—

सिहरा तन, क्षण भर नूला मन लहरा समस्त
हर धनुभग को पुनवार ज्या उठा हस्त
फूटी स्मृति सीता ध्यान लीन राम क अघर
फिर विश्व विजय भावना हूय म आई भर ॥^३

‘प्रासक’ के सचारी भाव से राम की विरह व्यथा के तीव्रतर होन की सयोजना भी प्रत्यक्ष सकल है—

लिच गए दगा में सीता क राममय नयन
फिर मुना—हस रहा मट्टहास रावण सलसल ।^४

१ निराला—परिमल, पृष्ठ १६६

२ वहाँ पृष्ठ १५१

३ वही, पृष्ठ १५१

४ वही, पृष्ठ १५२

‘अनामिका’ को ‘प्राप्ति कविता में कवि ने करुण विप्रलम्भ की ‘उमाद’ दशा का सुंदर चित्र प्रस्तुत किया है। प्रेमी जब ‘हवा’ को उमाद में प्रियतमा का रूप मानकर उससे उसकी प्राप्ति के सुख का अनुभव करता है—

तुम्हें खोजता था मैं
 पा न सका।
 हवा बन वहा तुम, जब
 मैं षका, रुका।
 मुझे भर लिया तुमने गोद में,
 कितन चुम्बन दिए,
 मरे मानव मनाविनोद में
 नसगिकता लिए,^१

‘परिमल की प्रिया के प्रति कविता आधुनिक हिंदी कविता के करुण विप्रलम्भ काव्य में अपना सानी नहीं रखती। कवि अपनी मत प्रियतमा से एक बार फिर पुनर्मिलन की आकांक्षा करता है। काग ! अतल कं गभ में उमकी प्रियतमा एक बार उसके समुख उपस्थित हो सकती। तब वह अपने हृदय के अगणित व्याकुल भाव उस अर्पित कर देता।

एक बार भी यदि अज्ञान क
 अंतर से उठ आ जाती तुम,
 एक बार भी प्राणा की तम
 छाया में आ कह जाती तुम
 सत्य हृदय का अपना हाल
 बसा था अतीत वह, अब यह
 बीत रहा है कसा काल
 मैं न कभी कुछ कहता,
 बस तुम्हें देखता रहता।^१

चकित धवी चितवन मरी रह जाती
 दग्ध हृदय के अगणित व्याकुल भाव
 मोन दृष्टि की ही भाषा कह जाती।

(२)

तप श्रियोग की चिर ज्वाला से
 कितना उज्ज्वल हुआ हृदय यह
 पिष्ट कठिन सामना दिला से
 कितना पावन हुआ प्रणय यह,

^१ निराला—अनामिका, पृष्ठ १४७

मीन दृष्टि सब कहती हाल,
कसा या अतीत मरा, अब
बीत रहा यह कसा काल ॥^१

“तुम्हारा काल अज्ञात के गम म कसा बीत रहा है और मरा, सस्ति की शृंखलाधो न कसा ? ’ दोनो के साम्य स व्यथा अधिक ममस्पर्शा हो गई है । मत प्रियतमा से जीवित प्रिय का यह साक्षात्कार अनुपम है, उनकी व्यथा की सजीवता म कौन सन्देह कर सकता है ?

विरह भावना’ की अभिव्यक्ति निराला के काव्य म एक अय माध्यम, प्रकृति के प्रतीक रूपो से भी व्यक्त हुई है । स्वतंत्र व्यक्तित्व से संयुक्त होत हुए भी निराला अपने समय की भावनाओ से प्रभावित थे । उनकी एकान्त चिन्तनशील प्रवृत्ति ने प्रकृति के चिन्तित जीवन के सादृश्य म रहने का उ ह काफ़ी अवसर भी दिया था । तब वह उसके प्रभाव से ग्रछते कसे रह सकते थे ?

प्रकृति के प्रतीक रूप में व्यक्त हुई विरह-भावना

प्रकृति के प्रतीक रूपा के द्वारा मन के भावो की अभिव्यक्ति इस युगकी मुख्य विशेषता है । तट पर नहाती हुई तरुणी के सौन्दर्य पर दृष्टिपात करने का कवि को अधिकार नहीं है । इसी स वह वसन्त बनकर उसके सौ-दय का दखता है और अपने हृदय के भाव पुष्प-वृन्त से गिरे हुए पुष्पा के मिस उसे प्रीति करता है—

नव वसत कापा पत्रा म,
दख दगो की कार ।

भग-भग मे नव-यौवन उच्छ्रल,
किन्तु वैधा लावण्य पाश से
नम्र सहास अचचल ।

वायु सेविका-सी आकर
पोछे युगल उरोज, बाहु मधुराधर ।
तरुणी न सब और
देख, मन्द हँस, छिपा लिए उन्नत पीन उरोज,
उठाकर गुष्क वसन का छार ।
मूर्छित वसत पत्रा पर,

तस से वृन्तव्युत बुद्ध फूल
गिरे उस तरुणी के चरणो पर ।^२

१ निराला—परिमल पृष्ठ ६८ ६५

२ वरा, अना म० पृष्ठ ५० ५१

वसन्त के भाव किसी भी युवक के भाव हो सकते हैं। रूप दशन से उत्पन्न हुई पूर्वराग की 'अभिलाषा' के अन्तर्गत ही उह रखा जाएगा।

'जुही की कली' में प्रवासो नायक के विरह की 'स्मृति' दशा तथा उस स्मृति से उसके, प्रियतमा के पास वापस लौट आने की प्रेरणा का वणन है। भाव को ध्वनित करने के लिए वह जुही की कली जिसका जीवन चंद घटों में गिना जा सकता है, वष भर प्रिय की प्रतीक्षा करती रही और तब भी तरुणी रही।

आई याद विछुडन से मिलन की वह मधुर वात,
आई याद चाँदनी की धुली हुई आधी रात,
आई याद वान्ता की कम्पित कमनीय गात,
फिर क्या ? पवन

उपवन सर सरित गहन गिरि कानन
कुज लता पुजा को पार कर
पहुँचा जहा उसन की केलि

कली खिली साथ !^१

लौटकर आया हुए समीर और जुही की कली की मिलन गाथा में विराला ने रूपगर्विता मुग्धा और उसके प्रिय का जीवन चित्रित किया है।

'गीतिका' की एक कविता में भी निराला ने शशिप्रभा की प्रोषितपतिका के रूप में वल्पना की है, जो सिंधु रूपी प्रिय के हेतु मधु बहा रही है—

प्राण धन का स्मरण करते
नयन भरत नयन भरते !
स्नेह श्रोत - प्रोत
सिंधु दूर, शशिप्रभा दृग
मधु ज्योत्स्ना स्रोत !
मेघमाला सजल नयना
सुहृद उपवन को उतरते !^२

वरुण विप्रलम्भ में किसी विरपरिचित मिलन स्थान के सम्बन्ध से जागृत हुई 'स्मृति दशा' का वणन 'ठूठ कविता में मिलता है—

ठूठ यह है धाज !
गई इसकी बला,
गया है सकल साज !
भव यह वसंत स होता नहीं अधीर,
पल्लवित झुकता नहीं भव यह धनुष सा,

१ निराला—परिमल, पृष्ठ १६१ १६२

२ बली, गीतिका, पृष्ठ ५२

छायावादी काव्य में विरह भावना

भरते नहीं यहाँ दो प्रणयियों के नयन नीर,
केवल वद्ध विहग एक बठता कुछ कर याद ।^१
विहग की वद्ध रूप में और उसका 'कुछ याद करके ठूठ पर बठना अदभुत कल्प
है। दो पक्तियों में निराला असीम व्यथा का सागर भरन में समय हुए हैं।
'गीतिका' में पटऋतु वणन की परम्परा का निर्वाह करता हुआ सा शिशिर
ऋतु वणन है। यहा शिशिर का उद्दीपन रूप वर्णित है। वह विरही को कष्ट देता है।
इसी भाव को स्पष्ट करन के लिए निराला ने तीन विभिन्न चित्र प्रस्तुत किए हैं। दो
में, प्रकृति के प्रतीक रूप आलम्बन हैं और अंतिम चित्र में स्वयं कामिनी। तीना चित्र
जितने सक्षिप्त हैं, उतने ही मार्मिक भी। प्रथम चित्र नीलकमल की कलिया का है—

वह चली अब अलि शिशिर समीर ।
काँपी भीह मणाल बत पर
नील-कमल-कलिकाएँ थर-थर ।
प्रात अरुण को करुण अश्रु भर
सज्जती अहा अधीर ।^२

सूय और कमलिनी का प्रेम काव्य का शाश्वत सत्य है किन्तु शिशिर ऋतु के
म्ब प से, सूय के विमोग में कमल-कलिया के काँपन की कल्पना निराला की अपनी है।
कल्पना अत्यन्त सुन्दर है। सूय रूपी प्रिय को प्राप्त करन पर उनक करुणाद्र नेत्रों के अश्रु
और भी मधुर हैं। दूसरा चित्र हरसिंघार क पुष्पा का है। कवि कल्पना करता है कि
वनदेवी के हार के हीरो पर किरणों आसक्त हो गई हैं। प्रेम का अनुराग ही हरसिंघार के
हृदय पर लक्षित हो रहा है—

वन देवी के हृदय हार से
हीरक भरत हरसिंघार के,
वध गना उर किरण तार के
विरही राग का तीर ॥

तीसरा चित्र कामिनी का है। नायिका प्रोपितपतिका है। शिशिर की रात्रि
प्रमोयुग्म के जीवन में विनोप महत्व रखती है। इनक लम्बी हान से सयोग का अवकाश
भी दीप हो जाता है। अतः प्रिय क अभाव में बदना भी-उननी ही करुण होती है—
विरह परो सो खडो कामिनी
व्यथ बहु गई शिशिर-यामिनी
प्रियके गह की स्वाभिमानीनी
नयना में भर नीर ।

गीतिका के एक अथ गीत में सरिता से प्रिया का साम्य देखकर—

१ निराला—अनामिका, पृष्ठ १३६
२ वही, गीतिका पृष्ठ १०

की स्मृति के जागत हो आन का वणन है।

सरि, धीरे वह रही ?
ब्याकुल उर दूर मधुर,
तू निष्ठुर रह री।

भर मत री राग प्रबल
गत हासोज्ज्वल निमल
मुख-कलकल छवि की छल
चपला चल लहरी।^१

निराला के काव्य में रहस्यवादी विरह-भावना

प्रकृति के कण कण में व्याप्त, अलौकिक सौंदर्य सम्पन्न अमृत सत्ता के प्रति, आत्मा का उन्मुखी भाव और आत्मनिवेदन ही रहस्यवाद है। यह मूलतः दो प्रकार का माना गया है—दशनमूलक रहस्यवाद और प्रणयमूलक रहस्यवाद। स्वामी विवेकानन्द और ब्रह्मवादी दशन का प्रभाव होने के कारण निराला के काव्य में दार्शनिक रहस्यवादी उक्तियाँ मिलती हैं। 'तुम और मैं' शीपक कविता में वह ब्रह्म को विराट प्रदल सत्ता और आत्मा को उसका गतिमान व्यक्त रूप कहते हैं—

तुम तुम हिमालय शृंग
और मैं चंचल गति मुर सरिता।

तथा—

तुम मृदु मानस के भाव
और मैं मनारजिनी भाषा।^२

किन्तु आत्मा के परमात्मा के प्रति सहज आत्मनिवेदन का भी अभाव नहीं है। युग युग से निराला की विरहाकुल आत्मा, परमात्मा रूपी प्रिय के लिए तड़प रही है। प्रापितपतिना सी वह प्रियतम की राह देख रही है—

तुम पश्चिम दूर के ध्रान्त
और मैं बाट जाहती आशा।^३

वर्षों से विछुड़ा हुआ प्रिय जैसे इस विरहिणी को भूल गया है। रूपाकृति में अनेक परिवर्तन हो गए हैं, इसी से अतीत के मिलन की याद दिलाती हुई वह उससे कहती है—

तुम वर्षों के बीते वियोग
मैं हूँ पिछली पहचान ॥^४

१ निराला—गानिका, पृष्ठ २१

२ वही, परिमल, पृष्ठ ८-८५

३ वही, परिमल, पृष्ठ ८-८५

कवि की जीवन सरिता, ब्रह्म रूपी समुद्र निधि की ओर बढ़ने में निरंतर प्रयत्नशील है। उसका आकुल क्रन्दन उसी अपारथिव विराट के लिए है—

मरा आकुल क्रन्दन,
व्याकुल वह स्वर-सरित हिलार
वायु में भरती करुण मरीच
बढ़ती है तेरी ओर ॥^१

विरह-वेदना से सतप्त उसकी विरहिणी आत्मा कभी दैन्य भरी सी प्रिय से अनुनय भरा प्रश्न करने लगती है—

मुझे स्नह क्या मिल न सकेगा ?
स्तब्ध, दग्ध मर भर का तरु
क्या करणाकर खिल न सकेगा ?^२

वियोग दुःख का भार उसक लिए अमह्य होता जा रहा है, प्रतीक्षा के अनन्त माग पर चलते चलते चरण थकने लगे हैं। प्रिय का दर्शन-स्पर्श करके अब इस महान् वेदना से उन्मत्त होने की वह व्याकुल हो रही है—

मरे दुःख का भार झुक रहा
इसीलिए प्रति चरण रुक रहा,
स्पर्श तुम्हारा मिलन पर, क्या
महाभार यह क्लिप्त न सकेगा ?^३

'अनामिका' की 'क्षमा प्रायत्ता' कविता में, आत्मा रूपी, प्रियतमा, परमात्मा रूपी प्रिय से अपनी ओर अनुकूल भाव रखने की विनय करती है जने प्रणय में स्वलित प्रियतमा की, रुठे हुए प्रिय से 'मान की 'मनुहार' हो—

माला में ही मूख गए जा फून
क्या न पड़ेगी उन पर प्रियतम,
एक दृष्टि अनुकूल ।
ताक रह हा दृष्टि,
जांच रहे हो या मन ?

क्षमा कर रहे हो प्रयवानुम देव

अपने जन के स्वलन और सब पतन ?^४

रहस्यवाद के क्षेत्र में और दूसरी ओर विरह में 'मान' के क्षेत्र में, एकदम नवीन प्रयोग है। कवि ने स्वयं स्वीकार किया है कि

१ निरुत्था—अनामिका पृष्ठ ४५

२ वही, गतििका, पृष्ठ ४५

३ वही, पृष्ठ ४५

४ वही, पृष्ठ ४२

टाकुर के भाव से ग्रहण किए हैं। कुछ भी हो, हिन्दी के लिए वे नितान्त नवीन हैं।

बुद्धिवाणी युग के सांसारिक कवि को परम्पारित सतो और वरागियों की कोटि का आराधक मानना भूल है। जीवन की कुण्ठा और पराजय की भावना को इहान ब्रह्म की मनारम कल्पना में विस्मृत कर देना चाहा था। जीवन के क्षणिक अवसाद से विषण्ण प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में वैसे क्षण आते हैं। अतः निराला की अनामिका और परिमल की ऐसी रचनाओं को भी क्षणिक विरति के फलस्वरूप समझना चाहिए।

फिर भी अनामिका की 'हताश' कविता के बाद निराला की विचारधारा में एक निश्चित परिवर्तन मिलने लगता है। 'हताश' निराला के हृदय के घोर नराश्य का घातक है—

जीवन चिरकालिक श्रमन ।
मेरा अन्तर बच्च कठोर,
देता जो भरसक भवभोर,
मेरे दुख की गहन अघ
तम निशि न बनी हों भार
क्या होगी इतनी उज्वलता—
इतना वदन—अभिनदन ?^१

निराला उह दार्शनिक और वीतराग बनाती जा रही है। विवेकानन्द के प्रभाव में लिखी गई कविताएँ दार्शनिक हैं। नाच उस पार श्यामा और गाता हूँ मैं गीत तुम्हें ही सुनाने को ऐसी ही कविताएँ हैं। परिमल में कवि जगत और ब्रह्म के बीच में भटकता रहा है। 'जुहो की कली और 'तुम और मैं' कविताएँ इसके प्रमाण हैं। किन्तु 'गीतिका' में निश्चित रूप से उसकी विचारधारा का मोड़ जगत और उसके आकषणों से दूरातिदूर होता गया है। जगत से विरक्त, उससे अनुरागी हृदय का प्रेमी 'अपायिव' के पथ का पथिक बन गया है—

मेरे दुख का भार भुक् रहा
इसीलिए प्रति चरण स्व रहा,
स्पश तुम्हारा मिलने पर, क्या
महाभार यह भिन्न न सकगा ?^२

दगन शास्त्रा के अध्ययन मनन से निश्चित रूप से उसने समझ लिया है कि जीवन अधकारमयी रजनी है। निरन्तर जागरूक निराला यहाँ स्व और पर की सीमा में ऊपर उठ गया है—संसार की अधकारमयी रात्रि में यह सबको गले लगा लेना चाहता है। 'गीतिका' में एक गीत में प्रातःकाल प्रिय से विमुक्त होती हुई नायिका

१ निराला—अनामिका, पृष्ठ ६०

२ इतिवत् पद्यों में भी विवेचन में

प्रियतम से कहती है—

हुआ प्रातः, प्रियतम, तुम जावगे चले ?
कसी थी रात, बधु, ये गले गले ॥

बाँधो यह जान ।

पार करो बधु, विश्व का यह व्यवधान ।
तिमिर में मुझे जग, आगो भल भले ॥^१

इस गीत में वियोग व्यथा नहीं है। वियोग की स्थिति दग्गन की अभिव्यक्ति बनकर आई है।

अतः 'रहस्यवाद' निराला के लिए अणवाद के क्षणा का भणिक विश्राममात्र नहीं रह सका है, वह उनके जीवन का अन्तिम सत्य-सा ही गया है। व्यावहारिक बुद्धिप्रधान मानस पर भावुकता और अभ्यास विजय प्राप्त कर रहे है। इसीलिए उनकी रहस्यवादी उक्तियों में धीरे कविया की अपेक्षा कल्पना न्यूनतर और निर्बाज अभिव्यक्ति का आग्रह अधिक है।

गीतिका के एक गीत में वह सिद्धों की भाति प्रकृति की अधिष्ठात्री दवी शक्ति का साक्षात्कार करते हैं। उनकी यह कल्पना सिद्धों की योगिनी रूप कल्पना के अत्यधिक निकट है।—

रहा तेरा ध्यान,
जग का गया सब अज्ञान ।
गगन धन बिटपी, सुमन नक्षत्र ग्रह, नव गान
बीच में तू हंस रही ज्योत्स्ना-वसन परिधान ॥^२

'आराधना' के आराधक न तो विश्व माँह विलकुल छाड़ दिया है—

तुमसे लाग लगी जो मन की
जग की हुई वासना बीसी
गगा की निमल धारा की
मिली मुक्ति, मानस की कागी ।^३

'जग की वासना वासी' हा गई है—कितना सुन्दर प्रयोग है।

निराला के 'रहस्यवाद' की परिणति 'भक्ति' में हुई है। प्रणयभाव के स्थान पर क्रमशः दम्य भाव प्रसिद्धित होता गया है, सम्भवतः विराट् के समुख अपनी लघुता का अधिवाधिक अनुभव करने के कारण। निवृष्टतम भक्ता की कोटि में अपनी गणना करके

१ निराला—गीतिका, पृष्ठ ६६

२ वही, गीतिका, पृष्ठ ६४

३ वही, आराधना, कविता ५०

वह प्रार्थना करते हैं—

कामरूप हरो काम,
जपूँ नाम, राम राम
शबरी, गज गणिकादिक,
हुए कृष्ट प्रासारिक,
पाग्लि में सासारिक,
अविधा हा व्यग्यदाम ।^१

प्रार्थना की ही एक और कविता में तुलसी के 'श्री रघुनाथ कृपालु कृपा ते सत सुभाव गृह्या' के, निराला अथ त निवट आ जाते हैं—

मेरी सेवा ग्रहण करो ह ।
शुद्ध सत्व से क्षण-क्षण यह
काष्ठा से रहित शरीर भरो हे ।^२

तुलसी की विनयपत्रिका का सा ऐसा दुःख दाय निवेदन हिन्दी कविता में और कहीं अथत्र दुर्लभ है । निराला कहते हैं—

मन का समाहार
करो विश्वाधार ।
गहन कण्ठक जटिल
मग चल पग निखिल,
गया है हृदय हिल,
तां यके का वार ।^३

तथा—

चलता नहीं हाथ,
कोई नहीं साय
उन्नत विनत माथ
दा शरण, दोषरण ।^४

प्रिय की विरहप्रार्थना में निराला दिशा बधू की क्या गति हो रही है ? उसका वणन निराला ने जसा मार्मिक किया है, उसी का सक्षिप्त परिचय देकर उनकी विरह-प्रार्थना सम्बन्धी विवेचना को हम यहाँ समाप्त करेंगे—

मूने है साज भाज
बिना तुम्हारे बिराज ।

१ निराला—प्रार्थना, कविता १४

२ वही, कविता २४

३ वही, कविता ४६

४ वही, कविता ६२

दिग्घू निराग, दीन
 अम्बर पीवर सुपीन
 नारी-नयन-ज्याति क्षीण
 भिति पर जमे जहाज ।^१

विरहीसाधक की निराग स्थिति का इसन मजीब बणन और क्या हा सकता हे? कहने की आवश्यकता नहीं कि विरह के क्षेत्र मे निराला के काव्य का स्थान आधुनिक हिन्दी काव्य म अद्वितीय है। उनकी पार्थिव विरहानुभूति जितनी उज्ज्वल और मत्व है वसा ही अपार्थिव के प्रति भी, दोनों म स किसी को भी उन्हाने आच्छादन मे कुण्ठित नहीं किया है। हाँ कहीं-वहा प्रकृति के जीवन म विरह के छायास्पश के सौन्दर्य का साक्षात्कार करके उसके शोभन वा आनन्द मल ही लिया है।

चतुर्थ अध्याय

छायावाद-परवर्ती हिन्दी-काव्य में विरह-भावना

सन् १९३५ के लगभग काव्य के क्षेत्र में छायावाद की रोमानी कल्पना और रूप-विधान के विरुद्ध प्रतिक्रिया स्पष्ट होने लगी। परिस्थितियाँ लगभग वही थीं जो छायावादी युग के प्रारम्भ में थी—राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और मानसिक—सभी क्षेत्रों में अशांति थी। अन्तर केवल इतना था कि भौतिकवादी दृष्टिकोण ने कवि की आध्यात्मिकता को झकझोरकर तहस नहस कर डाला—ईश्वर की कल्पना से वंचित होकर वह, अपने अह की रक्षा के लिए अधिक आत्मनिष्ठ होने का प्रयत्न करने लगा। आध्यात्मिकता का बुद्धिवाद की यह चुनौती स्वयं छायावादी कवियों की रचनाओं में ही मिलन लगी थी।

किन्तु फिर भी छायावादी कवि भारतीय आध्यात्मिकता और ईश्वर कल्पना के मोह को पूर्ण रूप से त्याग नहीं सके थे। इसीलिए उन्होंने भारतीय अद्वैतवाद को भावात्मक सबवाद का रूप दिया। उन कवियों की व्यक्तिक पीड़ा रहस्यवाद का आधार पाकर अमश लोककल्याण में परिणत होती गई।

परवर्ती काव्य पर मानस के भौतिकवाद का प्रभाव बहुत गहरा हो गया। किसी काल्पनिक ईश्वर के प्रति आत्म निवेदन करना हास्यास्पद-सा प्रतीत होने लगा। आधुनिक मनोविश्लेषण शास्त्र के परिचय ने 'मन के जीवन' के सम्बन्ध में अनेक रहस्यात्मक तत्त्वों का उद्घाटन किया। मन और शरीर की भ्रूख समन्वित रूप से कवि के मानस के धारा और भँडराने लगी। फ्रायड, एडलर और युंग नई नई मनप्रक्रियाओं को उसके स मुख खोल-खालकर रखने लगे।

इस युग के कवि ने स-मुख, उसकी आत्म-पीड़ा (व्यक्तिगत पीड़ा) और जग की पीड़ा दो निम्न समस्याएँ बनकर आईं। परिस्थितियों की धराजकता के सघनपूर्ण जीवन में धरम धारम की रक्षा के लिए अत्यन्त सजग इस कवि ने इन दोनों में से किसी भी एक को दूसरे के लिए बिलय करना उचित नहीं समझा। पलन न तो व्यक्तिगत पीड़ा का उल्लापन लाभकल्याण में हुआ और न उसकी अभिव्यक्ति के लिए जग से कोई और प्रतीक बूझने की आवश्यकता इन कवियों को पड़ी। काव्य में प्रथम बार दार्शनिक और प्राकृतिक प्रतीकों से रहित धारमपीड़ा की अभिव्यक्ति हुई।

इस युग से पूर्व आत्मपीडा अथवा व्यक्तिगत रति की अभिव्यक्ति को काव्य में हेय समझा जाता था। डा० नगेन्द्र के शब्दा में, "काव्य-शास्त्रियां न स्पष्ट कह दिया है कि व्यक्तिगत रति आदि का समाज के समुख व्यक्त करना लज्जास्पद एवं रस में बाधक है। इस प्रकार आध्यात्मिक घरातल से नीचे उतरकर भौतिक घरातल पर आत्मपरक कविता लिखना शास्त्रीय दृष्टि से एक प्रकार से वर्जित ही था।" छायावाद के विषय में भी नगन्द्रजी का यह वक्तव्य ठीक ही है, 'छायावाद न काव्य परम्पराओं को तो नहीं माना, परन्तु नतिक आदर्शों का आतंक उस पर भी गहरा था, इसके अतिरिक्त सीधी अभिव्यक्ति भी उसे ग्राह्य नहीं थी। अतएव उसको भी अपने व्यक्तित्व का प्रच्छन्न रसते हुए, प्रतीकों के द्वारा ही अभिव्यक्त करना पडा।'

व्यक्तिगत-पीडा की स्वच्छद स्पष्ट अभिव्यक्ति की प्रवृत्ति यद्यपि छायावादी कवियों के काव्य में ही यत्र-तत्र प्राप्त होने लगती है, निराशा और पतन, किन्तु 'बच्चन' के व्यक्तित्व में प्रथम बार वह स्पष्ट धारा बनकर अभिव्यक्त हुई।

'बच्चन' आधुनिक कवि के 'मानस के वे भाव स्तम्भ हैं जहाँ उसने पुरातन क मोह को छोड़ दिया है किन्तु नवीन को भी वह पूणत अपना नहीं बना पाया है। एक और सामाजिक, धार्मिक और आध्यात्मिक रूढ़ियाँ उस प्रिय नहीं, दूसरी ओर जीवन को सूल भौतिक रूप में भोगने का साहस भी उसके पास नहीं है। वह एसी निराधार स्थिति में खडा है जहाँ रात्रि के गहन अंधकार से भयभीत व्यक्ति स्वयं जोर-जोर से गाने, जीवन की वास्तविक स्पन्दना का अनुभव करना चाहता है और स्वयं को यह विश्वास दिवाना चाहता है कि वह डरा हुआ नहीं है, निराधार नहीं है। मन की यह अव्यवस्थित विकलता बच्चन के सम्पूर्ण काव्य में लक्षित होती है। धर्म समाज और रूढ़ि का विरोध करते हुए भी वह प्रेम को केवल भौतिक सत्य के रूप में स्वीकार नहीं कर सका है इसी से न तो वह उसका जग की पीडा में उन्नयन कर सका न उसे 'क्षुधा' और 'काम' का पपाय बना सका। अतः उनकी कविता मन को उमत्त ध्याया का प्रविरल अजस्र स्रोत बन गई जिसके बांध का कोई उपाय वह अब तक नहीं खोज सका है। स्वयं उनका अपने शब्दा में यह भाव इस तरह व्यक्त हुआ—

अपनी ही आग बुझा लेता,

ताँजी को धय बँधा देता,

मधु का सागर लहराता था, लघु प्याला भी मैं भर न सका।

मैं जीवन में कुदृष्ट कर न सका।^१

यही विवर्गता इस युग के दो अन्य प्रसिद्ध कवियों में भी प्राप्त होती है— भगवती-चरण वर्मा और नरेन्द्र वर्मा विशेष उल्लेखनीय है। इनके अतिरिक्त तो न जान हिन्दी

^१ डा नगेन्द्र—आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ, पृष्ठ ६३

^२ बच्चन—एकान्त संगीत, गीत २१, पृष्ठ ३७

के कितने असह्य नवयुवक कवि, मन की विवशता के गीत प्रतिक्षण गा रहे हैं, कुछ वचन के अनुकरण पर सुराही और प्याल की मृगतण्णा के पीछे आकुल हैं।

‘प्रवासों के गीत की भूमिका में नरेन्द्र शर्मा ने आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्य के उत्तरार्द्ध के कवियों के विषय में कुछ और विचारपूर्ण तथ्या का उल्लेख किया है। उनमें से प्रथम बात है इस युग के कवि की निराशा। निराशा का कारण नरेन्द्र शर्मा यह बताते हैं कि समाज के किसी भी वर्ग से कवि को आज महत्त्व प्राप्त नहीं है। उसके भी कारण हैं—“ब्रिटिश सत्ता के कारण हमारे समाज में वर्गीकरण कुछ ऐसे ढंग से हुआ कि हमारे कविता और साहित्यिकों को किसी भी वर्ग में उच्च स्थान न मिल सका।” व्यापारी, राजा, ताल्लुकदार, वकील और डाक्टर आदि ‘उच्च कहलाने वाले वर्ग के विषय में नरेन्द्र शर्मा कहते हैं—‘इनकी शिक्षा भस्कार और जीवनचर्या इन्हें हम योग्य नहीं रहने दते कि ये हमारे साहित्य की ओर कृपा-कटाक्ष कर सकें।’ मध्यवर्ग के लिए उनका कहना है—“मध्यवर्ग जिसमें बेकार शिक्षिता और कविता और लेखकों की भी गणना होनी चाहिए के अंतर्गत अदालती झलकारी की श्रेणी से लेकर उच्चवर्ग की ओर ऊबमुख किन्तु अपने सौभाग्य के कारण अदालत स्वयं से तृप्त सफल सांसारिक आते हैं। स्पष्ट है कि इन छिछल सांसारिक जीवों के बीच साहित्यिकों के लिए कोई स्थान नहीं। हमारे लेखक और कवि भी शायद वर्ग क ही व्यक्ति है। अपने वर्ग में उनके लिए स्थान नहीं है तो इसका यह अर्थ नहीं कि उनके संस्कार उनकी जीवनचर्या तथा मनोवृत्ति वर्गगत नहीं है। जनता के लिए वे दुःख हैं। जनता उनके अस्तित्व से अनभिज्ञ है। जनता में उनके गुण ग्राहक कहाँ मिलेंगे ? ऐसी अवस्था में कवियों का निराशावादी हो जाना स्वाभाविक था।

इस युग के कवि की मनस स्थिति का विदलेपण नरेन्द्र शर्मा ने इस प्रकार किया है— यह स्वाभाविक है कि जब व्यक्ति को अपनी प्रवृत्तियों के व्यक्तिकरण के साधन बाहर समाज में नहीं मिलते तब वह उसे बाहर ढोकर लाकर, अपने लिए अपने ही भीतर कामनाजन्य भावनाओं और कल्पनाओं का एक ससार बना लेता है। लेकिन कल्पना उसका कब तक साथ देगी ? शाम के रंगीन बादलों-सी यह कल्पना बालू की भीति-सी भी तो नहीं है। उसकी आत्म चेतना उसके व्यक्तित्व और सामाजिक जीवन की विषमताओं में टकरा कर गतिरुद्ध हो जाती है और उसके अंतर मधुर्ण की तरह घुमडने लगती है। जस जस वह ‘आज मुझमें दूर दुनिया का अनुभव करता है उसका महभाव और भी तीव्र गति से जागृत होता जाता है।’

इसकी मानसिक और सामाजिक अगाति का समाधान नरेन्द्र शर्मा ने भी घूम फिरकर लोक के साथ तादात्म्य में ही माना है—‘यह निश्चित है कि जब तक वह व्यक्तित्व और सामाजिक जीवन की विषमताओं और उनसे प्रारंभिक पाकर पदा हानि यात पारर के अविश्वास (भाग्यवाद) और दुःखवाद के दाना विषमता को ताड़न शक्यता तक तक अपने अंध रोग का उपचार न कर सकना। उसे अपनी रक्षा के लिए

छायावाद-परवर्ती हिन्दी काव्य मे विरह भावना

सामाजिक और राजनीतिक प्रगति के साथ चलना होगा, दोनों क्षेत्रों मे क्रान्ति उपस्थित करने के लिए पूरा सहयोग देना होगा। एकाकी बने रहकर वह अपनी रचना कर सकेगा।”

स्वयं अपने लिए उहनि स्वीकार किया है— प्रवासी के गीत का कवि आज भी 'मरघट का पीपल तब है वह मुक्ति का माग जानता है लेकिन फिर भी अपनी बेवसी का गुलाम है। यह उसकी परवशता की चरम सीमा है।'

फ्रायड के 'यौन सम्बन्धी विक्षेपण का आधुनिक कवि की भावधारा पर गहरा प्रभाव पडा है। वम तो भारतीय काव्यशास्त्र के अनुसार शृंगार का मूल भाव रति है ही, युग्म के शरीर व मन दोनों के मिलन म वह चरम उत्पन्न प्राप्त करती है। किन्तु भारतीय विचार-परम्परा न सदा 'रति के भौतिक पथ की अपक्षा मानसिक पथ को ही उच्चतर स्थान और महत्त्व दिया है। मानसिक मिलन, शारीरिक मिलन का प्रेरक भी है और साध्य भी। किन्तु फ्रायड न एक व्यक्ति के दूसरे के प्रति उमुखी भाव पर स आध्यात्मिकता (आत्मा की आत्म के प्रति मूल) का आवरण अपघातित हटा दिया है। उहान इस प्रकार के भाव की प्रेरणा यौन मूल (Sex urge) म दूढन का प्रयत्न किया है। इसके प्रभाव से जो प्रेम काव्य हिन्दी म लिखा गया और लिखा जा रहा है, वह परम्परित सयोग और वियोग की व्यवस्था से सम्बन्धित नही कहा जा सकता। विरह की भावना ही बदल गई है। कवि किसी अभीष्ट के मन का प्रपना बनान की चाह म ग्रामी नही बहाता, वह उसके भौतिक अस्तित्व के लिए भी उतना ही प्रयत्न अधिक व्याकुल है। भौतिक अस्तित्व के लिए पहला विरही भी व्याकुल होता था परन्तु गौण रूप से। अब वह भी प्रमुख ध्येय है। इस काव्य म यह चाह कवि की सजग प्रेरणा बनकर आई है।

त्व, गुमन, अनय विरिजाकुमार, घमनीर भारती तथा अय अनेक कवियों के काव्य सजग भाव से उसका ध्यान रखा गया है।

यह प्रवृत्ति भी सामाजिक परिस्थिति और युवक की मानसिक परिस्थिति म असन्तुलन के कारण उत्पन्न हुई है। एक भार प्रेमी प्रियतमा से दूर रहन को बाध्य है, दूसरे और नवीन विचार उसके अतरमन को उभार रहे हैं, खोद रहे हैं। युवक युवती के मिलन म क्षण भर की 'चाह और उसकी तृप्ति को भी विरह की चाह कहा गया। विरह की परम्परित व्यथा इस व्यथा से मलीन हान लगती है। वह विरह जिसकी तृप्ति जीवन पयत नही होती केवल शारीरिक मूल नही हो सकता। किन्तु इस काव्य की क्षणिक तृप्ति म भी जीवन पयत की व्यथा निहित है यही इसकी ममस्तीगता का कारण है। वहीं-ही स्वस्थ मानसिक क्षणा म इहाने मन की उज्ज्वल व्यथा को भी मुखर किया है। परिस्थिति के इस अराजक युग म भी यदि कवि प्रपना मानसिक असन्तुलन न हो बढेगा तब तो जावन क परिष्कृत मूल्यों, प्रेम और विरह के अमर गीता का इतिहास

१ श्रीनरद्र शर्मा—व्रता क गय (भूमिका), पृष्ठ ६६

जीवित रहगा । अन्यथा कौन कह सकता है कि 'सजग विरह व्यथा' क्या नवीन माग मपताएगी ?

छायावादोत्तर काल की विरह भावना का परिचय प्राप्त करने के लिए इस अध्याय के आगामी पष्ठो म वच्चन, नरेद्र शर्मा, भगवतीचरण वर्मा, शिवमगलसिंह 'सुमन', अचल, अज्ञेय, गिरजाकुमार माथुर और धमवीर भारती के काव्य म विरह भावना का अध्ययन करने का प्रयत्न किया गया है ।

वच्चन

यद्यपि वच्चन छायावादी काव्य की प्रतिक्रिया के प्रथम कवि है किंतु उनकी प्राथमिक रचनाओं पर उस काव्य का कम प्रभाव नहीं है । छायावादी चित्रा के अनुरूप प्रकृति का आलम्बन रूप म वणन तथा छायावादी रहस्यात्मकता, दोनों उनके काव्य म उपलब्ध हो जाती है । प्रकृति को आलम्बन रूप म प्रस्तुत करत हुए कहते हैं—

बदल अब प्रकृति पुराना ठाट
करेगी नया नया शृंगार,
सजाकर निज तन विविध प्रकार,
दखंगी ऋतुपति प्रियतम के शुभागमन की वाट ।^१

ऐस ही आत्मा के परमात्मा के प्रति प्रणय निवदन के भाव को भी उन्होंने इस प्रकार मुखर किया है—

पर से यह सांच उठी थी
उपहार उह में दूंगी
वरके प्रसन मन उनका
उनके चुभ आशिष लूंगी ।
पर जब उनकी वह प्रतिमा
नयना से देखी जाकर,
तब छिपा लिया अचल म
उपहार-हार सकुचाकर ।
मत कपडो के भीतर
ठहुल जिसने पहचाने,
वह हार छिपाया मरा
रहता अब तक अनजाने ।^१

उपयुक्त कविता 'बयोर की दुलहनिया' की याद दिलान लगती है । ईदर के प्रति आस्तिक भाव यहाँ स्पष्ट है । वच्चन की यह भोली धाराधिया मुग्धा के मनोबध से

१ वच्चन—आरंभिक रचनाएँ, प्रथम भाग पृष्ठ २६

२ वही, पृष्ठ १६

प्रायावाद-परवर्ती हिन्दी-नाय्य में विरह-भावना

बो-सी जा रही है, साथ ही प्रभु के महत्व और अपने लघुत्व की सजग अनुभूति भी उसमें है।

बिन्तु शीघ्र ही काल्पनिक ईश्वरता पर से कवि का विरवास टिगन लगता है। नराश्य उसके व्यक्तित्व को अभिमूत करन लगता है आधा उसे जगा-जगाकर हार जाती है—

तुझे न उठता देख मुझे है
बार-बार भ्रम हाता—
क्या मैं काई मत धरीर का
समझ रही हूँ सोता।'

'कीर के जीवन' में, समाज की रुडियो म दये कवि के जीवन की प्रति ध्वनि स्पष्ट सुनाई पडती है—

तीतिया पर पर मार
हार बठा लावार,
पिजडे के तारो से निकली माना वह म्कार
कहा बन-बन स्वच्छन्द विहार।'

व्यक्तिक विवपाता के प्रतिरिक्त सामाजिक वपम्य, भूख और प्यास की समस्या के प्रति भी बच्चन अत्यन्त जागरूक हैं। इस समस्या की प्रताडना का अनुभव करते हुए वह ऐसे मधुर-लोक की कल्पना करते हैं जहाँ—

और नींद में स्वप्न मनक
देखेंगे ऐसे है लोक
एक नहीं है जिसम धाक

भूख जहाँ पर नहीं सठाती,
प्यास नहीं है सपने पाती,
जहाँ न मरयु जन्म का नाम,
जहाँ नहीं जावन सप्राय ॥२

कायल की ब्रूक कवि को अधिक समय बल्पना के लोक म भ्रमित नहीं करा सक्ती। उसकी प्रावाज म वह अपने नाम बुभुक्षित दस क लिए काई मनोहर सदस पाने की भाशा करने लगता है—

कोकिल, पर यह तेरा राग
हमारे नम बुभुक्षित देस

के लिए लाया क्या संदेश ?

साथ प्रकृति के बदलेगा इस दीन देश का भाग ।^१

पूँजीवादी समाज में जन की व्यथा से तडपता हुआ बचन का कवि क्रन्दन कर उठता है—

देखा जाता जगत अतीव
एक रहे ऊपर सौ गडते
बसता एक, हजार उजडते,
लघु भोपडियाँ दबती लाखों एक
महल की नीव ।^२

यदि बचन की विचारधारा का जन्म उसी दिशा में बहता रहता तो सम्भवतः वह अपने युग के अग्रगण्य जन कवि होते । किन्तु ऐसा न हुआ । प्रारम्भिक रचनाओं में ही अनायास हम उन्हें देशभक्ति और जन क प्रति सजग उदारता से विमुख होता हुआ अनुभव करते हैं । कुण्डा उन्हें अधिकाधिक अशुभनी बनाती जा रही है । वह समाज निरपेक्ष होकर स्व के सुख-दुःख में उलझने लगे हैं ।

‘प्रातः काल कमल की कली खिलकर मधु लोभी भ्रमर को आकर्षित करती है । कुछ समय राग रग में व्यतीत होता है किन्तु अतः कमल में बदलकर भ्रमर को तडप तडपकर मर जाना पड़ता है । इस दृश्य को देखकर कवि के मन में स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि विश्व के आकषण, क्या उसको फँसाने के लिए तो नहीं हैं ?—

इसीलिए सौंदर्य देखकर
शका यह उठती तत्काल—
वही फँसाने को तो मरे
नहीं विछाया जाता जाल ?^३

किन्तु उसका समाधान भी तुरन्त ही वह ढूँढ़ लेता है—

ऐसी शकाया में फँसता
है क्या ? चतला मानव मद ।
हर सुन्दरता में तुमको
अनुभव करना या परमात्मदा ।
सुख-दुःख क्या है ? हृदय भावना
जिसने है जसा माना,
मधुर न अपने मरने को
या घनत सुखमय जाना ।

१ बचन—प्रारम्भिक रचनाएँ (प्रथम भाग), पृष्ठ २६

२ वही पृष्ठ ७१

३ वही पृष्ठ ३८

गवाह-परवर्ती हिन्दी काव्य में विरह भावना

प्रत्येक सौन्दर्य में आनन्द अनुभव करने तथा सुख और दुःख को हृदय की भावना
 कर, सुख को भोगने की प्रवृत्ति भी कवि में यही से प्रारम्भ हुई है। 'दुःख में' शीपक
 कविता में कवि का यही दशन प्रबलतर हो गया है।

पड़ी दुखों की तुफ़ पर मार ?
 दुखा में सुख भरा जान तू,
 रो रोकर सुख न कर म्लान तू,
 हस, हँस, हलका हो जाएगा तरे दुखका भार।^१

व्यक्तिक भूमि पर कवि विरह को (प्रिय के लिए तड़पते रहने को) जीवन का

अंतिम लक्ष्य मानता है—

प्यार किसी को करना, लेकिन—
 कहकर उसे बताना क्या ?
 अपने को अर्पण करना पर—
 श्रोतों को अर्पणाना क्या ?

तथा—

देकर हृदय हृदय पाने की
 आशा व्यर्थ लगाना क्या ?^२

कवि के हृदय की यह कसक 'अपने का अर्पण करना पर, श्रोतों को अर्पणाना
 क्या ? तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों का सहज प्रतिफलन था। प्राधुनिक युग की
 नवीन और प्राचीन सभ्यताओं की विपरीतता में कवि का नवयुवक हृदय और सोच हो
 गया मन्त्रता था ? युवक और युवती सहस्रियों के मनाहूर वातावरण में मधुर स्वल्प जगा
 सन्ते थे किन्तु उनके यथावत् रूप में परिणत हान की भावना पर जातीयता और अच-
 विद्वानों के राक्षस दात लगाय हुए थे। फलतः एकांतिक एकपक्षीय प्रेम के काल्पनिक
 आदर्श के इस सहज मुलावे में अतिरिक्त दूसरा उपाय ही क्या था ?

भक्तिकाल और रीतिकाल की परकीया अविवाहिताएँ, लुक छुप कर प्रिय से
 अभिसार करने की क्षमता रख सकती थीं। कुछ तो आध्यात्मिकता के आवरण के साथ गवार
 था और कुछ चतुर नागरिकाओं को दूता की सहायता प्राप्त थी। परन्तु प्राधुनिक युग की
 अभिजात्य नवयुवती अविवाहिताओं का दशा विचित्र थी। एक ओर वह अपने सामाजिक
 उत्तरदायित्वों के प्रति सजग थी दूसरी ओर अपने प्रियतम से मिलने की स्वतंत्र भी।
 परिस्थिति की विपरीतता में, हृदय अर्पित करके भी, प्रणय की सचेष्ट अभिव्यक्ति से वह
 दूर ही रहना चाहती थी। नवयुवक के विकल मन मन्त्रितमा के इस हल में एक अमूर्त-
 शक्ति में मुखर हुई है—

१ १ ४-चल-आरम्भक रचनाएँ, प्रथम भाग, पृष्ठ २८
 २ ४-चल, पृष्ठ ४२

प्रेम का यह अनुपम व्यवहार—
 पास न मर है, वे, आते,
 मुझे न अपन पास झुलाते,
 दूर दूर से कहते हैं, करता हूँ तुझको प्यार ।
 आपदा के ऐसे आगार—
 जहाँ किमी का हम छू देते,
 घेर उसे दुख सक्कट लेते,
 मिलकर तुमसे क्यों तुम पर भी डालू दुख का भार ।^१

किन्तु बचन का प्रेमी युवक, प्रियतमा के भौतिक अस्तित्व का विरह दुख भेलता हुआ भी मन से उससे सयुक्त है—

‘तू है सुखी’—यही तो मेरे जीवन का आधार ।

प्रेम का ही ताड़ना तार—

इस युग के युवक में प्राप्ति की तीव्र इच्छा तो थी किन्तु समाज से विद्रोह करने का साहस नहीं था । अतः वह जीवनभर भी विरही रहने में स तोष करना चाहता था । यही स्थिति किसी न किसी रूप में अब तक बनी हुई है । इस विरह वदना को ‘पूवराग’ कहे या कर्ण विप्रलम्भ कुछ समझ में नहीं आता । पूवराग की अभिलाषा और कर्ण विप्रलम्भ की वियोग सिद्ध व्यथा दोनों ही इस भाव के अतिरिक्त विद्यमान रहती हैं फिर भी वह कर्ण विप्रलम्भ की अतन्त वदना के ही अधिक समीप है ।

विरह की इस इस व्यथा की दो स्नाभाविक प्रतिश्रियाएँ कवि के मानस में हुई । एक ओर तो वह केवल एक दिवस के लिए अपनी प्रियतमा निशारानी से बिछुड़े हुए चंद्रमा का मलिन मुख देखकर उदास हो जाता है ।

निशारानी का विरह विपाद ?

शोक प्रकट क्या इतना करते,

छिपत जाते आह भरते,

मिलन प्रणयिनी से तो निश्चित एक दिवस के बाद ।^२

दूसरी ओर अपने मन में विरह में वह दार्शनिक सुख को ही जीवन का सत्य समझ लेता है । ‘यौवन सम्पन्न कती कुछ क्षण के लिए ही सही हृदय का हार तो बनी ।’ क्या क्षणिक जीवन में इतना अटल सत्य कम महत्वपूर्ण है ?^३

अनुभव की रणर से कवि का दृष्ट भव ‘स्वीकृति’ का ‘तण्डुल स्वीकार करने-वाला’ भगवान् न रहकर प्रेम हो गया है—

‘सब महत भगवान् प्रेम — प्रेम हम भगवान् ।’^४

१ बचन—आरम्भिक रचनाएँ, प्रथम भाग, पृष्ठ ४४ ४५

२ वही, पृष्ठ ४७

३ वही, पृष्ठ ४६ ४७

४ वही, पृष्ठ ५१

उसमें भी प्रेम का घालम्बन, प्रियतमा, यतिम इष्ट—

नयन करो मत नीचे, प्राण ।
शक्ति तुम्ही हो मुझको देती,
तुम्ही तरी जीवन की खेती,
तुम्ही जीव हो, प्राण हमारी—और तुम्ही भगवान ।^१

प्रियपात्र का सच मुख-दुख अपना बना देने की साथ कवि को 'मधुर इच्छा मात्र' (wishful thinking) रह गई है क्योंकि समाज की रूढ़ियाँ का विरोध करने का साहस उसके पास नहीं है—

इच्छा थी तेरा दुख मार
मैं अपने ही ऊपर ले लू
सुख अपने सब तुझका दे दूँ,
पर तरा दुख अल्प हृदय में भी हूँ लाचार ।^२

प्रेमिया की प्राचीन बहानियाँ जब वे एक-दूसरे के लिए मरत हैं, उसके लिए सचमुच कहानियाँ ही गढ़ । उनकी सत्यता पर उसे सन्देह हीन लगता है—

मुन प्रमिया के आख्यान—
धाव एक तन में लग जाता
रक्त धार दूसरा बहाता—
सच थ व, थ या बहिया के बस काल्पनिक उडान ?^३

प्रेमी का यह वक्तव्य सुनकर उसका प्रियपात्र फूट फूटकर रा पड़ता है । उसके रोने में भी कुण्डाजनिन व्यथा की ध्वनि ही मिलती है जो स्वयंसेवा स्वभाविक जीवन थापन में सामाजिक बाधा के कारण उत्पन्न हुई है—

हृदय हमारी मुन फटवार
फूट-फूटकर हा तुम रोने,
बहने का ता हो कुछ हात
पर क्या रक जात ? मैं मुनने को तो हूँ तयार ।^४

बच्चन ने पांडा का हृत्तन निवट स अनुभव करने का प्रयत्न किया है कि वह रात रात उमादी-सा हसी हसन लाता है ।

भाज के युग के तरुण प्रणयी की बचल एक मधुर इच्छा है जो पूवराग की धमिलापा से बहुत भिन्न नहीं है । परम्परागत रूप में वह विवाह में परिणित न होकर जीवन की अनंत विरह-व्यथा बन जाती है—

१ बचन—शारम्भिक रचनाएँ, प्रथम भाग पृष्ठ ५१

२ बहा, पृष्ठ ५७

३ बहा, पृष्ठ ५८

४ बहा, पृष्ठ ५६

मेरी शीतल छाया मे
क्षण भर को ही तुम आती
मेरी डाला सी वाँहो
पर पल भर तुम भुक जाती।
बस एक सुमन ही मेरा
निज चरणाम रख लेती
बस एक वार ही भर
तिर हाथ फेर तुम देती।
हो वाग वाग मैं जाता,
सुख लाख लाख मैं पाता,
तुम बूद मुझे दे दती
मुझको सागर हो जाता।^१

प्रणय लालसा जब क्षण क मिलन के पदचात् अनन्त वियोग बन जाती है तब केवल सुधियाँ मात्र गप रह जाती हैं। वियोगी उन्हें याद करके उच्छ्वास भरा करता है किन्तु आगा नहीं छोड़ता। 'स्मृति', 'अभिलाषा तथा 'अरु' के भावों के आविभाव का 'वचन' ने सुन्दर वर्णन किया है—

प्रणय वक्ष की मिलन डाल में
अनुपम और निराला
सुधियों के सुकुमार तार का
मैंने भूला डाला।
चिर वियोग का डाल पालना
उस पर इस सुलाया,
उच्छ्वासों की पगें भर-भर
उसको नित्य भलाया।
स्वप्नित आगाआ की लोरी
इसकी नित्य सुनाई
हिचकी की दे देकर मपकी
इसकी नीद बुलाई।^२

'प्रमाद की भाँति 'वचन' का प्रणय भित्तारी भी जग से कुछ पान की आगा में निकला है किन्तु जीवन से प्राप्त निरागा का प्रभाव दोनों पर निरन्तर प्रवार का हुआ है। प्रसाद' के कवि न भित्तारी को समझाया था पागल रहे वह मिलता है कब, उसका सा दंत ही हैं सब। किन्तु वचन का कवि व्यक्त के प्रति इस कुत्सित सत्कार

१ वचन—आत्मिक रचनाएँ, भाग २ पृष्ठ ८६

२ वही पृष्ठ १०६

ध्यायावाद-परवर्ती हिंदी काव्य में विरह भावना

की अवहलना के भाव का ध्यान उसे दिलाता है। जग से कुछ माँगन से तो अच्छा है कि वह स्वयं को ही मिटा दे—

भिखारी, कसे तेरे गान ?
कौन धुधा ने तुझे सताया,
कौन पिपासा न तडपाया,
जो इस जग बस्ती में छाया उन भिक्षा दान ?

जगती क्या ल इह करणा
कहाँ पाय जा इह धरेगी
रचे गए हैं नही इह सुन मक्कन बान बान।

यहाँ क्या पाएगा नादान,
गात धुधा पर तरी होगी
मान कहा यदि मरा मागी

दे अपने का मिटा लुटाकर अपना जीवन गान।
ध्यायावादिया क तथा निरा निम-रण के कवि के जीवन-दण्डन में यही अंतर है। दूसरा मौनिकता क भँवरों में ऊँकता डूबता रहता है। निराया के आधिक्य में विघाता के प्रति (यदि वह है ता) बच्चन का आश्रय अत्यन्त कटु हो गया है—

हूँ जीवन उपवन के माला।
लगा इस फिर कभी न नाचा
पितृ स्नह न कनी न लोचा
मरी छाँवा मे तू नीचा,
व्यय पिता की पदवी पाली।^२

इन प्रारम्भिक रचनाओं के पश्चात् कवि न उमरखयाम की स्वादया का अनुवाद किया। इनके प्रभाव से उसके मन में भ्रातृत्व का एक नवीन दिशा का माड प्राप्त हुआ। एक और वह जसा था है उससे ही स्वीकार करके 'अनन्त नया' द्वार 'क्षमिन् तृप्ति' में आनन्दुय पान की चेष्टा करन गया—नयुगाना की भूमिका में बच्चन कहत है—
'मक्कन का चाहिए त्रिभु की तपणा और बि दुस सताप।' दूसरी द्वार भूमिका की भौति अन्त व्यक्तित्व क ध्यान का प्रियतम की हाता से धाराभार करन का प्रयत्न करन लगा।
इश्वरीय प्रियतम स्वयं अपनी हाता जान क माध्यम से पीकर मस्त हो रहा है—

१ बच्चन—प्रारम्भिक रचनाएँ, भाग २, पृष्ठ ११६-१२०

२ वही

३ वही, नयुगाना, पृष्ठ १३

प्रियतम, तू मेरी हाला है,
 मैं तेरा प्यासा प्याला,
 अपने को मुझमें भरकर तू
 बनता है पीने वाला,
 मैं तुम्हको छक छलका करता
 मस्त मुझ पी तू होता,
 एक-दूसरे का हम दाना
 आज परस्पर मधुशाला।^१

अनंत अतृप्ति की प्यास को होठों में छिपाए धार्मिक आडम्बर और अंधविश्वास से विरक्त व्यक्ति ही उस चरम सुख तक पहुँच सकता है जिसका सदश 'वच्चन' का मधुशाला द रही है—

अधरा की आतुरता में ही
 जब आभासित हो प्याला,
 बने 'यान' ही करते करते
 जब साकी साकार, सब
 रहे न हाला, प्याला साकी
 तुम्हें मिलेगी मधुशाला।^२

धम धम सब जला चुकी है
 जिसके अंतर की ज्वाला,
 मंदिर मस्जिद गिरज सबका
 तोड़ चुका जो मतवाला,
 पंडित मामिन, पादरिया के
 फंदे को जा काट चुका,
 कर सकती है आज उसी का
 स्वागत मरी मधुशाला।^३

सूफियों की मधुशाला से वच्चन की मधुशाला तात्त्विक रूप में भिन्न है। सूफियों के दान में नक्त स्वयं अपने अपावित्र प्रिय की मधुशाला चन जाता है। यहाँ (वच्चन में) प्रारम्भ उमी रूप से होकर बाद में अन्तर हो गया है। व्यक्ति स्वयं, ईश्वर रूप पीने वाला होकर (यदि कोई ईश्वर है तो) जीवन की मधुशाला के उपयोग करने का आह्वान करना है—

१ वच्चन—मधुशाला, रसाद २

२ वरा, रसाद, ६ १७

३ वरा, रसाद १७

आयाबाद-परवर्ती हिन्दी-काव्य में विरह भावना

लालायित शयरा से जिनने
हाय, नहीं चूमी हाला,
हय विकम्पित कर से जिसने
हा, न छुआ मधु का प्याला,
हाय परुड लज्जित साकी का
पाम नहः जिसे खीचा
व्यय मुग्धा डाली जीवन की
उमने मधुमय मधुशाला।^१

व्यक्तिक मुग्ध और तपित इस युग के कवि के लिए दूर से प्रलोभित करती हुई
पहला रही है। वही बचन की मधुशाला बनकर उह ललचा रही है, प्राप्त नहीं होती।
कवि मधु-तृष्णा से विकल मग-सा भटक रहा है—

जिस साकी के पीछे मैं था
दीवाना, न मिला साकी,
जितके पीछे था मैं पागल
हा, न मिली वह मधुशाला।
X

प्राप्य नहीं है, यदि तो क्या यह
लुप्त न हो जाती हाला,
प्राप्य नहा है यदि तो क्यों यह
लुप्त न हो जाता प्याला,
दूर न इतनी हिम्मत हाँके
पास न इतनी पा जाऊँ
व्यय मुझे दोड़ाती मधु म
मगजल बनकर मधुशाला।^२

जीवन की गति को देखकर वह इसी निष्पत्ति पर पहुँचा है कि भाग्य अत्यन्त
प्रबल है। उसके सम्मुख व्यक्ति का कोई बल नहीं चलता—

मानव-बल के आम निबन
भाग्य, मुना विद्यालय म,
भाग्य प्रबल, मानव निबन का
पाठ पढ़ानी मधुशाला।^३

मानव की दुबलता और भाग्य की प्रबलता के संघात से उत्पन्न हुई निराशा से,

१ बचन—मधुशाला, स्वार १०

२ वहा, स्वार ६० ६५

३ वहा, स्वार ६७

वचन का 'मधुशाला' के वाद का सम्पूर्ण काव्य प्रोत प्रोत है। यद्यपि यह कहकर कवि स्वयं को भुलावे में डाले रखना चाहता है, कि—

उस प्याले से प्यार मुझे जो
दूर हथेली से प्याला।^१

किन्तु सत्य यह है—

हाय, हमारी पीडासे है
क्रीडा करती मधुशाला ?^२

'मधुशाला' के अन्त में कवि ने कहा भी है कि मधुशाला की साध उसने छोड़ दी है। इसीलिए वह अब उसके पीछे पीछे धूमती है किन्तु क्या वस्तुतः उस वह 'तर्पित' प्राप्त हुई है? यदि यही सत्य था तो 'निशा निमंत्रण' के घोर विपाद की क्या आवश्यकता थी ?

निशा के आगमन से पूर्व, संध्या जब समस्त वातावरण में सिद्धूर लुटा रही था, तब कवि के कपाल पर डुलके 'अश्रु' शोणित व सदा लगन लगे—

उपहार हम भी मिलता है,
शृंगार हम भी मिलता है

आँसू की बूद कपोल पर गणित की सी बन जाती है
सध्या सिद्धूर लुटाती है।^३

कवि का आतुर हृदय पत्नी गून्याकाश में व्यथित भटवता रहता है, नीड का पथ वह भूल गया है। वह नीड जिसमें प्राणी अनन्त सुख और शांति का अनुभव करता है—

अतरिक्ष में आकुल आतुर
कभी झार उड, कभी उधर उड

पथ नीड का खोज रहा है पिन्दा पक्षी एक अकेला
घोत चली सध्या की बसा।^४

जीवन सब की सी जडता का अनुभव करने लगा है। प्रिय की प्रतीक्षा की यह पुरानी स्मृति अतन्त बदना बन गई है—

आज पडा हूँ बनकर शव,
जावन में जडता का अनुभव,

किसी प्रतीक्षा की स्मृति से मैं पागत था हूँ पथराई
दीप अभी जलन द भाई।^५

१ वचन—मधुशाला, कवाड ६६

२ वही, कवाड १०१,

३ यहा निशा निमंत्रण, कविता ४

४ वही, कविता ५

आपावाद-परवर्ती हिन्दी-काव्य में विरह भावना

मन के सुख-दुख को जीवन के सत्य के रूप में वह स्वभावतः ग्रहण करने लगा है, उसके निराकरण की भी कोई आवश्यकता नहीं समझता। 'दुबल मानव' कहलान में वह पूरा सन्तुष्ट है—

सोचा करता बठ अकेले
गत जीवन के सुख-दुख भूत
दशनवारी स्मृतिया से में उर कं छाल सहलाता हूँ
एस में मन बहनाता हूँ।

×

आह निकल मुख से जाती है
मानव की ही तो छाती है,
लाज नहीं मुझको दबा म यदि मैं दुबल कहनाता हूँ
एमे में मन बहलाता हूँ।^१

कुष्ठित व्यक्ति व्यक्ति के जीवन की मरण दगा का वणन भी बचन न दस
इकिया है—

तूय प्रतीक्षा म है भरी
गिनती के क्षण की है दरी,
अपकार म ममा जाएगा समति का सब खेल तमासा
फिर भी जीवन की अभिनाया।^२

'फिर भी जीवन का अभिलाषा' ही एसा तत्त्व है जा बचन की निराशा म प्राण
पूकता हुआ भी उस अधिक बदनामय बना देता है। 'निगा निमंत्रण के बाद की रचनाया
'एका त सगीत, 'आकुल अंतर और 'सतराणी के गीता म आगा निराशा की यहाँ
माँख निचोनी' चलती रही है। विधाता के प्रति दू मोर्चे का नाव अय भी पहले
जसा ही ज्यो का त्या बना हुआ है—

फिर भी बल सचित करता हूँ,
मन म दम-साहस नरता हूँ
जिसम न आह निकल मुख से अर हाँ तरा अन्तिम प्रहार।
अर क्या होगा मरा सुधार।^३

संगेप म बचन की विरहानुभूति व स्वाभाविक विकास की रूपरंग दस प्रकार
बनाई जा सकती है। कवि प्राचान और नवीन की सीमा रंजा पर खड़ा था। पुरातन के
रुढ़ि धम और अंधविश्वास उमे प्रिय न थे किन्तु दूरमरा और भौतिकता ने प्रा-
होता हुआ भी वह उसे जीवन के सहज सत्य के रूप में स्वीकार कर पा-

१ बचन—निगा निमंत्रण, पृ १३३ ६८

२ बरी, कविता ८६

३ बरी, अन्तिम सगात, गात ८३

पुरातन और नवान किसी का भी आधार उसे प्राप्त न होने से उसके जीवन में कुण्ठा स्वाभाविक थी। व्यक्तिगत स्तर पर प्रियतमा से स्वच्छन्द मिलन और उसको अपना बनाने की कल्पना लालसा उसमें भी थी किन्तु परिस्थिति की प्रतिकूलता से वह भी उसे अप्राप्त थी। 'खाओ पियो और मग्न रहो' की पुकार में उसने इस समस्या का निगम टूटने का प्रयत्न किया किन्तु असफल रहा क्योंकि भौतिक सत्य से ऊपर के सूक्ष्म जीवन मूल्यों को उसने पूरी तरह त्यागा नहीं था अतः 'मग्न रहो' की पुकार भी 'दग्ध उर' की पुकार ही रही और अब तक उसी स्थिति में है।

नरेन्द्र शर्मा

आधुनिक युग की सामाजिक परिस्थिति का विश्लेषण करते हुए हमने देखा है कि इस युग में प्रेमी की व्यथा का मूल कारण है समाज की रूढ़ियाँ। शिक्षित समाज के स्वच्छन्द वातावरण में युवक युवतियों के मध्य सुनहले स्वप्न जगाने के उपकरण ता हैं किन्तु उस स्वप्न का यथायत्न परिणत करने के स्वस्थ परिवेश का अभाव है। इस परिस्थिति से प्रेमी युग युवक और युवती दोनों के जीवन में नई विपन्नता व्याप्त हो गई है। एक और युवती के अभिभावकों ने उसको सजग कर करके बताया है कि 'रूप रस के लोभी मित्र युवक, भ्रमर हैं, सच्चे सगी-साथी नहीं अतः वह सच्ची भक्ति को भी ठुकरा देती है। भक्ति को अर्पित करने वाला युवक मनभारकर रह जाता है।' नरेन्द्र के शब्दों में—

दी मैंने उसको भक्ति और वह कांप गई ।
जब दिया अर्पित विश्वास थकी सी हाँफ गई ?
क्या भार वहन के धम से ?—ना ।
मन में यह भय सच्चा भय था—
मैं धुद्रपात्र, खिलवाड़ बनूंगी अब कसे औरों की ?
खिलवाड़ बनूंगी उच्छृंखल, रस लोभी भीरो की ?
मैं गया पास दिनयानत, वह हट दूर गई ।
सबसे दिया तो वहाँ—'नहीं यह रीति नहीं ।'

वातपीत की इस शली से नरेन्द्र शर्मा ने उस परिस्थिति को अत्यन्त सजीव बना दिया है। प्रणय की याचना के इस प्रकार अस्वीकृत हो जाने में युवक प्रेमी के मन में अप्रसन्नता का उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है।

इसीक समकक्ष एवं दूसरी परिस्थिति है जब कोई युवती अल्हड़पन में याचक प्रेमी युवक का आत्म समर्पण कर देती है। यदि दुर्भाग्य से वह किमी गलत युवक का चुन लेती है जो उपभागता करना चाहता था किन्तु उत्तरदायित्व मनाकर नहीं तो परिस्थिति अत्यन्त कठिन हो जाती है। आज के जागत, बुद्धिशासक युग में जब नतिकता और धर्म

झायावाद परवर्ती हिन्दी काव्य में विरह भावना

का न कोई भय है, न मूल्य पुरुष। बड़ी सरलता से स्त्री से कह सकता है 'भैने तो तुम्हें निकटतम मिन ही समझ था।' तब उस स्त्री के जीवन में 'अशुहार' के प्रतिरिक्त और क्या अवगुण रह जाता है? नरेन्द्र शर्मा ने इस भाव को अत्यंत व्यंग्यपूर्ण शब्दों में इस तरह व्यक्त किया है—

हो एक, एक क्षण को केवल
थे मिले, प्रणय के चपल इबास,
भोनी हो समझ लिया तुमने
सब दिन को अब गुध गण पास
स्वच्छंद सदा मैं माहृत सा, वरा में तुम वस कर लोगी ?

जावन भर कभी न भूलूंगा
उपहार तुम्हारे थे मधुमय
वह प्रथम मिनन का प्रिय चुम्बन
यह अशुहार अब विदा ममय।

तुम भी बोला क्या दूँ राती। सुधि नागी या सपने लोगी ?
यदि प्रेम उमय-यक्षी है तब भी माग में ऊँढिया वाज्य है। दोनो विरहिता के साथ
भाव-सादात्म्य और समवेदना व्यक्त करने या न उपकरण भी ववि ने अशुभपूर्व प्रस्तुत
किए हैं—

आज की भीषण दुपहरी में सहम कर
सो रहा हागा सकल ससार, कउन
जागती हागा तुम्हीं या बाहु फना
बिबल हागा सामन का वक्ष पीपल।
दख चलदल क चमकत पत्र कम्पित,
व्यथ भर सानान नाचा।

फिर धयक बुझ जाय जय दिन की चिता भी,
अस्थि फूलो से खिल जब गूँवनभ म तुँ-सारन,
दस पाप्रागीकदाचित् तय, विमी आतु हृदय गा,
अशु कम्पिन सा नयन म, व्याम म उमिन तुपा
ध्यान कर तब किसी मिलनातुर पयिन का व्यथ
भर सानान नाचा।^१

→ क प्रेमी हृदय हा विरह को प्र

स्त्री

१ श्री नर-राना
२ बहा, ग३५, पृष्ठ

१२, १४ १५

जीवन पयत जिन प्रेमियों का कभी न मिलने का अभिशाप समाज के दुर्वास से प्राप्त हुआ हो, उनकी वियोग व्यथा का विरह की किस श्रेणी में रखा जाएगा ? क्या कल्प विप्रलम्भ में नहीं जहाँ जमातर में भी विरही, प्रिय से सशरीर मिलने को आतुर रहता है ? नरेंद्र क युवक कवि पुरुष न उसी विरह वेदना के अर्णित गीत गाए हैं, उसकी विविध परिस्थितियाँ में मन की विवशता का अवन किया है। मन की आशा निराशा, म ऊबते डूबते रहकर भी उसका जहान ढाढस वधान का प्रयत्न किया है, प्रियतमा मिलन की माध बराबर हृदय में विद्यमान है और उसकी आनुरता मन को निरंतर रुबावट रही है। निरवधि विरह की विर बेचना को भी विरही इसीलिए सह्य भेंटता रहता है क्योंकि उसके साथ प्रियपात्र की सुधि विद्यमान रहती है। विरह की जलन प्रिय की सुधि से मधुर हो जाती है।—

क्यों न जान प्रश्न प्रतिक्षण
पूछता है हृदय रह रह,
'जन रह हँ प्राण तेरे
या प्रिमा की मधुर सुधि यह ?

किन्तु अपनी आग को भी सुधि समझ कर जल रहा हूँ।^१

संध्या काल में गिरि के म्लान मुख को देखकर प्रियतमा के उदास चेहर की माद भा जाना स्वाभाविक ही है। किन्तु उसके साथ प्रमी मन पर जो उदासी द्य जाती है उसका निरूपण इन गानों में अस्त रवि सी हा गई क्या थात म्लान विलुप्त आशा करके नरेंद्र शर्मा ने उस भाव की मार्मिकता का बहुत गाड़ा कर दिया।

अस्त रवि सा हा गई क्या थात म्लान विलुप्त आशा ?
क्या अभी स साँच कल की नी बसा मन में निराशा ?
क्या उदित गिरि म्लान मुख का देख अत्र छाई उदासी ?
विरह विधुरा दगिप्रिया की या आई क्या प्रवासी ?^२

एस ही एक और संध्या में, जब लजीली माधवी, धूँट खालकर थान्त जग का मुनाना है तब व्याकुल विरही का अपनी शालीन प्रियतमा की या सताने लगती है। नभ के अर्णित दीपा को लेकर वह निगा के एकाकीपन में अपनी प्रियतमा का दूँने लगता है—

खाल धूँट साँक हात ही लजीली माधवी जब
थात जग की मुना दती है पिला निज चास सौरभ,
उमडती है सुधि तुम्हारी, प्राण तब मरे हृदय में,
निसर्दिमा में मधु में, निरास में, किर गीत लय में

१ श्री नरेंद्र शर्मा—प्रवासी का गाँव (चतुर्थ संस्करण), गाल ११, पृष्ठ ३०

२ श्री नरेंद्र शर्मा—पृष्ठ १३

छायावाद-परवर्ती हिन्दी-काव्य में विरह भावना

खोजता हूँ तुम्हें नम के दीप ले निधि जागरण में ।
आह ! कैसे कर सकूंगा, प्रिय तुम्हारा विस्मरण मैं ?^१

'स्मृति सचारी से सिसकी, श्रद्धा, उच्छ्वास और गीतलय के अनुभावों का क्रमशः उदय होना प्रत्येक सुंदर है ।
चाँदनी रात्रि विरह की सुधि' में उद्दीपनकारी समझी जाती है । उद्दीपन का यह भाव परम्परागत ही है किन्तु इसी भाव का नरेन्द्र शर्मा ने नवीन रूप में प्रस्तुत किया है, उनके भावपूर्ण 'खग चाँदनी को दिन समझकर जाग जाते हैं—
आज उज्ज्वल चाँदनी का दिन समझकर प्राण जम स्वप्न को ही सब समझकर सो नहीं पात विकल खग ।

न्याकुल भावों की विकल खग के रूप में कल्पना प्रभूतपूर्व है । प्रातः काल के उदय पर खगों के समवित रूप से प्रस्पष्ट चहचहाने का भाव, हृदय के गहनतम गह्वर में घनायाम उठकर कुलबुलाने वाले भावा से कितना मिलता जुलता है । रूपक प्रत्येत सजीव है ।
उस विषय प्रवस्था में विरही स्वयं को अत्यंत प्रमत्त अनुभव करने लगता है ।
मन प्रियपात्र को अनन समीप पाने का आकुल हाँ उठता है—
आज ऐसी चाँदनी में प्राण यदि तुम साथ होती जड़धरा पर गशि-बलाएँ खिल सहज साकार होती ।
आह ! होती माय यदि तुम चाँद या सिर पर न चढ़ना, खूब की सोनह कलाएँ दासियाँ बन पाम हाती ।
यहाँ मिर पर चढ़ना मुहाबरा बहुत सुंदर रूप में प्रयुक्त हुआ है । चाँद के विषय में नरेन्द्र के विरही की यह एकदम नवीन कल्पना है ।
आधुनिक परिस्थितियाँ न प्रेमी युग्म को आजीवन एक-दूसरे के लिए तड़पने को बाध्य किया है । चिर प्रतीक्षा ही विरही का एकमात्र सहारा रह जाती है—
प्रिय जान कब आधोगी तुम ?
निनि निन नित बाट जाह ब्याकुल, हाँ जाएँ न जीवन से निराश,
मुन पाएँ न यदि नघु चरण-चार, मुरभा न जायँ होकर हताश—
य मरे कोमल भाव कुमुम
प्रिय जान कब आधोगी तुम ?^२

१ भी नर द्रशना—बबला ने गीत, गीत ७ पृष्ठ २४
२ बही, गीत = पृष्ठ २६
३ बहा गीत = पृष्ठ ४२
४ बही, गीत २२, पृष्ठ ४

जान कब आश्रोग मे प्रतीक्षा की अनंत व्यथा का भाव निहित है। विरह-ज्वलन से जलते हुए मस्तक और जजर रण-व्यथा को प्रियपान केवल एक बार क्षण हाथों से सहला जाय यही मधुर कामना विरही को रहती है—

वह कितना मुंदर सपना हो !
जो आकर मरे सिरहाने
तुम जलता मस्तक सहला दो
घण्टों चठो यो पास, प्रण
फिर ज्वर से जब सहसा कराह,
तुमको पुकार आव भर लू
श्रीडा से आनत मुख, आचल
से अश्रु पाद्य पीडा हर ला
वह कितना मुंदर सपना हो !

'श्रीडा से झुके हुए मुख पर बहते हुए अश्रुओं से दूसरे पक्ष की व्यथा की सूचना भी मिलती है। इन दोनों के मध्य बियोग की पीडा का कारण हैं रुदियाँ। सामाजिक रुदियों को नरेद्र शर्मा ने 'पत्थर की दीवारें' कहा है। सामाजिक नीतिपादा म बंधा हुआ यह विरही मर भी नहीं सकता क्योंकि बुद्धि ने उसे बताया है कि आत्महत्या पाप है, 'धवासें हथकड़ियाँ बन जाती है और रात्रि कारागार के सदृश्य नयावह'—

रानी याद तुम्हारी आई,
आई याद प्यार की बानें
सासें बनी विषम हथकड़ियाँ
कारागार बन गई रातें ।

दो फूलों के बीच खिंची हैं
पत्थर की दीवारें रानी ।
सहनी पढती है प्राणी को
बधिर बधिर विधि की मनमाना ।^१

विधाता के प्रति विद्रोह का भाव अत्यन्त कटु रूप में बधिर बधिर' गब्बो म सुन्दर हुआ है। विधाता सशक्त है अतः उसका सामना तो नहीं किया जा सकता किंतु उसकी योजना में बलपूर्वक संपन्न करके उसको नीचा तो दिखाया ही जा सकता है—

बिन्दु नहीं स्वीकार पराजय
कवि नमय है सब सह लेगा

१. शी नरे, रा. श. श.—प्रथमो क गान गात २६ पृष्ठ ५०

२. २६३ पृ. २२, पृष्ठ ३२

छायावाद-परवर्ती हिन्दी-काव्य में विरह भावना

वह अपना स्वामी, मधु भ्रम्य,
 मुधि को ता विधि छीन न लग।^१
 वभी-वभी उस लगता है कि नीनिपास में बँधे हुए भावुक के हृदय के सब बाध
 टूट पड़ेंगे और तब समाज की सब रीति-नीतियाँ उस प्रलय में डह जाएँगी—
 रोको अपनी अप्रुवार अब
 अब टटे सब बाँध हृदय के
 रुद्र रूप धर उमड़ पड़ग
 फिर न न्वगे सिंधु प्रलय के
 क्या सनस्त मार डुवान नर भर लाता हा युग लोचन ?^२
 किन्तु आज का भावुक युवक उन रूढ़िया का वास्तव में विरोध करने में समर्थ
 नहीं है, यह केवल उसकी इच्छा मान है। तभी तो नरेन्द्र का विरह विरही फूट पड़ता
 है—

भाज मैं गति रुद्ध हूँ।
 मिला सीमाहीन अन्तर खिची सी मरजाद बाहर।
 बठपरे म बंद कोडा स पिटा है हृदय नाहर ॥
 पवतों से मय फेनिल सिंधु सा विशुब्ध हूँ,
 घँस रहा हूँ रसातल में, फँसा बाढव की भँवर में।
 और आहत अह अहि सा पठता गहर विवर में ॥^३
 जाग्रत 'अह' ने सन्निविष्ट और रूढ़ियों के शीघ्र बदी युवक की बदना का, पवता
 से मयित क्षुब्ध सागर से साम्य बहुत मुँदर बन पड़ा है।
 इस युग से पूव कवि ने पायिव का अपायिव के रूप में उन्नयन करके अपनी पीड़ा
 पर अलौकिकता का आवरण ढाला था। किन्तु इस युग में, प्रियपात्र की पायिवता को
 पूरण से मुरक्षित करत हुए उसमें ही अतीन्द्रिय अलौकिक गुणा का समावेश कराया गया
 है और इस तरह पायिव का ही उज्ज्वलता प्रदान की गई है—
 इन्द्रिया व जान स, अन्त करण क ध्यान स भी
 हा परे तुम बल्पना क व्याम रत अनुमान स भी,
 देवि, यद्यपि वदय हा तुम, दह भी धारण किए हो,
 नाम, गुण भी रूप स सम्बन्ध बचन से पर हो ॥^४
 विरही 'उद्दिग्ध' अवस्था में जावन के सभी मुखों ने पराउ मुख हावर बंधन
 प्रिय का दर्शन करना चाहता है कवल उही की बात सुनना चाहता है। गुण धर्यन'

१ भा नर द शाना—प्रकाशी क गान, गान १२ पृष्ठ २२

२ वहा, गत ६, पृष्ठ २३

३ वहा मिठा खेर पून, गनिरुद्ध, पृष्ठ ५२

४ वहा, प्रकाशी के गान, गान २६, पृष्ठ २४

की अभिलाषा से सयुक्त उद्गम' दगा का वणन नरेन्द्र ने इस तरह किया है—

चाहता हूँ चित्र प्रिय का सदा सम्मुख ही रहे ।

वेठ कोई पास मर प्रेम की गाथा कह ।

चाहता हूँ हर घड़ी हर साँस में प्रिय नाम लू

ध्यान में अपनी प्रिया के मैं सदा डूबा रहूँ ।^१

युग युग से विरही की यही चाह रही है किन्तु आज के बुद्धिसयुक्त वियोगी का हृदय, अपने आश्रय के पागलपन का मञ्जक उड़ाता है, उपहास करता है—

पर हृदय उपहास कर कहता, 'यही क्या साधना ?'

इस विरही के प्राणों का 'याकुल चातक दग्जल पीकर जीवित रहते हैं। प्राण और दग्जल का यह सम्बन्ध कवि की नई सूझ है। विरही की 'अथु' दशा को वह अधिक मामिकता प्रदान कर रही है—

उर में कसी व्यथा धधकती

जिसे बुझाने नयन बरसते

व क्या प्राणों के याकुल चातक

दग्जल बिन दिन रत तरसते

कसी प्यास ! बुझाने जिसका भर भर लाती हाँ लोचन !^२

उमांगी होकर विरही वायु से शान्ति का पता पछने लगता है—

क्या जगत में शान्ति ही है ?

एक दिन पूछा विचरती वायु से मैं, कहा क्या

शान्ति भी है ?^३

उमादी वियोगी का प्रश्न जितना ममस्पर्शी है वायु का उत्तर भी उससे कम दुःखकारी नहीं। वायु स्वयं शान्ति की खोज में भटकती घूम रही है ससार के सब प्राणों घूम रहे हैं, वह बचारी क्या बताती ?

गीत भरा सुन, स्वयम् संगीतमय हो वायु कहती,

'है न जान कौन-सा कौना जहाँ, कवि शान्ति रहती ?

किन्तु जाऊँ देख आऊँ

क्या कहीं कुछ शान्ति भी है ?

क्या जगत में शान्ति ही है ?'

'किन्तु जाऊँ दग आऊँ जसी मुहशोली सा त्वना ही व्यथित को मिलती है। नाइ भी ससार में उसकी व्यथा का दूर करने में समय नहीं है, सब स्वयं जो व्यथित हैं।

१ शो नरेन्द्र शर्मा—मकाना न गान गीत ३०, पृष्ठ ५४

२ कही, गत ६, पृष्ठ २०

३ कही, गत २२, पृष्ठ ५४

विरह व्यथा में 'जड़ता' के भाव का वर्णन नरेन्द्र शर्मा ने इस तरह किया है—
 जग बही है किन्तु मैं ही
 क्या न जान हो गया हूँ ?
 हाँ मदाचित्त खो किसी को
 मैं स्वयं भी खो गया हूँ ।

क्या इसी से वेदना भा उमड़ उर में अब न पहला ज्वार लाती ?^१

यह जड़ता, देह की जड़ता नहीं हृदय की जड़ता है । हृदय की इस विवशता में उमादी होकर हँसने का भाव वियोगी की व्यथा को तीव्रता प्रदान करता है । 'दुबल हृदय' से संयुक्त आज़ के 'मानवीय कवि की उमूवत हमी के रहस्य को नरेन्द्र का विरही ऐसे व्यक्त करता है—

जानता हूँ, जो रहा हूँ
 द न जग इसका उलाहना,
 हस रहा हूँ भूलकर अब
 मौन ही चुपचाप सहना
 यदि न हसता, किस तरह उमको भुलाता और
 विस्मृति भी न आती ?^२

इस कविता में मिलन की आशा के मिटने के साथ, आज़ तो सबकी तरह हँस
 बालकर 'कहकर जो भाव नरेन्द्रजी ने व्यक्त किया है वह अनुपम है—

हो मिलन की आशा जिसको
 वह विरह का वश धारे,
 किन्तु मरी आशा के संग
 मिट गए हैं बलेश सारे ।
 आज़ तो सबकी तरह हस-बालकर दिन काटता हूँ,
 मुषि न आती ॥^३

यदि मिलन की 'आशा' मिट गई थी तो 'आज़ तो' की मार्मिक व्यथा के व्यक्त-
 करण की क्या आवश्यकता थी ? 'तो' की प्रत्यय ध्वनि में हृदय की सम्पूर्ण वेदना कवि
 ने निहित कर दी है ।

विरह की इस निस्सीम अवधि में जब प्रिय की प्राप्ति का कोई आभास होने
 लगता है तो वह धरने मन को समभाता है—

पागल ! क्या फिर से जाड़ रह
 हाँ आशा छलना में नाता ?

१ आ नरेन्द्र शर्मा—अज्ञान का गीत, गीत १३, पृष्ठ ३३

२ वही, गीत १३, पृष्ठ ३३

३ वही, पृष्ठ ३४

यदि यह सपना भी सच न हुआ
फिर भी तो जीना होगा ही।^१

सब प्रकार से हताश होकर भी आज का विरही जीने को बाध्य है। वह बुद्धि-सम्पन्न है अतः मन को सब तरह सहारा हुआ जानकर भी 'आत्म हत्या' नहीं कर सकता। क्योंकि वह जानता है कि मन का जीवन ही सम्पूर्ण जीवन नहीं है। मन और बुद्धि के इस सघर्षण ने अत्यन्त कटु नरारस्य से उसके व्यक्तित्व को अभिभूत कर लिया है। मन से वह कहता है—

तुम पर, अपने पर ही न हुआ
तो होगा मरा किस पर वश ?
क्या होगा यदि हूँ भी हताश ?
क्या हूँ सँसो से भी न विवश ?
यदि मौत न आई अब के भी,
फिर भी तो जीना हागा ही।^२

× × ×
आज शांति स मरने का भी
क्या मरा अधिकार छिन गया ?
मेरी अनुमति लिए बिना विधि
किस विधि भरे श्वास गिन गया ?
मैं न बुलाता जिहूँ, बुलाये बिना श्वास
आत जात क्यों ?^३

कवि उस जन्म में प्रियतमा से मिलन हागा, इस साध को हृदय में सजोय हुए है। दशकाल की सीमा को लाँघकर जब प्रेमी युग्म मिलेंगे तब वह इस जीवन की लोक-लज्जा के आवरण का उटाकर फेंक दगे। विरही की आशा कितनी पवित्र और लगन कितनी दृढ़ है—

मिल गए जन्म जन्म में सयोगवश यदि
क्या मुझे पहचान लोगी ?
× × ×
कहो क्या इस जन्म की सब लोक लज्जा
प्राण भरे हित वहाँ तुम त्याग दोगी ?
जब विरह के युग बिता युग प्रेमियों के उर मिलेंगे
कीन जाने कल्प कितन बाहु-बन्धन में बँधेंगे ?
× × ×

१ शो नरेन्द्र शर्मा—प्रबन्धों के गीत, गीत १६

२ वही, गीत १६

३ वही, गीत ४२

प्रलय हागी, सिन्धु उमडेंग हृदय में

चल होगा फिर नई जब मल्टि होगी ।^१

इस जीवन में भी नरेंद्र शर्मा का विरही निराशा और दुख का अंतिम सापान बनाना नहीं चाहता । प्रियपान से वह कहता है—

यदि करना ही विषयान मुझे

कल्याण रूप हूँ दिव समान—

दा प्राण यही वरदान मुझ ।

किन्तु जसा कि उसने स्वयं इस पुस्तिका की भूमिका में कहा है ' प्रवामी क गीत' का कवि आज भी मरघट का पीपल तरु है । उसके जीवन की गति आज भी 'हृदय की कायरता और मन की छलना के सहारे चलती है । वह मुक्ति का माग जानता है लेकिन फिर भी अपनी बबमी का गुलाम है ।^२ वह आशा निराशा की छनना में बहता रहा है । 'मरण के समय प्रियपान उसके समीप आ जाय यही अभिलाषा उसके मन में है—

यदि उधर आना हुआ तो देख लागी ।

स्नेह इसका तुम चुकेगा और दीपक बुझ चुकेगा ।

×

×

×

तुम्ही सोचो क्या तुम्हारे लौटने तक

घुए के दो चार घन्टा के सिवा कुछ भी बचेगा ?^३

नरेंद्र शर्मा का यह भाव महाकवि शालिग्र के भावा की प्रतिध्वनि-सा लाता है,

'लाक हा जाएग हम उनको खबर हान तक ।

पलाशवन के प्रारम्भ में नरेंद्र शर्मा, प्रवामी के गीत की नीति एकांत निराशावादी प्रेमी नहीं हैं । कवि धीरे धीरे लाक जीवन के अधिन समीप आने की चपटा कर रहा है । बसंत के प्रफुल्लित पलाशवन के मादक वातावरण में एक प्रवामी प्रियतम अपनी प्रियतमा की कल्पना करता है—

कौन दश से आचगे पिय ?

हम होंस कहती होगी सत्वियाँ

धर तुम्हें आगिन में बठी

प्रामी खीर उद्याल त्रिजलियाँ

तुम्हें खीर फिर कनी हँसी बरबस आ जाती हागी ।^४

१ श्री नरेंद्र शर्मा—प्रवामी के गान, गीत १०

२ वही, गीत ३२

३ वही, प्रवामी के गीत की भूमिका पृष्ठ ६

४ वही, प्रवामी के गीत, गीत ५०

५ वही, पलाशवन (नन्दी घाट), पृष्ठ ३

यह गीत लोक जीवन के अत्यंत निकट है।

पलाशवन की 'आत्मपरिचय' शीपक कविता में 'ममता' के परिचय के लिए, कवि ने विरही के 'पूर्वरा' की 'अभिलाषा' को अंकित किया है। प्रियतमा के हित वह 'निशिगधा के पुष्प' और 'शूल' से लेकर 'पथ की रज तक' बन जाने को आकुल है—

ये भ्रमरबलि सी वेणी में बंध जान को लानायित जो
सुरभित मेरा ही स्नेह, सुमुखि, निशि ग धा के उन फूला में,
साडी का पल्ला याम तुम्ह जो बरवस खींच लिया करते,
मेरी ही तो उर आकाक्षा हो उठी डीठ उन शूलों में।

× × ×

मैं निशिगधा का फूल नहीं, हंसमुख गुलाब का शूल नहीं,
पद पकज का परिमल बनती जो पथ की रज,
मैं वह ममता !^१

'चाँदनी' में भ्रम कविता में कवि चाँदनी का प्रिया से साम्य, प्रणय के उपाद व्यापार और उसकी मान-मनुहार का मनोरम चित्र प्रस्तुत करता है—

बात वह करती न, सोने भी न देती
मुसकराते मौन वाली चाँदनी

× × ×

पास से जाती, न मन से दूर जाती,
है न क्या भरी प्रिया सी चाँदनी ?
विचल जल सा रात भर मुझको जगाकर
पाम या पागल बनाती चाँदनी !^१

चाँदनी रात विरही के लिए परम्परा से उद्दीपनकारी समझी जाती है। उपयुक्त कविता उसी उद्दीपन के निरूपण का मौलिक ढंग है।

'आत्म समपण' कविता में प्रेमी के आत्म समपण को व्यक्त करने के लिए कवि ने नवीन उपमानों की संयोजना की है—

सो टूक हो गया चाँद

टूट लहरों पर,

हो गया हृत्प जस

तुम पर न्योछावर।

जल जुगुनू बनता चंद्रहास

ज्यों जल पर,

१. भी नरत्न शर्मा—पलाशवन (आत्म परिचय), पृष्ठ ६

२. वही, पलाशवन (चंद्रमा में भ्रम) पृष्ठ ८

उठ गया प्राण सौ भावा
मम मन्तर ।^१

प्रियतमा की भाव-सहस्रिया पर हृदय के चाँद का सुघर बुध खाकर उनसे एक रूप हाँ जाना सचमुच बहुत सुन्दर कल्पना है। 'चन्द्रहास' के जल-जुगुनू' बनाने के भाव में भी उज्ज्वलता और निमलता के साथ आद्रता का भाव निहित है।

यदि नरेन्द्र की भाव धारा उसी क्षेत्र में बहती रहती जिसमें पलाशवन के प्रारम्भ में वह रही थी तो सम्भवतः विरही के भावा का व्यक्त करने के इच्छु सुन्दर नवीन उपमान का मन के क्षेत्र में धरत। किन्तु पलाशवन की 'माया शीपक कविता में नरेन्द्र के विरही का झुकाव फिर से अत्यन्त व्यक्तिनिष्ठ और हृदयगत हान लगा। हृदय की उस गम्भीर बना के अंतर्गत कल्पना कतवीन उपमान धीरे धीरे पुष्ट हान लग। साथी में चन्द्रमा के उद्दीपनकारी प्रभाव को व्यक्त करते हुए कवि कहता है—

पीले गुलाब सा लगता था
हल्के रंग का हल्दिया चाँद।
साथी था, फिर भी मन न हुआ
हलका हाँ गया भार हुआ।
वह भी बचारा एकाकी
उसका भी जीवन पथ मूना।
क्या कहते, दाना ही चुप न,
अपनी अपनी चुप सहत यहाँ।^२

वह कहता है कि पतझड़ में उजड़ हुए नीम पर पुनः वसन्त आ गया और वाकिला ने अपने राग से उसमें जीवन की स्पन्दना भी फूँक दी, किन्तु उसके एकाकी जीवन का वसन्त एक बार जाकर फिर कभी न लौटा—

देखता हूँ दूर बंठा
नीम की मजदिर डाली,
वायु तिमिले चलती, पिक न
जिस अपने बना ली,

तू भवेला है अकता कहा मुझन हर मुवह हर शाम ने।^३

अपने 'व्यक्ति' पर निराशा के इस अघकार को धिरता देखकर कवि उसे प्राणा दितान का प्रयत्न करता है—

एसा क्या हाँ गया मुम्ह जा
साया भाँ न फिर से जाग ?

१ धाँ नरेन्द्र शाना—पलाशवन (अप्यन सयवत), पृष्ठ १०

२ बशी, पलाशवन (माया), पृष्ठ १५

३ बशी, पलाशवन (अप्यन का नाम), पृष्ठ १७

एसा क्या खो गया तुम्हारा
सब जग सूना जिसके आगे ?^१

मन को समझात हुए वह कहता है विराट जीवन के अनन्त सुख-दुख में, व्यक्ति का दुःख एसा ही है जस चीटी की आखा में जलकण में महाप्रलय को देखना। व्यक्ति का दुःख की क्षुद्रता की यह यजना अत्यन्त मार्मिक और सजीव है। अर्ह' की सीमित परिधि में घिरे हुए मनुष्य का अपने सुख दुःख को बढाकर देखना क्या इससे कुछ भिन्न है?—

जब इतना तक सहता चलता
मत्पुत्रास बनने तक जीवन,
तो इतन से दुःख के कारण
काप उठे तुम क्या मरे मन ?
चीटी को आखा में देखी
तुमने महाप्रलय जलकण में,
की अनन्त की विषाद कल्पना
तुमने अचिर क्षुद्रतम क्षण में।^२

सम्भवत 'प्रवासी के गीत' के पश्चात् नरेन्द्र के विरही के जीवन में कोई नवीन स्वप्न आया था जो पहले स्वप्न की तरह ही दिन-भिन-हा गया। उसका संकेत 'पलायन' की इन पक्तियों में मिलता है—

दुःखिन न अकेले आत है—
आया फिर मन में स्वप्न नया,
वह भी टूटा तणवत छूटा
मुझमें मरा विरहास गया।^३

वह भीत जा उसे मिला था, वह दो दिन में एसा हो गया जैसे जान पहचान ही नहीं—

रा दिन में बन गए निपट अज्ञान, भीत तुम।^४
एक नयकर विपान उसके व्यक्तित्व का पुनः अभिभूत करने लगा है—
मृग का भी मिलती वस्तुरी
हुआ न तरा ही मोई^५

^१ आनंद रंजना—पलायन (मन मन जाने की बात), पृष्ठ ३३

^२ १६१ पृष्ठ ६०

^३ १७१ पलायन (आश्रय) पृष्ठ ६३

^४ १६१ पलायन (मन मन) पृष्ठ ६०

^५ १६१, पलायन (३ भाग ३३ का ३) पृष्ठ ५०

छायावाद-परवर्ती हिन्दी-काव्य में विरह भावना

अच्छा ही हुआ दूर हा तुम
टुकड़े टुकड़े हो जाता दिल—
अब देख मुझे इतना उदास।^१

सम्बन्ध विच्छेद के इस करुण विप्रलम्भ में भी हृदय-समर्पण की स्वच्छत
बराबर विद्यमान है—

कौन वह सुन पाओग भी मरे सकरण गान भीत तुम,
तुम परमरा स्नेह वही या स्वाभाविक है जो अपना पर,
जिसमें पाना इष्ट नहीं है दना ही जिसमें श्रयस्कर।
सोपी के मोती को ममता सोपा करता ज्या रत्नाकर,
घन विद्युत को शशि को मूरज या ज्या ताराश्रा को ध्रुवर,
मैंने दी ममता, मरे थ कुछ कुछ इमी समान भीत तुम।^२

‘मैरा मन कविता में कवि कोरा भाग्यवादी सा हा गया है, विधि की विडम्बना
के सम्मुख वह शीश झुनान लगा है परन्तु उसका बुद्धिवादी मन बार-बार इस पराजय
की स्वीकृति के लिए उस ललकारता है—

मैं हूँ विशेष मैं हूँ विशिष्ट,
कहता विधि से या वह अशिष्ट,
भ्रम वग चलता सुग-सुग हसकर
चल जरा दूर ठोकर खाता।
मैंने बहुतेरा समझाया,
मन अब तक ममक नहीं ‘पाया—

वह भी मिट्टी से ही निकला
फिर भी मिट्टी ही में मिल जाते।’
वीतरागिया की भाँति, वह अपने आत्म को उपदेश देने लगता है—

जब तक तन है घाघि व्याधि है,
जब तक मन, मुख-दुख हैं घरे,
तू निबल तो प्रीत भत्य है
तू चाह, य तरे चेर!

मुख दुख घूप छाँह का परण
जिसके पर सत्य का घर है।^३

१ श्री नरेन्द्र शर्मा—पलाशवन (अच्छा हा हुआ), पृष्ठ ४५

२ बहा, पलाशवन (भीत तुम), ४८

३ बहा, पलाशवन (मरा मन), पृष्ठ ५१

४ बहा, पलाशवन (मुख-दुख, एक तक) पृष्ठ ५४ ५५

जगत् से भ्रमता की आशा छोड़कर वह अधिकाधिक आत्मनिष्ठ बनन का प्रयत्न करने लगा है। आत्मनिष्ठा के फलस्वरूप वह एकपक्षीय प्रेम का मन भँस जाता है। ध्यान व प्रेयसी की आदर्श मूर्ति की कल्पना करके, वह उसकी पलका पर स्वयं के सपना बनकर आने क दिवास्वप्न देखता है। किन्तु यथाथ की वास्तविकता उसके स्वप्न को यदि कभी बुर कर देती है तो विरही की दशा अपने कारण्य में अमीम और विचित्र हो जाती है—

उन पलका की पल्लुडिया पर मैं चुम्बन बन खो जाता हूँ,
घनश्याम पुतलिया की रजनी में सपना बन भो जाता हूँ,
बस सँभे आती जाती है

तोड़ो मत मेरा निवासव्य, फका मत मेरा हृदय रत्न
मत सम भो उसका मोल नहीं, मिल जाय स्नेह जो बिना यत्न
सीपी मोती भर जाती है।

भुरु रही रात, पछी पापल, है कोई अपना नीड नहीं,
मन भी भर आता तहीं, मिल जो बूद, बूद दो नीर वहीं,
सूख दग नद बरमाती है ॥^१

विरही के मन में केवल एव चाह अवशिष्ट रह जाती है, वह यह कि प्रियपात्र के जीवन में उसका चाह और कोई महत्त्व शेष न रह किन्तु वह उसकी स्मृति में भूल जाए—

'फिर भी न मुझे दना विसार'

स्वयं भी वह यही आकाशा करता है कि उसके साथ प्रिय पात्र की स्मृति सदा रह। इसके चल पर जीवन के सम विघ्न वह सरलता से भेल लेगा—

मुनो तुम्हारे थीपदतल नत कोई भी मस्तक गौरवमय,
तुम मर न हो सक, फिर भी आज तुम्हारे बल पर निभय
मैं जीवन-पथ पर बढ़ता, सत बाधाएँ स्वीकार करूँ।^२

निवस की वभंगीलता विरही का कायव्यस्त रगती है। रात्रि में कोई काम नहीं होता अतः समय पाटना दूनर हो जाता है। मुचह जब हागी' इस प्रतीशा का नशा में सभाएँ विरही रात काट देता है, यह भाव परम्परा से विरह-यात्रा में उपलब्ध होता रहा है। नरद्वर्गों के काव्य में इसकी सुन्दर अभिव्यक्ति इस प्रकार हुई है—

१ भा नर द रागा—नि दी और पून (स्वप्न भव), पृष्ठ ५

२ बदा, मिट्टी और पून (विश्राम), पृष्ठ ६

३ बही, मिट्टी और पून (विश्राम), पृष्ठ २६

स्वप्न-चौर तार-तार,
जीवन-शाग हुए भार
भाक भाक खिडका स
दख दख तिमिर तोम,
भाक - भाक खिडकी से
दख घिरा घिरा व्याम,
बन्द यहा

जलता में मन्द मन्द आशा म

हागी हो (कव हागी) लिवस की निकामी।^१

'हागी हो की पुनरावृत्ति म (कव हागी) रमन से भाव की भासिकता और विह्वलता बढ गई है।

विरही और उसके विडम्बना भर जीवन की कथन कहानी नरेन्द्र शर्मा न 'अयोचित म इस तरह प्रस्तुत की है —

कहीं सरिता क किनार तिता या बनफूल एक
अचक उसक पास आइ लहर ज्या भात्रातिरक
वायु डानी, लहर उभरी, फूल भूला मिल आठ
फूल भूला चेत लहर गई कर मधराभियक।
बहुत-सी आई-गई लहरे न आइ वही एक—
ते गई जो फूल की मुस्कान अन्तर का विवक।
उलाहना देता रहा बनफूल— तुम आइ नही'
गीत गाता रहा देती रही मधर वायु टक ॥

एक दिन बोली नदी—मैं ता नमय की धार हू
मैं विरह का अश्रु हूँ, मधुमिलन लाचन चार हूँ
लहर मरा मध, आ बनफूल' मर वह न मूल—
छू गया सबेले जिसका, मैं वही मभ्रार हूँ।^२

हिरना हिरनी को एक और 'अयोचित' मकवि न प्रेमी सुम्न, समाज और उसके द्वारा उनक विछोह तथा मृत्यु क उनका ज्वलन की मधुर गार्ति का माहक बणन किया है—

एक था हिरना, एक थी हिरनी।
हिरना था वह प्रेमी पागल
फिरता था नित जगत जगत,

१ आ नरेन्द्र शर्मा —मिरदा और फूल (मा.क. क बाद राग), पृष्ठ

२ शर्मा, मिट्टी और फूल (बनफूल), पृष्ठ ५६-५७

बतलाऊँ हिरनी कसी थी ?
बड़ी खिलाडिम नटखट चंचल ।

—प्रेमी-युग

× × ×
आया एक सामने दलदल
फँसी जहा जा हिरनी चंचल
दुख से, प्यारी आँखे छनछल ।
हिरना प्यारा, दुख का मारा,
दूर पडा था, गिर मुह के बल ।

—समाज

× × ×
देख शेर के मन में आया
मैंने इनको खूब मिलाया,
बहुत मगी ने खेल खिलाया,
(जिए दूर मिल गए मोत में)
हिरने ने हिरनी को पाया । —मह्यु मे विरमिलन^१

इतना विफल वेदना होने पर भी नरेन्द्र का विरही, अपने मन का बराबर
। और प्रासाहन देता रहा है—

तू नहीं वह बीज जो जन ग्वाव हो जाए
नित्य निगरेगा मनुज जितना जतेगा तू ।

हसमाता^२ में नरेन्द्र का कवि व्यक्तिकता की सीमा से ऊपर उठने लगा है। वह
... के समान जगद्गुरु के पारस्परिक सम्बन्ध को समझना तौलता है। उसके
पय में यह मोड 'मिथुनी के फूल' की कविता 'एक नारी के प्रति से ही प्रारम्भ हुआ गया
था। वहाँ वह स्पष्ट कहता है।

'कामिनी की कामना ? वह बर चुवा हूँ पार मजिल'

और—

स्वप्न की सम्प्राप्ति खाइ, दिवा अन्न नवरूप जागी—

नया मनहर रूप निखरा आ रहा स्वर्गाभि मा खिल ।^३

किन्तु 'हसमाता में भी हृदय के मूनेपन न कवि को छोड़ा नहीं है। बार बार
उपमा यह उभे प्रतापिन करता रहता है और तब उस एका लगता है जब उमर प्रादय
के मय मयन धुन गए हैं—

१ धी नर द्र रागा—'मिथुनी और फूल (मिथुनी हिरनी), पृष्ठ ६४-६५

२ वहाँ मिथुनी और फूल (एक नारी के प्रति), पृष्ठ ६३

आदेश और अरमानों के जो चित्र बनाए सुन्दर
 क्या उन्हें धो गया आहत अभिमाना का श्याम समुद्र ?
 क्या निर्मित नहीं समाज आज मुझसे ही ज्ञाचारा से ?^१
 एक और वह दासिक के समान कहता है—
 निर्मित का यह प्रयोजन है कि कवि का हा विशद अनुभव ।
 मिल सिद्धांत जग को, किंतु कवि को सिद्धि ही सम्भव ।

मिला ससार का ससार, कवि का
 निज अभावा में विनिर्मित नष्टि ।^१

अपने दंग में फली हुईं भूख की महामारी की समस्या से वह तउप उठता है—
 भूख भूख, सब ओर भूख की लपट, इवन तन डुरल
 किसे आज कहने की क्षमता और किस मुनन का बल ।^२
 दूसरी ओर हृदय की भूख को भी वह भुता नहीं सका है—
 स्वप्न बनने और उठने जा रहे सुन्दर मुहान—
 प्यार पाना चाहता मन, प्यार करने के बहाने

हम भना करत रहे, पर मन न वह जो बात मान ।^३
 कभी सामाजिक रुढ़ियों के कारण कभी अपनी न हान वाला प्रियतमा को
 सम्बोधित करके कहता है—

इन आँखा न दुनराइ है तरा लघु रखा प्रतिरखा
 वसे कहूँ प्यार नहीं या जा तरी आँखा में दया ।^४
 और कभी फिर, शुद्ध स्वाय से पर, महान बनन की चष्ठा करने लगता है—
 अटकार तज अनितापाए जीन का अधिकार चाहती ।
 अथवा—

फिर महान बन मनुष्य
 फिर महान बन ।
 मन भिना अपार प्रेम से नरा तुम्हें
 इसीलिए कि प्यास जीवमात्र की कुम्भ,

१ आँखें राना—दयनाला, पृष्ठ २६

२ वही, पृष्ठ २६

३ वही पृष्ठ २३

४ वही, पृष्ठ ५१

५ वही, पृष्ठ ५६

विस्व है तृपित मनुष्य, अन्न न कृपण ।
फिर महान बन ।^१

'अग्निशस्य' में भी जन और आत्म के मध्य, कवि के हृदय के सघप की यही स्थिति चलती रही है। प्रियतमा के प्रति नरेन्द्र के विरही का एक 'उलाहना' अत्यन्त मार्मिक है—

सुख सपना की सौगात लिए आया जय चाँद गगन में,
तुम सुधि की मधुर मुरलिका बन आइ तब मेरे मन में ।
दुःख वाती को दिन बीत गए, शशि आए गए अनेको
तुम सुधि बनकर भी पाँव नहीं धरती मेरे आगम में ।^२

प्रियतमा का 'सुधि बनकर भी पाँव न धरना' विरह की अवधि के अन्ततः हान का घातक है।

इस तरह नरेन्द्र शर्मा के काव्य में विरह-व्यथा की विविध अनुभूतियाँ प्राप्त हैं जिनमें अधिकांश समाज की रुढियों के कारण उत्पन्न हुई हैं। नरेन्द्र के विरही न व्यक्त कता की सङ्कुचित पीड़ा से उठकर समाज की पीड़ा में अपना दुःख का विलय करने का प्रयत्न तो किया है परन्तु अन्ततः अन्त तक शांत नहीं हुआ है।

भगवतीचरण वर्मा

जीवन का अणभगुर और अस्थायी माननेवाले लम्बप्रतिष्ठ कवियों में भगवतीचरण वर्मा का नाम भी उल्लेखनीय है। आज के कवि का 'अहम् जहाँ एक ओर जग से अपनापन पान की प्रबल आकांक्षा करता है वहीं दूसरी ओर अत्यन्त व्यक्तिगतत्व से पूण है। अतः स्वयं का वह जगभाषना में विलय नहीं कर सकता। मानव के अहंकी भावना अत्यन्त दयनीय अवस्था में है।

अहं में प्रताडित कवि के मानस को ऐसा लगता है जस जग से अपनापन पान की आकांक्षा मधुर भ्रम है। भगवतीचरण वर्मा कहते हैं—

सागर का प्रगात मधुक्ण ।
अपनापन है जग का भ्रम—
बलुप नरा यह काला भ्रम
वितन दुःख तितनी बरुणास
धिरा ह्यरा है ह्यरा अहम् ।^३

जग से अपनापन मिलना मधुर भ्रम है यह जानते हुए भी मन उसका पी पीडता है तभी तो 'अहम्' आहत होता है। पागत जग के अधकारपूण जीवन' में यह

१ ओ गन्द शर्मा—हममाना, पृष्ठ ६७, ७२

२ श्री अग्निशस्य, पृष्ठ १०२

३ श्री भगवतीचरण वर्मा—मधुरण, पृष्ठ १

छायावाद-परवर्ती हिन्दी-काव्य में विरह भावना

कवि अपने जीवन के मधुकण अर्पित करने का आग्रह करता है—

अधकारभय पागल जग है,
अधकारभय वही मरण
उसके जीवन में तुम भर दो
अपने जीवन का मधुकण
सत्य शिव सुन्दर मधुकण ।^१

यदि कवि अपनी वदना के मधुकणों को विश्व वदना में सचमुच विलीन कर सकता तो दुविधा ही क्या थी। एक धार निलिप्त स्थितप्रज्ञ की भांति वह यह दाव करता है कि मुख-दुःख से उसे प्रीति नहीं है, अतीत और भविष्य का मोह छाड़कर वह वनमान से सघष करता रहता है।

क्या भविष्य है नहीं जानता
मुझका पात अतीत नहीं
खुश से मुझको प्रीति नहीं है
दुःख से मैं भयभीत नहीं
लड़ता ही रहता हूँ प्रतिपल
बाधाधा का पार नहीं
कालचक्र के महासमर में
हार नहीं है जीत नहीं।^२

दूसरी धार, उसकी मुख से प्रीति की इच्छा इन शब्दों से स्पष्ट हो जाती है—

यह न समझना दवि ! कि मुझको
निज ममत्व का ज्ञान नहीं
इस विस्मृति के विषम वक्ष में
रदन नहीं मुस्कान नहीं।^३

अथवा—

अर अथर क इम प्रदण म
पवन नहीं, उद्यान नहीं।^४

'कुष्ठा' किस तरह भयकर अग्नि को हृत्पथ में उद्दीप्त कर रही है, इसका एक सागरूपक वर्णनो ने इन शब्दों में प्रस्तुत किया है—

निज उर की वदी पर मैंने महापथ का किया विधान,
समिधि उनाकर ला रख है चुन चुन कर अपने अरमान।

१ श्री भगवत्पाद-परवर्ती हिन्दी-काव्य में विरह भावना, पृष्ठ ४
२ वही, पृष्ठ ४
३ वही, पृष्ठ ३
४ वही, पृष्ठ ३

अभिलाषाओं की आहुतियाँ ले आया हूँ आज महान
और चढ़ाने को आया हूँ अपनी आशा का बलिदान,
अभिमंत्रित करता है उसको इन आशा का भरव राग
जल उठ ! जल उठ ! अरी धधक उठ महानाश सी मेरी आग !^१

अनुराग के अधु उसम पत का काम कर रह है—

आज आँसुआ का घत लेकर आया मैं अनुराग
जल उठ ! जल उठ ! अरी धधक उठ महानाश सी मेरी आग !^२

उनका कुण्ठित (फस्ट्रेटिड) युवक अपनी विरहाग्नि को विराटता प्रदान करते हुए, मीवनामत्त प्रेयसी को उलाहना देता है—कि जिस रूप के बल पर वह उसके प्रणय को चुनौती दे रही है वह अत्यंत अस्थायी तत्त्व है, उसके सम्मुख अत्यंत तुच्छ है—

रूप राशि स भरा हुआ है यह समस्त ससार,
रूप राशि पर मत इतराना, रूप राशि है हार !
तुम्हारा मद स उमत भाल !

इसके बल पर महाप्रलय से करने आयी प्यार !
जल जाओगी, रूप राशि ही है जीवन की हार !
क्या हूँ ? इस अनन्त म कण हूँ भरा कितना मोल
पर अनन्त पाओगी मुझ में अपनी आँखें खोल
यहाँ खोगी रूप विराट !^३

ऋद्धियों से उत्पन्न हुई जीवन की विवशना को भगवतीचरण बर्माने इस तरह स्पष्ट किया है—

यहाँ प्रकृति है पाप पुण्य आत्मा का पूण दमन है
स्वच्छा है भ्रम पाश यहाँ पर मुक्ति नियम-बधन है ।

किन्तु इन नैसर्गिक भाविक भावा का साथ स्थान स्थान पर उनका प्राप्त दास निक सिद्धाता को दोहराना टूटी कड़ी-सी लगता है, भाव की भाविकता का स्थान पर ध्व्यवस्था सी लगन लगती—

यहाँ मिलेगी आग, यही पर तुम्ह मिलेगा पानी,
धरे मिलेगी स्वर्ग नरक की तुमको यहाँ निगानी,

१ भी भगवत चरण्य बर्माने—मधुसूदन, पृष्ठ ६

२ वही, पृष्ठ १०

३ वही, पृष्ठ ११ १३

४ वही, पृष्ठ १६

इतना रखना याद यद्यपि है बाना ज्ञान पुरानी

'रह जात है मूख यहीं पर वह जात है जानी।'^१

भगवतीचरण वना में प्रणय भाव क प्रति नीतिव दृष्टि का माह ता है किन्तु वह उसका स्पूल रूप में प्रस्तुत करने में हिचकत रह है। छायावादी कवियों का भावित उसका मूढमाकरण का उद्देश्य प्रकृत है—

आज मरे जीवन का प्यार—

देवि—मर जीवन का प्यार

गुणों का दिया हुआ अनात

धरी छाया सा मधुर दुनार

कमल सा कोमल दुन सा मीन

विस्मरण सा भूला उद्गार

बन गया उर का विचलित भार

देवि ! मर जीवन का प्यार।^२

दूसरी ओर उनकी व्याप्त 'गुड़ शारीरिक रूप मोह की व्याप्त (desire) है जो वर्तमान की तृप्ति चाहती है भविष्य के स्वार्थित्व से उसका सम्बन्ध नहीं है—

है आज उमगा का युग—

तरी मात्क मधुगाला।

पीन द जो भर रूपसि

अपने पराग की हाता।

मत याद दिलाना बन की,

बल है बल भान वाला।^३

एक ओर, रूप मोह का प्रबल उफान और दूसरी ओर दुराव की प्रवृत्ति इन युग के युवक की दमित इच्छाओं के फलस्वरूप नहीं जा सकती है। इस दृष्टि को स्वल्प दृष्टि नहीं कहा जा सकता। कुण्डा का यही धुमडन आज के प्रणय की मुख्य समस्या है।

मधुर हास्य में अनन्त बदना छिपाए और 'बाह' का नशा में लिय हुए, कवि का यह उद्देश्य उस किस दिशा में ल जाएगा यह वह स्वयं भी नहीं जानता। किस ओर ? शोषक कविता में—

कहाँ ? स्वयं ही नहीं जानता है यह पय मनजान।

इन भविष्य के अफकार का कहीं किसे है जान ?^४

१ श्री भगवतीचरण वना—नपुंसक १८१६

२ वहाँ, पृष्ठ २४

३ वहाँ पृष्ठ २५

४ वहाँ, पृष्ठ २७

किन्तु उसके सम्मुख इतना स्पष्ट है कि प्यार की एक बूंद पर जीवन का सम्पूर्ण ममत्न वह मोछावर कर सकता है—

एक बूंद पर ही कर दूँगा मैं ममत्व का दान^१

ममत्व का यह दान भी स्वाथ रहित नहा है—

एक बार फिर और कहूँगा उस मदिरा का पान,
कहाँ ? जहाँ होता है प्रतिपल विस्मति का आह्वान ।

क्षणवाद का पुजारी वह भ्रमिष्य का आराधक नहीं है। प्रियतमा के समीप वह प्रणय सम्बन्ध में उत्पन्न क्षणिक प्यास की स्थूल तपित का आकाशी है। उसका विरह भाव गुद स्थूल रूप मोह है उसमें अतीन्द्रिय, जन्म-जन्म के गठन-धन की बात मोचन का यहाँ प्रश्न ही नहा उठता—

आया हूँ फिर से भडवा कर अपनी प्यास पुरानी,
सूखे हाथ पर आशा की लेकर एक कहानी ।
चंचल गति से नाच रही है बिछुड़ी हुई जवानी,
लोट पड़ी मरी मजिल-वन अभिलाषा अभिमानो ॥^२

उसकी प्रियतमा भी उन दानों के क्षणिक मिलन में 'लाज' बाधा बन गई इसी विरह की ज्वाला से तडपती है। लाज को उपासम्भ देती हुई वह कहती है—

अलि सम पुलकित नयकलिका पर लवभव सुख साज
प्रियतम अपनी प्यास बुझाने घर आये जब आज
बरिनि बनी निगोड़ी लाज !^३

'लाज' व इस उपासम्भ का रीतिकाल की रूप ज्वाला से अत्यन्त निकट का सम्बन्ध प्रतीत होने लगता है।

अपन अमफल जीवन की भाँति, भगवतीचरण वर्मा के प्रेमी भावुक को समस्त सत्कार का जीवन असफल दृष्टिगोचर होता है। भूधर आकाश की ओर निनिमेष देखते हुए निश्वास भरा करते हैं—

अरे युगों का भार लिये हिम आवृत सिर पर,
असफलता पर अनुबहाते हुए निरन्तर
देस देस अनिमेष दृग्ग स अँचा अम्बर
यहाँ मौन निश्वास भरा करते हैं भूधर ।^४

जीवन का सब सुख-दुख उसे, सागर की छाती पर उत्पन्न, पानी के बुलबुले की भाँति क्षणभंगुर लगता है—

१ श्री भगवतीचरण वर्मा—मपुत्रक १४४ २७

२ वहाँ, पृष्ठ २०

३ वहाँ, पृष्ठ २१

४ वहाँ पृष्ठ ३२

उदाधि के वक्षस्यल म व्याप्त
 बुलबुले का यह भणिक उनार ।^१
 सशेष म भावतीचरण वना क विषय म यह कहा जा सकता है कि वे घोर क्षा-
 वादी हैं। समन्दार मनीषी की भाति यद्यपि मधुकण^२ म उहाने स्थान-स्थान पर जीवन
 का गम्भीर दार्शनिक दृष्टि से दखन का प्रयत्न किया है। विन्तु व केवल शब्द मात्र है।
 जीवन और उत्कृष्ट सुख का नयकर माह और उसकी प्राप्ति के प्रभाव म मनन्त वेदना ही
 उनका काव्य म मिलती है। भणवाद के प्रभाव त प्रणय क प्रति शाश्वत गहन-दृष्टि का
 भी उनम प्रभाव है। उनका काव्य मन का हृण रुदन मात्र रह गया है, प्रणय के प्रति
 स्वस्य दृष्टिकोण अथवा उ नयन भी उसम उपलब्ध नहीं होता। वचन और नरेन्द्र रमा
 की भाति उनके विरह की तडप मन की प्यान^३ नहीं है।

शिवमगलसिंह 'सुमन'

शिवमगलसिंह सुमन प्रपतिशील कवि हैं। समाजवादी भावना जनता की
 जनन और गोपका क अत्याचार ही उनकी वाणी के मुख्य स्वर हैं। विन्तु अपनी
 प्रारम्भिक रचनाश्रा म सुमन भी व्यक्तिगत सुख-दुख के गायक हैं। पर श्रांति नहीं भरी
 नामक कविता-संग्रह का पूर्वार्द्ध मिलन की अभिलाषाश्रा और उसकी प्रभाव-वेदनाओं त
 ही परिपूर्ण है। विरह कविता के इस संग्रह म, विगिष्टता यह है कि न रास्य और कुण्ठा
 की घुमडन ने उसके कवि को कभी हतास और पशु नहीं बनाया है। विरहातुल्यतियों वे
 कोमल माधुर्य के साथ विरही का सहज विश्वास और कभी विलुप्त न होने वाली प्राप्ता
 भी उसम प्राप्त होती है।

पर श्रांति नहीं भरी^१ की प्रथम कविता 'मैं तुम्ह पहचानता हूँ' है। इस कविता
 म, प्रथम दृष्टिपात^२ म ही कसे दा प्राणी एक-दूसरे की घोर आकर्षित हो जाते हैं, इतका
 वणन है। मनोवैज्ञानिक ने इस प्रकार के अनायास आकर्षण का कारण, यह बताया है
 कि आकर्षित हुआ व्यक्ति अपने विषय म अपने अह^३ के आन्त को पाने के कारण
 घाट्ट हाता है (It is an I seeking another I)^३ प्रतिष्ठ काव्यशास्त्री महाराज म
 ने भी स्वयं अपने अह व साक्षात्कार की ही आकर्षण का कारण बताया है।^४ वहने या
 यह कि अचतन म दियत आदर अनुकूल ध्यवित्त क प्राप्त हाते ही चेतता म
 सजना करता है। इसी भाव को सुमन इस तरह व्यक्त करते हैं—
 पूव परिचय भी नहीं या
 आज भी हम हैं अपरिचित

१ आभासकारण नहीं—मधुकण पृष्ठ ३०
 २ देखिए, म
 ३ देखिए प्रथम

४ आन विरह का मनोवैज्ञानिक विवेचन
 'मनोवैज्ञानिक काव्य' पृष्ठ १००

य अछूते अधर अपनी
 मूकता में ही प्रकम्पित
 किन्तु जब दखा तुम्ह
 तो चेतना में यह बताया
 हाथ खाई वस्तु में
 कितन दिना में खाज पाया,
 तुम न माना जग न मान
 किन्तु मन तो कह रहा है
 'मैं तुम्ह पहचानता हूँ'।^१

'सुमन' 'वासना' के कवि नहीं है। प्रेम और विरह को वह 'मन का प्यास' मानते हैं और दो प्राणियों के संयोग को, मन का संयोग। उसके अनुसार मिलन की अभिलाषा और प्रयत्न पर प्रेमी का अपना अधिकार नहीं होता, कोई अभूतपूर्व प्रेरणा उस ऐसा करन को प्रेरित करती है—

गति मिली, मैं चल पडा
 पथ पर कही रक्ता मना था

तन न आया माँगने अभिसार,
 मन ही जुड़ गया था।
 मैं नहीं आया तुम्हारे द्वार,
 पथ ही मुड़ गया था।^२

'अभिलाषा' क क्षणा की निराशा को 'सुमन' का कवि प्रेम माग की सहज गति के रूप में स्वीकार करता है—

क्या एक तुम्हारा ही बनने में इतना भ्रम ?
 मगलतुष्ण्या की छलना क्या सचमुच सत्य परम ?
 या प्रेय प्राप्ति पथ पर सपनों का निश्चित भ्रम ?
 पर व्यथ नहीं जाते सघप-साधना भ्रम।^३

प्रेम-यात्र से प्राप्त, प्रेम का धणिक आदान भी कवि का, विश्व वेदना को तृप्त करने का साहस दे सकता है। 'सुमन' कहत है—

एक ही मुस्वान स ७८ भर लिया तुमने हृदय का रिक्त कोना,
 याद ना हागा तुम्ह वह दिन सताना ?
 मैं उसा मुस्वान की धाभा पुरावर

१ श्री शिवमगलसिद्ध सुमन — पर भाँख नहीं भर, पृष्ठ ३

२ वही, पृष्ठ ४५

३ वही, पृष्ठ ५

छायावाद परवर्ती हिन्दी-काव्य में विरह भावना

दिग्दिगता में लुटाने जा रहा हूँ

४१८

डाल जत्र अनजान में तुमने न्यि इन गुफ्त भयरा में अमृत कण
याद तो होगा तुम्हें वह मधुमिलन क्षण
में उही दो चार वृत्तों के सहारे
विद्वेद जापक विष बुझान जा रहा हूँ।
सम्बन्ध विच्छेद से उत्तर न निराशा भी फिरही मुमन के यस्तित्व का कुण्ठित
नहीं कर सकती, अधिक प्रयत्न से जीवन-मधुष की प्रेरणा आता है—
या जिस तू जी सखा, खोकर उन तू मर नहीं।
कभी प्रतीत की स्मृतियाँ उनके विरही को तड़पाती हैं सत्र कुछ मूना सा लगता
है, ऐसा लगता है कि हृदय के सहज विदवास को किसी ने टग लिया। अतः बचना ता
स्वाभाविक ही है—

जा भी आया था जीवन में
यन्त्र चला गया तो रोना क्या ?
ढलती दुनिया के दाना में
सुविधा का तार पिरौना क्या ?

कुछ साली-छाली हागा ही
जिसमें विदवास समाया था
उससे ही सारा नगडा है
जिसमें विदवास चुराया था।
जीवन में एक प्रयत्न छा गइ है। किन्तु उसी के बीच उत्तमकर गतिरोध हुआ
जान से तो समस्या हल नहीं हो सकती, इसी से मुमन का प्रतीत बहता है—

जा भी अभाव भरना हागा
चलत-चलत मर जाएगा
पथ में गुनन बढ़गा तो
जीना दूभर हो जाएगा।

एक गीत में, स्वयं को दीर्घ के प्रतीक रूप में रखकर 'मुमन', अपनी प्रपयिनी
से स्नेह की प्रकाश करत है। प्रियतमा यन्त्र स्नेह का प्रदान करती रहे ता रुझियों के
कारण उत्पन्न सम्बन्ध विच्छेद में विरह की जलन का भी वह मत्कार करन से नहीं

१ श्री साकभगन १६ गुनन—१२ म में नहीं मरी, पृष्ठ १८
२ बघो, पृष्ठ २२
३ बहा, ५२ ५३
४ बहा

घबराते। स्नेह से वंचित होन पर जीवन दीप का रूप विकृत न हो जाय यही आशंका है। प्रेम पात्र से वह प्रायना करते हैं—

स्नेह की बूंदें चुवाओ
जी करे जितना जलाओ
हाथ उर पर धर बतारा
बसा मिलगा देख मेरा
धूम्र कालिल वेप ।^१

प्रेमी की नम्र प्रायनाओं और प्रेम के सहज विश्वासों पर पहल कुठाराघात करके बाद में यदि प्रेयसी इससे प्यार पाने की आकांक्षा करती है तो एक अभूतपूर्व वेदना से हृदय तडप उठता है। परिस्थितियाँ न इसे फूट फूटकर बंदम रखने सिखा दिए हैं—

तुम लुटा रह हो आज प्यार व मांगे
मैं सिहर रहा हूँ, देख स्नेह के बागे।

उस दिन तुम मुझको हँसकर टाल रहे थे
मैं प्यासा, तुम शरीरों को ढाल रहे थे

उम दिन की जलन मुझे चौंका देती है
मटठे को भी जो फूँक फूँक पीती है ॥^२

'मटठे को फूँक फूँक कर पीना' मुहावरे का प्रयोग बड़ा मार्मिक है। कहने का तात्पर्य यह है कि अतः यह किसी की भोली प्रायनाओं पर सहज विश्वास नहीं करता। उभय-पक्षी प्रेम में सम्बन्ध विच्छेद की पीड़ा को कवि ने चार पंक्तियों में ऐसे व्यक्त किया है—

ठीक है दो क्षण हमारे फट गए, लेकिन—
तार मुधिया के हमारे बट गए, लेकिन—
हर क्षणिक तूफान की छाया संवारती है,
दो घड़ी की भट बरसो तक झपटती है।^३

सम्बन्ध विच्छेद की विरह-व्यथा का एक रूपक टूटी पतंग की डोर के रूप में बहुत मार्मिक है। टूटी डोर के लूटने वाला के रूप में समाज की मनोवृत्ति का विदलन भी कवि ने उहने सुंदर किया है। डोर लूटने वाला को इससे मतलब नहीं होता कि पतंग किसकी कटी है? उस ही सम्बन्ध विच्छेद की परिस्थिति से लाभ उठाने का प्रयत्न करने वाला की कीड़ समवेदना प्रेमी युग्म के साथ नहीं होती। अपनी उदास प्रियतमा का दलबंद कवि कहता है—

१ श्री शिवशंकर 'मह सुमन'—९२ पौल नही भाई, पृष्ठ ५०

२ वही पृष्ठ ५५

प्रखर वायु में (सामाजिक विरोध में)
 डार साधना कठिन, कठिनतर
 दाव फँसना
 पंच काटना
 धूल धूसरित, गहन नीलिमाभय
 सभ्रम भा का स म
 टूटी डार लूटन बाल यहाँ बहुत हैं,
 भीड़ सड़ी है,
 लम्ब-लम्बे वाँच हाथ में
 जल्नी टूट
 यहाँ मनाते साँन-साँस में,
 कौन उठान वाले
 इससे उनको क्या है लना दना ।

कई दिना से देख रहा हूँ तुम उदास हो
 प्रायें सजल विनत सहमी-न्ती ।^१
 पर प्रायें नहीं नरी मैं ही कवि की व्यक्तिक विरह-वेदना विरह की तडपन
 के रूप में परिवर्तित हान लाती है। अपने जीवन की प्राती का जन-स्नह से प्राप्त प्रात
 करके वह रुझियो क हिमगिरि को पिघलाना चाहता है—

तबिन मुझ इसलिये न हूँ साया,
 मैं लुटन हूँगा नहीं तुम्हारी घाती
 बट लन दा यह स्त्री, लूखी घाती
 इसन फिर मैं जन-मन का स्नह डला
 भवराधा का हिमगिरि तप कर पिघलना
 युग का गा का मुक्त प्रवाह बहूँगा ।^२

जहाँ तक प्राधुनिक परिस्थितियाँ न उदाम्बल सम्बन्ध विच्छेदक के रूप में विरह का
 प्रत्यक्ष है यह स्पष्ट है कि सुमन निराशावाणी नहीं है। उन्होंने युग की बाधाओं को बसा
 ही स्वीकार करके अपना व्यक्तिक भावनाओं की वृत्ति दर्शा है, व्यक्तिक व्यथा को
 सामाजिक व्यथा में विलय कर दिया है। इसलिए आज यह कवल प्रश्न हूँगा कि व्यथा को
 के गायक ने हाथर प्रसन्न हृदय की विवशता के वन आपक गय है।
 वना प्रसन्न हूँगा मैं उनहती जा निरतर
 कवि न यत्कि बहूँ दे उभे वा व्यथ वाणी का विला वर

१ आ. शिखरगन्धर्व 'दुःख' — पर प्रसन्न नहीं — पृष्ठ ३५
 २ वही, पृष्ठ २४

इसलिए ही मूक हृदयो में धुमन्ती विवशता को—
 मैं सुनाता जा रहा हूँ
 पर तुम्हें भूला नहीं हूँ।^१

इसके अतिरिक्त, विरह के अर्थ परम्परित और नवीन रूप भी 'सुमन' के काव्य में उपलब्ध हैं। यह दृश्य अधिकांशतः प्रवास^२ के है। 'प्रवास' के परम्परित बर्णन में, ऋतु बर्णन की पद्धति के अनुरूप 'सुमन' ने 'पावस' शब्द और शीघ्र ऋतुओं के बर्णन किए हैं। 'पावस' का उद्दीपनकारी रूप स्पष्ट करन के लिए, वर्षा के बादला को 'सुमन' 'विरहिन' के ताप और 'काम' के ताप कहते हैं—

ये विरहिन के ताप, काम के ताप
 गरज, इतराए।^३

'गरज कर इतराना' प्रयोग विरही के दृष्टिकोण से अत्यन्त सफल है। विरही को जमा प्रतीत हाता है जैसे वह बादल उसकी दयनीय स्थिति का उपहास कर रहा है और उस ऋतु, भास देने का प्रयत्न कर रहा है। वातावरण के मादक प्रभाव में, अभाव की पीड़ा का मुखर हो जाना स्वाभाविक ही है। पावस की जोड़ार, प्रिय की याद दितानी लुई आती है और तब विरही कन्या से अनायास आमुखा की भङ्गी लग जाती है। 'विप्रलम्भ' के समस्त उपकरणों से समृद्ध यह चित्र 'रस' के चरमोत्कर्ष तक पहुँच रहा है—

खिन्नी से भीनी भीनी
 जोड़ार विलरती आई,
 अनायास ही किसी निठुरकी—
 याद दगो मैं आई
 पानी बरसा नहीं किसी का बह आँसु का काजल
 आज रात भर बरस बादल।^४

'पावस' के एक दूसरे चित्र में कवि ने, प्रिय की प्रतीक्षा करती हुई एक नायिका का अमृत मुखर चित्र उल्लिखित किया है। एक तो प्रिय भ्रान्त बाले हैं अतः प्रतीक्षा का भाग्य बन ही अस्विकर बना देते हैं और दूसरे साँक में ही घटा भी फिर आई—

आज अटारी पछाई घटा
 मैं सौँक लगी घनटूटी करी
 आज वी रात वी राम ही मालिक
 लानी जता प गाज गिरी
 छान नी बान टपाटप चू रहो

१. श्री विरहमगननिन्द १। १० — विरहिन बन्ता हा गया: १४४ =

२. बहो, पर भी मैं नहीं भरी, १४४ २५

३. ५१ १४४ २६

बीजु की कोंच डरावनी री,
आज की साँझ सलौनी बड़ी मनभावनी री ।
वर्षा के होने से एक झर झर उद्दीपन और दूसरी झर (प्रिय न घ्राए, तो) 'घासरा'
नचारी की व्यजना है। इसीलिए नायिका को एक झर 'साँझ सलौनी' लगती है दूसरी
और उन पर गाज गिरती है। 'पावम का यह चित्र, लोक जीवन के अत्यन्त तिराट है,
उनकी अभिव्यजना भी बहुत समथ हुई है।

चादनी के उद्दीपन प्रभाव का स्पष्ट करता हुआ यह चित्र भी बहुत गुंजर है—

आज तक पथ का अकेलापन कभी अखरा न इनना

जागती आख सँजोती मधुर सपना,

लुट गई छिन म जनम भर की कमाई

चादनी झाई किमी की याद झाई ।^१

काइ प्रमी बगवम अपनी भावनाओं के उद्दाम बग को धाम हुए था खीर की प
प्रभाव से मयम का वाध टूट गया। 'लुट गई छिन म जनम भर की कमाई मुद्रापन का
प्रयाग भी बहुत मुंदर है।

'श्रीप्प' रानि का प्रभजन' नामक कविता में कवि ने एक निरसिणी गाई। १७ प्रस्ताव
निया है जा श्रीप्प की आँधी से चौककर जाग उठती है। निम्न प्रोपितपतिता का ही प्रथमा
पुवराग का अनुभव करती हुई मुग्धा का यह स्पष्ट नहीं होता—

बाला अभी बठी है ज्या नी त्यो
कभी-कभी केवल जम्हाई गुा पड़ती है

टूट गई सम्भवत

मीठी नीद

पहली नीद,

पूछना मन

दवि ! दु स्वप्न देगती भी क्या ?

या युग युग के स्तर में ।।।।।

किसी गण्या १।

आकुल प्रतीक्षा ५००

सजग हा ११।

अरुण नयनो भी १।१। १।

मपवा तिमि भावम १।

घातुर भावना १।१।

१ २ १२२२२ बर्षिह मन्त्र — पर भावनी गरी गरी, १५ १७
२ ११, ६५८

समय की छलनी में छानने को उद्यत है
 जीवन के मूल्य नय ।^१
 'प्रवाम' में 'स्मृति' का नवीन रूप सुमन ने इस कविता में प्रस्तुत किया है ।
 आज तुमसे दूर, कितनी दूर
 मैं बठा हूँ अनमना सा
 कुतरता नाखून, तन मन चूर
 स्वयं के ही प्रति खिंचा कुछ कुछ तना सा ।^२

'स्मृति' में यह अनमना भाव और उसके साथ 'कुतरता नाखून' एकदम नवीन अनुभाव है । यह स्मृति किसी एकांत में नहीं आती, स्टेशन का वेटिंग रूम है—

भूल मत करना, नहीं मैं सिधु तट पर
 अधिरमन सा रेलवे का एक वेटिंग रूम
 मुँहजली चिर मनचली इस नल्पना का क्या कहूँ
 एक क्षण मैं जुहूँ आई धूम ।^३

अधिरमन की उपमा कवि ने रेलवे के वेटिंग रूम से की है । आधुनिक समय की व्यस्तता के अनुकूल ही उपमान कवि ने ढूँढ़े हैं ।

सुमन विरहभाव को सफल कवि हैं । मार्मिक अनुभूतियों के साथ स्वस्थ जीवन दृष्टि ने उनके काव्य को निरा नराश्यवादी और कुण्ठा से युक्त नहीं रहने दिया है ।

अचल

जीवन और उससे सम्बद्ध अनक मानसिक स्थितियों को शुद्ध 'भौतिक वास्तविकता' के रूप में स्वीकार करने वाले कवियों में 'अचल' का नाम अग्रगण्य है । आधुनिक परिस्थितियों से उत्पन्न युवक युवती के 'क्षणिक मिलन' और उसके पश्चात् जीवन पथ पर उन्हें भीड़ने वाले विरह की गाथा ही इनकी कविता का भी मुख्य स्वर है । विरह-वेदना भी कुण्ठा जनित नराश्य से ही परिपूर्ण है ।

मृतो क्षण भर में ही सब कुछ गेप हुई थी एक कहानी,
 फिर भी भूल न पाता उसका जैसे कल की बात पुरानी ।
 याद बहुत आती है उसकी तो पर उम्मीदों से खाली,
 जब तामोश निशा के तार भरत एक उमस मतवाली ।
 एक गिथिल अचल-न उदासी यह जावन व्यापी अधियारा,
 तीखी तीखी प्यास न पूछो कसी बचनी का मारा ॥^४

एक गिथिल अचल-न 'उदासी', जीवन व्यापी अधियारा और 'तीखी तीखी

१ श्री शिवमगलसिंह 'सुमन'—विरहास बढ़ता ही गया, पृष्ठ २३

२ वही, पृष्ठ २३

३ वही, पृष्ठ ७४

४ अचल—अपराजित, पृष्ठ ११

छायावाद-परवर्ती हिन्दी-काव्य में विरह भावना

प्यास' यही तीन बातें कुष्ठा जनित विरह की विशेषताएँ हैं। मिलन की अनिल
हल भी विरह का मुख्य भ्रम मानी जाती थी किन्तु अब उसका वास्तविक जय पक्ष
पष्ट स्वीकृति मिलने लगी। रुढ़ियों के बचन में इस ताखी प्यास की तप्लि का अर्थका
रे रुढ़ है अतः वह मन में घुमड़कर एक अभूतपूर्व वदना का घुमटन का जन्म देती है—

जीवन की कितनी आकांक्षा साध ! न किन्तु कहा उड़ जाती
चढ़ती भादा की गंगा सी तपणा उर में ही रह जानी !
कवि का विरही न कवल अपनी स्थिति पर दुखी है वह प्रियतमा क विषय में
गोचरता है—

शोर कहा अब आ पहुँचा मैं उठ उठकर
गिरता मम मग पर
जब चुपचाप चली जाती होगी वह न जीवन
का ज्मर !^१

मनोविश्लेषण शास्त्र विना न मन के जिन चेतन शोर अचतन जगा क रहस्या
का उद्घाटन किया है उसका प्रभाव आधुनिक हिन्दी कविता पर भी नित होता है।
अचल की कविता में भी वह प्राप्त है।

अचेतन में दब हुए भाव अनुबूल वातावरण का उपलक्षण करत ही जाग उठन
हैं। चेतन-जगत में प्रवेश करके व, रुढ़ियाँ से धिरे मानस को विद्रोह करने के लिए एक
सान लगत हैं। अचल न इस भाव का इस तरह व्यक्त किया है—

हो उठा किन गध से व्याकुल अचेतन स्वप्न दा में
वावली सी घूम जाती गल व धनवद्ध पग में
मुक्त श्रावण जल निगाता था किता का गान उमन
शोर बतस बालिका-सी में सिहरती थी सजल तन
आज चिर विछुड़ी तरी पर दूर का हिलाल छाया—
कौन सीमाहीन तपणा क मुरा में तुम लजाते !

अपराजिता में, शरीर की भूल ही विरह व्यथा का मूल बन गई है। कवि यागी
शिव और अपर्णा पावती क प्रेम का नायक-नायिका के प्रतीक रूप में नवीन रूप में प्रस्तुत
करता है।

बस पढी सब भूल मुमचित मर चिर कुमार तन में,
आज अपर्णा ! जागी छाया बड़ी पिपासा ल मन

१ अचल—अपराजिता, पृष्ठ १२

२ बहा, पृष्ठ १२

३ बहा, पृष्ठ २६

स्वप्न सखी थी शल मल्लिक । आज सजल श्यामल कर दो
 मोली निविड इन्द्रधनुषी अजुलिया में मूर्च्छित भर लो ।^१
 शरीर की सूख का यही भाव एक अर्थ स्थान पर इस तरह व्यक्त हुआ है—
 गति की तोपहरी में साजन । दूँ बात बता अपने मन की
 या गान जगा जाती ही है वह बीती प्यास तपे तन की ।^२

विरह के इन गीतों की खुली शारीरिक अभिव्यक्ति, भारतीय-साहित्य के लिए
 कोई नया वस्तु नहीं है। ससृष्ट प्राकृत, अपभ्रंश और हिन्दी की भी लोक साहित्य
 परम्परा में उनका बीज मिलता है। प्राकृत, अपभ्रंश और प्रारम्भिक हिन्दी की गायकों में
 उनका पर्याप्त संकेत है। परन्तु फिर भी यह कहना पड़ेगा कि उन गायकों परम्पराओं में
 विरह व्यथा का मानसिक पक्ष भी उतना ही पतल या जितना शारीरिक पक्ष। किन्तु
 आधुनिक भौतिक जीवन दृष्टि से प्ररित कवि में कुण्ठा की भूमंडन कभी कभी इतनी बड़
 गई है कि उसमें मानसिक पक्ष की शाश्वतता को अर्थ समझ लिया है और वहाँ शारीरिक
 पक्ष ही मुख्य रूप से उभर आया है।

प्रियतम से वियुक्त होती हुई एक प्रियतमा या कवि इस तरह सीधता
 है—

पास बठी थी लिये चिर पूँय आधी सी पिपासा
 उड़ प्रखर परिमल रहा या कुतलो से लालसा सा
 मुक्त बंगा म गमा सा जल रही थी रूप खोले
 आज जीवन ज्वार में मितने निविड तूफान बोल
 आह ! बासती सजल मध्या स्रग् घुल घुल
 तुम्हारा प्राण ! कहना
 भूलना मुझको न प्रियतम ।^३

इस विगिष्ट स्थिति में कवि ने दो भावों को मुख्यता दी है—नायिका का यौवन
 और उसकी अदम्य तप्या। यमा' और बासती सजल मध्या' से नायिका के रूपज्वाल
 और यौवन तथा धांधी सी पिपासा और प्रखर परिमल सदृश लालसा से, यौवन की सूख
 अथवा तप्या की व्यजना कवि ने की है। प्रियतमा का यह कहना—'भूलना मुझको न
 प्रियतम, मुझ प्रतीक जीवन की थाती बन गया है—

भूलना मुझको न प्रियतम है यही जीवन मरण में
 आत रसरत गूजता गा प्रति तूपा के सवरण में

१ म २५—अवर्णादि, पृष्ठ ५३

२ वही, पृष्ठ २३

३ वही, पृष्ठ २६

में बहल करता चलू पथ धात होकर भी
तुम्हारी वृद्धि राती
भूलना मुझको न प्रियतम ।'

विरह के प्रति गहन भौतिक, स्थूल दृष्टि होने पर भी धचल के साथ म उम
ब्या क स्वाभाविक क्षणा और उसकी मधुर अनुभूतिया का अभाव नहीं है। मधि के
एराकीपत्र म, बलपना म प्रिया का सा गत्वार कस पहन सत्य सा प्रीत हाता है किन्तु
कुछ अण पचाव् नगय म परिवर्तित हा जाता है—इसका दिग्गम उ हात इम प्रकार

कुछ जान न पाता कसे तुम नजलीक तपित क रा जाती
कुछ रात गय, कुछ रात रहे जम महसा ना उचर जाती
कुछ सूता कुछ गीली पत्रक अवाप यही ना ररियानी
एन ही दुर प्रतीची म कुछ तिन तत भीगी लाती
पर दम कहा एरारी को यह एर अचो हा मुग विम्वय
नव ऋतु सी धावे घात ही तुम मरमा उन जाती मगय ।'

बलपना का यह माधात्कार किम तरह विरहा की रगा हो कम्पापूण रना रगा
है और वातावरण का जीवन विलास कम उसको मानिकता सी वृद्धि करता है इम भाव
को अचल इस तरह प्रस्तुत करत हैं—

सम्मुख सफालो क नीच फूला स भर जाती धरती
दासि विरणे चूम चली जाती कुछ हमली कुछ ग्राह भरती
चिर तपित कहीं ? कहता जते मन गन स्वम उमन पवन
चीत्कार कपाना का बन म मरत करता रजनी निजन ।'

मन भी उदग' दगा का वपन अचन एम करत ह—
महा नहीं मताता क्या अरुच उमगे घाइ ह

लाज नरी वह नूनी चिनवन किम घर म धकुताई ह
तपित त्रिगना मे जलत तिस कुम बठ रो उटी पुसा
सूनयन म आज बुलाया किसन मुक्त बचिन का प्यार ।

विचाग व्य ग म पाडिन हासर मरण की सी बग्ना अनुभव कन भाता अचल
सी बुय बनिताघ्रा म स्थून वस्तुवाणी मा मनीतनही हाता भाव की सूम मामिनाता
ग करने गगना है—

किन सतष्ण मधुकरियों ने यह आज विदाई दी विप की
 आज मरण मोड़ा म भी है मुखर वकुल वन की वशी ।^१
 विरह व्यथा क चिर-परिचित माधुय के विषय म अचल कहत हैं—
 तप्त नहीं, फिर भी मीठी है बड़ी 'यथा यह मतवाली ।'^२

करण विरह-व्यथा को मुखरित करती हुई 'अपराजिता' की एक कविता अपनी
 अनुभूति में अत्यन्त मार्मिक है । कविता में नायक को एक माँभी उसी तट पर ले जाता
 है जहाँ खड़ी हुई प्रियतमा के साथ अनेक क्षण बीत रहे । अनुकूल वातावरण में प्रियतमा
 की चिर परिचित स्मृति उभर आती है । नायक माँभी से कहता है—

दूर ल चल में न बाधूंगा तरी इस तट विजन में
 आज जीवन की सभी भूलें स्मरण कर प्राण रीत
 अध चिर अनुराग में सूने विकल दिन रात होने
 'य' सगीहीन अंतर फूलता निष्फल तूपा सा
 आज भी जलती चिता के धूप सी अ तवुराशा ।'^३

'आज भी प्राण, अपनी उस प्रियतमा के लिए राता है आशाओं दम तोड़ती है
 इसी से हृदय में चिता के धुएँ सा धुँआ धुमड़ता रहता है । सदा के लिए विछुने हुई
 प्रियतमा की स्मृति को हृदय में नेंजोकर तड़पन वाले अचल के विरही को व्यथा को
 'क्षण की भौतिक वासना नहीं कहा जा सकता । एक और कविता में भी जन्म-मरण की
 सीमाओं का अतिश्रमण करने वाले प्यार की अभिव्यक्ति हुई है—

जावन के अवरद्ध पटों का दीन हताश अतिथि भरमाया
 किस अतीत से फिर एकांत क्षणा में अकित होने आया
 उम रसवती मायाविन को प्यार किए विन रहान जाता
 मानो जन्म मरण के भी उस पार चनेगा उसना नाता ।^४

प्यार की छाज में अपनी प्रियतमा को वह 'रसरन्ती मायाविन' कहता है ।

अपनी युवक वासना को अचल ने कभी छिपाने का प्रयत्न नहीं किया है । उसका
 अस्तित्व होत हुए भी अचल के विरह की गम्भीरता इसमें है कि अपने आलम्बन के अभाव
 में कोई और आलम्बन उस अपधित नहीं है । जग उसे सूना लगता है ।

जीवन की दुरन्त तीखी दोपहरी में पल भर कल्याणी
 क्या पाकर चिर प्यास जुभाओं में सपना का चिर स पानी ।^५

सम्बन्ध विच्छेद से उत्पन्न टोम, विरही को जन्म जन्म के लिए किस तरह माल

१ अ. २३—अपराजिता, पृष्ठ २३

२ अ. १, पृष्ठ ६८

३ अ. १ पृष्ठ १५

४ अ. १, पृष्ठ १०

५ अ. १, पृष्ठ १६

जाती है इसका भाूमिक वणन 'वर्षा' के बादल' की 'बेटवारा' नामक कविता में हुआ है—

व्यक्त कहे शब्दों में तुमको, पास नहीं ऐसी भापा,
प्यार करू कितना भी तुमको पा न सकेगी अभिलाषा ।
जितना जान गया हूँ उससे और अधिक क्या जानूंगा ।
जब जब मानव जन्म मिलगा, मैं तुमको पहचानूंगा ।
कजली के मगौन तुम्हारे, जुगनू की ममता मरो ।
मन के सारे स्वप्न तुम्हारे, मन की परवर्गता मरो ।^१

प्रकृति के समस्त मादक उपकरण उसे अपनी व्यथा से सिक्त दिखाई पड़ते हैं—

पावस की श्यामल पलका में, तुमको पवन पुकार रहा
दोनो व्याकुल ग्राह बढ़ाकर हो जन्म माकार रहा ।
भीगे वनफूलों के चंचल, प्राण तुम्हें दूबा करत
नभ पर खींच हृदय की आशा, विरही मन वन्दन करते ।
झूरे का शृंगार तुम्हारा, सूती विरह निगा मेरी
काले-काल मध तुम्हारे, जलन भरी तपणा मरी ।^२

'भीष' नामक कविता में, अचल क विरह का भ्रान्तम्वन, सूफी साधका के भ्रान्तम्वन की सी विराटता प्राप्त करने लगता है—

जिसकी सुदरता से दीपित हो उठत रवि गति-तार
जिमकी मधुता से नत मधुदिन चलते विकल गध धारे
जिस स्वरूप रानी को छू कर हूक सुलगता मलय पवन
जिसकी एक सहज मुग्ध म तृष्णा से भर जाता जीवन
धरे खोल दो मरा आँखें जी भर उह निहार सकू ।^३

उपयुक्त पत्रिनया को पढ़कर कोई यह तो कह नहीं सकता कि अचल जत इस ससार के जीवन बन्धन का साक्षात्कार करने का प्रयत्न किया होगा, यही ममभ्रंश जा सकता है कि उक्त अपन भौतिक भ्रान्तम्वन का भी उतना महान् माना। इसी तरह अपनी भौतिक प्यास को भी उहाने महानता प्रदान की है—

प्यास न पूछो बिना पिय हा मतवान मिटना जान
इस अतृप्त से भरे विश्व में एक यही सुख पहिचानें ।^४

श्रुतु का वणन भी विरह-काव्य का एक आवश्यक भाग है। अचल ने उद्दीपन धीरे भ्रान्तम्वन दोनों रूप उपलब्ध हैं। पावस-समीर में 'वि' की कल्पना करता है—

१. अचल—पृष्ठ १७ का शब्द, पृष्ठ १७

२. ४१, पृष्ठ १७

३. ४१, मरणादिता, पृष्ठ ३०-३१

४. ४१, पृष्ठ ३१

यह सिधिल गंध गुजित कोकिल सी
 किस मधुपति से गई छली
 निम दरम परस से विवल तरल
 मधुनिभर सी मदमद चली
 पावस समीर वह चली अली।^१

प्रकृति के उद्दीपक रूप का वर्णन वह ऐसे करता है—

वसन्त

अनमन फागुन दिवस ये हा रहे है प्राण कस
 आज सध्या से प्रथम ही भर चला उर तालसा से
 आज घाँवी सा प्रखर आलेप पिक की काकली में
 एक धगूरी पिपासा मुस्त अगो की गली में
 आज तो मनुमास रे मन।^२

फागुन के दिवसा का विभाषण 'अनमना अत्यंत उपयुक्त है, वह 'वसन्त' की उद्भ्रान्त मानकता की युक्त व्यंजना करने में समर्थ है।

पावस

क्या न नमी से भारी हा उठती हागी मुस्कान तुम्हारी
 एक चमक सी घाती जो गहरी कर मानस की अधियारी।^३

उपयुक्त वर्णन में पावस के उल्लास नमापुष्प वातावरण, विजली की चमक और उसके आधिकार के अधिक गाढ़ा हान में नायिका की मानसिक स्थिति का साम्य प्रदत्त है। विरह का अनुभूति में अनुभूत माधुर्य और कसर का एकसाथ उदय तथा स्मृतियाँ की स्थिति में चमक सी टीस का अस्तित्व और उसके कारण उत्पन्न हुई मन की उदासी की यहाँ पूरा और समर्थ यजना हुई है।

दूसरे प्रतिरिक्त भी वह उहता है—

भाल चूमन हाग पुरवया के नाके आ जाल से
 सिंचित करत हागे तण्णा की बाँती सिहरन के जल में।

दूसरे में के विषय में विरही की यह कल्पनाएँ वास्तव में उग्र स्वयं के भावाँ की प्रतिध्वनि हाती है। 'यह उमक मन का प्रकल्पन है क्या जान दूसरा पक्ष उससे विषय में ऐसा साधता हागा भी या नहा?' यह विचार विरही के चेतन में उभरकर उमकी पादाँ तो तीव्रतर कर देगा है। अचल बहुत हैं—

प्रकल्पन करता मरा तन मन अपना ही चीत्कारो से पिर।^४

१ म. १३—भारतविना १५४ ७३

२ वही १३ ७३

३ वही, वसन्त के शाल १५४ ७३

इत्यलम मे 'असीम प्रणय की तप्या ऐसा ही गीत है। जीवन और जगत् में निराशा के क्षणों में विरवत एकाकी कवि, जब प्रकृति के सौ दय और सानिध्य का लाभ करता है तब—

लघुता की सगा का सागर उमड उमड आता है—
 तुम, केवल तुम—दिव्य दीप्ति स
 भर जाते हो गिरा सिरा म
 तुम ही तन म तुम ही मन म
 व्याप्त हुए ज्या दामिनि घन म,
 तुम, ज्या वमनी म जीवन रस—तुम,
 ज्या किरणों में आलोक^१

'म तम्हार ध्यान म हूँ भी रहस्यवादी गीत है। इस गीत में कवि ने अनुभूति और ज्ञान दोनों के माध्यम को स्वीकार करत हुए चिरप्रिय से साक्षात्कार का वचन दिया है।

अनुभूति

प्रिय मैं तुम्हारे ध्यान म हूँ !
 वह गया जग मुग्ध सरि सा मैं तुम्हारे ध्यान मे हूँ
 प्रिय म तुम्हारे ध्यान म हूँ !
 तुम विमुक्त हो, कि तु मने
 कब कहा उमुक्त रहो तुम ?
 साधना है सहस नयना—
 वस कहीं सम्मुख रहो नुम
 लीन हूँ म तत्त्वमय हूँ
 अचिर चिर निमाण मैं हूँ
 म तुम्हारे ध्यान म हूँ^२

ज्ञान—वह म युक्त आत्म चिर पुरुष का रूप होते हुए भी मृत्यु की सीमा म बध-
 कर स्वयं को विरग सा अनुभव करने लगता है। जब वह अपने धर्मरूप का साक्षात्कार
 करने के लिए प्रयत्नशील हाता है तब उस मृत्यु का भय नहीं रहता—

क्या दर्ह म मृत्यु में या
 क्षुद्रता के शाप में भी ?

१ अक्षय—इत्यलम (पद्यमावृत्ति), पृष्ठ २३

२ १६१, पृष्ठ १२१

क्या डरूँ मैं क्षीण-पुष्पा
अवनि के सताप से भी ?
व्यय जिसको मापने में
हैं विधाता की भुजाएँ—
वह पुरुष, मैं मर्त्य हूँ पर
अमरता के मान में हूँ ।

मैं तुम्हारे ध्यान में हूँ ।^१

चिर प्रकाश का साक्षात्कार करता हुआ साधक माया के अघकार की ओर ध्यान
नहीं देता—

रात आती है मुझे क्या
मैं नयन मूढ़े हुए हूँ,
आज अपना हृदय मैं मैं
अगुमाली को लिये हूँ ।^२

अनहद नाद के मैं स्वर्गीय संगीत की अनुभूति करता हुआ वह प्रिय से चिर मिलन
प्राप्त करता है—

भूक ससति आज है पर
गूजते हैं कान मरे—
बुझ गया आलोक जग में
घषक्त हैं प्राण मरे—
मीन या एकांत या
विच्छेद क्या मुझको सताए ?^३

'चरण पर धर चरण मैं कवि किसी अलौकिक प्रियतम का अनुसरण करता हुआ
निरन्तर प्राग वदता प्रतीत होता है। स्वयं को वह उस परमतत्त्व शतदल की एक पखुड़ी
मानता है—

चरण पर धर—
सिहरते - से चरण ।
पाद - मेरा—

किन्तु इससे क्या कि मेरे साथ चलता कौन है
जब कि यह है साथ मेरी मैं चालित देह के
ओर मैं—मेरा परमतम तत्व वलियत
साथ तेरे प्राण के—

जबकि आत्मा यह मनाहत ओर मदाव

१ अक्षय—रावणम्, पृष्ठ ११२

२ वही, पृष्ठ ११२

३ वही, पृष्ठ ११२

चरण तल की छाप के उस कनक सत दल
कमल से बिछुड़ी अकेली दोलपलुड़ी मचमकती
लोल जल की बूद-सा पर ज्याति गुम्फित
तदगत और अतिशय मौन है ।^१

अपायिक के प्रति प्रणयानुभूतियों के ये गीत अनेक के काव्य में यद्यपि उपलब्ध हैं किन्तु यत्र-तत्र वही अलौकिक सत्ता के लिए घोर आक्रोश भाव भी प्राप्त होता है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे कवि कंमन में आस्तिकता के प्रति तथा उसके विरुद्ध घोर सघष चल रहा हो—

खड़ा रहूँगा तेरे आग
क्षण भर में चुपका सा
लप कर मेरे कुसुम जगेगी
तेरे उर में आगा,
देव अऊँगा तेरे द्वार ।
किन्तु नहीं तेरे चरणों में दूंगा कुछ उपहार ।
तोड़ मरोड़ फूल अपने में
पथ में मिथराऊँगा,
परा से फिर कुचल उह में
पतल चला जाऊँगा
देव ! आऊँगा तेरे द्वार ।
किन्तु नहीं तेरे चरणों में दूंगा वह उपहार ।
क्या ? मने भी तेरे हाथों
सदा यही पाया है—
सत्ता मुझे जो प्रिय था उनको
तूने ठुकराया ह ।
दर आऊँगा तेरे द्वार
कि तू नहीं तर चरणों में दूंगा वह उपहार ।^१

इसीलिए अनेक के इन रहस्यवादी गीतों को निराशा व क्षणिक असुरसाद के फल-स्वरूप समझना चाहिए, साधना की चरम अनुभूति नहीं। इतना अस्पष्ट है कि अनुभूति के उन क्षणों में वह सत्य है और उन रूप में भारतीय काव्य में रहस्यवादी विरहानुभूति की पूर्व परम्परा को सुरगिता किय हुए हैं।

अनेक के काव्य में विरहानुभूति का दूसरा और वृहत् पक्ष लीकिय विरहानुभूति है। यहाँ ना पूवराग, मान प्रवास और वरुण विरह को त्रिविध स्थिति में और अनुभूति में

१ अक्षय—दरपलम्, पृष्ठ १०३

२ वही पृष्ठ १६

छायावाद परवर्ती हिन्दी-नाट्य में विरह भावना

म, करण विरह की नवान परिस्थिति सम्बन्ध विच्छेद का ही सबसे अधिक प्रथम है। 'पूवराग', मान और 'प्रवास' सम्बन्धी उक्तियाँ का संक्षिप्त अध्ययन करने परचात यहाँ हम करण विरह की विभिन्न स्थितियों का विस्तृत परिचय प्राप्त करते हैं—

पूवराग की अनिलापा से प्रेरित हानर कोई विरही कहता है—
हा, कि म सा जा सकू ।

हा कि उसके भाल पर अबतस-पत्त म पा सकू—
हा, कि उसके हृदय पर एनाधिकार जमा मकू ।

टूटकर उसके करो चिर ज्याति म सा जा सकू—
हा वि उसके चरण छनर आत्मभान भुला सकू ।

कवि की प्रिया जिसके हृदय पर वह 'एकाधिकार' जमाना चाहता है, लौकिक है अथवा अलौकिक, समझ में नहीं आता यहाँ यह भाव सवना उलभा हुआ और अस्पष्ट है। एक और यह प्रयत्नी बबल ज्याति रूप है (टूटकर उसके करो चिर ज्याति म सा जा सकू), अन्तिम पक्ति से उसके प्रति पूज्य भाव भी प्रकट होता है दूसरी ओर 'एकाधिकार' का भाव उपासक और उपास्य सम्बन्धक विरह है। कवि प्रेयसी के अस्तित्व पर अतीन्द्रियता का आवरण चढाए रखना चाहता है।

'प्रणयमान म मनुहार का एक चित्र छायावाद की प्रतीक गती का आश्रय लेकर अत्यन्त मुग्ध बन पडा है—

प्रिय तनिक गहर तो आघा तुम्ह साय-तारा निखलाऊ ।
रुष्ट प्रतीची के दीव' पर करण प्रणय का दीप जला है—

लिय अलक्षित अनुनय अजलि किस मनात आज चला है ?
प्रिय इधर ता दखा तुमस इसका उत्तर पाऊँ

तुम्ह साध्य-नारा दिखलाऊँ"
का विरही कहता है—

नायिका क अवाध रूप और उत्तम नायक की एगारी मनुहार क विषय में कवि अरुण सबल आकाश विन्दु उसम है तारा-नीपत अकता ।
अनभिप मरी नी मनुहार यन्पि तुम भूतिमनी अकहता ।
अपलक-नयन इसी विस्मय म कने तुम्ह मनाऊँ ।

विरही, प्रताची और तारक नाची क विषय में साचना है और अ नी एक ओर साध्य तारा रूप मनुहार जब समाप्त हो जाती है और तारा की मनुहारो से परिपूरित हो जाएगा, दूजरी उसका प्रायना नी आणित गीता क रूप में ।

नभ का रोप बुझाकर तत्क्षण डूब जाएगा सध्या तारा ।
जाते पर अपने प्रतिविम्बा से भर जाएगा नभ सारा ।

तुम मनुकूलो तां म तत्क्षण चरणा मे से शीश हटाऊँ—
सम्मुख होकर प्रगणित गीता की मालाएँ तुम्हें पिहाऊँ ।^१

मनुहार की यह शली हिन्दी के विरह-काव्य के लिए एकदम नई चीज है। मनुहार तथा चरणा पर शीश धरने की प्रक्रिया पुरानी होने पर भी नई-सी प्रतीत होती है। मध्या में उग तार का मनुहार के साथ साम्य, सु दर और सटीक रूपक में बाधा गया है। मध्याकाश की अरुणिमा नायिका के रोपपूण मुख की सुंदर व्यञ्जना कर रही है।

अपनी तडपन और पुकार को पावस की तडपन में देखता हुआ कोई विरही प्रणमिनी से रोप त्यागन की याचना करता है। इसका भी 'प्रणयमान' की मनुहार मानना चाहिए—

विद्युदगति में सुप्तविकलता खोई सी बहती है,
धन की तडपन में पुकार सी कुछ उलभी रहती है,
उस प्रवाह से एक कली ही चुन तो लो
दबी सुन तो लो, यह पावस रजनी क्या कहती है—
क्षण भर ध्वंकर सुन तो लो ।^१

कही 'बवार की बयार किसी मानिनी नायिका का मान भंग करती हुई दृष्टि-गोचर होती है। यह भी 'प्रणयमान' का चित्र है। नायक नायिका की मनुहार करते करते स्वयं रुठ गया है, तब—

इतराया यह मोर ज्यार का
बवार की बयार चली
रागि गगन पार हूँसे न हूँसे
शेफाली माँसू डार चली ।^१

'मान के कारण रुठा प्रिय (रागि) हसता नहीं, शेफाली को राना भा रहा है। नायक का मान और नायिका की निवृत्ता 'अयाचित में यहाँ अत्यंत सुंदरता में व्यंजित हुए हैं।

अपनी बाड़ी हारने का वचन नायिका इस प्रकार बरती है—

नभ में खहीन दीन
बगुला की डार चली
मन की सब भगवही रही
पर मैं बात हार चली ।^१

^१पृष्ठ—५२-५३, पृष्ठ ३५
५४, पृष्ठ ३७

ग्रन्थ सम्भाग दुखिता' नायिका की ईर्ष्या समुक्त स्वाकृति अज्ञेय न बती श्री
गिखा को प्रतीक रूप में रखकर प्रस्तुत की है—

मरे हृदय रक्त की लाली
इसके तन में छाई है
किन्तु मुझे तज दीपगिखा ने
पर से प्राति लगाई है।
इस पर मरन दन्व पतन
नहा चन में पाती हूँ—
अपना भी परकीय हुआ,
यह देख जली में जाती हूँ।'

बती और गिखा दोनों स्वार्थिग वाची गल् हैं। अतः रूपक की सटीकता में
अवरोध पड़ता है।

पानी बरसा नामक गीत में प्रकृति का उद्दीपक रूप प्रस्तुत करके कवि ने
प्रोपितपतिवा नायिका की अनीलापा' का वर्णन किया है—

मा पिया पानी बरसा !
मा पिया पानी बरसा !
घास हरी हुलसानी
मानिक के भूमर सी
भूमी मधु मासवी

खडखड कर उठे पात
फडक उठे गात।
दलने का घाँवें
बेरने का बाँह
पुरानी कहानी ?

घास का घास, बरस का बरस
मा पिया, पानी।
मरा हिंसा तरसा।
मा पिया, पानी बरसा।'

यह गीत प्रामाण्य गीतों के अत्यन्त समीप है। प्रकृति के उद्दीपक रूप की गृष्ट
शक्ति में कवि ने मिलन की मन्त्र चाह' को अभिव्यक्त किया है। मा पिया पानी में
शुष्का की प्राबलता अभिव्यक्त हो रही है।

वसंत के आगमन पर आम्रवौर के विकास से विरह भावना की उद्दीप्ति का वणन स्थान-स्थान पर कवियां ने किया है परन्तु अनेक की नायिका कहती है—

सखि आ गय नीम को वौर !

हुआ चित्रकर्मा वसंत अवनीतल पर सिरमौर।

आज नीम की बटुता स भी लगा टपकने मादक मधु रस !

क्या न फडक फिर उठे तडपती विह्वलता से मरी नस नस !

सखि आ गय नीम का वौर !^१

नीम के वौर का वणन करने में ध्वनि यह है कि नीम जसी कडवी वस्तु पर भी मधु का मादक प्रभाव है, तब अथ प्राणियों का तो कहना क्या ?

एक और विरहिणी मधु श्रुतु के मुदर वातावरण को कासती है—

मधु मजरि, अलि, पिक रव, सुमन, समीर—

नव वसंत, क्या जाने मेरी पीर !

प्रियतम क्या आत हैं मधु को फूल,

जब तरे बिन मरा जीवन धूल ?^२

प्रवास में कोई नायक प्रियतमा के चित्र का देखकर सात्त्विक्य का अनुभव करता है—

मुझ देखकर नयन तुम्हारे

मानो किंचित खिल जाते हैं,

मौन अनुग्रह स भर कर व

अधर तनिक स हिल जाते हैं

तुम हो बहुत दूर, मरा तन

अपन काम नगा रहता है—

फिर भी अन्यान्य में सहसा

मन दोना व मिन जात हैं !^३

विरह की उमात्पत्ता में विरही को जड़ और चेतन का बोध नहीं रहता। इस दशा में चित्र के दशन और आलिंगन का वणन सश्रुत काव्यों व नाटकों में मिलता है। यही उमात्पत्ता में आलिंगन के लिए प्रयत्नशील होकर भी विरही विवश नहीं हो सकता क्योंकि उसमें बुद्धि प्रधान है—

पूट जाते हैं हाथ चौखट पर

यद्यपि यह पागलपन है,

राम पुलक उठत है, यद्यपि

भूरी यह तन की सिहरन है

^१ अक्षय—विन्दा, पृष्ठ १११

^२ अक्षय पृष्ठ ११३

^३ अक्षय पृष्ठ ११५

'हाथा का चौसट पर धुट कर रह जाना' बिलकुल नवीन अनुभाव है जिसका उद्भव, भावना और विवरण के संपर्क में हुआ है।

करुण विरह के शास्त्रीय रूप तथा नवीन रूप 'सम्बन्ध विच्छेद', दोनों की अभिव्यक्ति अनेक की कविताओं में मिलती है। शास्त्रीय करुण विप्रलम्भ की एक नवीन परिस्थिति 'इत्यलम्' की 'द्वितीया' नामक कविता में प्राप्त होती है। चित्र एक ऐसे व्यक्ति का है जो द्वितीय विवाह हो जाने पर भी अपनी प्रथम मृत पत्नी को भूता नहीं सका है। द्वितीय पत्नी के प्रति मधुर सम्भाषण करता हुआ भी वह जानता है कि यह सम्भाषण उसके लिए नहीं है। वह पत्नी से कहना भी है—

मरे सारे शब्द प्यार के
किसी दूर विगता के बूटे

मैं तुमको सम्बाधन कर
मीठी मीठी बातें करता हूँ
किन्तु हृदय के भीतर किसकी
सीधी चोट सहा करता हूँ
बातें सच्ची हैं यद्यपि वे
नहीं तुम्हारी हाँ सकती हैं—
तुमसे नूठ कहूँ कस जब
उसके प्रति सच्चा रहना हूँ।^१

इससे हम 'उद्वेग' को दगा मानते हैं। 'उद्वेग दगा में विरही को प्रिय के ध्यान के प्रतिरिक्त कुछ धन्या नहीं लगता, मन बचने रहता है।

करुण विप्रलम्भ में यहाँ एक बात और ध्यान देने योग्य यह है कि नायक अपने प्रणय में दोष स्वीकार करते हुए द्वितीय पत्नी के प्रति मनुहार भी प्रस्तुत करता है—

नहीं भग खोकर लकड़ा पर
हृदय अपाहिज का धमता है
किन्तु उसी पर धीरे धार
पुनः धम उसका जमता है
उर उसको धारे है फिर भी
तरे लिये झुना जाता है—
उतना मानुर प्यार न हो पर
उतनी ही कोमल ममता है ।
शायद यह ना शान्ता
तब तुम

एक तुम्हो को दे दता हूँ
उससे बच जाता है जितना ।^१

मान और मनुहार के इस उपयुक्त भाव को भी 'प्रणयमान' की स्वतंत्र विरहानुभूति न मानकर, करुण विरह का सचारी भाव ही मानना चाहिए क्योंकि कवि का लक्ष्य नायक की विवशता का वर्णन करके मत प्रियतमा के प्रति उसकी अनन्त अनुरागमयी विरह-वेदना को व्यक्त करना ही है। शास्त्रीय करुण विप्रलम्भ का यम यह परिस्थिति पूर्ण रूप से मौलिक है।

करुण विरह का दूसरा रूप 'सम्बन्ध विच्छेद' की त्रिभिन्न परिस्थितियों और पलस्वरूप प्राप्त विरहानुभूतियाँ के विविध चित्रण में प्राप्त होता है। एक परिस्थिति तो वह है जब नायक-नायिका दोनों परस्पर अनुरक्त हैं किन्तु सामाजिक स्थिति के कारण दोनों का चिरमिलन सम्भव नहीं है। ऐसे समय में वियोग की घड़ी जब उपस्थित होती है तब भावी पीडा की आशंका से कोई नायक कह उठता है—

उखडा सा दिन, उजडा सा नभ
उचटे से हमन्ती बादल—
क्या इसी शून्य में खोएगा
अपने दुवार का अतिम पल ?^२

मन की अव्यवस्थित स्थिति के साथ, 'उखडा सा दिन, उजडा सा नभ' आदि प्राकृतिक परिस्थिति से साम्य यथा की व्यञ्जना को तीव्रतर कर रहा है। दूसरी परिस्थिति यह है जब एक पक्ष की उदासीनता के कारण मिलन सम्भव नहीं होता। परन्तु दूसरा पक्ष प्रतिदान के अभाव में भी अपने हृदय के प्रेम को जीवित रखन का प्रयत्न करता है, अपने हृदय के रक्त से वह अपनी पीडा को सींच सींच कर बनाया करता है। शास्त्रीय दृष्टि से यह मन के काल्पनिक आदर्श का एकपक्षीय प्रेम कहलाएगा और मनोविज्ञान की दृष्टि से आत्मपीडन में सुखानुभूति की स्थिति। प्रियतम की अवहलना को सहता हुआ कोई विरही कहता है—

सडना ही मेरा गोरव, मैं रण में विजयासक्त नहीं,
अपने को देन आया मैं वर का नूखा भक्त नहीं।
नहीं पसीजो, भवहेला मैं भी पनपेगा मरा ध्यार
क्या घुटघुट कर मरने वालों के उर होते आरक्त नहीं ?^३

प्रतिदान के अभाव में, विरही की निराशा कभी-कभी इतनी बढ़ जाती है कि यदि उसे कुछ समय पश्चात् प्रिय के प्रेम का आभास मिलता भी है तो भी वह उस स्वीकार नहीं करता—

१ अक्षय—११५५, पृष्ठ १३८

२ बही, चिन्ता, १३ १३

३ बही, पृष्ठ १३

क्षण नर पहले ही आ जात ।

प्राण सुधा को क्या तुम तन एसी बिखरी ही पात
नरी भरी आँखा क प्यास प्यास नून धामू—
नही तुम्हारे ही चरणों क्या तोट-लाट लुट जात ।

X

घाज लग रहा क्षण क्षण युग सा, पर यदि यदि कुछ होता
इस क्षण म ही नितन युग युग हाय क्षणिक हो जाते ॥^१

नरी नरी आँखो के प्यास प्यास नून धामू प्रयाग बहूत मुन्दर है, व्यया क साथ
प्रनप्ति का नाव उसम निहित है । विरह म एक क्षण का युग क समान बीतना और यदि
मिलन होता ता युग का भी क्षण के समान बीत जाना बहुत मुन्दर अभिव्यक्तियाँ हैं ।
विरह को अपने जीवन क चरम सत्य के रूप म स्वीकार करता हुआ यह विरही
बहता है कि समय बीत जान पर प्रतिदान का कोई लान नही—

दख है क्या कमी सिगिर क सूम् पत्त—
मयु म मयु क एक घूट क लिए तरसत ?

विपत्त प्रतीक्षा में ही उनक मुनग रह हात है प्राण
क्षण भर फिर एकाएकी हा जाता उनका जीवन प्राण ।
फिर यदि भोका धाया—क्या धाया ।

मलय समीरण लाया—क्या लाया ?^२

यह विरही प्रिय के प्रति उन्मत्तता का आवरण यद्यपि अपने व्यक्तित्व पर
भाच्छान्ति रखता है किन्तु उसके हृदय के गहनतम गह्वर म मिलन की प्राया बराबर
विद्यमान रहती है । वह स्वय स कहता है—

पूव प्रन भव मुला चुने हो,

प्रावपण को मुला चुके हो,
फिर क्या प्रणयी विजन स्थलों म

उसस मिलन को हो व्याकुल ?^३

विरह का दुख ही उसके लिए मुख बन जाता है ।

एक कीर युग्म को साथ साथ अप्रतिहत गति न उठता हुआ देखकर विरही को
अपनी साइ दूई प्रियतमा की याद आ जाती है । अस्तित्व के बाधन म बंधा हुआ हाकर
नी वह स्मृति के पय स अपनी प्रियतमा का सामीप्य अनुभव करता है—

देखकर व दो उठन कीर—
कर उठा अन्तस्तल विद्राह ।

X

X

१ महेव—विना, पृष्ठ ६२
२ बहा, पृष्ठ ६२
३ बहा, पृष्ठ ७१

मुझे बाँधे है यह अस्तित्व
 भूक तुम, किस पदों के पार
 विन्तु छाकर आस्था की चोट—
 खुल गए वदीगृह के द्वार !
 यही है मिलन भाग का संतु
 हृदय की यह स्मृति प्यार पुकार
 इसी में, रह कर भी विच्छिन्न
 हमारा है अनन्त अभिसार !^१

केकी के शब्द से विरही को अचानक अपनी प्रियतमा का उदास मुख याद आ जाता है। वह पुकार अधिकार की बंधती हुई विरही के व्रण को हरा करके लुप्त हो गई माना मौन से व्रण को ढक लना चाहती हो विन्तु स्निग्ध सस्पश युक्त तारे से मधुर स्मृति जो उदय हुई वह क्या एस ही विलीन हो जाती ?

एक क्षण ! केकी की पुकार से फटा हुआ
 रात का रहस्यगम स्पन्दित तिमिर फिर
 व्रण निज ढक कर फलवर मिल गया
 जैसे बाइ निराकार चेतना
 जीवन की अल्पतम
 अनुभव लहर की चाट सोख लेती है
 और मानो चोट खाए स्थल को
 दन का विशेष कोई स्निग्ध-स्पश सात्वना—
 रात के कुहास में से एक छाटा तारा फूट निकला !^१

यहाँ कवि की शली अत्यन्त व्यक्तिपरक और उलझी हुई हो गई है। स्थूल रूप में केकी के शब्द हृदय के व्रण और तारे में कोई सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता। किन्तु वस्तुतः केकी का रव उद्दीपन है और तार-भी स्मृति आशा का प्रतीक। इसीसे प्रियतमा के मुख की स्मृति का तारा कहा है।

हरी घास पर क्षण भर में विरह सम्बन्धी कुछ सक्षिप्त उक्तियाँ अत्यन्त मार्मिक बन गई हैं। एक स्थान पर कवि प्रिया की स्मृति के सम्मुख अपने अह की पराजय को स्वीकार करता है—

ओर बना—नगरे तट की घटियों का नाद।
 चोट खाकर जग उठा साया हुआ भवसाद।
 नहीं मुझका नहीं घपन दद का अभिमान—
 मानता हूँ मैं पराजय है तुम्हारी याद।^२

^१ अत्रय—शायतन पृष्ठ १०७

^२ वही, पृष्ठ १८१ १८२

१, ४४३ पं. पर पृष्ठ १७

हावावाद-परवर्ती हिन्दी-काव्य में विरह भावना

प्रभात फाल में पटी के अब स उद्दीपन का होना बिल्कुल नवीन लगना है।
प्रकृति व उपकरण विरहों के हनु उद्दीपक तो हाव ही हैं साथ ही वह उनमें अपनी
भावनाओं का रूप भी देखता है—

कली रो पलास की।
दिमटिमागी ज्याति मरी घास की
या कि जिला उच्चमुखी मरी दीपत प्यास की।
वासना तो मुत्तरा बदना भी प्रखरा
दिग त म।'

हनु का मादक प्रभाव प्रियतमा पर भी पडगा इसी घाधा ने विरही नद उठना

प्रान्तर में प्रान्त में
खिल उठ, झूठ जा, मस्त हा
कल जा बनान्त में—
याग मरे प्रणय का प्रगल्भ हो।'

स्मृति के प्रतिरिक्त स्वप्न घोर अनुदगाप्रा क भी मुत्तर वणन प्रणय क नाव्य
में उपलब्ध होत है। त दा म अनुभूति, स्वप्न तथा की अत्यन्त मुत्तर कविता है—
उस तम घिरत नम क पट पर
स्वप्न निरण रसाघा स
बठ करोछे स कुतला या
जाल मिलन के प्रिय। तर।३

स्वप्न में प्रिय क सम्भार क माय उसक तुल्य हो जान की भावना। विरही
व मन में रहती है। उसका वणन करोरक जोर का है—
वाता हृय बोकर दमो—
प्रतिभा छा मत जाए कही।
बिन्दु कही वह स्वप्न व निकल
हसन साहस दुभा नही।'

(पास न धानु इत्यता मत संगना ह्व जाय)

अधु का साँव त वह जाना विरह की बदना का बय करता है। भवभूति न
नू के महत्त्व का वणन उत्तर रामचरित मरिया है। प्रणय का विरहो ना कहना है—

नके व-सत्यम्, शूठ १८५
को, शूठ १८६
ती शूठ १८५
१, शूठ १८५

३-नारायण का व में बिना नबना भवभूति, दिव्य मध्याय

प्रियतम आज बहुत दिन बाद ।
 आँखा में आँसू बन चमकी तेरी कसक भरी सी याद

रो लेने दो मुझको जी भर
 यही आज सुख सबसे बढ़कर ।
 मुझे न रोको आज कि मुझ पर छाया है
 उत्पट उमाद ।^१

विरह का ताप और वेदना की आद्रता मिलकर विश्वास के बादल का सृजन करती हैं। विरही के अनन्य विश्वास के विषय में अज्ञेय की यह नई सूझ है—

रो उठेगी जागरूक जब वदना
 बहगी लूह विरह की उन्मना
 उमड़ क्या आया करेगा हृदय में
 सबदा विश्वास का वारिद घना ?^२

आगा और भाव राशि, दो ही निधियाँ विरही के पास ऐसी होती हैं जो उसकी मौन वेदना के स्पर्श को प्रिय तक पहुँचाती हैं। उनको अनेक धूप की दो बत्तियाँ कहते हैं, जा मौन होकर भी प्रिय का सस्पर्श करती हैं—

ये तुम्हारे नाम की दो बत्तियाँ हैं धूप की ।
 डारियाँ दो गंध की
 जो न बोलें
 किन्तु तुमको छू सकें
 जो
 विदेही स्निग्ध बाहा से तुम्हें
 चलपित कर रह जाएँ ।
 क्या है और मेरे पास ?
 हाँ आस
 मैं स्वयं तुम तक पहुँच सकता नहीं
 पर भाव के कितने न जाने सेतु
 अनुक्षण बाँधता हूँ ।^३

‘धूप की बत्ती’ का प्रतीक रूप में रखने में स्वयं को क्षार करके गंध के सजन की ध्वनि भी निकलती है ।

१ अक्षय—चिन्ता, पृष्ठ १६८

२ बही, बरी पाथ पर पण भर, पृष्ठ २३

३ बही, रत्नपत्र ११६ पृष्ठ ४८

‘किसन देखा चाँद’ नामक कविता में चांद, विरही क नम्र का धनभरा भ्रान्त बन जाता है। चंद्रमा के विषय में यह कवि की एकदम मौलिक कल्पना है—

किसन देखा चाँद

जिसने

उसे न चोड़ा एक प्रकली धाँस

अकेला एक धनभरा भ्रान्त

जीवन के इकलौत धन दुख का

बँधा चिरंतन आयासों से,

खुली भ्रान्त भ्रान्तियाँ

सीपी क भातर का धनगड मोती ?^१

धन्य व विरही में सम्बन्ध विच्छेद से उत्पन्न कुण्ठा के स्थान पर एक नई आशावांछिता मिलती है। ‘भरमानों की भूल हान पर भी वह अपने प्रणय का अनुभव की निधि क रूप में स्वीकार करता है। विरह के प्रति यह दृष्टिकोण सर्वथा बौद्धिक प्रभाव के कारण उत्पन्न नहीं जा सकता है। कोई नायक सम्बन्ध विच्छेद की घड़ी में प्रेयसी का मानवना दे रहा है—

कम वह भुला दना’ कस यह भी ‘मत जाना भूल

कस कटू फूल मत हाना कस कहें कि हाना भूल ।

सकित मन जा मैं कहता हूँ, सकित मन ही तुम मुन ला

नही तुम्हारी ही, यह है मर भी भरमाना की भूल ॥

तथा—

जीवन के गहरे अनुभव या नहीं कभी भूले जाते ।

और—

राह राह क राही सहमा जब पय पर मिल जाते हैं

चौराह पर भावर क्या व भ्रमण नहीं हो जाते हैं ?

प्रणयपाठ होता है क्या तब जब उस परिष्कृता क बाद

आशापूष हँसा हँसत वे तमसा में खो जाते हैं ?^२

सम्बन्ध विच्छेद के बाद पर्याप्त समय क बीत जान पर कोई नायक विरह वदना से तटपता हुआ, अपने अपराध की स्वीकृति करता है और श्रियतमा से क्षमा याचना भी।

आह—

भूल मुझ हूँ—मरा जागता है पान,

किन्तु यह जो गीठ है सानी हमारी,

१ भ्रमे द—शयनम्, पृष्ठ २१४

२ शरी, चिन्ता, पृष्ठ ८२-८३

खोल सकता हूँ अकेला
 कौन से अभिमान के बल पर ?
 —हा तुम्हारे चेतना तल पर
 तर आए अगर मेरा ध्यान
 और हा अम्लान
 (चेतना के सलिल से धुल कर)
 तो वही हा क्षमा की बला^१

विरह की इस व्याख्या को 'आत्म ग्लानि' की स्थिति कहा जा सकता है।

विरह का एक और नवीन रूप भा अनेक के काव्य में उपलब्ध होता है। वह है दो अपरिचित व्यक्तियों का एक रात का मिलन और चिर वियोग। आधुनिक परिस्थिति की अराजकता से उत्पन्न इस स्थिति को यद्यपि प्रेम नहीं कहा जा सकता, वह वासना की क्षणिक तृप्ति ही है। परन्तु उस वासना के पुर्ण भ अनेक ने कुछ उज्ज्वल कोमल भावा को जन्म दिया है। 'नाम तरा' नामक कविता में कवि का नायक अपनी एक रात की साथी प्रियतमा से कहता है—

पूछ लू मैं नाम तरा
 साच मत, 'यह प्रश्न क्या जब
 अलग ही है माग अपने ?'
 सच नहीं हाते इसी से
 भूलता है कौन सपन ?
 माह हमका है नहीं पर
 डार आरा का गुला है—
 क्या पता फिर सामाना हा
 जाय तरा और भरा !
 पूछ लू मैं नाम तरा^१

यदि वासना हा लक्ष्य था तो नाम पूछन की क्या आम्श्याता थी ? कि तु यहाँ 'मूय उतना हूँ वहाँ में था स प्ररिण अरता हान पर भी इतना नहीं है भाग्य मेरा' में व्यथा की ध्वनि है। नायक के यह गहन उतरक अतन्द्रित की स्पष्ट करने हैं।

और हागा मूय जिन
 विरमिलन ती घात पाता—
 पा चुका—अपना चुना है
 कौन पाता नामगाली ?

१ अनेक—दरौ पद्य पर अण अर पृष्ठ ३१

२ वही, १ पद्य, पृष्ठ ११०

घायलारा ररवर्ती हिन्दी-काव्य मे विरह-भावना

इस तद्वि का बाव तना
 देव उ नैन न नाग—
 नूड उउना नू नहो
 इउना नहो ह नाप नरा।
 पूड नू नै नाम ठरा।

बाव नउ न धानुनिक परिस्थिति पर घायल भाव है जहाँ प्रायिक कविनाम्ना
 क कारण पुरुष स्वयं का विवाह क उनरगापित्र न बान्ना नहो बावना और स्त्री पुन
 धान' न मगी गुरोर बदन का बाव्य हाता है।

इन तरह भजन क काव्य न विद्वन्मन क भनक रूप और विरह-वदना का भनक
 परिस्थितियों निवर्तनो है। काव्य क परम्परित रना नै जहाँ एक धार भनक नवान उद
 नावनाए प्राप्त है वहा दूसरो धार धानुनिक परिस्थिति स उत्पन्न नद विद्या का
 परिस्थितियों और व्यापारों का उक्त नो है।

गिरिजाकुमार नापुर

गिरिजाकुमार नापुर धनुज भन और विरह क कवि न हाकर जनकी व्याप क
 कवि है। उन्होंने विरह भावना स सुन्दर उक्त प्रायिक नरा लिखा किन्तु जा कुय भी
 लिखा है वह भवतना क वाव्य नहो।

इस विषय न भवन सुन्य बात जा इनकी कविता न प्राप्त हूर वह यह है कि इन
 कवि स विरहा का जीवन स भनननत एकाका भाँसू वहात नहो दता है। उस वषचा
 व्याप का भार दात नू नो जीवन-उपनो न जूनत पाया है। गिरिजाकुमार नापुर भन
 और विरह क लम्ब-नम्ब उच्छवासा और नधुर कल्पनामाक पीय कवन एक नत्य नामउ
 है और वह है 'गुरोर का नूड'। उनक धनुजार दनिक-जीवन की नटा न कान्यनिक
 धारों क यह खाट विनक' तत जात है। धून क धान की प्रौ' रामान नामक कविता
 में कवि वहा है—

पर मुन्दता है पता
 कि विछान की इन तीखी पीडाया न
 ऊँचे-ऊँचे भादगों की इन बाता न
 दिया हुआ है नद कोन-ना
 तम'न जीवन का निचाड जितका कहत हा
 वह सारा वगान्त पनाया
 काव्य कना की मधुर कपना
 कवल गारोरिह है
 धाव नहो नागा पुन मरा बाता का

नीरस सीख कहोगे जिनको
पर अपनी खिल्ली कल तुम्ही उडायागे
जब दैनिक जीवन की भट्टी में
गल जाएँगे खोटे सिक्के सारे मन के^१

कवि का तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि वियोग-व्यथा होती नहीं अथवा प्रिय का अभाव खटकता नहीं है किंतु वह यह अवश्य जानता है कि सघनमम जीवन में ऐसे राने घोने का कोई लाभ नहीं, वह व्यक्तित्व को अकमप्य बनाकर खोखला कर देता है

कवि के अनुसार सच्चा विरही वही है जो प्रिय की मुधि का मन भरकर सघनों से खेलता है। 'प्रौढ रामास म उहोने गाहस्थिव विरह का वणन किया है—

हमको भी है जान विरह का
और मिलन का
यह मत समझो वरफ बन गया हृदय हमारा

पर वह तुमसे बहुत भिन्न है
हम मन में मुधि रखकर भी
है कमगोल
हैं सघनों में डूब भूले

आज हमारा सम्मुख और समस्याएँ हैं
प्रश्न दूसरे
घर के, बाहर के, समाज के

अब हमका मुधि की पीडा है नहीं सताती
मेवल ध्यान यही आता है
आज न बच्च घर में हैं बूडा ररने की
खूब सफाई है आंगन, छत पर, कमरो में
पर कुछ खाली खाली सी है
आज नहीं अच्छी लगता यह
पहल इस बूडे-करवट में
मन में नुंभनाहट हाती थी
आज यही बच्चो का बूडा याद आ रहा।^२

^१ 'मुधि की पीडा का यह रूप विरह भावना का क्षेत्र में कवि की एकदम मौनिक

१ श्री विरभानुभार माधुर— रूप का धार (प्रथम मरकण), पृष्ठ २३

२ वही, पृष्ठ २४-२५

ध्यायावाद-नारवर्ती हिंदी-काव्य में विरह भावना

उद्भावना है। पत्नी की विरह-व्यथा का कवि कवलय ध्वनि रूप में इस प्रकार प्रस्तुत करता है—

यह एकांत मकान
और उजला बाहा सी यह दीवारें
नहीं समेट पा रही मुझको
और न तिन भर की धकान का मिटा रही हैं।^१

प्राधुनिक युग में पहले विरह भावना जीवन की बहुमुखी अभिव्यजना से दूर थी किन्तु अब वह उमक भयत सनाम भा गई है। पत्नी के वियाग के साथ बच्चा के घनाव की प्रत्यूति विरह-व्यथा का यथाय रूप प्रदान कर रही है। वास्तव्य का भाव सचारा बनकर विरहानुभूति का तीव्रतर कर रहा है। विरही को इस व्यथा में उगासी नहीं है क्योंकि वह कम व सौम्य में समुक्त है। कवि कहता है—

पर इनमें मन बोलन आज नहीं हाठा है
और न मूह पर छाह उदासी की घाती है

क्याकि रडो भोला मिटास की मुधियाँ हैं य
जोरन के मानूम मुग्धा की
तन के मन के स्वस्व बन की।^२

काल्पनिक प्रेम के प्रान्त का कवि न साटा सिनका' इसलिये कहा है क्या -
जीवन की वास्तविकता से वह स्थिर सत्य नहीं है—

और हृदय का कतियाँ तिलती दली
स्पया की पूना में
और प्यार के चाँद बुझ गए
जावन की सत्ता पर घाकर।^३

इस तरह हम देखते हैं कि प्राधुनिकनम यथायवाणी काव्य में विरह भावना के परम्परागत मूल्य बदल रहे हैं। वह जीवन के ठास समय में घपनी भाव सामग्री प्रहा करने का प्रयत्न कर रही है रसीस जावन के अधिक समीप है।

गाहस्थिक विरह का नवान उद्भावना के प्रतिरिक्त गिरिजाशुमार मायूर की कविता में प्रवास' के दा-दान और मुग्ध चित्र भी उल्लेख हैं। इनमें पहला चित्र 'न्यूवाक की घान' नामक कविता है। नायक की मुद्दर श्च में घटना पर-वार या घाता है—
तुनिया एर मिट गई टूट
नया तिनोना या मिटा का

१ आ. गि. रत्नमुर मायूर—पूरक धान ८४ २५
२ वही पृष्ठ २६
३ वही, पृष्ठ ८

आसू की सी बूद धन गया
भोली का ससार सलोनी

सभी पराया सभी अचीहा
रग 'हजारा पर मन मूना
नभ भवनो मे याद आ रहे
वे कच्चे घर द्वार सलोनी ।'

'कच्चे घर द्वारो म वसा हुआ माती का ससार प्रवास म केवल आँखा का अर्थ
कर रह गया है' प्रयोग बहुत सु दर है ।

अथवा चित्र श्रुतु के उद्दीपक प्रभाव के है । इनम पहला चित्र 'वसत' का और
रा 'पावस' का है । पहले म वसत से उद्दीप्त व्यथा को भेलती हुई कोई नायिका
ती है ।

आज फूल रही कचनार
श्याम नहीं महला मे
सखी सार्जे वसती सिंगार
सेंदुर भरे धलको म
चाद के सग हँस
बात कहते सके
वाह छोड़ें कसें

वोती जाम वसती (वहार
रेन बीत पलका में
आज फूल रही कचनार
श्याम नहीं महलों मे'

यह गीत लोवगीता के अन्तत समीप है और सदेश रासक' म दी गई विरह
यागों की परम्परा को सुरक्षित किम हुए हैं ।

दूसरे चित्र म पावस के सौन्दर्य म योर्दी नायक अपनी प्रियतमा का रूप देखता है ।
॥ 'स्मृति की है—

धन घुमडन भुज धधन क उमाद सी
बढ़ती आठी रात तुम्हारी याद सी

रात रनीली बूदा वाली

जसे देह रसात
 यहाँ महक उठती मेंहदी की
 वहाँ हाथ हैं लाल
 विद्युत् दीपन बगन की चमकार सी
 प्रथर छुवा की सिहरन मद फुहार सी
 धन मतवाल काजल वाले
 जस लम्ब बाल

संक्षेप में कहा जा सकता है कि गिरिजाकुमार मायूर के काव्य में प्राप्त विरह भावना के निरल चित्र भी अपनी अनुभूति में अनुपम हैं। उनमें परम्परागत विरह-व्यथा जितनी मार्मिक है उतनी ही उसकी नवीन उद्भावना भी। गार्हस्थ्यिक विरह की नवीन उद्भावना जीवन में अधिक समीप होने से अत्यन्त हृदयस्पर्शी हो गयी है। इतना आवश्यक है काल्पनिक आदर्श से प्रेरित एकान्तिक विरह व्यथा का केवल 'शारीरिक' भूख और 'छोटा सिक्का' कहकर उपशान्त नही किया जा सकता। वह केवल शरार की भूख न होकर 'मन की भूख' भी है यह दूसरी बात है कि सामाजिक परिस्थिति उसे प्रथम न देती हो परन्तु वह सदा प्रथम पर आश्रित नहीं है। भौतिकता की कसौटियाँ चाहे उसका भूखा प्रमाणित करती हो किन्तु इसमें मानव मन की वह चिरन्तन 'भूख' कल्पनिक नहीं हो जाती। व्यक्ति जीवन के साथ उस 'भूख' का समन्वय नरके स्वस्थ रूप में उल्लेख करके यह दूसरी बात है।

धमवीर भारती

धमवीर भारती के काव्य में मुख्य स्वर रुढ़िया के प्रति आक्रोश और प्रेमिया के सम्बन्ध विच्छेद की विरह व्यथा है। ठंडा लोहा सरह की प्रथम कविता 'ठंडा लोहा' समाज की जीव रुढ़िया का प्रतीक है। रुढ़ियों के रूपना में विषय में कवि कहता है कि वह मनुष्य के रक्त की उष्णता और जीवन की स्पृशा सबको ठंडा कर देता है।

ठंडा लोहा ! ठंडा लोहा !
 मरी दुखती हृदय पर ठंडा लोहा !

मेरी स्वप्न मरी पलकों पर
 मर गीत नरे हाथा पर
 मरी रूद मरी पात्मा पर
 स्वप्न नहीं अब
 गीत नहीं अब
 दद नहीं अब

एक पत ठडे लोहे की ।
 मैं जम कर लोहा बन जाऊ—
 हार मान लू—
 यही शत ठडे लोहे की ।^१

प्रेम और मर्यादा (सामाजिक बंधन) का मानव-जीवन म सदा से सघप चला आ रहा है । रूढ़ि के बंधन के कारण अपनी प्रियतमा का सोकर कोई प्रेमी कल्पना म उससे निवेदन करता है, चिन शामीण जीवन का है—

अगर डोला कभी इस राह से गुजरे कुचला
 यही तम्बवा तर एक
 एक पल विश्राम लेना
 मिलो जब गाव भर से बात कहना यात मुनना
 भूल कर मरा
 न हूगिज नाम लेना,
 अगर कोई सखी कुछ जिक्र मेरा छेड बढ
 हँसी मे टाल दना बात
 आभू धाम लेना

नीद म ला जाय जब
 खामीश डाली धाम की
 तडपती पगडण्डिया से पूछना मेरा पता—
 तुमका ब्रताएंगी बधा मरी
 व्यथा हर शाम की

राह म पाकड तल
 मुनसानि पाकर
 प्रीत ही सब कुछ नही है, लोक की मरजाद है सबसे बढी
 बालना हँसत तल स—
 'ले चलो ! जल्दी चलो ! पी ब नगर ।'^२

'सम्बन्ध विच्छेद' की करण व्यथा ही दुःखना कहा जा सकता है ।

'सम्बन्ध विच्छेद' व पत्रवात् यति भूत ने प्रियपात्र चाई पत्र प्रमी का लिपि देता है तो वह उस विरही का व्यथा का उद्घोषित हा करता है । एक एक पत्र के उत्तर म दिए

१ श्री धर्मेश्वर भारता—रूढ़ि लोग ५४ ६

२ बडी, ५५४ १८-१४

रहो तुम आँसू से मतुष्ट करो तुम पीढा पर विश्वास
तुम्हारी खातिर कह दूँ प्राण कि जीवन सूना हृदय उदास

'वातचीत का एक टुकड़ा नामक कविता में कवि ने 'सम्बन्ध विच्छेद' की पीड़ा बड़े कर्ण स्वरा में मुखरित किया है। विछोह' के बहुत दिन बाद दा प्रेमी मिले हैं। कि विरही अपनी विरह व्यथा को दिग्दर्शित करने के लिए दुःख या रोना नहीं रोता। त अपनी दिनचर्या के विषय में कुछ परिचय देता है—

देखा !

अब मैं पहले से कितना बेहतर हूँ—
तुम मेरी लापरवाही पर सिर धुन्ती थी
अब रहने सहने में कितनी स्वच्छ व्यवस्था है।
तरतीबदार दस घोर कितायें सजी हुई
यह एलबम है

न अब अपनी शाम बरबाद नहीं करता
कुछ काम-काज में हरदम खोया रहता हूँ'

जीवन को सुव्यवस्थित बनाने का यह प्रयत्न बसा ही है जैसे अधरे से डरा हुआ ई व्यक्ति अपने आप को नुलावा देता हुआ कहे कि वह डरा हुआ नहीं है, मन की अवस्थित दशा का वह अधिक सूचित करता है। उद्वेग' दशा की यह अभिव्यक्ति 'धुनिक हिन्दी काव्य की हानिधि है। उसे पहले उसका यह रूप प्राप्त नहीं होता।

प्रत्युत्तर में नायिका का केवल चुपचाप रोना उसके हृदय की मामिक व्यथा का 'दर अभिव्यजक है। उन्नयपक्षी व्यथा का परस्पर विनियम चाय के प्याले पर होने से प्रकी ध्वनि तीव्रतर हो जाती है—

पर यह क्या पागल !
मैं बेहतर हूँ सुख से हूँ,
पर इसमें एसी कौन बात है रोने की ?
जान दो—
ता यह चाय पिया !

धमधीर भारती के काव्य में 'सम्बन्ध विच्छेद' की विरह व्यथा का कारण प्रयासपात न हानि रूचियाँ हैं जो न प्रमिया जो एतता के मून में बचने नहा इती।

विरह की उपरुक्त अभिव्यजता के अतिरिक्त पूर्वराग और मान मनुहार : दो एक मुदर चित्र भी 'भारती के काव्य में उपलब्ध हैं।

'पूर्वराग में धमधीर भारती ने एसी नायिका का बणन किया है जो नगी क [नात पात पर नायक से मुग्धेड कर चुकी है। नायक की धार में प्रम की प्रयत्न अभि-

हाने के पश्चात् नायिका के मन की जो 'उद्विग्न स्थिति' होती है, उसका व्योरा

अब तो नींद निगोड़ी सपना सपना नटकी डोल
कभी कभी तो बड़े सज़ार कायल ऐसे बोले
ज्या सते में किसी विसला नागन न हूँ काटा
मेरे लगन लगन अबसर चौक चौक उठता सज़ाटा
पर फिर भी कुछ कभी न जाहिर करती हूँ इस डर से
कहाँ न कोई कह दूँ कुछ, यं श्चतु इतनी बन्गाम है !
यं कागुन की शाम है !

यं गीत लावणीता की शली का ही है। मनभूति में कुछ विशिष्टता न होने पर होयल के बोन का नागन की तरह काटना और नायिका के नाय सज़ाट के चौक के प्रयोग बहुत मुश्किल हैं। नायिका को लगन यह भय रहता है कि उसके हृदयगत कहीं अभिव्यक्त न हो जाएँ।

सज़ा उं सञ्जुची हुई किसी नबोण को मनाता हुआ कोई नायक कहता है—

पूरा के कधो पर मिर धर
सो रही तिततियाँ अन्तमा क
कुछ चुपके से समना जाना यह मस्त फिजाँ का मूनापन
अम्बर से बरस रहे रिमन्निम,
मनहरन निमनन घाँतगन, मीठी मनुहारें विष चुम्बन
यह नही जान की बेला प्रिय ।

दूख, सज़ा उं उत्पन्न प्रणयमान की मनुहार का है।

विरह-व्यथा में श्चतु के उद्दीपक प्रभाव का व्यक्त करता हुआ कोई विरही कहता

घोत्र में नीगो हुई अमराइया को चूमता
भूनता भाता मलय का एन भाका सद
बाँपती मन ती मूनीमामून कलियाँ बाँपती
और खुगुन उं विमर भाता हृदय का दद ।

मलय पवन से मन की मूना कलियाँ (स्मृति) के बाँप कर खून जाने पर दद का गुण के विरह जान की कल्पना बहुत सुन्दर है। मुक्त की चिन्तमयता का इस में पूर्ण निवाह हुआ है।

इस तरह धमवीर भारती के काव्य में विरह व्यथा के विविध रूप प्राप्त हैं। 'सम्बन्ध विच्छेद' की विरह-व्यथा के मूल कारण रुद्धिया के प्रति इस कवि में अनौग तो है किन्तु विद्रोह का भाग नहीं। धमवीर भारती का विरही ललिया के अरुण को चुपचाप स्वीकार करना हुआ, उससे नस्त, बिलबिलामा रोया करता है। किन्तु राने में वह समय की मर्यादा को भंग नहीं करता, आधुनिक नौद्विक्ता से उसे आश्वासन दिया करता है।

उपसंहार

ऐतिहासिक दृष्टि से आधुनिक काल का प्रारम्भ १=१७ ई० को माना जाता है। १=१७२० के नयेतर नूतन म भी मामन्ती व्यवस्था के जा जाण गीण बन्धुहर प्रच गण ५ उनका आ प्रय उकर न युग की शृंगारी कविता पत्नी रही इसी में नवीनता उसे स्पष्ट करके उज्ज्वल न बना सती। भारत-युगान शृंगारी कवि प्रपनी विषय सामग्री का आधार नगी कहा नकिन्नाब और अधिकांश रीतिसाहित्य से ग्रहण करता रहा। यदि वह चाहता ता युग बनाना के अनुकूल प्रपनी स्रष्टृति और इतिहास से शृंगार कस्यता का चयन करके उनकी नवीन गान्धा प्रस्तुत कर सजता था, वह उसकी सामाजिक परिस्थितियां के अधिक अनुरूप होता। अत जा बुद्ध उसने तिला वह परम्परा का पि-टनपा मान रह गया। कला पत्र म प्रवस्य बजरी विरहा प्रादि नवीन छांदा की उभावनाएँ हुई। भारत-युगान कविता के विषय म धीयुत विनयमाह्न समाजी का महत्व उपयुक्त ही है—

“हमारे माहित्य म यपों स भोग शृंगार’ जिसम नाम गारन की ही पद्यचर विवेचना है) की जा लहर रह रही थी, यह हरिश्चर गत म एकदम बसे हर सजती थी? ह्रीं उसम एर परिवतन प्रवस्य हुआ कि जहाँ रीतिगामीन कवि ‘गारी के शरीर तक ही प्रपना दृष्टि दोड़ा सये, वहाँ नार। तु गत के कविया ने उसके प्रतिरिक्त जसा कि उपर कहा गया है, प्रपन गारो मार भविष्ये वा प्रनास दिया।”

शृंगार फलत विरह भावना के क्षेत्र म भी भारत-युग म पूर प समक्ष बोद्ध भौतिक परिवतता उतन ग रहा हुआ। विरह म दूवसाय, मान और प्रपन परम्परागत रूप म हो मित्त हैं। रीतिगत म ‘मात्र’ वा यणत वि था किन्तु भारत युग म यूत विरत है। अधिकांश विरह-वणन प्र हैं जिनम प्राविर्गताया म अनुनास की विविध अनुभूतियां म घाति क प्रभाव मुख रूप से जात हैं। पञ्कतु बारहमासा इस काव्य म प्राण है। परम विरलम्भ अथर परम्परागत विद्वान्गतायी शिव क प्रति घातक म नरता क रूप म प्राण दृष्टि है।

श्री श्री उगमीनता से उलान गन्धर्व
गमन तथा गन्धर्व वि

मा म गूतया अथ

विरह भावना में कोई मूलगत अन्तर नहीं है। यह ठीक है कि शास्त्राय वरुण विप्रलम्भ के समान यहाँ प्रिय का स्थूल अनिष्ट नहीं होता किन्तु फिर भी प्रेमी के लिए उसे इस जीवन में प्राप्त करना दूभर हो जाता है। प्रिय का अस्तित्व उसके लिए हुआ न हुआ बराबर है। केवल काल्पनिक मूर्ति को हृदय में सँजोए ही वह जन्म जन्मांतर में भी उसमें मिलने की कामना करता है, आशा का परित्याग नहीं करता। करुण विप्रलम्भ में 'सम्बन्ध विच्छेद की जिस ममस्पर्शी विरहानुभूति का इस युग में सकल मान मिलता है वह आगे चलकर आधुनिक युग की विरह भावना की एक प्रमुख प्रवृत्ति बन गई। यह प्रवृत्ति आधुनिक युग से पहले के हिंदी काव्य में भी यद्यपि उपलब्ध है किन्तु वहाँ धार्मिकता का गहरा आवरण उस पर चढ़ा हुआ है। यह आवरण आधुनिक युग में हट गया।

बीसवीं शताब्दी का प्रारम्भ हाते हात परिस्थिति बदल चुकी थी। अंग्रेजी सत्ता के दृढ़ पाँव भारत भूमि पर जम चुके थे। राजनीतिक दासता के साथ सामाजिक और नैतिक पतन से देश की व्यवस्था विश्रुंखल हो गई थी। सगठन के अभाव में विदगी सत्ता के खुले विरोध की इनी गिनी आवाजों का कोई मूल्य न था। (खुले विद्रोह का अर्थ उस समय कारागार था) अतः इस समय के मनीषिया ने भारत के सांस्कृतिक जागरण का सन्देश देकर, भारतीयों की पराधीनता की चेडियों में कसी हुई सुप्त आत्मा को जगाकर स्वतंत्रता के मार्ग को प्रशस्त करने का कार्य किया।

सांस्कृतिक जागरण के लिए उन्होंने भारतीय इतिहास और पुराण के उन महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों के जीवन चरित्रों को चुना जिनका सम्बन्ध भारतीयता के गौरव से अविच्छिन्न था। द्विवेदी युग में सांस्कृतिक प्रवृत्ति-काव्यों की एक बाढ़ आई जिनकी परम्परा उन्हीं के उद्देश्यों का आदर्श बनाकर आज तक चली आ रही है। कहीं-कहीं इनमें पात्र काल्पनिक भी हैं।

प्रवृत्ति काव्यों में शृंगार तथा विरह भावना की अतिव्यक्ति और विकास की नयीन अवसर प्राप्त हुआ। विरह भावना किसी निजन एकांत में बँध विरही की करुण गायन नहीं प्रत्युत जीवन की स्पष्टता से गति प्राप्त करने लगी वह गति जो जीवन की अनन्त रूपिणी परिस्थितियों की अनुकूलता प्रतिकूलता में परिवर्तित होती रहती है। विरही का समय और स्वायत्त-बलिदान लाकादसों का सम्बल प्रदान करने लगा। सीता, यशोधरा, उर्मिला, माण्डवी, राधा, अर्द्धा और धर्ममालिनी (रावण की स्त्री) के चरित्रों की नई व्याख्याएँ प्रकाश में आईं। युब्जा जन्म उषोः ततः पात्र के हृदय की धडकन भी इस युग में कवि ने सुनी। पौराणिक कथाओं के पुनः कथन में विस्मृत चरित्र फिर से जीवित हो गए—राजकुमारी मित्रविंदा, नूरजहाँ, धनारवली आदि। पौराणिक कथाओं की पुनर्स्थापना में आधुनिक कवि ने बहुत-से ऐसे चरित्रों का उद्धार भी किया है जो मात्र कथन रूप में ही रह चुके हैं। एसा एव चरित्र तिथ्यरहितता का है। कुपाल की विमाता भरद्वाज व काव्यशास्त्रों की नैतिक दृष्टि में उसके हृदय का सहज उच्छ्वसन, उष्ण रक्त की

मात्र हय मन गई है। 'गुह्यन गत' की विपरीत स्थिति में वह 'रमानाम' है किन्तु मना विज्ञान में परिचित मात्र क रवि न उनक प्रेम और विरह की परिपक्वता का पापित करत हुए लक्ष्य की काटि में ला बटाया है। प्रतिगायन में कुपान की आंचें निकलवाना भी विरह भावना की परपाठन वृत्ति का महज परिणाम था।

विरह-वपन में क्यास्थान प्रनक मानिक विरहानुभूतिया का उदक हाता रहा। परम्परान्त बारहमासा, श्रुतुवान आदि भी विरह की उद्दीप्ति में स्थान पात रह किन्तु उनका वपन ववि का लक्ष्य न था। मपदूत का पद्धति क विरह-सन्दर्भ पवनभूति नयी-दूति और व द्रनूत प्राति क द्वारा नज जात रह। विरह का जीवन की महान प्ररणा यनित क रूप में स्वीकार किया गया।

एक द्वार गहा प्रवच काव्या में जीवन में सम्पूजन विरह भावना का विविध अन्वित्य का अवकाश था वहा दूनरी द्वार गीति-काव्य की व्यक्तिक अन्वित्य में प्रम और विरह में सम्पद भावा के व्यक्तिकरण की हय समझा जाता था। द्वितीय युग के कजर प्ररुग में रत्नवाल युयक व समुत्र हय क राग-द्वय की अन्वित्य क सब माग प्रनरद य। एक द्वार पश्चिम का मधूति और अग्रणी टा का सहगिधा का प्रचार रामानी स्वच्छ प्रेम क स्वप्न जगा रूय दूनरी द्वार मयपग का जजर सामन्ती रूपी अपने बचन गोल वरन का तयार न थी। निदान उस कान का भावुक विविध अन्वदन्ध में भावागत हा रहा था।

मन क भावा की स्पष्ट अन्वित्य में अवरोध हान न वनित्या का अन्तमुत्रा हो जाना स्वाभाविक ही था। एसी स्थिति में विरह क तत्व की प्रत्यन अनुभूति को भावुक न अन्तमुत्रा करत धारे धीरे मूम रूप में का प्रयत्न किया और प्रवृत्ति के प्रनाक रूपा में उसकी अन्वित्य का माध्यम दूड लिया। यही प्रवृत्ति द्यावावापी विरह भावना की मूल प्ररक प्रवृत्ति था। द्यावावाद क चारा महास्वप्ना—प्रना महात्रा पन्त निराला—म लौकिक विरह भावना की यह प्रवृत्ति अतिच्छिन्न भाव में मिलती है किन्तु मानसी वरण क कारण वह मूम और प्रताद्वय हात हात द्यावात्मक बन गई और कवि की व्यक्तिक व्यथा-सी न लाकर प्रवृत्तिक वण-का न व्याप्त व्यथा का अनास न लगी। प्रना म 'नरना' न लकर लहर तय उसका अविच्छिन्न घारा मिलती है। पन्त का समस्त काव्य उस प्रत प्रत है यद्यपि प्रारम्भिक कृतिषाम इस विषय में उनका स्वर अत्यन्त ग्रा है। महात्रो जा नु बुद्धिवापी ग की मोरा बहाराती हैं वह भी इस प्रनाय में मागुण व मरुभी नहा वही जा सनती, चाह वह अनाधिकता का किन्ना हा गहरा अवरण अपनी समस्त विरहानुभूतिया पर चदान का प्रयास क्या न करें। उनक प्रियतम क प्रति निश्चाकषात और अवहाना क उपात्मन मून प्ररक प्रति नहीं हो सपत। यह दूनरी बात है कि उन्हां अपनी व्यक्तिक व्यथा का सध्वता में अनाधिक प्रति उन्न-यनित करन का प्रयत्न किया है जवाकि निराशा क धार सपान न कीर्त ना समन्तार भावुक कर सकता है। एन निराला ही इन सबमें एना निराला है किन्ने हाड-भाउ क मनुष्य का

मुख दुखानुभूति, आशा निराशा, मिलन और विरह को प्रारम्भ से ही निर्व्याज रूप में व्यक्त किया और यथास्थान अपने समय की जीण रुढ़ियों का भी खला विराम किया।

छायावादी कवियों की विरहानुभूति का एक दूसरा मोड़ अपार्थिव के प्रति प्रणय अर्थात् रहस्यवादी विरहानुभूति के रूप में व्यक्त हुआ। वास्तव में काव्यशास्त्र की 'देव विषयादि रति' ही रहस्यवादी विरहानुभूति का मूल प्रेरक तत्त्व है। 'देवविषयादि रति' का काव्यशास्त्रियों ने 'रसाभास' माना है किन्तु अपार्थिव के गोचर रूपका आत्मबन्ध प्राप्त करती हुई माधुम भक्ति और अगोचर रूप का सम्बल ग्रहण करने वाली रहस्यानुभूति इसका प्रमाण है कि वह रस है, रसाभास नहीं। आधुनिक युग की रहस्यानुभूति भावना से अधिक विचार तथा अनुभूति से अधिक मनन और अध्ययन पर आश्रित है। इसी से आज के कवि को उसकी अभिव्यक्ति के लिए शब्दों के बृहद ताने बाने चुनन पड़े हैं। अपनी व्यक्तित्व पीड़ा को ग्रहण के प्रति उन्नयनित करने के लिए भावुक को बंद उपनिषदों की देववाणी का बंद आधार मिल गया (यथा प्रियया नार्याया सपरिच्छिन्तो न ब्राह्मे र्चिचन वेद नात्तरम् — बृहदारण्यक) और उसकी अज्ञान धारा यह निकली। मध्ययुगीन रहस्यवादी प्रणय साधना में कष्टसाध्य साधना का बन्ध आधार था, आधुनिक कवि ने केवल उसके मुखुर पक्ष को ग्रहण किया। फिर भी आधुनिक कवि की विरह भावना प्रभूत की कल्पना में अधिक देर तक नहीं टिक सकी और उसने उसके व्यक्त रूप जगत के प्रति अपने हृदय का सम्पूर्ण स्नेह अर्पित कर दिया। व्यक्तिक विरहानुभूति का लोककल्याण के रूप में यह उन्नयन अत्यन्त स्वस्थ परिणति है स्नेह के लिए भूला मानवता के लिए वह बरदान है।

सन् १९२५ ई० के आरम्भ में काव्य के क्षेत्र में छायावाद की रोमानी कल्पना और रूप विधान के विरुद्ध प्रतिक्रिया स्पष्ट होान लगी। छायावादी कवि भारतीय आध्यात्मिकता और ईश्वर कल्पना के मोह को नहीं त्याग सकें थे। इसी से भारतीय अद्वैतवाद उनकी पीड़ा का सम्बल पानर 'भावात्मक सववाद' के रूप में परिणत हुआ सका। किन्तु परधर्ती साहित्य पर भौतिकवादी दृष्टिकोण का प्रभाव गहरा होता गया। किसी काल्पनिक ईश्वर के प्रति आत्मनिश्चयन हास्यास्पद समझा जाने लगा।

ईश्वर की कल्पना से वंचित होकर भौतिकवादी कवि अधिक आत्मनिष्ठ भाव से ग्रह की रक्षा करने के लिए तत्पर हो गया। आधुनिक मनोविश्लेषण शास्त्र ने 'मन के जीवन' के सम्बन्ध में अनेक रहस्यपूर्ण तथ्या का उदघाटन किया। उसके प्रभाव से मन के साथ शरीर की भूत की स्पष्ट स्वीकृति सम्भव हो सकी। इस युग से पूर्व आत्मपीड़ा अथवा अशक्ति रति की अभिव्यक्ति को काव्य में देय समझा जाता था। डॉ० नयेंद्र के शब्दों में आध्यात्मिक धरातल से नीचे उतरकर भौतिक धरातल पर आत्मपरक कविता लिखना सांख्यीय दृष्टि में एक प्रकार से वंचित ही था।^१

व्यक्तिक पीड़ा और विरह भावना की स्पष्ट उदघाटन स्पष्ट अभिव्यक्ति की प्रवृत्ति

यद्यपि छायावाणी कविया के काव्य में ही यन्त्र-प्राप्त होने लाती है, किन्तु बच्चन के काव्य में प्रथम बार वह स्पष्ट धारा बनकर अभिव्यक्त हुई। बच्चन छायाविक कवि के 'मानस' के वह भावस्वप्न हैं जहाँ पुरातन क माह को त्याग कर भी वह नवीन का पूणत नही अपना पाया है। धम, सनाज और लडि का विराय करत हुए भी वह प्रम को केवल भौतिक सत्य क रूप में स्वीकार करन का साहम नही जुटा सका है। इसी से वह छायावादिया की भाति जा को ब्रह्म की सत्ता का विराट रूप मानकर उसमें आत्मा की पीडा का विलय न कर सका न प्रम ना गुड भुवा और काम क रूप में स्वीकार कर सका। मन की इसी घुमडन ने उनके काव्य में विरह भावना का एक क्षणिक रीतिवाद का रूप दिया जिसका बाह्य रान हात हुए ना अंतर व्यथा में ध्यान प्राप्त है।

परवर्ती कविया न मन की घुमडन क उन रूप का जा बच्चन की रचनाप्राप्त है धार विरोध किया। नरद्वगमा न कर प्रचल मुमन अथ रिजिाकुमार मायूर धमवीर भारती सब न मन क नाय गारार की नूय का विरह का सहज स्वाभाविक बूति क रूप में स्वीकार किया है। फलत ना प्रेम और विरह काव्य हिन्दी में हम युग में लिखा गया है वह पूर्ववर्ती विरह-काव्य क समुच्च अथनी स्वतंत्र सत्ता रचता है। परम्परित विरह व्यथा में मनिन-सा प्रनात हान लगती है। परम्परा प्रयी इस बात का कभी स्वीकार न कर सकेगा कि युवक-युवनी क क्षण नर क मिलन की चाह और वियाग बदना भी विरह की उज्ज्वल भावना हा सकती है। किन्तु यह ध्यान रचना हागा कि सामाजिक परिस्थितिजय विवगता हान पर भी इन काव्य की क्षणिक तपि और मिलन में सम्भूष जावन की कसक और वना व्याप्त है। प्रत इसको विरह की उज्ज्वल गायाप्राप्त स सम्भूषत नही कहा जा सकता। एनाथ कवि का छाठकर रस युग का भौतिक न भौतिकवादा कवि भी मिलन की चाह का कवन क्षणिक तपि नही बना सका है। कसक को हृदय में रखकर जीवन में सपप करन का आह इन नव कविया का है। प्रत उनको विरह भावना निरासा न उद्भूत हाकर भी एकात में बठकर रान वाली नहा है जोवन प्रवृत्ति की प्रेरक है। हृदय को अन्धनि का अग्नि में जीवन पपन्त मुलगान वाली छायाविक कवि की विरह-गाया का प्रस्तुत प्रवाच न करुण विप्रलम्भ का एव विनद ही मान लिया गया है। इसक प्रतिरिचत पूवरा प्रवास और मान क हृदयस्पर्शी वगन भी यथास्थान प्राप्त हात रहत हैं। शास्त्रीय करुण विप्रलम्भ की अथ नवीन मनोव्याप्तिक स्थितियाँ भी इस काव्य में प्राप्त हैं। अनुवणन भी पहले की पर ता मानवाय भावना के क्षणिक समीप है।

मध्य में कहा जा सकता है कि विरह भावना छायाविक हिन्दी काव्य का एक प्रमुख प्रवृत्ति है। आलोच्य काय से पूव वह ना ता राजा रानियों को रगन गाया थी या अथाधिक क प्रति प्राय निबन्ध। निजी एकाकी विरही क रान धान क रूप में भा वह कही-कही प्राप्त हो जाता है किन्तु जीवन की गति में सम्भूषत थी।

छायाविक युग की गति में विरह भावना गान क प्रवाह उ अविच्छिन्न रूप में

गुथ गई। साधारण जन को काव्य में उसकी आत्माभिन्न्यवित का अन्वेषण तो मिला ही, साथ में उसे जीवन और सस्कृति की महान् प्रेरणा सवित के रूप में स्वीकार किया गया। भौतिकता के स्फूर्त वस्तुवादी युग में विरह भावना हृदय के मूल्यों को सुरक्षित रख सकी, यह भी सौभाग्य की ही बात है। भविष्य का कवि उन मूल्यों को कहाँ तक प्रथम देगा, यह अज्ञात के गम में है।

ग्रन्थानुक्रमणिका

संस्कृत पुस्तकें

ऋग्वेद
कनोपनिषद्
मनुस्मृति
हाल सतसद्

अथर्ववेद
मुडकापनिषद्
गतपथ ब्राह्मण

इसोपनिषद्
बृहदारण्यक
सूक्ति मुक्तावली

कठोपनिषद्
महाभारत
सुभाषितावली

अभिनवगुप्त

अभिनव भारती
ध्वजालाचन
वाव्यकल्पलतावलि
अमरक गतक
ध्वन्याशक
काव्यालकार-भार-संग्रह
वशक्ति जीवित
रस रहस्य
कुमारसम्भव
रघुवध

अमरचन्द्र
अमरक
आनन्दवधन
उदभट्ट
कुन्तक
कुलपति
कालिदास

प्राकुलानम्
विश्वनाथगीतम्
नथदूत
रघिन जागन
रत्नागाधर (निषय सागर प्रउ बम्बई)
चन्द्रालोक (जयकिशन दास हरिदास गुप्ता)
गान गोविन्द
वाव्यालय
कुन्दमाला
नाथगोस्व (आशी सन्तुत्र सादीब)
रत्नाग गतक

गदाधर भट्ट
जाप्राय पंडितराज
जयदेव
जयदेव
दण्डी
विष्णुनाथ
भरत
भरत हरि

भामह
भानुदत्त
भोजराज

मम्मट
महिमभट्ट
राजशेखर
रुद्रट
रूप गोस्वामी
वाग्भट्ट प्रथम
वाग्भट्ट द्वितीय
वामन
विद्याधर
विद्यानाथ
विश्वनाथ
शारदातनय
हेमचन्द्र
क्षेमेन्द्र

हिंदी पुस्तकें

अचल

अरुंदुलरहमान
अनैय

उमाशान्त गोयल

उमाशान्त गुप्त
ए. हेमालाल
ए. हेमनाथ सहूल
त्रिजोरीलाल गुप्त

वाव्यालकार
रस मजरी
शृंगार प्रकाश
सरस्वती कठाभरण
वाचप्रकाश
व्यक्ति विवेक
साहित्य मीमांसा
काव्यालकार
उज्ज्वल नीलमणि
वाग्भट्टलकार
वाग्भट्टशासन
वाव्यालकार सूत्र वृत्ति
एकावली (कम्यई संस्कृत सीरीज)
प्रतापरुद्र-यशोभूषण
साहित्यदपण
भावप्रकाश
काव्यानुशासन
श्रीचिंत्य विचार वर्धा

अपरराजिता

वर्षांत के बादल

संन्य रासव

इत्यलम

चिन्ता

हरी घात पर क्षण भर

इन्द्रधनु रौंद हुए य

मदिलीगरण गुप्त (कवि शौर भारतीय
संस्कृति के धारयाता)

सनापति वृत्त कवित्त रत्नाकर

साहित्य के नवम् संग का वाव्यालकार

साहित्य के नवम् संग का वाव्यालकार

नारायण शौर अथ सहयोगी कवि

प्रसाद का विवासात्मक प्रव्ययन

कथव

क० ए० गुप्ता
"पुस्तुमार सिंहा
गात्रसाद पात्र्य

गिरिजाकुमार मायुर
गिरिजादत्त मुक्ल
गिरिजादत्त मुक्ल 'गिरीश'
गुरु भक्तसिंह
गुलाब राय

गानुलनाय
जगन्नाय रत्नाकर'

जयशकर प्रसाद

गुनजीगस

गारकाप्रसाद मिथ्र
धमवीर नारवो
धारद वना
धर्म
नरुद्धग विवारा

नगद

रसिक प्रिया
प्रसाद विकासात्मक अध्ययन
गुप्तजी की यशोधरा
महाप्राण निराला
महादेवी का विवचनात्मक अध्ययन
कामायनी एक परिचय
धूप के धान
गुप्तजी की काव्यधारा
महाकवि 'हरिप्रोथ'
नूरजहाँ
सिद्धान्त घोर अध्ययन
प्रसादजी की कला
चत चन्द्रिका
जिहारी 'रत्नाकर'
उद्धव नवक
ग्रामू
भरना
लहर
कानन कुसुम
कामायनी
काव्यकला और अय निवध
रामचरितमानस
बरव रामायण
कवितावली
दोहावली
गीतावली
कृष्णायन
ठडा लोहा
गूरसागर मार
गुप्तजी क काव्य की काव्य धारा
मनोमजरी (नखगिख व गृगार की
कलिकाएँ) ६ भाग
साधुनिज सिंजी कविता की प्रवृत्तियाँ
रीतिनाव्य का भूमिना भाग १ २

नगेन्द्र

विचार और विश्लेषण
विचार और अनुभूति
रीति शृंगारनददास
नददुलारे बाजपेयी
निरालासुमित्रानन्दन पंत
साकेत एक अध्ययन
हिंदी ध्वन्यालोक
हविमणी मंगल
जयशंकर प्रसाद
पत और पल्लव
अनामिका
परिमल
गीतिका

नरेन्द्र शर्मा

आराधना
तुलसीदास
मिट्टी और फूल
प्रवासी के गीत
पलाशवन
हसमाला
अग्निदास्य

नागरी प्रचारिणी सभा

डोला मारूरा दूहा
भारते दु ग यावली

पत

वीणा
ग्रथि
पल्लव
गुजन
युगवाणी
युगांत
आध्या
स्वर्णकिरण
स्वर्णभूति
उत्तरा

परमानन्द मुहाने द्वारा संग्रहित

वाणी
पद्म हजारा

ग्रंथानुक्रमणिका

परपुराण चतुर्वेदी

पुन्यात्तम गमा
बलदेवप्रसाद मिश्र
भगवानन्तोन
भावतीचरण वर्मा
नागारव दीक्षित
महादबी वर्मा

मधिलीचरण गुप्त

रामचन्द्र गुवल

रामनाथ 'मुन्नन'
रामनरय त्रिपाठी

रामानन्द निवारी शास्त्री
रामकृष्ण बनीपुरी
रामत्रिनाथ गर्मा
रामलालविह
रामरत्न नन्नागर
रामचरन्त मडलवाल
राहुन जट्टपावन
रामजीगार वाण्य

मध्यकालीन साहित्यिक प्रवृत्तियाँ
मध्यकालीन प्रेम प्रवाह
हिन्दी रस गाथाधर
नाकेन सत
विहारी बोधिनी
मधुनय
महादबी काव्य परिशीलन
यामा
दापगिता
साकेत
यागाधरा
जयदय बघ
शकुन्तला
द्रापर
जयभारत
विष्णुप्रिया
हिटम्बा
रस मीमासा
हिन्दी साहित्य का इतिहास
जायसी ग्रंथावली
तुलसीदास
तुलसी ग्रंथावली
कवि प्रनाथ की काव्य-साधना
स्वप्न
पवित्र
पावनी
त्रिद्यापति की पञ्चावली
निराला
बानासनी अनुशीलन
प्रधान साहित्य और समीक्षा
भायुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और शौच
रस गाथाना
भायुनिक हिन्दी साहित्य (१८५०-१८००)

लक्ष्मीनारायण टंडन

विनयमोहन शर्मा
विपिनविहारी त्रिवेदी
विशम्भर 'मानव'

विशम्भरनाथ
श्यामसुंदर दास
शम्भूनाथ पाण्डेय
शम्भूप्रसाद बहुगुणा

शचीरानी गुट्टू
शिवकुमार मिश्र
शिवमगलसिंह 'सुमन'

शिवचंद्र नागर
स्नातक सहल
सावित्री सिंहा
सूयचरण पारीक व रामसिंह

एस० एल० सिंहा
सत्यजीवन वर्मा
साहनसाल द्विवेदी

श्री कृष्णलाल
हरचालुमिह
हरिमोक्ष (प्रयोष्यासिंह उपाध्याय)

हरिहर शर्मा
हरिहरनाथ टंडन
हरिहरनाथ बच्चन

महादेवी वर्मा और नीरजा
कवि प्रसाद और श्रीमू
कवि प्रसाद 'श्रीमू' तथा अन्य कृतियाँ
चंद्र वरदाई और उनका काव्य
महादेवी की रहस्य साधना
सुमित्रानंदन पंत
पतंजी का नूतन काव्य व दशन
कबीर श्यावली
आधुनिक हिंदी काव्य में निराशावाद
घनानंद

विरहिया की प्रेम भावना
महादेवी वर्मा काव्य-कला
कामायनी और प्रसाद की कविता गंगा
पर छाँसें नहीं भरी
विश्वास बढ़ता ही गया
महादेवी की काव्य साधना
महादेवी विचार और व्यक्तित्व
कामायनी दशन
मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ
बेनी त्रिस्त रुक्मिणी री राठीर राज
प्रियी राज री कही

महादेवी वर्मा
वीरलदेव रासो
धुणाल
उत्तरी
आधुनिक हिंदी साहित्य का विकास
रावण महाकाव्य
प्रिय प्रवास
वही बनवास
रस कलम
रस रत्नार
पद्याती समय
प्राकृत मत्तर
मिलन यामिनी

य वानुकर्मणिका

हरिवंशराय 'वचन'

४६६

इस कोछड
हफीजुल्लाह खान
हजारीप्रसाद द्विवेदी व नामवरसिंह
प्रप्रेजी पुस्तकें

हलाहल
सतरगिणी
एकांत संगीत
निशा निमंत्रण
मधुक्ला
मधुशाला
मधुवाला
खय्याम की मधुशाला
प्रारम्भिक रचनाएँ भाग १, २
घपभ्रस काय
हजारा भाग १, २
सक्षिप्त पृथ्वीराज रासो

- 1 A H Burlton allen
 - 2 Adler
 - 3 Allen S
 - 4 Altekarr
 - 5 Butcher
 - 6 Balwin
 - 7 Claude A Claremont
 - 8 D N Bose and Hiralal
 - 9 Freud s
 - 10 Helene Deutsch M D
 - 11 Havelock Ellis
 - 12 Jung
 - 13 J C Hugel
 - 14 Keith
 - 15 Martin Baber
 - 16 Mac Dougall
 - 17 P Phillippe
- A Study in the Psychology of Human Actions' —
'Individual Psychology
Pleasure and Instincts'
Position of Women in Hindu Society' —
Poetry & Fine Arts' (Tragedy Aristotle)
Dictionary of Philosophy & Psychology'
Innumerable Instincts of Man'
Tantras—their philosophy and occult
secrets'
Three Essays on Theory of Sexuality' —
translated by James Strachy
Psychology of Women' —
Psychology of Sex' —
Personality and Problems of Adjustment' —
'Men and their Motives' —
'Religion and Philosophy of Vedas'
I and Thou'
Outlines of Psychology'
De La Santa Trinite in Etudes Carneli-
taines, April, 1936'
(La Recherche de la Personce)

- | | | |
|----|--|--|
| 18 | Robert Barton | Edited by Rev. A. R. Shillot 'Anatomy of Melancholy' |
| 19 | Sushil Kumar De | 'Treatment of Love' (1929) |
| 20 | Van de Velder | 'Ideal Marriage' |
| 21 | Kinsay | 'Kinsay Report' |
| 22 | V. Raghvan | 'Number of Rasas' |
| 23 | Weinenger | 'Sex and Character' ✓ |
| 24 | J. W. Davis and
J. Estlin Carpenter | 'Deegh nikaya' |



गुडि से साच मम भकर हान वाला प्रवास हमचंद्र के कायवश से कुछ भिन्न नहीं है। मभ्रम के तात्पर्य को गारदातनय ने अवश्य स्पष्ट किया है—सहसा उत्पन्न हान वाले दबी अथवा मानुषी विप्लव का मभ्रम कहते हैं।^१

साहित्यरूपण में प्रवास का लक्षण इस प्रकार दिया गया है—‘कायवश, साप वग अथवा मभ्रम (भव) वश नायक के अत्यंत म चले जाने को प्रवास कहते हैं। उसमें नायिका के गारार और प्रसन्नता में मलीनता मिर में एक बेणी एवं निश्वास, उच्छवास, राग और भूमिपतन आदि का वर्णन किया जाता है। अग्रा में असौख्य सताप, पाइता और दुःखता, अरुचि और अधारता आदि दमक लक्षण हैं।^२

लक्षण में कहा जा सकता है कि प्रवास वह विप्रलम्भ शृंगार है जिसमें कायवश, सापवग अथवा मभ्रम नायक के अत्यंत म चले जाने से नायिका अत्यंत दुखी होती है। मनीन प्रसन्न धारण करके एक बेणी रसती है नायक के वियोग में अत्यंत अधीर रहती है, अत्यंत दुःख हा जाती है निभी वस्तु से उस रचि नहीं रहती और सताप सहती हूँ वह (वभावभाव) मूर्च्छित हो जाती है।

४ करण विप्रलम्भ

करण विप्रलम्भ का सर्वप्रथम उल्लेख हम भरत मुनि के नाट्यशास्त्र में ही मिल जाता है। ‘रस विकल्प नामन अथाय म शृंगार रस का विवेचन करते हुए भरत ने शृंगार रस के एक रूप करण विप्रलम्भ और करण रस का अंतर स्पष्ट किया है। भरत मुनि का मत है कि यद्यपि करण विप्रलम्भ और करण एवं करणरस एक ही जसी परिस्थितियाँ में उत्पन्न होते हैं (अर्थात् अजन के नाश से) किंतु दोनों की प्रकृति में मोलिन अंतर है। करण रस में पूर्ण निरपेक्ष भाव अर्थात् नराश्य की अवस्था रहती है और करण विप्रलम्भ में (रति स्नायी हान में) सापेक्ष भाव रहता है अर्थात् अभिलाषा परापर बना रहता है।^३

१ म जन महमात्पन्ना दिव्य मानुष विप्लव ।

—भ वरशारा, शारदाताय, चतुर्थाधिकार, पृष्ठ ८३, गानकवाङ्मय आरिष्टल साराङ्ग ।

२ प्रसन्नानि न शक्यं कायादाशान्च सम्भ्रमात् ।

प्रसन्नानि न शक्यं कायादाशान्च सम्भ्रमात् ॥ २०४ ॥

निरसामादाशान्च सम्भ्रमात् ।

अनेपमौष्ठव ताप पाण्डुता शृंगारि ॥ २०५ ॥

—साहित्यरूपण, विरहनाय, नाराय परिच्छेद ।

३ कर्णरसु शास्त्रात् विनिर्दिष्टान्तरात्प्रयोगविभवनाशयवत्तन्मुमुक्षु निरपेक्ष भाव । अधीमुक्त विप्रलम्भ म वरशारा विप्रलम्भनाय । प्रसन्न कर्म अथरेच विप्रलम्भ इति ।

—नाट्यशास्त्र प्रथम पाठ, पृष्ठ ५२३ काशा मरुत साराङ्ग ।

नाटयशास्त्र में कवित इस तथ्य की झार रुद्रट न सम्भवत ध्यान नही दिया है। रुद्रट द्वारा दी गई कर्ण विप्रलम्भ की परिभाषा करुण रस की परिभाषा ही हा गई ह। करुण विप्रलम्भ की परिभाषा रुद्रट इस प्रकार करते हैं—

“नायक अथवा नायिका में से किसी की मृत्यु हो जाए अथवा कोई मृतकल्प हो ता उससे उत्पन्न प्रलाप को कर्ण कहते हैं। (नायक और नायिका में इन दोनों अथवा अथवा में हान से) करुण विप्रलम्भ चार प्रकार है।”^१

कर्ण विप्रलम्भ का लक्षण सरस्वती कण्ठाभरण में देते हुए भाज कहते हैं—“प्रिय युवक के दूसरे लोक में चले जान पर जब दीना युवती निरन्तर दुखी हाती है वहा करुण विप्रलम्भ हाता है।”^२

भोज का यह लक्षण भी करुण रस में कुछ भिन्न नहा है। दीना युवती के निरन्तर दुखी हान का स्थायी भाव गानक हा माना जाएगा। गारदातनय न भावप्रकाश में वहा है—

‘कुछ लोगो का मत है कि वियाग का एक भेद मरण है परन्तु यह ठीक नहा, क्वाकि मर जान पर जो प्रलाप हाता है वह गानक ही है।’^३

भरत के परवर्ती इन सभी आचार्यों की दृष्टि करुण विप्रलम्भ के विषय में स्पष्ट नही थी। सभी करुण विप्रलम्भ को करुण रस से मिलाकर देख रहे हैं। उनके मम्मय कर्ण रस और करुण विप्रलम्भ का अन्तर स्पष्ट नही था। यदि प्रिय युवक के परलाप चले जाने पर दीना युवती का निरन्तर विलाप करुण विप्रलम्भ है तो कर्ण रस कहाँ हागा ? यह प्रश्न इन आचार्यों में पूछा जाता तो सम्भवत यह लाग परेगानी में पत्र जाते अथवा उमका उत्तर यह देते कि पति-पत्नी सम्बन्ध में मृत्यु के बाद होने वाला गोक करुण विप्रलम्भ है और माता-पुत्र सम्बन्ध में होने वाला गानक करुण रस। किन्तु क्या उनका यह उत्तर ठीक हाता ? निश्चय रूप से नही क्वाकि गानक के स्थायी भाव हा जाने पर करुण रस हागा करुण विप्रलम्भ नहीं। विप्रलम्भ वही हागा जहा स्थायी भाव रति विद्यमान हागा। रति प्रवृत्तिमूलक है और गानक निवृत्तमूलक।

१ करुण से विप्रलम्भो यत्रान्यत्रो म्रियेत नायकयो ।

यन्नि वा मृतकल्प स्यात्तत्रान्यन्मदगत प्रलपत् ॥३४॥

—काशालकर, रुद्रट, न गाय १८, चौदहवा मन्धन साराण ।

२ लोकाभरण गूढ वल्लभे वल्लभा यत्र ।

भग दुःखायत दान करुण म तदोच्यते ॥५०॥

—सरस्वती कण्ठाभरण, पत्रम परिच्छेद ।

३ वियोगनेशे मरणमिति क्वचिन्न तदभवत् ।

मत्र तन्वयन यत्रान्य प्रलपच्छेक एव म ॥

—भावप्रकाश शारदातनय, चतुर्थोपिकार पृष्ठ =३ ।

गायकनाइ ओरिण्टल साराण ।

गाव और रति के जिम अन्तर का भरत इतन पहले स्पष्ट कर गए थे, उसकी धार इन सज्जन ही ध्यान नष्टा दिया, इसी कारण यह उलभन हुई है। रति प्रवृत्तिमूलक है अतः विप्रलम्भ में मरुतु के पदचान भी मिलने की आशा बँधी रहेगी। किन्तु गोक निरतिमूलक है, इसलिए करण रस में पूण नराश्य की अवस्था होगी। निष्कप रूप में हम कह सकते हैं कि पति पत्नी सम्बन्ध में भी जहाँ पूण नराश्य का वर्णन होगा, पुनर्मिलन की आशा नहीं होगी वहाँ करण रस ही होगा करण विप्रलम्भ नहीं।

भरत के करण विप्रलम्भ में पुनर्मिलन की आशा के तथ्य को साहित्यदपणवार विश्वनाथ न समझा। किन्तु उन्होंने कहा कि विप्रलम्भ की उपस्थिति के लिए एक प्रतिबंध प्रारंभ ला दिया—

“नायक नायिका में एक के मर जाने पर दूसरा जो दुखी होता है तो उस अवस्था में करण विप्रलम्भ कहते हैं। परन्तु यह तभी होता है जब परलोकगत व्यक्ति के मिलन की आशा है। यदि फिर मिलने की आशा टूट जाए अथवा जमानत में मिलने की आशा है तो करण रस होगा।”^१

जमानत में मिलन की आशा को विश्वनाथ करण रस मानते हैं किन्तु विचार करके देखा जाए तो वह भी करण विप्रलम्भ ही ठहरती है। जमानत में भी स्थिर मिलन की आशा रति के स्थायित्व की सूचना देता है, अतः वहाँ भी करण विप्रलम्भ ही होगा।

मगर हम कह सकते हैं कि गार प्रकृति से युक्त होने पर भी करण विप्रलम्भ का (विरह) अन्तर्भाव हो जाता है क्योंकि उसके मूल में रति ही स्थायी भाव के रूप में स्थित रहती है। यदि पण न होना तो वह करण रस ही हो जाती। वाचस्पति मिथ न कहा है कि मुनर और मुवती में न जब एक की मरुतु हो तो जीवित व्यक्ति खिन्न मर रहता है, वहाँ करण विप्रलम्भ होता है। इसका विश्वनाथ के लक्षण की आवृत्ति का मत है। ज्ञान में मूर्च्छित नायक को लक्ष्मी भी करण विप्रलम्भ होता है, जैसे वात्स्यर्षी में गुण्डरीन और महावता का वृत्तान्त है। करण विप्रलम्भ में शोक व्यभिचारी भाव है, इसलिए मगम की प्रत्याशा में युक्त यह अवस्था करण विप्रलम्भ ही कहनाएगी।

राजा हरिपाल का विप्रलम्भ सम्बन्धी दृष्टिकोण

राजा हरिपाल मभाग और विप्रलम्भ का शृंगार के दो भेद न मानकर शृंगार के अनिश्चित दो स्वतंत्र रस मानते हैं। उनका कहना है—

‘पहन आशायीं न सम वामना के मभाग और विप्रलम्भ के नाम से शृंगार के दो रस बताए हैं यह उचित नहीं है। क्योंकि शृंगार कहा-कही दिव्याई पडता है, इति

१ पुनरकल्पमिन्मनवनि लोकांतर पुनलभ्यः ।
 विनयवत्तु यत्प्रलम्भ मरुतुग्याविप्रलम्भाख्य ॥२०६॥
 जो रस नु करणरस एव रस ।

लिए यह अनित्य है, पशु पक्षिया म यह (शृगार) नहीं मिलता। मभोग सभी प्राणिया म दिलाई पडता है, अत नित्य है, इसलिए हम मभोग को शृगार से पथक एक स्वतंत्र रस मानते हैं।^१

राजा हरिपाल का सम्भोग सम्ब की उपयुक्त विवेचन ठीक नहीं है। अपने शृगार रस सम्ब की विवेचना म हम इस तथ्य पर पकड़ चुके हैं कि शृगार नित्य है, वह पशु पक्षिया म भी मिलता है। उम अवस्था म सम्भोग को शृगार से पथक अर रस मानने के मत से सहमत नहीं हुआ जा सकता।

राजा हरिपाल विप्रलम्भ को भी शृगार से पथक अर रस मानत है और उसका स्थायी भाव आति प्रतलात है। विप्रलम्भ के सम्बन्ध म हरिपाल का कहना है—

शृगार रस उज्ज्वल, गुचि और हृष्यक होता है और विप्रलम्भ मलिन, दु सकारी और अप्रिय। अत विप्रलम्भ, शृगार से भिन्न है। यह प्रदन हो सकता है कि जय विप्रलम्भ जनक सम्भोग म भिन्न वसे है ता इसका उत्तर यह है कि जय भयानक जनक वीर से भिन्न हाता है (उसी प्रकार विप्रलम्भ भी सम्भोग से भिन्न है)।^२

विप्रलम्भ विषयक उपयुक्त दृष्टिकोण उसी व्यक्ति का हो सकता है जिसने विप्र लम्भ के ऊपरी रूप का ही कवल देखा हा। विप्रलम्भ ऊपर मे मलिन और दु सकारी अवश्य प्रतीत होता है किन्तु उसको वसा समझ लेना भूल होगी। वास्तव म तो विप्रलम्भ शृगार का अत्यंत उत्कृष्ट और उज्ज्वल रूप है। प्रेम की निस्वायता वियोग की विरह वेदना से ही निखरकर सामन आती है। विप्रलम्भ म (अभीष्ट की अप्राप्ति) कवल औपचारिक रूप म है वास्तविक स्थिति तो यह है कि वियोग के दु ख म भावनाया का अवनयन नहीं हाता प्रत्युत अभिलाषा का स्फूर्ति मिलती है। विप्रलम्भ म आति आती

- १ सम्भोगो विप्रलम्भवश्च मङ्गलश्चति प्रयो रमा ।
अतिरिक्ता उभावन्त हरिपालमहामुजा ॥
तत्रेय वामना (१) पूर्ण समागो विप्रलम्भक ।
शृगारस्येव मनी द्वौ कवितौ—तत्सामप्रनन् ॥
अनित्यस्तत्र शृगार क्व (क्वा) त्रिको दश्यन् यत् ।
पशुपक्षिमृगावेषु यतश्च न विलोभ्यत ॥
मवन्न तुषु दश्यन्नात् मभोगस्यास्ति नित्यता ।
अतोऽन्वयमि सम्भोगो रस शृगारक (त) पृथक् ॥

—नम्बर आठ रमाय, रागन १४ १४१ ।

- २ उक्त शुचिरित्युक्त शृगारो हृष्यकत ।
मलिनो दु सकारी च विप्रलम्भाऽप्रियात्तह ॥
अत शृगारतो भिन्नो विप्रलम्भो उदाहृत ।
भयानकस्य वीरस्य जन्यस्य जनकस्य च ।
यो भेदो विप्रलम्भरससम्भोगस्य च समत ॥

प्रवृत्त ह किन्तु कबल अभिचारो के रूप में, अथवा ता विरही प्रवृत्तिमूलक रति को ही प्रपन्न हृदय में धारण किए दुःखदायक परिस्थिति के आघात को भी सुखमय मानकर उनका आह्वान करना है। दुःख उसका रति को पुष्ट करता है हनन नहीं। अतः दुःख उसका स्थायी भाव नहीं है। सनता, वह रति ही पुष्टि करने वाला व्यभिचारी भाव है। अतः यह निश्चित है कि अपने वास्तविक रूप में विप्रलम्भ, शृंगार का पुष्टिकर्ता और उनका उत्स्पन्ना आनन्दप्रद अंग ही है।

काम-दशाएँ

नाट्यशास्त्र के सामान्याभिनय नामक अध्याय में भरत ने कहा है—'दश अवस्थायां युक्तं कामनायां भावाम् प्रकाशितं होता है। सर्वप्रथम अभिलाषा उत्पन्न होती है फिर चिन्तन, स्मृति तृतीय दशा है। उसके बाद गुण कीर्तन और उद्वेग होता है, विलाप छटा स्थिति है। सातवीं दशा उन्माद के नाम से अभिहित है 'याधि आठवा है नवा को जडता कहते हैं दसवीं दशा मरण है। पुरुष और स्त्री में यह प्रेम की अवस्थाएँ हैं।'^१

आगे इनके लक्षण उद्घोषित इस प्रकार दिए हैं—

“(प्रिय व्यक्ति के लिए) इच्छा और आकांक्षा से उत्पन्न होकर जो उनके समागम का उपाय करती है उस अभिजाया कहते हैं।’

दूसरी से कहे गए इन चतुर्दशों के द्वारा चित्ता का निर्देश होना चाहिए—प्रिय में समागम वन और क्याकर सम्भव होगा।’

प्रिय व्यक्ति के प्रिय में गम्भीर चिन्तन करते हुए तथा अन्य कार्यों में अरिचिन्ता परत हुए बार-बार दोष निश्चय करने को स्मृति कहते हैं।’

अग प्रत्यगा की स्वाभाविक चप्टाया स्मृति और दृष्टि से यह सूचित करना

१

१ दशव्यवस्था कामनायां भावाम् प्रकाशयेत् ॥१६६॥

२ यमं स्वभिलाषा स्यात् दिनाय चित्तं नवम् ॥

३ अनुसन्धानं शृंगारं च चतुर्थं गुणकीर्तनम् ॥१७॥

४ उद्वेगं पश्चात् त्रिंशद्विलापं षष्ठं त्रयम् ॥

५ उन्मादं सप्तमं दशमं च नवम् व्याधिस्तथाष्टमे ॥१७१॥

६ नवमे उद्वेगं शृंगारं दशमे मरणं नवम्

७ अष्टमे चित्तं विप्रलम्भं च निश्चयम् ॥१७२॥

८ अथ सायं समागमं सप्तं च काममुत्पन्नम् ॥

९ सायं समागमं सप्तं च काममुत्पन्नम् ॥१७३॥

१० स्मृतिरस्मिन् समागमं च चित्तं चित्तं चित्तम् ॥

११ दुःखं च चित्तं चित्तं चित्तं चित्तं चित्तम् ॥१७४॥

१२ चित्तं चित्तं चित्तं चित्तं चित्तं चित्तम् ॥

१३ चित्तं चित्तं चित्तं चित्तं चित्तं चित्तम् ॥१७५॥

१४ चित्तं चित्तं चित्तं चित्तं चित्तं चित्तम् ॥१७६॥

कि उसके (प्रिय व्यक्ति) के सदृश और कोई नहीं है, गुणवचन नहलाता है।”

“आमन गयन म जब न काव होता है, न हृष किन्तु निरन्तर (मिलन की) उत्सुकता बनी रहती है तो उस उद्वेग कहते हैं।”

“यहाँ वह (प्रिय) बठा था, यहाँ खडा था, यहा वह भर ममीप आया था। इस प्रकार विलाप करने की (दुखपूर्ण वाक्या के बहन की) विलाप कहते हैं।”

“जब नायिका कवल उन(प्रिय व्यक्ति) के विषय म बात करने म मलम रहती है तथा अय पुरुषा स घणा करती है तो उम उमाद कहत ह।”

“प्रेम क समस्त सुखा म वचिन पूण निरागा की अवस्था म व्याधि हाता है।”
पूछन पर जब कुछ बोला नहीं जाता (विरही) न कुछ दग्ता है न सुनता है। उस स्मतिपूय अवस्था का जडता कहते हैं।”

“सब उपाया क करने पर भी जब समागम नहीं होता ता कामाग्नि म पडा हुआ विरही मरण को प्राप्त हाता है।”

भरत के पश्चात मरुहृत काव्यशास्त्र का दूसरा सवमाय ग्रंथ विद्वनाथ का साहित्यदपण है। साहित्यदपण म काम-दगाग्रा का विवचन विद्वनाथ न विप्रलम्भ के सम्बन्ध म किया है वस्तुतः काव्य म काम दशाग्रा की अभिव्यक्ति विरह के सम्बन्ध म ही हाती है।

विप्रलम्भ के विषय म इतना बतान के बाद कि ‘वह पूवराग मान, प्रवाम और कग्ण चार प्रकार का होता है’ विद्वनाथ पूवराग की काम-दगाग्रा का वणन इस प्रकार करत हैं—

‘अभिलाप, चिन्ता, स्मति, गुणवचन, उद्वेग, प्रलाप, उमाद, व्याधि, जन्ता

१ अगप्रत्यगलानाभिनाकचप्याहमित्तुक्षयै ।

नास्त्य य सदशाननेत्येत्स्त्रयात्पुण्यकौतनम् ॥१७६॥

—नाट्यशास्त्र, भरत, अध्याय २२

२ आसने शयने चापि न कुप्यति न ह्वयति ।

नियमेबोत्सुका यस्माद्भेगस्थानमिव तु ॥१८१॥ —वही

३ इह रिक्त इहामीन न्दुचोपगते भया ।

इति तस्यैविलापपि तैविलाप प्रयोजयेत् ॥१८२॥ —वही

४ प्रद्वेषि चापरा पुसो यत्रो माद स उच्यते ॥१८५॥

—वही

५ मामधनादि (१) मामे गै कश्चै सप्रेषयैरपि ।

सब निराकृतै परचाद्व्याधि समुपचायन ॥१८७॥ —वही

६ पथा न किञ्चिप्रमूत न शृणोति न पश्यति ।

हा कष्टवाक्यानुष्णाका जन्ताया गनमनि ॥१८९॥ —वही

७ मयै कृतै प्रत करैयाद नास्ति समागम ।

कामाग्निना प्रदाप्ताया नाथने मरण तत ॥१९१॥ —वही

घोर मति (मरण) ये दण काम आशा विधोग म होती है। अब इनके विशेष लक्षण कहन हैं। इच्छा का नाम अभिलाष है। प्राप्ति के उपायादि का नाम चिन्ता है। ज्ञान चेतन का बोध न रहना उमाद कहलाता है। चित्त के बहकन में उत्पन्न अटपटी ज्ञान का प्रलाप कहन हैं। तीक्ष्ण श्वास पाडुता, दुबलता आदि यावि है। अगो तथा मन क चट्टाणूय हान का नाम जडता है और मरण को मति कहते है।^१

इनके अतिरिक्त विद्वानाथ न प्रथम क सम्बन्ध में काम आशा का एक और पृथक् विवेचन किया है

'अगो म असीष्ठव सताप, पाडुता, दुबलता, अरुचि अधीरता अस्थिरता तम यता, उमाद, मूच्छा और मरण ये दम काम आशा प्रवास में नायक नायिकाया में होती हैं। इसमें मलीनता का नाम असीष्ठव है विरह ज्वर को सताप कहते है। सब वस्तुओं में बराबरी हो जाने को अरुचि कहते है। कहीं जी न लगन का नाम अधृति है। मन की शून्यता अनालम्बनता कहलाता है। नीतर ग्राह्य प्रियतम के ही दोष पडन को तमयता कहन हैं। शेष मय स्पष्ट ही है।'^२

विद्वानाथ के उपयुक्त काम आशा सम्बन्धी विवेचन से यह स्पष्ट है कि उन्होंने भक्त द्वारा उत्पन्न की गई काम आशा के अतिरिक्त और आशाओं के नाम भी गिनाए हैं—प्रमोषण, मनाप आदि। तबना यह है कि क्या भरत के शृंगार विवेचन में दी गई काम आशा में इनका अलग अस्तित्व हो सकता है अथवा य उनमें ही आत्मसात की जा सकती है? इसका अतिरिक्त भरत और विद्वानाथ की उमाद, चिन्ता, अभिलाषा

१ स च पुरुषागमानप्रवामककण्ठात्मनश्चतुधा म्यात् ॥२०७॥

अभिलाषाश्चिन्तामनिगुणरुधनादंगमप्रलापश्च ।

उमादश्च शोषिका मूर्तिरिति शान्त काम आशा ॥२०८॥

अभिलाषा शान्ति, चिन्ता, प्राप्ति उपायादिनि नम् ।

उमादश्चापरिच्छेदरवेवनायेननेष्वपि ॥२१॥

अथश्वशाब्दनाप स्वात्सो अन्त्यादभरान् ।

श्वश्रुत्यानि श्वास पाडुतादृशनादय ॥२२॥

अथा शीतरी श्लेष्मणानां मनमरुता ॥

—साहित्यत्रय विद्वानाथ तृतीय परिच्छेद

२ असीष्ठव ताप पाडुता इराताऽरुचि ॥२०५॥

अधृति स्वारनामम्बल मया नाम्मुद्धता ।

शून्यता चिन्ता अशा मरण इह ॥२०६॥

असीष्ठव मनापश्चिन्तायु विरहज्वर ।

असीष्ठव श्वश्रुत्यानि मन्त्रारातिनापि ॥२०७॥

अनन्तरनाम तापे शून्यता मनन श्रुत्या ।

अथ श्लेष्मणानां हि श्वासात्तरनस्थथा ॥२०८॥

आदि काम-दशाग्रा का तुलनात्मक अध्ययन भी यहाँ अनुपयुक्त न होगा।

अभिलाषा के विषय में साहित्यदपण में इतना ही कहा गया है कि 'इच्छा का नाम अभिलाषा है। भरत का विवेचन इस विषय में अधिक स्पष्ट है 'वह इच्छा जो समागम के उपाय की प्रेरणा करती है, वही अभिलाषा है। दपणकार ने नाट्यशास्त्र के 'कस और क्याकर हागा' का समाधान 'प्राप्ति के उपायों का नाम चिन्ता है कह कर किया। दूसरी तरफ समागम की इच्छा की बात पहुँचाना ही भरत के अनुसार प्राप्ति का उपाय है। भरत चिन्ता का अर्थ व्यक्ति के प्रति अभिव्यक्त करने के भाव पर अधिक महत्त्व देते हैं और विश्वनाथ आश्रय की मनावनात्मिक अवस्था पर। आश्रय मन ही मन भी प्राप्ति का उपाय सोच सकता है, उस वह दूसरी के समुच्च प्रकट कर भी सकता है किन्तु वह आवश्यक नहीं है। क्या भरत मानसिक पक्ष के इस महत्त्व को नहीं जानते थे? नहीं जानते थे, ऐसा तो कहा जा सकता है। उन्होंने उसके बाह्य रूप का ही प्रमुक्तता सम्मनन इसलिए दी क्योंकि वह उनका विवेचन 'सामान्यानिनय' नामक अन्वय में कर रहे थे, जहाँ अभिनिर्वात्यक पक्ष ही अधिक अभिनिर्वाध, दूसरी से मन के भाव का वर्णन उसको अधिक स्पष्टता प्रदान कर सकता था।

भरत कहते हैं कि उमाद में नायिका प्रिय के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों से घृणा करती है, प्रिय की ही बात करती है। साहित्यदपणकार के अनुसार इस (उमाद) में जड-चेतन का बाध नहीं रहता। उमाद की इन बातों पर निर्भाषाग्रा में विश्वनाथ का कथन अधिक प्रोढ़ और मशक्त है। उमाद मन की रचना में पूर्ण मानसिक अमनुलन की अवस्था है, जो ज्ञान और व्यवहार दोनों में प्रकट होती है। विविष्ट व्यक्ति पर ध्यान केन्द्रित हो जाना के कारण उसी में सम्बन्धित जाना में रचित और अन्य विषयों में धृष्टता हो जाना इसमें स्वाभाविक ही है। विरही भाव की अतिप्रयत्नता में जड और चेतन का भेद नहीं कर पाता, जड का चेतना सन्निविष्ट मानकर उसमें अपने दुःख का माभा करना चाहता है। पुष्करवा और राम समभार होने पर भी प्रिया वियुक्तावस्था में वन-लतादि को सम्बाधित करत हुए देखे गए हैं।

काम-दशाग्रा के नाम गणन में यद्यपि साहित्यदपण में प्रलाप का उल्लेख नहीं है जो भरत के नाट्यशास्त्र में है। किन्तु विवेचन में प्रलाप को उल्लेख उमाद के बाद रखा है यहाँ उल्लेख बदल गया है। भरत के अनुसार विनाप (प्रलाप) उद्वेग के बाद आता है। स्मृति के आधिक्य और प्रेम के प्रत्यावर्तन के भाव में मन जब उन्नत बचन हो उठता है तो उसे विलाप के रूप में फूट पड़ता है— वह प्रिय मरे मान यहाँ बठा था यहाँ खड़ा था, यहाँ मरे समीप आया था।'

साहित्यदपणकार प्रलाप को उमाद की ही विकसित (विकृत) अवस्था मानते हैं—'चित्त के बहकने में उत्पन्न अटपटी बातों के कहने का ही प्रलाप कहते हैं। दूसरे शब्दों में उनके अनुसार प्रलाप, पागलपन का उस अवस्था की अन्याय वानचीत हा है। यही एक बात और विनाप ध्यान देने की यह है कि भरत की विलाप में मिलती

तुलसीदासजी साहित्यदपणकार का 'प्रलाप' है। नाम के साम्य से इन्हें कुछ एक-सा समझा जा सकता है और साधारणतः समझा जाता भी है कि तुलसीदास का विलाप दपणकार का प्रलाप से निश्चिन्त रूप में भिन्न है। विलाप केवल भावना के आधिक्य में फूल-फूलकर राना है और प्रलाप मानसिक मनुष्य में पूर्ण विरहित एक दूसरी अवस्था।

परवर्ती संस्कृत काव्यशास्त्रियों ने हमें ज्ञाताओं में हमें भारत का स्वीकार करते हुए भाव प्रलाप का विलाप दपणकार का स्था है। यह सम्मिश्रण विभिन्नता अत्यन्त है किन्तु अनायास ही मनोमनानिक अधिक हो गया है। उद्बग की मानसिक अव्यवस्था प्रलाप के रूप में प्रकट होने पर अधिकाधिक पीड़ित हो उमाद का रूप धारण कर लेती है। व्यक्ति पागल हो जाता है पूर्ण विस्मृत।

साहित्यदपणकार के प्रलाप सम्बन्धी विवेचन में स्मृति को स्मरण प्राप्त नहीं है क्योंकि वह उनका विवेचन पूर्वराग के सम्बन्ध में कर रहा है। पूर्वराग में स्मृति मिलने की अभिलाषा का माग हो अत्यन्त हान पर उमादी होता हुआ प्रलाप कर बैठता है। स्मृति और उद्बग के मानसिक द्वन्द्व या उमाद अभाव रहता है। पूर्वराग में अभिलाषा की एक निष्पत्ता और तन्मयता अवश्य होती है किन्तु प्रिय मानिन्ध्य का मुख्य अनुभव विय हुए व्यक्ति व्यक्ति का प्रती और प्रती की पाव नहीं।

दपणकार के प्रथम सम्बन्धी विवेचन में वर्णित अरुचि अवीरता और अस्थिरता आदि काम-दशाओं का हमें भारत में उद्बग में ही अतिनिहित कर सकते हैं। उद्बग का लक्षण तब ही भरण कहते हैं— अत्यन्त तन मजबूत न हो जाता है न ही किन्तु निरन्तर मिनन या उत्सुकता बनी रहना है तो उसे उद्बग कहते हैं। तन और हृष का न होना मन से बचन अवस्था का परिचायक है। यही हमें और भी इंगित करता है कि विरही की अर्थ विषया के प्रति अरुचि है। मिनन की उत्सुकता हान पर भी उसके माग कुण्ठित हान में अधीरता विरही के सम्पूर्ण अस्तित्व या आत्ममात्र करन लगती है और इन दोनों का द्वन्द्व अस्थिर बना जाता है। यह अस्थिरता जब तक बहुत गुरुर नहीं हो जाती तब तक यह उद्बग है मुखर हान पर विरहा उमादी हो हो जाता है।

विषयनाय की अशोध्य और मनाप आदि काम-दशाओं चिन्ता में उत्पन्न विरहा का ही अन्वय रूप है। मिलने में और क्या करेगा, मन के इस भाव का जब कोई माग नहीं मूढता तो अतिशय निराशा और दुःख के विरहा का मनीन हो जाना स्वाभाविक है।

पाण्डुता और तुलना व्याधि के प्रतिरिक्त और कुछ नहीं। स्वयं दपणकार के पाण्डुता में तन-तन, पाण्डुता और तुलना व्याधि है (पूर्वराग सम्बन्धी विवेचन)। यह इह अत्यन्त काम-दशा मानकर तन स्वतन्त्र विवेचन और विदपणकार का आवश्यक्ता नहीं।

विषयनाय के प्रथम सम्बन्धी विवेचन में तन्मयता नामक काम-दशा का वर्णन किया है। तन तन्मयता का हमें भारत की स्मृति का ही एक अर्थ मान सकते हैं।

तमयता का लक्षण विश्वनाथ इस प्रकार करते हैं—“भीतर-बाहर प्रिय के ही दीख पड़ने को तमयता कहते हैं।” और स्मृति का लक्षण भरत के अनुसार यह है—“प्रिय व्यक्ति के विषय में गम्भीर चिन्तन करते हुए तथा अथ कर्मा में अशुचि प्रकट करते हुए बार-बार दीर्घ निश्वास लेने का ‘स्मृति’ कहते हैं।” अतः तमयता स्मृति का वह अंग कही जा सकती है जहाँ प्रिय के विषय में गम्भीर चिन्तन करता हुआ विरही बाहर भीतर उमी को दखन लगता है। मात्र ही विरही के जीवन का यह भी कटु सत्य है कि तमयता के ये कुछ सुखद लक्षण चिरस्थायी नहीं। प्रिय दूर हैं, मैं उनमें विद्युत् हूँ, यह यथाथ जय तमयता का अनायास ही भ्रूणभार करतहम नहम कर डालना होता वह स्मृति प्रकृत न हारकर रहल बन जाती है, विरही अथ कर्मा में अशुचि प्रकट करता हुआ बार-बार दीर्घनिश्वास लेने लगता है। निश्वास उसकी विवशता का घातक है।

पूर्वराग सम्बन्धी विवेचन में विश्वनाथ ने यद्यपि उद्वेग नामक काम-दशा की गणना की है तथापि उसका लक्षण उद्दान कही नही दिया। प्रवाम सम्बन्धी विवेचन में ‘अनालम्बनता’ नामक काम-दशा का जो लक्षण दण्डकार ने किया है वह भरत की उद्वेग-दशा के लक्षण में समानता रखता है। ‘मन की गूयता अनालम्बनता कहलाती है।’ (विश्वनाथ) ‘आमन क्षयन में जब न शोध हाता है न हृष किन्तु मिनन की उत्सुकता बनी रहती है तो उसे उद्वेग कहते हैं।’ (भरत) हृष और नाथ का न हाना ता मन की गूयता है ही, मात्र में मिनन की उत्सुकता होते हुए भी उसकी सिद्धि में व्यवधान जब मन का व्यावहन करता है तो उसका अधिन गूय हा जाना स्वाभाविक है। मन की यह जडता जब अगा पर भी अधिनार करती है ता ‘जन्ता’ की रगा आती है। ‘अगा तथा मन के चेष्टागून्य हान का नाम जडता है।’ (विश्वनाथ) ‘पूछन परज कुद बाला नहा जाना (विरहा) न कुद देखता है न मुनता है तो उम स्मृतिगून्य अस्थायी को जडता कहते हैं।’ (भरत) विवेचनाय के अनुसार मरण का नाम मृति है। भरत ने मरण का लक्षण इस प्रकार किया है—‘सत्र उपाया के करन पर भी जब समागम नही होना तो कामाग्नि में पडा हुआ विरही मरण को प्राप्त हाता है।’ रति भाव में मरण-दशा का वर्णन प्रायः कवि नही करते क्योंकि गोक की उपस्थिति से रति के धरम उत्पन्न में वाधा उपस्थित हानी है। अतः दीर्घकालीन जडता को ही मरण मान लिया जाता है।

मलेप में काम-दशाया के विषय में यह निष्कर्ष दिग जा सकत है विरह की अनक मन स्थितिया ही काम-दशाएँ हैं। ये उत्कट इच्छा के अतिरिक्त कुद नही हैं। इनका अतिम लक्ष्य मिलन की इच्छा आतुरता ही है।

काव्यगाम्भिर्य में काम-दशाएँ दस मानी हैं—१ अभिलाषा, २ चिन्ता, ३ स्मृति, ४ गुणवचन ५ उद्वेग, ६ प्रलाप, ७ उमाद, ८ व्याधि ९ जडता और १० मरण।

अभिलाषा—मिलन की इच्छा का नाम ही अभिलाषा है। इसमें प्रेमी प्रिय विषयक अनक कल्पनाएँ करन में तल्लीन रहता है।

चिंता—मिलन किस प्रकार हो सकता है। माग की कौन-कौन सी बाधाएँ हैं, उन सब पर किन किन उपायों में विजय प्राप्त की जा सकती है, इन सब समस्याओं पर चिन्तन करने को चिन्ता कहते हैं। प्रणाम में प्रिय के कुशल धर्म की चिन्ता भी हो सकती है।

स्मृति—मिलन की अभिलाषा का पथ अवरुद्ध हान पर जब प्रेम का उन्मुखी भाव कुण्ठित हो जाता है तो विरही मन अपने बदन के स्थान पर पीछे लौटने लगता है। अतीत का और प्रत्यावर्तन करके वह मिलन को ध्यान में पान का प्रयत्न करता है और नए तरह चिन्तन में अपने प्रत्यक्ष के अभाव की धनिपूर्ति करता है। इसको स्मृति कहते हैं।

गुणकथन—स्मृति में प्रिय का साक्षात् जय इतना भूत और साकार हो जाता है कि प्रत्यक्ष का ना आभास टन लगता है तो प्रेमी उस मुखद अनुभूति को केवल अपने में रीथे नहीं पाता भाव गन्ता में फूट पल्ल है। प्रिय के प्रति पशपात रखता हुआ प्रेमी अपनी मुखद अनुभूतियाँ को मुखर करता हुआ प्रिय का गुणकथन करता है। अभिलाषा में भी गुणकथन का समावेश रह सकता है।

उद्वेग, उन्माद और प्रलाप—विरह में अतीत की स्मृतियाँ मिलन की इच्छा को प्रत्यक्ष उत्कट बनाती हैं। विवृतायस्था के उमर वर्तमान यथाथ और विवृतायस्था में स्मृति का और इच्छा का उद्वेग चरता है और मन वचन हो उठता है। उत्कट इच्छा और परिस्थितिजय विवृतायस्था का मध्यम से मन के अयवस्थित हो जाने की ही उद्वेग कहते हैं। मन का यह अनुभूत जय वाणी और व्यवहार में प्रकट होने लगता है तो प्रणाम प्रसार और उन्माद कहलाता है।

ध्यायि जडता—जने अत्यधिक श्रम और उत्तजना के पश्चात् शरीर जड हो जाता है जमी प्रसार उन्माद में अयवस्थित भावनाओं के आरोह अवरोह और उनसे प्रेरित अनियमित अटपटा चप्टाया में विरही का मन और शरीर भी थक जाते हैं। शरीर की थकान में अनन्य प्रकार के राग विरहा पर अपना अधिकार जमा सकते हैं और मन का प्रतीति उनकी चेतना का धुपला करती जाती है। यही जडता के रूप में अभिव्यक्ति होता है। अनिश्चित प्रतीति में निष्प्रियता का भाव ही जडता की स्थिति है।

मरण—जडता का विलम्बित रूप का मरण कहते हैं। यह हम पहले ही स्पष्ट कर चुके हैं कि विप्रसम्भ में मरण (मृत्यु) का वर्णन प्रायः कवि नहीं करते। क्योंकि वहाँ गार भाव प्रमुख हो जाना के कारण रति के उत्कथन में त्रुटि उपस्थित होती है। अतः विरह का मरण प्रसम्भ का मरणानन्त अरथा ही समझना चाहिए, यह नीचकानीन प्रकृता है।

विरह का मनोवैज्ञानिक विवेचन

मनादिदरणा शास्त्र में साहित्य के 'विरह भाव का कोई स्वतंत्र विवेचन नहीं

मिन्नता। साहित्य का विरह भाव' वस्तुतः एक अनुपम मानसिक अवस्था है जिसमें मन की विविध परिस्थितियाँ और अनुभवों का मन्त्रोपेण रहता है। विरह में ग्रह के ग्राह्य होने में उत्पन्न पीड़ा के एक अथवा अनेक रूप उपस्थित रह सकते हैं।

मनोविश्लेषण नास्त्रिया न स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध में ग्रह की ग्राह्य अवस्था की जिन विविधताओं का विश्लेषण किया है, उही में साहित्य के विरह भाव को खोजन का प्रयत्न प्रस्तुत अध्याय में किया गया है।

व्यक्ति की समस्त मानसिक प्रक्रियाओं के मूल में स्थित जीवनच्छा विषय को फ्रायडियन भाषा में Libido कहते हैं। इसी का Ego libido (मन की जीवनेच्छा) भी कहा जाता है। इस Ego libido का अध्ययन और विश्लेषण तब अधिक सुगम हो जाता है जब यह अपना कोई विषय चुनकर उसमें व्याप्त और आच्छादित होती है। तब यह Object libido (विषयगत जीवनेच्छा) कहलाती है। उस स्थिति में हम इन विषयों पर एकाग्रचित् होते, नभी किसी विषय को अपनाते और किसी का त्यागते हुए पाते हैं। यह ग्रहण और त्याग विषयों की यौन-सम्बन्धी चेष्टाओं से प्रेरित होकर उन अनेक स्थितियों में से हृत्पर गुजरता है जो अंत में जीवनेच्छा की सन्तुष्टि का माग प्रशस्त करती हुई सन्तुष्टि के रूप में ही परिणत होती हैं।^१ अर्थात् जीवनेच्छा पहले विषयों में रहती है तब इसका रूप अग्रकट होता है, अग्रकट तभी होता है जब वह किसी विषय के प्रति त्रिधाशौल होकर उममें अपनी सन्तुष्टि प्राप्त करती है। इसी को विषयगत जीवनेच्छा कहते हैं।

इस जीवनेच्छा (कामच्छा) के अस्तित्व से ही सृष्टि का सुन्दर नम चल रहा है, यह फ्रायड प्रकृत मनोविश्लेषण विषयों का मत है। 'निर्निवाद रूप से यह विषय चयन विपरीत लिंगों में होना चाहिए।' अर्थात् जीवनेच्छा (काम) अपनी सन्तुष्टि का विषय विपरीत लिंगों में एक दूसरे के प्रति खोजती है। यही स्त्री-पुरुष के मध्य आकर्षण का रहस्य है।

१ The Libido Theory the energy which must be supposed to underlie mental processes in general

The ego libido is however, only conveniently accessible to analytic study when it has been put to use of cathecting sexual objects, that is when it has become object libido. We can then perceive it concentrating upon objects becoming fixated upon them abandoning them, moving from one object to another and from these situations directing the subjects sexual activity which leads to the satisfaction

—Freud's *Three Essays on the theory of Sexuality* Translated by James Strachy pp 94 95

२ One of the tasks implicit in object-choice is that it should find its way to the opposite sex Ibid, p 106

उपयुक्त विवचन में फ्रायड ने एक महत्वपूर्ण तथ्य का उद्घाटन किया है। वह तथ्य यह है कि किसी एक विषय में अपनी सन्तुष्टि न पाकर जीवनच्छा 'काम' उसी विषय पर स्थित नहीं रह सकती क्योंकि उसका मुख्य लक्ष्य स्व ही सन्तुष्टि है वह ग्रहण और त्याग करता है। यदि किसी कारण से वह विनिष्ट विषय के प्रति मोह को न भी छोड़ सके तो भी उस विषय पर स्थिति में भी अपनी सन्तुष्टि का कोई लक्ष्य निकाल लेती है। जब तक नहीं जानता तो किसी-न किसी मात्रा में सन्तुष्टि के सुख का अनुभव करती है और जब उसे उसका कोई उपाय मिल जाता है तो किसी-न किसी मात्रा में सन्तुष्टि के सुख का अनुभव करती है।

जीवनच्छा का सन्तुष्टि का विषय वस्तु नहीं होती, व्यक्ति होता है। वह आत्म का आत्म के प्रति आकर्षण है। अपने आत्म का नाशकार ही हम दूसरे आत्म में करना चाहते हैं। विषयी और विषय जाना चेतन हानि के कारण एक दूसरे के विषयी और विषय बन जाते हैं क्योंकि जिन प्रकार पहला मैं (आत्म) दूसरे में (आत्म) को अपनी सन्तुष्टि का विषय चुनता है उसी प्रकार यह दूसरा 'मैं' भी। दोनों का हित इस प्रक्रिया में अभिन्न होता है। दोनों में किसी की भी हानि हानि से अथवा किसी और का हानि व्यथान के कारण, हित का भाग कुण्ठित होने से जो स्थिति उत्पन्न होती है उसमें या तो जीवनच्छा प्रकट रहती है या तपित्त के लिए व्याकुलता, व्याकुलता की पीड़ा को तथा वह पीड़ा जिन मात्र स्थितियों को जन्म देता है उसी का साहित्य में विरह कहते हैं।^१

कहने का तात्पर्य यह है कि मनोविक्षलपण शास्त्र में विरह-जसा कोई स्वतंत्र भाव नहीं मिलता। यह विरह भाव न हास्य प्रमिया के विलग होने से उत्पन्न वह परिस्थिति विषय है जिसमें जीवनच्छा का सन्तुष्टि का भाग किसी कारणवश रूढ़ हो जाता है। सन्तुष्टि में सहायक निद्रा हानि वाली हृदय का उन भावनाओं के दमन से अनेक अनुभूत्यात्मक भावस्थितियों का जन्म होता है। ये सब अनुभूत्यात्मक भावस्थितियाँ विरह को स्थितमानाओं के अन्तर्गत आ जाती हैं। ये स्थितियाँ हैं—नराच्य, उदासीनता, आत्मपादन, मान ईर्ष्या, परपीडन और उन्मत्तन।

नराच्य (Frustration)—परिस्थितिविराग जीवनच्छा 'काम' जब अपनी सन्तुष्टि प्राप्त विषय में प्राप्त में समर्थ रह जाती है, जब सन्तुष्टि का अभाव में भावनाओं के बरबस अन्त में जो नराच्य स्थिति उत्पन्न होती है, उसमें बदनामयी पीड़ा का जन्म होता है। परिस्थित नराच्य में दुःख (रामच्छा के दमन में) नराच्य का उत्पन्न होना कहा जाता है। दुःख नराच्य के कारण ही विरह में पीड़ा का अन्तर्गत है।

१ If once it is the relation of an I to a thou is quite different from the relation of an I to an object or a thing—and true love is always an I a thou relation. Love does not cling to the I in such a way as to have the thou only for its 'Content' its object, but love is between I and thou. The man who does not know this, does not know love.

उदासीनता—कामच्छा, असंतुष्टि की स्थिति म टिकी नहीं रह सकती यह बात पहले ही स्पष्ट की जा चुकी है। अतः निराशा की स्थिति म भी व्यक्ति की 'ग्रह चेतना' अपने असन्ताप को मुलाने का-सा प्रयत्न करके स्वयं को यह जताना चाहती है कि मैं असंतुष्ट नहीं हूँ, दुखी नहीं हूँ। इस स्थिति म वह स्वयं का यह विद्यमान दिलाना चाहती है कि उसे उम विषय' से, जिसम कि वह पहले तपित की खाज करन का प्रयत्न कर रही थी, कोई मतलब ही नहीं है, कोई आमक्ति ही नहीं है। किन्तु यह मुलावा चेतन अपने का दे सकता है, अवचेतन को नहीं। अतः अवचेतन की अतप्त अनिलापा उसे फिर भी कचोटनी ही रहती है। यही विरह म उदासीनता (Indifference) की स्थिति है। उदासीनता' अपने आपका मुलावा दन का प्रयत्न है। उमम व्यक्ति सताप का-सा अनुभव करना ता चाहता है, कुछ माना म वह करता भी है, किन्तु वस्तुतः तपित के वास्तविक सन्ताप का वहाँ फिर भी अभाव रहता है। विरह की पीडा विरही को मालती ही रहती है।

आत्मपीडन (Masochism)—पीडा के इस निरन्तर अनुभव म अपने को सुखी मानने क लिए लालायित 'ग्रह चेतना' उम पीडा म ही मुख का अनुभव करने का प्रयत्न करन लगती है। वह अपने को अधिकधिक कष्ट दकर -उन सब भावनाओं को भूल जाना चाहती है जा उसका मूल पीडा का कारण थी। 'आत्मपीडन' का यह सुख विरही की विवशता का यातक ही हाता है। यदि भावनाओं का खुला अवकाश उनकी सतुष्टिम मिल जाता तो आत्मपीडन का प्रश्न ही नहीं उठता। आत्मपीडन म सुख अनुभव करने की स्थिति का मनाविश्लेषण विम Masochism कहत ह।

मान ईर्ष्या (Jealousy)—आहत ग्रह के कारण मान और इष्या का जन्म हाता है। मनाविश्लेषण शास्त्र के दूसरे प्रकाण्ड आचार्य 'एडलर' के अनुसार ग्रह चेतना का प्रथम नसगिक गुण है स्वतंत्र प्राणिया पर आधिपत्य की आकांक्षा (Love for Power)।

यह हम पहले ही स्पष्ट कर चुके है कि प्रेम के क्षेत्र म विषयी' और विषय' दोनों चेतन होते हैं। विषयी का 'विषय' वस्तु नहीं हाता, जा एक बार अपनी हा जान पर सदा के लिए अपनी ही हा जाए, चेतना से मंत्रिविष्ट व्यक्ति हाता है। अतः विषय स्वयं विषयी' होकर पहले विषयी को ता अपना विषय' बनाना ही है, उमके अतिरिक्त वह स्वयं भी किसी दूसरे विषय के प्रति भी विषयी हो सकता है। जब तक वह पहले विषयी को ही अपना विषय बनाता है अर्थात् यह दाना एक-दूसरे के प्रति विषय विषयी हाते हैं तत्र तक ता 'गुल्यानुराग' रहता ही है, मान और इष्या का प्रश्न ही नहीं उठता। किन्तु इसस भिन्न दूसरी दशा म जब यह (प्रेमपान) स्वयं विषयी बनकर (प्रेमी से भिन्न) अपना विषय कोइ और तीसरा व्यक्ति बना लेता है चाह वह अल्प समय के लिए ही क्या न हा, तत्र उस 'पहले विषय' की ग्रह चेतना आहत हाती है। इसका कारण मनोविश्लेषणशास्त्रिया के अनुसार यह है—उस दशा मे 'पहल विषय' (प्रेमी) को यह अनुभव होता है कि अपने विषय पर उसका एक शासन, एकाधिपत्य नहीं है। इस स्थिति म उसकी ग्रह चेतना 'हीन

भाव (Inferiority Complex) से पीड़ित होती हुई उस हीनता के विरुद्ध विद्रोह कर उठती है। यही प्रेम काल में मान और ईर्ष्या की स्थिति का जन्म होता है।

प्रमत्त पर किसी दूसरे का अधिकार है किन्तु वह मरे अधिकार के सम्मुख नग्न है, मरा मनुष्य में वह कुछ बड़े अंग तब घातक नहीं है, यह चेतना जब प्रेमी को हाती है तो ईर्ष्या की भांति बहुत अंग में कम हो जाता है।¹ इसका कारण यह है कि यद्यपि अधिकार कुछ अंग में दूसरे के द्वारा उठाया जा रहा है इस दुःखात्मक अनुभूति में ईर्ष्या ता रहती है किन्तु मर अधिकार का प्रभाव अनुपलब्ध है उसके भाग में कोई बाधा नहीं, यह बात प्रमा का मनुष्य प्रमाण करती रहता है। ईर्ष्या का प्रलय की ज्वाला का आवेग तब ही पूरता है जब मर अधिकार का कोई दूसरा छीनना चाहता है अथवा छीन लेता है।

परपीडन (Sadism)—ईर्ष्या में आहत हुआ अह जब प्रेम पात्र को दुःख देकर, कष्ट पहुंचाने स्वयं को मनुष्य करने का प्रयत्न करता है तब विरह में परपीडन की स्थिति का जन्म होता है। इस मनाधिकारवादी Sadism कहते हैं। खण्डिता का उक्ति या और आचरण में इसकी बहुत अभिव्यक्ति हमारे काय में हुई है। परपीडन को इस स्थिति में आत्मपान और परपीडन पाना का अपूर्व सामंजस्य रहता है। अह के आहत होने में दुःख होता है परन्तु उस दुःख को बटा चलाकर तीव्रतर किया जाता है। यि का कष्ट करने प्रेमी एक तात्पर्य सुख में अपने हृदय की ज्वाला को शीतल करता है। अपने का और दूसरे का भी अधिनाधिक दुःख देकर सुख का अनुभव इस स्थिति की विपत्ति है।

सखिता जहाँ एक ओर स्वयं दुःखी होकर आसू बहाती है और आसू बहाने में ही सुख का अनुभव करती है वहाँ प्रमत्त को दुःखी करके अपने सुख के अनुभव की अधिकाधिक वृद्धि भी करती है।²

1 The person who has learnt to recognize his real needs and limitations, and who has sufficient confidence in their own ability to ensure their satisfaction when required would suffer comparatively little from the pangs of jealousy

— *Men and Their Motives* by J C Flugel, p 116

2 But the most remarkable feature of this perversion is that its active and passive forms are habitually found to occur together in the same individual. A person who feels pleasure in producing pain in some one else during a sexual connection is also capable of enjoying as pleasure any pain which he may himself derive from sexual relations. A Sadist is always at the same time a Masochist although the active or the passive aspect of the perversion may be more strongly developed in him and may represent his predominant sexual activity

—Freud's *Three Essay on the Theory of Sexuality*, p 38

उन्नयन (Sublimation)—'विषय' म प्रतर्पित 'विषयी' की प्राणवृत्ति को या तो कुण्ठित करके नराश्य म डान देती है या आत्मपीडन और परपीडन जमी अस्वस्थ दिशाया की ओर ल जाता ह । आत्मपीडन और परपीडन के अतिरिक्त और अनक अस्वस्थ दिशाएँ ह जा अनक मानसिक रागा को जम देती हैं किन्तु इनका विषय हमारा विषय नहीं । अत इमका इतना-सा ही गंत करके, अपन मुख्य उद्देश्य पर आत हुए प्रस्तुत प्रसंग म यह कहना है कि इन अस्वस्थ अवस्थाया के अतिरिक्त अह की सतुष्टिका इम दगा म एक उपाय मनाविन और बतनाते हैं और वह है भावनाया का उन्नयन । उन्नयन का तात्पर्य है अननी भावनाया का अत्यधिक कायणीलता मे युक्त जीवन के अन्य क्षेत्रा म व्यग्र रखकर अपनी भावधारा का प्रवाह इम ढग मे माड दना जा व्यक्ति और समाज दोनों के लिए हितकर हा ।

'उन्नयन उस प्रक्रिया को कहते हैं जिसम नसर्गिक वृत्तिया को उनके मूल लक्ष्य से हटाकर एन उद्देश्या म रगा दिया जाता है जा व्यक्ति और समाज दोनों के लिए हितकर हो । नसर्गिक प्रवृत्तिया का दिगा माड तो 'न्यूरामिज (एक प्रकार का मानसिक राग) जसी अस्वस्थ दिशाया म नी हाना ह किन्तु उन्नयन म वह समाज के लिए स्वस्थ दिशा म होता है ।'

विरह की जिन भाव स्थितिया का अन्नयन हमन उपयुक्त विषयन म मनाविश्लेषण शास्त्र के अनुसार करन का प्रयत्न किया ह, प्राय व सभी हिन्दी काव्य म मुखरित हुई है । नराश्य और उदासीनता न तो हमारी व्यक्तिगत सुख-दुख की वृत्तिया को पूरा रूप से आच्छादित कर ही रखा है, आत्मपीडन और परपीडन का उन्नयन महादवी की वृत्तिया का प्रधान अंग है । मान इप्या और परपीडन के उदाहरण भी आधुनिक युग की स्फुट और प्रबल दोनों प्रकार की रचनाया म पून नहीं । उन्नयन की अभिव्यक्ति भी पयाप्त माना म हुई है । विरह के लगभग सब मनोवैज्ञानिक रूप हम हिन्दी के आधुनिक काल म मिल जाते हैं ।

१ Sublimation is the process by which instinctive emotions are diverted from their original ends and redirected to purposes satisfying to the individual and of value to the community

Instincts are in fact, redirected to other than their natural ends in morbid conditions. In neurosis, instincts are attached to morbid objects, in sublimation to healthy ones. Any kind of activity may serve as sublimation.

— *A Study in The Psychology of Human actions* by A. H. Burlton Allen, Ed 1930

द्वितीय प्र पाय

भारतीय साहित्य में शृंगार और विरह-भावना

वदिक, बौद्ध और पौराणिक साहित्य में शृंगार की
अवस्थिति और विरह

वदिक साहित्य

विरह भावना की प्राचीनतम अभिव्यक्ति ऋग्वेद के दशममण्डल में मिलती है जिसमें वदिक समय के चौरागीत मन्तव्य है। वदिक शाप के कारण उवशी राजा पुरूरवा का छाड़कर जान के लिए प्राच्य हानी है। इस परिस्थिति में पुरूरवा को अत्यन्त अस्थिर बना दिया। वह पुत्र्या जिनके स्नेह का उवशी पर एकमात्र अधिकार था, स्वयं उसके अपन शत्रुता में जिनके शालिगन पाप में वह दिन रात अव्यवनीय सुख का अनुभव करती थी। 'आज उवशी ने लौट आने की वितय कर रहे थे और वह उन कर्ण स्निग्ध प्रार्थना की अपहनना करके जान के लिए प्रस्तुत थी। मरग की उन स्वेच्छाचारिणी देववारागना को वह प्रचारा मानव जितने दिन बाध सकता था।

उवशी प्रिय रिद्धाह की वना में पीडित नहीं थी, यह नहीं कहा जा सकता। वह देववारागना में हा हा फिर भा नारी थी। कर्तव्य और हृदय की भावना के मध्य में विरह उवशी के यहाँ कितने मर्मित है—

मुझ पर तुम्हारे कहने का क्या प्रभाव होगा ? वह मैं, जो तुम्हारे जीवन से प्रत्यक्ष वा प्रथम विरह में विधीन हो गई। पुत्र्या घर लौट जाया मुझे पाना उतना ही दुःसाध्य है जितना पवन का जानकर रखना।^१

यहाँ विवमता हम गच्छा में और भी कर्ण हो गई है —

नहीं नहीं पुत्र्या तुम मरना नहीं,

अपगतुल्य रूप वर तुम्हें अपनी श्रुधा का श्रास न बना सक,

१ अपन ननः श्रुधया कर्ण नक्तं ननुविना वैमनः।

— अथर्व वेदिका, मन्त्र १०, अध्याय ८, सूत्र ६५।४

२ कर्ण काय इगुश तवह प्राणमिश्रुधमानधिरये। पुरूरव

स्त्री के साथ ग़दबत मत्री नहीं हा सक्ती,
क्याकि स्त्री का हृदय वय तरफ के समान ह ।”

उन्नी और पुरूरवा की इस वियोग व्यथा को कर्ण विप्रलम्भ की भावना के अतगत माना जा सकता है । साधारणत 'मरण' के पश्चात् भा जय प्रेमी का प्रिय से मिलन की आशा बंधी रहनी है तब कर्ण विप्रलम्भ होता है किन्तु दक्क चाप आदि के कारण विरह की अवधि जहा अनन्त हो जानी है वहाँ भी कर्ण विरह मान लना ही अनुचित नहीं हाता । दुष्पत राकु तला का विरह भी इमी प्रकार का था ।

ऋग्वेद के दशव मण्डल म हा पित गृह म स्थित कुमारी कया के किसी प्रिय ग्रथवा पति का अभिलाषा करन के लिए मकेत मिलते ह । एसा एक उदाहरण घापा का है ।

वदिक ग्रथा म बहुविवाह, उपपति आदि का अस्तित्व भी मिलता है । 'वरुण प्राग्हास नामक क्रम म यन करनेवाले व्यक्ति की पत्नी म उसके गुप्त उपपतिया के विषय म प्रश्न करन की प्रथा थी । इसम स्पष्ट प्रतीत हाता है कि विवाहित दम्पति क अतिरिक्त भी स्त्री-पुरुष के परस्पर उ मुखा भाव का इस युग म अवकाश था । अथर्ववेद के कुछ 'कौशिक मूत्रा म प्रिय पर प्रभाव डालन और उनका वग म करन के हेतु प्रयुक्त

युनरुग परंहि दुगपना वात इवाहमग्नि ।

—ऋग्वेद संहिता मण्डल १०, अथाय ८, सूत्र ६५।०

१ पुरूरवो मा मया सा प्र पत्नी मा त्वा वृत्रामो अरिवाम उवन् । न वै

स्त्रैषानि सरयानि सन्ति सालावकाशा हृदयान्यता ।

—बृह, सूत्र ६५।१२

२ जीव स्तुति वि मय तं अ वरे त्वामनु प्रमति दाधियुतर ।

वाम पितृभ्यो य द स मेरिरे मय पतिभ्यो जनय परिष्वन ॥१०॥

न तस्य विद्म तद्गु प्र बोचन त्वा ह ययक्त्वा ज्ञेति योनिषु ।

प्रियोस्त्रियस्य वषभस्य रतिज्ञो गृह गमेमाशिसना तद्गुहमसि ॥११॥

आ वामगन्तुमतिवाचिनावन् यश्विना ह्यमु कामा अयमन ।

अभूत गोषा मिथुना शुभरपता प्रिया अयभ्यो दुष्या अशासहि ॥१२॥

—ऋग्वेद संहिता मण्डल १०, अथाय ३, मत्र ६० प्रकाशक अजमरिय वदिक यन्त्रालय

बौद्ध साहित्य

'दोष निवाय' नामक बौद्ध ग्रन्थ में 'एव प्रश्न (एव पल्ल स्तुत) के अन्तगत सौभाग्य से प्राप्त यह प्रणयगीत प्रेमी को अनयता और प्रिय प्राप्ति के लिए उसकी विफलता का प्रतीक बन गया है—

“जस शाक्य मुनि ह्य विह्वलता स मुग्ध, ध्यानावस्थित, स्वयं स खाय द्रुए से, जीवन की अमरत्व प्राप्ति की खान में निमग्न रहत है और मनन करत है, वसे ही या ! मूय की विभा ! मैं तुम्हारी खोज में मलग्न हूँ ।”

‘यदि दवयोग से ३३ देवताओं के स्वामी भगवान् गायक मुझे कभी वरदान दगे, तो मैं उनसे तुम्हें माँग लूँगा। ओ भद्रे ! तुम्हारे लिए मरा प्रेम इतना सक्त और समथ है।”

तिम्बार्न् नामक ग्रन्थ की कथा मूयवक्त्रा के प्रति मातलीग सघनाश के पुत्र सिलद्धि की यह अनय अभिलाषा, विरह भावना में पूवराग के अन्तगत मानो जाएगी। बौद्ध साहित्य की यरी गाथाओं में भी प्रणयमूयव रहस्यवाद जमी कोई चीज नहीं मिलती। बुद्ध की पति मानकर इनमें से किसी न भी अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त नहीं किया, उनका इहान केवल पिता के रूप में ही दखा है।

पौराणिक साहित्य

पौराणिक साहित्य में भी शृंगार भाव के प्रति यही उदासीनता लक्षित होती है। प्रेम यद्यपि इन ऐतिहासिक-पौराणिक गाथाओं का मुख्य विषय रहा है, दमयन्ती, सावित्री, शकुन्तला और भीता की कथाएँ प्रेम का आदान हैं किन्तु पौराणिक लेखकों का लक्ष्य इनके द्वारा धर्म तथा कर्तव्य का प्रतिपादन करना था, रति भाव का सूक्ष्म अध्ययन, विस्लेषण और दिग्दान नहीं। परवर्ती लेखकों ने इनके अनुभूत्यात्मक पक्ष का ग्रहण किया और य संस्कृत महाकाव्यों और नाटकों की मूल स्पन्दना बन गई। दमयन्ती और शकुन्तला, माध और कार्तिदाम की वाणी में अमर हो गई। भीता की प्रणय-कथा ने तो वाल्मीकि,

१ Yam me atthi punnam asmim puthuvimandale, Tam me sabbanga kalyani taya saddhim vipaccatam, Sakya putto va Jhanena ekodi nipako sato Amatam muni Jigimsano tam aham Suriya vaccase Yatha pi muni nandeyya pitva sambadhim uttaman Evam nandeyya kalyani missi bhavam gato taya

२ Sakko ka me varam dajja Tavatimsanamissaro Taham bhadde vareyyahe evam kamo dalho mama

—*Digha Nikaya*, Edited by J W Rhys Davids Ph D, L L D and J Estlin Carpenter M A, Vol, II 1903, p 267

कालिदास, भवभूति तथा मरुहट के न जाने कितने अग्रगण्य कवियों की भावसरिता को उल्लिखित किया था, उनके भासाद्यान का शृंगार किया था, सुन्दर से सुन्दर सुवासित कुन्दम उनमें मिलाया था।

पौराणिक युग का महाकाव्य, वाल्मीकि की 'रामायण', इस युग की रति विषयक उत्तमोत्तम का कर्म मरुहटय परित्र का विश्राम दनमाला हरा भरा स्थल है। वाल्मीकि का कवि हृदय न एक अरु नही सीनाहरण के प्रसंग में राम के विरह का सूक्ष्म मनावनात्मिक चित्रण किया है वही रावण के प्रपन्न में विवश, विरह की अवधि व्यतीत करता हुआ माना का भी। रामायण के ६०वें मग में वाल्मीकि राम की मनोदशा का चित्रण इस प्रकार करते हैं—

'साता का प्रपन्न की अभिजापा में राम लक्ष्मण जब अत्यन्त शीघ्रता से आश्रम पर पहुँचता वह मूना पडा था। उस एसा देख वह बहुत उद्विग्न हो गए।'

मीना में विद्युत्क वह पणगारा राम का हेमन्त का कमलिनी के सदाग शाभा हान गया।'

उस समय आश्रम में बस माना रा रह था फून कुम्हलाए हुए थे, पक्षी उदास थे। उन्मत्तता उस अन्त और गामाहीन तल त्यागकर चल गए थे।'

माना का यत्नपूर्वक खोजन पर भी न पाकर राम की आँख लाल हो गई और वह विक्षिप्त हो गया।

ग्राम के अन्त में आश्रम माखू व रुठहर, कुरह अनार चपा और कतवी के यथा व पाम जाकर उनमें मीता के विषय में प्रश्न करते हुए महायशस्वी राम भ्रान्त में लगन थे।

१ सरमाया जगन्नाथ अनाशरनवायस ।
गू-वनाक्षय एषा बभूवाक्षममानस ॥

—वाल्मीकि रामायण, संग ६०, श्लोक ३

२ असा पणगाला व रक्षिता मानया त्वा ।
प्रिया विरहिते अस्या हस उ परिमनात्त्रि ॥

—वही, श्लोक ५

३ रु उन्मत्त बभूव च भवानुपमग प्रवन् ।
प्रिया विरहे न विवश मन्वमवन्ववन् । —वही श्लोक ६

४ यत्न मुा नश्यन्तु मानसा वने प्रिया ।
माकरतदय शोशानुत्त इव लक्ष्मी ॥ —वही श्लोक १०

५ मूना मनसाया पनस कुरवा खान ।
प्रायमानमन नशा एषा रामा महापरा ॥
म लक्ष्मी नोपशरैव इवक नोकाक्षया ।
इवमन्वो वने प्रवन् ना इव लक्ष्मी ॥ —वही, १०, २२

‘वधा म ही नहीं पगुभा से भी राम न सीता का वक्तान पूछा, मगा स वह बोले, “क्या तुम मगाक्षी मोता का समाचार जानत हो ? वह मगनयनी मेरी काता अवश्य ही हरिणिवा के साथ हागी ।”’

सीता की अनुपस्थिति में उत्पन्न राम की आत्मा कभी-कभी उस चरम स्थिति पर पहुँच जाती है जहाँ सीता की एक मरुभ्रम मद्ग मूर्ति उनके नत्रा के म मुख उपस्थित होकर अनायास ही आभन हा जाती है और तब—

हू चारुहामिनी जिम मैंने अभी देखा था, वह तुम नहीं थी । अवश्य ही तुम्हारी जीवन ताता किना न समाप्त कर दी है । अथवा दम दारुण दुख म मुझे इस भाति बतात दत्वकर तुम मरी उपक्षा न करना ।”

किन्तु फिर भी राम का विलाप करण रस नहा विप्रलम्भ ही है क्योंकि ६०वें मग व एक दत्राक म बाल्मीकि स्पष्ट कह दत है कि—

‘सीता से मिलन की पूण आगा सहित राम उम विगाल बन म भ्रमण करते हुए उह स्वाजन का धम उठाने ग, अथात् मिलन की आशा का परित्याग न करके राम बार-बार परिश्रम न उम विगाल बन म सीता का खोज रहे थे ।’

राम का विरह निराग होकर कही एकांत म बठकर राने वाला विरह नहीं है । उसम मितन का आगा ही नहा प्रत्युत उम आशा को साकार बनाने का प्रयत्न भी है । अतः राम पवन, नदी, वन उतादितथा पगु-पशिया मे पूछत पूछत थक गए हैं । इस विवशता म राम का पौरुष जान उठता है और तब—

‘यदि दवता मरा सीता को चाहे वह हरण की गई हो अथवा मत ही क्या न हो, सवुगल मुझे लौटा न दग ता म चराचर सहित सारे जगत को ही नहा प्रत्युत तीना लोका का नष्ट कर डालूगा । यह कहते हुए जोध से रक्ताभ नत्र राम न हाथ म धनुष लिया ।’

तब लक्ष्मण न उह समभाया—

‘जस चद्रमा म श्रा, सूर्य म प्रभा, वायु म गति और पथ्वी म क्षमा नियमित

१ अथवामगशासत्रा मर जन्तामि मैथिलाम् ।

मगविप्रतया वान्ता मगाभि सहेता मनेत् ।

—बाल्मीकि रामायण, मग ६० श्लोक २३

२ नैव मा नूनमवगा हिमल चान्तासिना ।

वृच्छ प्रणत न मा नून यथापक्षितुमवति ।

—वहा श्लोक २६

३ तथा म गत्वा विपुन महद्वन

परात्य मव त्वय मैथिली प्रति ।

अनिष्टिनाग स चकार मागये

पुन प्रियाया परम परित्रमम् ॥ —वहा, श्लोक २८

४ हता मृगा वा सोमिने न दास्यति ममेश्वरा ।

तवारूपा द्वि वैदरा न दास्यति याद प्रियाम् ॥

नाश्यामि जगत्सव त्रैलोक्य सचराचरम् ।

इत्युक्त्वा रोपाताम्रातो रामो निप इयकामु वम् ॥ —वहा, श्लोक ७१, ७२

रूप में रहती है वमन आपन इन चार। गुणा के सहित उत्तम यग स्थित है। एक क
अपराध के लिए सम्पूर्ण जगत् का नाश करना आपके लिए उचित नहीं है।'^१

राम की इस मनागना का बाल्मिक में पूवराग प्रवास, मान और कर्मण, विरह
के इन चारों प्रभेदों के अन्वगत नहीं रखा जा सकता। प्रथम तीन भेदों में सदा वह
है नही, चतुर्थ के बहुत समीप आ जाता है किन्तु फिर भी यह करण विप्रलम्भ नहीं
है। माता की अनाजान आश्रम में अनुपस्थिति में यह गंवा हान लगती है कि सम्भवतः
अन्या किसी वचन पशु न रखा गया है किन्तु माय है यह स्मरण रखना होगा कि इस
घटना में पटन है। गुणगवा विक्रमगी बनाई जा चकी है। दण्डक वन निगाचरा सं
साक्षात् है अतः किमा निगाचर द्वारा उनका हरण किए जान की सम्भावना ही अधिक
हानी है। राम के मन वासय में चाह वह हरण की गई तो, यह सम्भावना और भी
अधिक स्पष्ट हो जाता है। यह ठीक है कि माता में मिलन अनिश्चित हो गया है किन्तु
किसी दक्षिक गाप के कारण नहीं। अतः सास्त्रीय 'कर्मण विप्रलम्भ' की भावना के
अन्वगत राम का विरह नहीं आता यद्यपि वह उमक बहुत निरुत् है। कवि शास्त्र के
अनुकूल चरन को प्राध्य ना नही है। उसने एक यथाय परिस्थिति का निमाण किया
और उमक रमस्व ना में पूर्ण अवकाश दिया काय सास्त्री उसके भेद प्रभेद वाद में
बर्तन रहे। विविध रूपात्मक मानवा जीवन की अगणित परिस्थितियाँ का कि ही
रूढ़िगत विभाजना में प्रायः सकना भी सम्भव नहीं है। प्रत्येक परिस्थिति एक नवान
प्रभेद का जन्म देने में समर्थ है।

उद्वेग, प्रयाप और उमात् लगाया या चित्रण भी बाल्मीकि ने सफलतापूर्वक
किया है। गीता का आश्रम में न पाकर राम उद्विग्न हो गया है, मन की बचनी है उद्वेग
है। माता में मिलन ना उत्कट इच्छा तथा हर्षण है जान में बाधा उपस्थित हान के कारण
राम के मन का अन्तुवन नष्ट हो गया है। मन की इस बवस उदासी में प्रकृति अपनी
पूर्ण समझना प्रकट कर रहा है यों माना रो रहे थे, फूल कुम्हलाय हुए थे, पशु उदात्त
थे।

मन ना यह अव्यवस्था तब वाणा सं प्राप्त जाता है, तब 'प्रलाप तथा व्यवहार
में प्रकट हान' पर उमात् कहानी है। माता का खोजन पर न पाकर राम की आँ
नाश हो गई और वे उमत्त हा गण। चपा के बतका कवशा के पाम जानर उन
गाता के विषय में प्रश्न करते हुए राम भ्रान्त में लगत में। मगा सं उनका यह पूछना 'क्या
तुम माता को जानते हो?' भी उनके मानसिक विवगताजय अमन्तुलन का सूचक है।
है। मन का अन्त राम के इन गानों में फूट पड़ा— ह चाम्हामिनी ! जिसे मैंने अभा दत्ता

^१ अनाजान प्रभा मूर्ते गन्धिका सुवि चमा ॥

पशु निरुत्त मवस्व वि चानुत्त यश ।

पशु निरुत्त मवस्व वि चानुत्त यश ॥

या वह तुम नहा हा, तुम्हारी जीवन लाना अवश्य किसी न समाप्त कर दी है। अथवा इस दास्य दुःख में सीता मरी उप ना न करती।

प्रताप ने अगली विरह दशा 'अन्ता' राम के अनुकूल नहीं थी। महाव्यासा राम न ता हाथ में धनुष लहर दन्तात्रा तक्ष की गन्ति का जनकारा और तीना लाका का नष्ट कर डान्त का संकल्प किया। लदमण के शब्दा न एक बार फिर उनके महान व्यक्तित्व के यथाथ में उनकी अव्यवस्थित मानस का परिचिन कराया और था, प्रभा गति और क्षमा से युक्त राम के माहत्त और सामर्थ्य न उन प्राधात्रा का दूर हटाकर सीता का पुन प्राप्त किया जो राक्षस कुन के समूह विध्वंस का कारण बन गई।

विरह भावना की दूसरी अभिव्यक्ति वाल्मीकि रामायण में सीता के पक्ष में हुई है। वाल्मीकि श्री सीता के विरह में निराशा का ही आधिपत्य है। इस पूण निराशा में भी राम के प्रति अनन्य आस्था व निस्सीम विश्वास का त्याग सीता न नहीं किया है। नरास्य के आधिक्य में सीता को बन्धी-कन्धी एसा लगता है कि सम्भवत राम अथाव्या लौट गए हैं और इसीलिए वे उनके च धन मुक्त करन नहीं आय।

ह राम! पिता की आज्ञा पूरी करके सम्भवत तुम अथाव्या लौट गए हा, वहा सुन्दर नेत्रा वाली रमणिया के साथ समय व्यतीत करत हाग।^१

किन्तु राम की आरस प्रेम के प्रतिदान का अभाव सीता की एकनिष्ठता में बाधा नहीं डाल सकता उनके लिए वह प्राण द देने का भी तत्पर है।

'मेरी सब कामनाएँ तुम्हें अर्पित हैं। तुम्हारे लिए मैं प्राण तन को भी प्रस्तुत हूँ। परन्तु मरे सत्र पुण्य विफल हुए मैं मदभागी हूँ (इस दयनीय अवस्था में) लडा से अथवा विष खाकर मैं आत्म हत्या कर लूगी किन्तु इन राक्षस-नारा में मरी इतनी महायता करन वाला भी तो काइ नहीं है।'^२

निराशा के चरम श्रणा में ही सीता इस प्रकार व्यथित होती है अथवा ता—

ह राम तुम कृपातु और सत्यव्रती हा। क्या तुम नहा जानत कि मैं यहाँ रासा के हाथ मत्सुपाग में आवड हू। आह! मरे पुण्य और तप सब विफल हुए^३ कहत हुए वह

१ पितुर्निर्देश नियमन श्रुती वनानिन्द्राश्च रत्नप्रश्रुच।

रनाभस्तु मन्य विपुलेक्षणे भन्व रसने वनभव नशक ॥

—वाल्मीकि रामायण सा ६५ श्लोक १४

२ 'प्रह तु राम त्वयि जातकाना चिर विनाशाय निन्द भावा।

मात्र चरत्ताऽथ तेषां प्रव च लक्ष्याम विग्नान्निमल्लोभाय्या ॥

सा त्रवित क्षिप्रमेव त्वनय विन्य शम्भेय शिगन वाऽप।

विपश्य दाता न हि मऽन्ति कश्चिच्छुभ्रस्य वा वेरननि रावस्य ॥ —वही श्लोक १५, १६

३ हा! राम सत्यव्रत दात्रवाहो हा पूषच प्रप्राणान्मनक।

हा जीवन्मोक्षस्य त्तित मियरच कथा न गा वत्स हि रानमानान ॥

अनयदेवत्वमिव क्षमा च भूमी च शय्या नियमश्च धम।

पातत्रज्ञात्र विफल ममद कृता वननापव्व मातुपाशाम् ॥ —वही, श्लोक ११, १०

उवशी के लिए निरन्तर व्याकुल है, उवशी भी उनसे मिलन के लिए उतनी ही उत्कण्ठित। राजा की विफलता उनकी प्रथम विवाहिता रानी से भी छिपी नहीं रहती। ईर्ष्या भाव का अल्प-सा दिग्दर्शन कालिदास यहाँ करते हैं किन्तु वह चरमोत्कर्ष का नहीं पहुँचता क्योंकि विवश रानी अपना निष्कल भावनाएँ राजा को समर्पित करके प्रतिज्ञा कर लेती है कि वह उनके नवीन प्रेम में बाधा नहीं डालेगी, अपना आदर भाव उनका प्रियतमा के प्रति समर्पित करेगी। पुरूरवा की रानी की प्रतिज्ञा भामन्तयुग की नारी की विवशता का स्रोतक ही है जिसमें आत्मा के नर्मणिक विद्रोह की शक्त भी नहीं रहती। प्रथम रानी का अनुरक्ति के मकत से कालिदास सम्भवतः इस तथ्य को ध्यान में रखकर कहना चाहते हैं कि रानी के हाते हुए भी राजा का प्रेम उवशी के लिए कृतज्ञता-सिद्ध था। उधर पुरूरवा का निरन्तर ध्यान करते रहने के कारण लक्ष्मी-स्वयंवर के अभिनय के अवसर पर उवशी, जो लक्ष्मी का अभिनय कर रही थी, पुरुषोत्तम के स्थान पर पुरूरवा के प्रति प्रणय-भाव व्यक्त करती है। पूवराग में इस उमाद की दशा का अतमत रखा जाएगा, जहाँ परिस्थिति का ध्यान प्रेमी को नहीं रहता। गान-स्खलन के अनुभाव द्वारा उवशी के पूवराग की यह दशा दूसरा पर प्रकट हो जाती है। उस अभिज्ञप्त धरके पुरूरवा के पास पृथ्वी पर भेज दिया जाता है। यह अभिज्ञाप उवशी के लिए ता वरदान ही बन गया इसके कारण ही उसे प्रिय साहित्य-मुख प्राप्त हुआ।

‘अभिज्ञान राकुतलम म दुष्यत शकुन्तला का प्रेम भी दृष्टिपात अवस्था-रूप-रक्षण में प्रारम्भ होता है। कण्व-रूपि के आश्रम के मनाहर उपवन में वे एक-दूसरे को देखते हैं और ममय के शिकार हो जाते हैं। स्त्री-पुरुष का परस्पर आकर्षण दुष्यत के लिए नवीन अनुभूति नहीं थी, उनके अनक विवाह हो चुके थे। प्रेम के क्षय में वह काफी अनुभवी और समझदार थे किन्तु फिर भी तपस्वी की कथा के प्रति हानि वाला इस आकर्षण में जो चुम्बक था वह अनुभूतपूर्व ही था।

शकुन्तला तपोवन में पाली गई थी, प्रेम और उसके क्षेत्र में आनन्द वाले दुख-मुख से पूर्ण अनभिज्ञ। दुष्यत को दग्ध ही शकुन्तला ने स्वयं में परिवर्तन का अनुभव किया—

“आज इस व्यक्तित्व को देखने में मेरे हृदय में तपोवन के लिए अनुपयुक्त भाव क्या आ रहे हैं।”

पूवराग की पुष्टि में दुष्यन्त के लिए केवल एक ही बात थी कि वहाँ शकुन्तला ब्राह्मण-कथा नहीं है। इस बाधा का निवारण भी जब प्रियवन्ता और अनुसूदया के वातालाप से हो गया कि शकुन्तला अनिय कन्या है तब सत्य का कोई अवकाश ही नहीं रहा। शकुन्तला ने जाते समय पाव में कुछ चुम्बक जान व कुरवक की गाँव में आकर अटक जान की जो बात की उससे दुष्यन्त के कामी हृदय की अग्नि और धक्का उठी।

१ किन्तु यहाँ हम प्रेक्ष्य तपोवनविशेषितो विचाररथ गमनाया आत्म-मन्त्रता।

एक उभयपक्षी राग में कालिदास ने जाना ही 'शकुंतला का वध' किया है। दुष्यंत शायं का 'अपहरी' में 'शकुंतला' के 'राग' के लिए व्याकुल घूमता दिखाई पड़ता है वह अपना पुर का बापस जाना स्वर्गित कर देता है। कामाग्नि से पीड़ित शकुंतला कुंज में मगिया के साथ मिलन के लिए चिंतित दिखाई पड़ती है, इस प्रसंग में मिलन के लिए 'पत्र-लवन' का विधि का निर्देश कालिदास ने दिया है। पूवराग में कालिदास ने शकुंतला के कुरुराज 'राग' में आचल अटक जान की रात कहकर उनके हृदय की 'अभिलाषा' उभर आने का 'राग' में जानबारा प्राप्ति करने के रूप में दुष्यंत की अभिलाषा का चित्रण किया है। 'मानस' में वानचौत में प्रियता की स्मृति और 'शकुंतला' द्वारा मिलन की विधि का 'पद्य' करने का चर्चा में चिंता आदि नाम 'राग' का यथास्थान वधन किया है। दुष्यंत 'शकुंतला' के पूवराग का पयवसान सयाग (गंधर्व विवाह) में होता है।

मान विप्रलम्भ

भाजन मान का वरण श्रेत हुआ कथा है कि मान अपराधी प्रिय के प्रति झूठा राग हा है। प्रणय की पूनता अथवा इष्या के कारण आहत प्रेमी इस कठे राग में अपने प्रेम का पुनः प्रतिष्ठापित करना चाहता है।

'शकुंतला' के प्रबंध 'राग' में मान का स्वान उद्धृत हा गीण है। सभ्यत प्रबंध काव्या के रचयिताओं ने जीवन का विविध परिस्थितियाँ की विगदता में मान का राग का प्रणय कराने वाला अंग मानकर उनका इतना प्रमुत्ता न दी हो। किन्तु याम्यत में यह विरह की अत्यंत मार्मिक स्थिति है जहाँ प्रियजन के उपस्थित हान पर भी भाव प्रणय का प्राप्ति नहीं हो सक्ता। 'शकुंतला' में नाटक मत्त्वानव-मुद्ध के बाद दुष्यंत का 'शकुंतला' में जब पुनर्मिलन होता है तब मान का अथवा 'कालिदास' रस सक्त थे कि नु उहाने बना नग क्रिया सभवत इमलिए कि दत्तन कष्ट महन के उपरांत जीवन का न मान समाप्त हो चुका था। 'शकुंतला' में मोन रहकर पीडा को सहन करना सीख गया था।

मान के पुनः प्रिय परतून प्राप्ति के स्पुट पत्र में मिलते हैं जहाँ कवि जीवन की विगदता परिस्थिति एक प्रसंग में या एक घटना का चित्र उपस्थित करके एक पूण रस को प्राप्त करता है। 'मानस' और 'अमरक' गतक इस प्रकार के मुदर वाक्य में हैं।

मानसिन्धुपान न हान भावना को दुष्यंत का कारण बतलाया है। प्रेमी जब स्वयं का मन प्रविष्टा में हान अनुभव करता है तब ईर्ष्या का जन्म होता है। इस भाव का मुदर विधा 'मान' की गतार्थ के इन स्पुट पत्र में हुआ है। ईर्ष्या से पीड़ित एक मानिनी का पादा मह इन गतार्थ में मन पर उठता है—

यह ठाक है कि वह मुदर भी है और योग्य भी मैं अमुदर भी हूँ और अयाम्य

श्री, किन्तु क्या, जो उसके जन्म नहीं है, उन मनुष्य को मर जाना चाहिए ? ”

बार-बार अपराध किए जान पर मान 'मान न रहकर अहित ग्रह का दुःख विद्राह बन जाता है तब प्रेमी नमभौता नहीं कर पाता । उसकी परम्पराएँ यदि उस प्रवकाग नता तो नमभवत वह प्रेम के नवीन विषय की खोज करता किन्तु इसके अभाव में वह नराश्य कुठा (Frustration) का रूप लेता है । अमस्क न इन वदु अनुभूति का सुन्दर यजना की है—

‘कवन मकुटि रचना ही जहाँ राप का परिचायक धी भौन रहना ही भलता आपम में मुस्करा दना ही जहाँ सधि या और परम्पर दष्टिपात प्रसन्नना ना लक्षण उम प्रेम का अगोप आज दगो—तुम मुझे प्रमन्न करन के लिए मर पाव पर पड रहत हा और मैं भी इतनी नगम हो गई हूँ कि नाथ मुझ नहा छाउता ।’^१

इसमें और अधिक मयत और मार्मिक नरीश्य इन गता में प्रकट हुआ है—
‘हमार शरीर मिलकर जब एक हो गए व उसक बाद न तुम ही कवल प्रिय रह, मम्पूणत हताश मैं तुम्हारी प्रियतमा नहीं । आज तुम नाथ हो और मैं तुम्हारा पत्नी, मर वज्र हृदय का उचित फल ही मिला ह ।’^२

‘मान का एक आवश्यक अंग मनुहार है उसक कारण ही ‘मान’ इतना मयुर है । अमस्क के एक चित्र में नूठी ईष्या में उत्कण प्राप्त करती हुई मनुहार का सुन्दर दश्य है—

तुम्हारी होनेरी न तुम्हार कपोल क प्रमाधन का नष्ट कर दिया, आज नि श्वासा न तुम्हारा अपराधमत्त पा लिया मिसकी गल का आलिंगन करती हुई बलस्यल का आन्दालित बना रही है ह प्रिया आज मान तुम्हारा प्रिय है मैं नहीं ।^३

१ सा ज्ञान सुत्र पुण्य रूपान्ते हिरे धाम खिगुण अ अन् ।
नण नाथ तो र सरिता किं भो मन्धे तणे मरउ ॥

—इण मत्तमदं, अ भाव ६

२ कपोल यत्र मकुटि रचना निग्रही यत्र भौन
यमान्या शक्तिमन्मनुनया दष्टिपात प्रमाद
तत्र प्रे एरतदिम्भुना वैशम पश्य जान
व पागते उठसि न च न मनुनोश्च खलाया ॥

—अमस्क शतक, दन्द २८

३ तगभूदरनाक प्रथमभाव-नक्ता तनुरिय
दना न त्व प्रैयानहमपि हताशा प्रियमा ॥
एतनी नाथत्व वधमपि कलत्र किमपर
नवाप प्राणाना कुलिशकठिनाना फलामदन् ॥

—वहा, दन्द २६

४ कथले पत्रादा करतलनिरोधेन मृतिता
निप्रानो नि श्वाभैरयममत्तहृद्याऽपरम ।
मुह कथे लम्नस्वानयति बाध स्तनतट
प्रियो मन्नुनातलत्र निरसुरोपे न तु वयन् ॥

—वहा, दन्द २१

मान' का विस्तृत विश्लेषण करते हुए भोज न कहा या कि 'मा और 'न' मान के दो निषेधसूचक गण्ड माना प्रेमी की स्वीकृति की सूचना दत्त हुए कहत है कि वह वास्तव में नाराज नहीं है अथ भी प्रिय का उतना ही अच्छा है। नाराज होना का ता वह अभिनय कर रहा है।¹ मानिनी की इस मनास्विनि का विश्लेषण अमरक न इस पद में सुन्दर ढंग से किया है।

अपराधी प्रिय न व्यवहार करते समय मानिनी को नेत्र अत्यन्त चतुर हो गए। प्रिय दूर से ताप उत्सुक था वह मानन लगता था विमुख हो गए आनिगन की इच्छा प्रकट करने पर विस्फारित हो गए वस्त्र के छूने पर भूकुटी तन गई और अत मजबूत वह क्षमायाचना के लिए परापर गिरे ताप नेत्र बाष्पाच्छन्न हो गए।²

मानिना को भूठ रोप की भावनावलता का नेत्रों के अनुभावा द्वारा मुचास चित्रण हुआ है।

प्रवास विप्रलम्भ

हमचन्द्र न काव्यानुशासन में प्रवास का लक्षण करते हुए कहा है कि नायक-नायिका को भिन्न-दश में रहने का प्रवास कहत है। इसका यह भिन्न दशत्व कायका, गायका अथवा मध्रमयका अर्थात् भय के कारण भी होता है।

दुष्यन्त गकुत्तला का कायका (राजकाय सम्भारन के लिए) छोड़कर चला गया। पुनर्विलोकन के लिए अर्थात् की नियुक्ति यह हुई कि दुष्यन्त के नाम में धाय हुए अर्थात् की सत्या के बराबर कल्पितमा में दुष्यन्त गकुत्तला को हस्तिनापुर बुला लगा। उस स्थिति में गकुत्तला को हम प्रापितपति का नायिका के रूप में देखत है। प्रिय की स्मृति में यह ताम्बी दुर्वासा का अतिविमत्कार करना भूत जाती है और ऋषि अपमानित होने पर इस घाप से दत्त है। 'स्मृति की तमयता का चित्रण करते समय कालिदास बताते हैं कि प्रापित शान पर भा गकुत्तला का उमका पता न चला वह उससे अनभिज्ञ थी, यद्यपि विदुषा सखिया ने गायक गमन का उपचार नों दुर्वासा के परापर गिरकर करा दिया कि 'अभिमान (स्मृति चिह्न) के प्रत्याग पर राजर्षि गकुत्तला को पहचान लगा।

गायक कारण उत्पन्न 'प्रवास का सुन्दर चित्र कालिदास के 'मघदूत' में है। मघना प्रियता का प्रणय में दूतकर यक्ष न कुवर के काय को अवहलना की थी। कुवर ने घोर दशरूपक वप के लिए उसे अनया में निवाहित कर लिया।

1. शिव—विदुषा का काव्य शास्त्रिय विवेचन में मान के विवेचन के अनुरूप ।

2. दूर, दुर्वासा के विवेचन में मानाशिव्य स्मृति
मात्र में गायक गमन का विवेचन
मानिनी के अर्थात् अर्थात् बाष्पाच्छन्न
मात्र में गायक गमन का विवेचन

आपा क नवाच्छादित मेघा से आवास का नीचम नत्र परिपूर्ण था, उनकी आर एक टक निहारत हुए रामगिरि पवत के उम मुद्गर गिलर पर एकाकी बठ हुए य क नेत्र भी प्रियतमा की स्मृति में अनायास ही मघाच्छन्न हा गए। प्रकृति के कोमल प्रता-वरण का प्रभाव व्यक्ति की भावनाओं और मन स्थितियों पर पड़ना है।

‘बादल का दायकर ता मुन्नी व्यक्ति का हृदय भी प्रिय मिलन व लिए उद्विग्न हा उठता है फिर विरही का ता कहना ही क्या, जो सुदूर प्रदग म प्रिय के आलिन व लिए तडप रहा हा।’^१

पावस ऋतु शृंगार भावा का चरम उद्दीप्त का प्रतीक बनकर आती है। श्रावण निकट है अत सदेग मजना और भी श्रावश्यक हा गया। प्राणवान और जड म विरहा भेद नहीं कर पाता। भावना का आधिक्य जड का भी प्राणवान बनाकर उमम मवदना प्राप्त करने का मचल उठता है यह ‘उमाद की दगा है। इसके लिए कानिदास कटन हैं—

“धूम विद्युत, जल और वायु स निर्मित जड मेघ तथा मत्स्य का क्या सम्बन्ध हा सकता है? मत्स्य जा श्रवणन्द्रिय के बिना व जाया नहीं जा सकता उत्कण्ठा म यथा यह भूत गया और मध म सदा कहन लगा। वास्तव म विरही जड और चतन का भेद नहीं कर पाता।”^२

‘अपनी प्रियतमा की जीवन रक्षा के लिए तथा मेघ के हाया उस कुशल समाचार भेजने के हेतु आनन्दातिरेक म उमन सब विक्रमित चमली के पुष्पा स उसका (मघ का) स्वागत किया।’^३

मेघ को अपनी शिवसता बताते हुए उसन कहा—

‘वायु मण्डल म तुम्ह वहता देखकर पथिका की स्त्रिया प्रिय मिलन की कामना म अभिभूत हो उठेंगी। मुझ-जमी पराधीन के अतिरिक्त एमा कौन हतभाग्य होगा जा तुम्हारे हात हुए प्रिया की उपश्या करेगा।’^४

१ मेघालोक भवति सुगन्धाप्य शवति चत ।
कण्ठास्नेह प्रणयिनि चने कि पुनरूत्सरेवे ॥

—नन्द, दन्द ३,

२ धनयोनि मलितमरुता सानपात क्व मघ ।
संशया क्व पटकरण प्रायेनि प्रायशीया ॥

शयामुक्तादपरिणामानुद्ध्यस्त यथाचे ।

कामाना हि प्रकृतिरुत्थारचतना रतनेषु ॥

—वहा, दन्द ५

३ प्रथामन नभमि दशिताजविनागमनाथा ।

जभूतेन स्वतुगतनथा हारविष्य प्रवत्तिम ॥

म प्रत्यये कृतककुमुमै कन्वितापय नम ।

प्रत प्रातिप्रमुग्धचन स्वमत न्याजहार ॥

—वहा, दन्द ४

४ त्वमारुद पवनपदव मुद्गहातालकान्ना ।

प्रेक्षिष्यन्त पक्ववनिण प्रत्ययादास्वसन्त्य ॥

मानव जीवन की यह विन्मयना हृदय की कामलवति प्रेम और उसकी विवशताएँ आज भी जानने म वसा ही हैं जसी कालिदास क समय म थी। वक्ष की भाति आज भी विरही तड प्रकृति म अपनी भावनाओं का आराप करके उस चेतन बना लेता है अथवा साधारण रूप म जट दिवाइ टन वाली प्रकृति की चतनता का परिचय प्राप्त करके उसम महानुभूति प्राप्त करने का विक्रम हा उठता है। बूम विद्युत, जल और वायु से निर्मित मष भी प्राणपान हाकर विरहा की मम कथा मुनता है और उस यथासम्भव मगानुभूति और मगना प्रदान करता है।

प्रवास की विरचना करत हुए आज न गुगार प्रकाश म यह कहा है कि "इस भिन्नतात्व म विविध प्रकार का वाम अवात आच्छादन अथवा बंग भूषा हान से भी यह प्रवास रहता है।"

'अलसा म निरमित अपनी पना की टगा की कल्पना यम इस प्रकार करता है—

किमय मन्स्य अक्षर विरह पीता म तप्त हाग। सुगन्धत तल के बिना बाल रु र हा गए ता। स्वप्न म भी मुग्ध भिनन वस सम्भव हो सता है इसी चितन म वह रूपा रहती हागी क्याकि स्वप्न भी मो मर अभाज म निद्रा न आन स दुलभ हा गए हागे।

रठिन विषम एक यणी उमन धारण रर रखी हागी। उसक निरलकृत अगा को रररर ह मष। तुम्हार मया म भी अशु घ्राण बिना न रह्य।

विरह की अवधि अचन लीघ हा जाती है। यक्ष कहता है—

मानसि धानि म धात शया क एक रिनारे पर वह पडी हागी। विरह स मरौण क्षीण वह रिति पर उन्नि चन्द्र की एक कला के ममान दिवाइ पडती हागी। राति जा मर मम म एक क्षण क मग पीतनी से वही अत्यंत लीघ हा गई हागी और विरह क उणा म मुद्रा क कलकत-रुवनत बिताई जानी हागी।

क मरु विरहियुत त्वपुपडित कथा।

न व १-१-यसमिब जना व परासनरसि ॥

—मपूत द्द ३ =

१ निर २५ प्रथम म व प म भोज का प्रवास मय से विवेकन दग्धिण।

२ निर २७ मगारविमचयन राना विजिपता

गुम्ननाभमपनर नूनमगवदकम्भन्।

न व ११ ४ गुम्नवे र्कनतो-वति निना-

माधान् ११ मवनउरि ता इ द्दवकसाता ॥

२-१

रठिन वाम नक रवा।

—मपूत

१ क रवासा निरदगयन म रण्णुवपाखा

मा मून म निर क मनावराषी दिगारा।

न म रा व रण्णिव मशामावमि दारवा

मनमो ११ मर गुम्निपावनाम् ॥

—व १, द्द ३ ६६

गम में उसकी प्रियतमा का हाल सुनकर मय की आशा में आसू न आ गए हांग यह अनभव है। आज भी कोई सहृदय यो त्थि की कृष्ण व्यथा से घात्र हुए बिना नहीं रहे मरुता।

मूढ न काव्यालंकार में प्रवाम के ल ग्ना म कहा है कि नायक विदग्ग जाएगा जा रहा है, गया—य मय प्रवाम हैं। 'विदग्ग जाएगा यह कल्पनामान ही अभाव की अनुभूति कराकर विरह की पीडा को जम द मकनी है। प्रवत्स्यपतिना नायिका म विरह का अस्तिरव इसी से है। 'हाल की विरहिणी कहती है

"प्रिय सखी! कवल आज क लिए मुके रान से न राक कत यदि उनके चन जान पर भी प्राण अवाण रह ता में न राज्गी।"

प्रवाम में स्वप्न द्वारा मिलन का विधान है किन्तु विरहिणी का निद्रा के अभाव मय भी दलम है। एक प्रापितपनिका नायिका स्वप्न की कामना करती हुई कहती है

'व भाग्यालिनी स्त्रिया वन्य हैं जिनका स्वप्न म ही मही, प्रिय क ग्गन हा ता जात है। मुके ता उनक विद्याग म नीद भी नहीं आनी।'

कृष्ण विप्रलम्भ

नाटयगाम्त्र के रम विकल्प नामक अध्याय में कृष्ण विप्रलम्भ का लक्षण स्पष्ट करत हुए भरत मुनि न कहा है कि यद्यपि कृष्ण विप्रलम्भ और कृष्ण रस एक ही सी परिस्थितिया म उत्पन्न हान हैं (दृष्टजन क नाग से) किन्तु ग्गना की प्रकृति म मौलिक अन्तर है। कृष्ण रस पूण नराशर की अवस्था है और कृष्ण विप्रलम्भ म रति स्थायी भाव हान से सापन्न नाव रहता है अथवा अभिलाषा पराशर बनी रहती है।

भरत की इन परिभाषा म विद्वनाथ न एक और गन जाड दी थी—“परतु यह तभी हाता है जब परनाकगत व्यक्ति क इनी जम म इसी रह म, मिलन की आगा हा। विश्वनाथ न स्पष्ट कहा कि 'यदि फिर मिलन की आगा टूट जाए अथवा जम जमातर म मिलन की आगा हा ता कृष्ण रस होगा।'

विद्वनाथ की उपयुक्त मायता हम माय नहा है वह प्रथम अध्याय म स्पष्ट किया जा चुका है। जम जमान्तर म ना मिलन की आगा रति क स्थायित्व की सूचना

१ दक्षिण विप्रलम्भ का शास्त्राय अ यवन, प्रथम अध्याय।

२ अत पि ताव एवक मा म काराह पिअसहि रुद्रनिम।

कन्ति ग्ग तम्भ गए नइ रा मुआ ना ख रादम्भम् ॥

—हाल मरुत, /२

३ अस्या ता महिलाओ नाट्ये त्तविशेष वि पच्यन्ति।

गिण् विप्र तेष विष्णा ए एका पच्यए निविडम् ॥ —वहा, ४'६७

४ देखें, कृष्ण विप्रलम्भ मन्वनी विवचन, प्रथम अध्याय

५ वहा

‘ओ मुन्दर स्त्री ! तुम अपने शरीर की मयल रक्षा करो। तुम्हारा अपने प्रिय से उसी प्रकार मिलन होगा जैसे वषा ऋतु का आगमन होने पर मूय वे द्वारा मुखाए गये जल का नदी से जाना है।’

रघुवंग में अज का विनाश यद्यपि गोक स्थायी में परिपूर्ण है किन्तु फिर भी यत्र तत्र करण विरह की मन्त्र उमम दृष्टिगोचर हो जाती है।

‘गाकण तीव’ पर शर को प्रेम न करने के लिए नारद जा रहे थे। उनकी वीणा पर रखी हुई माला वायु से प्रेरित होकर ‘अज’ की प्रियतमा ‘इन्दु के वक्षस्थल पर जा गिरी। इन्दुमती के प्राण पखेरू उड़ गए। पत्नी का अकस्मात् मृत्यु हो जाने से अज उमत्त होकर विनाश करने लग। उन्ध्रात राजा ममीर से दोलित इन्दुमती के बाला का देखकर कहते हैं—

ह करभ क समान जघाम्रा वाली प्रियतमा। वायु से प्रेरित तुम्हारे काले बाला को कापता हुआ देखकर भेरा मन तर लौट आन की गवा कर रहा है।^१

विरह तप्त राजा सम्पूर्ण मण्डि में इन्दुमति का रूप देखते हैं, उसकी वाली मुनते हैं और उमकी गति का अनुमान लगाने हैं—

‘मुझे विरह का दुख सहने में अममन समझकर तुम यद्यपि कोकिल के मधुर गान में अपनी कण्ठध्वनि, मरालिया में अपनी धोमी चाल, हरिणिया में चंचल दृष्टि और लताम्रा के कम्पन में अग विलास छोड़ गई हो, फिर भी मेरा हृदय तुम्हारा वियोग महन में असमथ है।’

अज के विलाप में जहाँ गोक हा प्रमुख भाव है, वहाँ भी रति ही उसकी प्रेरिका बनकर आई है—

‘ह मदिराक्षि ! मेरे मुख का मधु पीकर तुम तप्त होती थी। अब परलोक में रे अश्रुआ से दूषित जल की अजलि पीकर तुम बस तृप्त हो सकोगी।’

वाणभट्ट की ‘कादम्बरी मुख्यतः महाश्वता और पुण्डरीक के विरह मिलन की हानी है। ग ववराज चित्ररथ की कथा महाश्वता मुनि श्वेतकेतु के पुत्र पुण्डरीक पर

तस्मिन् परिद्व शोभने भविष्यदप्रियमगम वधु।

रविपात जला तपस्व्यं पुनरोधेन हि युज्यते नरा ॥ ४० ॥ —कुमारसम्भव, रति विलाप

दुसुमोत्सुखिना क्लाम्भनश्चतय भद्ररुचमन्त्रालकान्।

वरगोरु करोति मारुणम्वदुपावतनशक्तिं मे मन ॥

—रघुवंग, अष्टमः मंग श्लोक ५३

वदम वमनाम मापिन क्लहसाधु मदानसताम्।

पथनापु विलोचमान्ति पवनाधूतचतासुविभ्रमा ॥

त्रिदिवात्सुक्याऽप्यवलय मा निदिता मत्पमथो गुणास्त्वया।

विरहे तव मे युञ्ज्यथ हृदय नानवलम्बितु क्षमा ॥ —वही, श्लोक ५६६०

मदिरानि मग्नाननार्पित मधु पात्वा रसवत्कथ तु म

अनुपास्यसि नाप्यदूषित परलोकोपगत जलाजलिम् ॥ —वही, श्लोक ६८

... ..इ थी। उधर पुण्डरीक भी काम पीड़ित हुआ और महाश्वता की विरह व्यथा में उमन प्राण त्याग लिए। पुण्डरीक के शव के समीप महाश्वता उपस्थित थी कि एक अलौकिक घटना घटित हुई। चंद्रबिम्ब में उतरकर एक दिन पुरुष पुण्डरीक के शव को उठाकर ले गया और महाश्वता को आश्चर्यमय दत्ता गया—'पुत्र महाश्वत ! तुम प्राण का परित्याग न करना फिर इसके साथ तुम्हारा सम्मिलन होगा।' पुनर्मिलन की आशा में महाश्वता तपस्विनी का मा जीवन व्यतीत करने लगी। अंत में कुमार चंद्रपीड के मित्र वाम्पायन के रूप में उमना पुण्डरीक में मिलन हुआ।

अलौकिक घटनाओं का समावेश हान पर भी काव्यमयी व पात्रों की मानवीयता आशुता है। महाश्वता का शवक था है किन्तु उस विरहविधुरा की पीड़ा किसी भी विरहणी का पीड़ा हा है। पत्नी-वनवासिनी महाश्वता की भट जव चंद्रपीड से होती है और वह उमक इस प्रकार के जीवन के लिए प्रयत्न पूछता है ता महाश्वता के नेत्रों से दुःखने मोन प्रसू पाहन का भी प्रतिफल बनने की क्षमता रखत है। काव्यमयी में महाश्वता का विरह कथा विप्ररम्भ ही है।

अतएव हमने वरुण विप्ररम्भ के कुछ ऐसे उदाहरण देखे हैं जहाँ भक्त प्रिय पात्र के शवक उपस्थित रहने पर भी प्रमी मिलन की आशा नहीं छोड़ता। अतएव ऐसे कुछ उदाहरणों का उल्लेख किया जाता है जिनमें परिस्थितिवश वियाग की अग्रिम अनिश्चितता हा जाती है कि फिर भी प्रमी आशा का परित्याग नहीं करता। इनमें कभी-कभी ऐसी परिस्थिति रहती है कि एक पक्ष यह भी नहीं जानता कि दूसरा जीवित भी है अथवा नहीं और विरह-व्यथा में लडपता है। कालिदास के विरमावगीयम में एक बार ऐसी ही परिस्थिति घाता है।

एतन्मय पुरुरा और उवगी धूमत धूमत कुमारनातिनेय के वन में चल गए। कुमार के प्रभाव में उवगी अनायास एक लता के रूप में परिवर्तित हो गई। राजा उद ध्यान हारकर मन-मन नटवने लग। उवगी से पुनर्मिलन लगभग असम्भव-मा लगने लगा किन्तु राजा ने मिलन की आशा नहीं छोड़ा। राजहृत्सा को गति गति में चलाता गहर राजा का नाम जा यह चान उहान उमका प्रेयसी में सीखी हा।

आहमा। क्या मरावर तट पर तुमने वनभवा वाली मरा प्रियतमा को दया है। यदि तुमने उसे नहीं देखा तो फिर उसकी यह चाल तमने कहा में चुराई ?"¹

१ का मरुतरा में पलना । तथा प्रायः पुनर्जातमाने मरु नववर्षी समाप्त ।

२ काव्य में मया न न ननभू मला रावसि मयन प्रिया मी मरु नय कष नु तथा मरु नय मरु मया मृशान् ॥२६॥

—विरमावगी, पृष्ठ ४६६, चौलना मरुतन मरुत